9.4

द्ध और कौशल से अपनी परिपक्वता दे रही हैं। ऐसे में उन्हें सिर्फ बाह्य परखने का कोई औचित्य नहीं। कार्यकर्ता अमिता जोशी के पेशे की मुदाय के बीच रहना। उनकी को समझना और निदान तलाशना। कई मौकों पर पुलिस थाने और

प्रशासनिक अधिकारियों के दफ्तरों के चक्कर लगाने पड़ते हैं। वह कहती हैं, 'अब अगर समाज के तानों से डरकर मैं अपने कर्तव्यों से मुंह मोड़ लूं तो फिर मेरी स्वतंत्रता कठघरे में आ जाएगी। आज अगर परिवार का साथ है तो इसलिए कि उन्हें मेरे फैसलों पर विश्वास है।' महिलाएं जब घर की दहलीज लांघकर बाहरी दुनिया में जाती हैं तो एक रिस्क लेती हैं, लेकिन बदले में उनका फलक बड़ा होता है। एक अलग प्रकार की स्वतंत्रता का आभास होता है।

शर्तों पर रह रही हूं। पसंद क पूरा हुआ है। इस कमाई हुई स जाया नहीं होने देना चाहती, मां के विश्वास पर पड़ी है।'

मेरी है जिंदगी

प्रियंवदा रस्तोगी, संपादक, टिंकल (हिंदी)

'जिंदगी मेरी है, उसे अपने से व्यतीत करती हूं। से भी यही अपेक्षा होती वे मुझे महिला या ती नहीं, इंसान समझें। की सोच, विचारधारा र्ष है। निर्णय लेने में हूं। किसी सांचे में कर रहना स्वीकार नहीं। मुंबई अपने दम पर आई थी और आज अकेले ही एक सम्मानजनक मुकाम तक पहुंच पाई हूं।'

जीती हूं अपनी शर्तों पर

शुभी चंद्रा की शुरुआती शिक्षा-दीक्षा उत्तर प्रदेश के एक छोटे से कस्बे में हुई, लेकिन सपनों को पूरा करने के लिए किसी बड़े शहर का सफर जरूरी

स्वयं का गढ़ा व्यक्ति

'ज़िम्मेदारियों का बोझ बढ़ कहलाने लगे हैं हम, लेकिन अवसरों पर अपना हक लेने हुआ है, कहती हैं फ्रीलांस र बिंदास जीवन जिया है। डिस् सिलसिले में अकेले अलग-अ देश तक जाना होता है। अग जाऊं कि कहीं समाज में अंगुली न उठा दे... तब तो अ जीवन जीने से रही। घर, रिवाज एक स्त्री को बांधने हैं, लेकिन जब आपका स्वयं आप गढ़ेंगे तो आत स्वीकार करना आ जाएगा।'

शिक्षा से खुलती

'यह एक महिला की परि उसकी खुद की इच्छा करता है का करती बड़ी शेमफोर्ड गु एग्जीक्यूटि अरोड़ा ने शिक्षा ज विशिष्ट पह मानना है

गोरा

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली-६

प्रकाशक : सत्साहित्य प्रकाशन, २०५, चावड़ी बाजार, दिल्ली-६
अनुवादक : राजेश दीक्षित

संस्करण : १९८४
मूल्य : पचास रुपये

GORA : novel by Ravindra Nath Tagore Rs. 50·00

सत्य किसी समाज विशेष के बन्धन में बँधकर सीमित नहीं रहता। सत्यान्वेषी चाहे हिन्दू हो अथवा ब्राह्म, क्रिश्चियन हो अथवा अन्य मतावलम्बी वह केवल सत्य का ही आश्रय ग्रहण करेगा। अन्तरात्मा की सच्ची पुकार के सम्मुख कितने ही सामाजिक दण्ड तथा भय क्यों न आ उपस्थित हों, वह उनसे कभी विचलित न होगा।

परेश बाबू कहने को तो ब्राह्म थे, परन्तु ब्राह्मसमाज का बन्धन उन्हें अपनी संकुचित परिधि में बाँधकर कभी नहीं रख सका। सत्य की रक्षा के लिए उन्होंने समाज और संसार सभी को चुनौती दी, अनेक अपमान सहकर भी अपने पथ से कभी विचलित नहीं हुए।

इसी प्रकार आनन्दमयी तथा विनय के सम्पर्क में रहते हुए भी गोरा का दृष्टिकोण जब तक सीमित रहा, तब तक वह कोई उत्थान नहीं कर सका, परन्तु जब उसे वास्तविकता का पता लगा तब भारतवर्ष का सच्चा रूप उनके समक्ष चित्रित हो उठा।

रवीन्द्रबाबू के उपन्यासों में 'गोरा' का सर्वश्रेष्ठ स्थान है। उपन्यास के भी पात्र इतने सजीव तथा सशक्त हैं कि वे पाठकों के हृदय पर अपनी मिट छाप छोड़े बिना नहीं रहते हैं।

—प्रकाशक

१
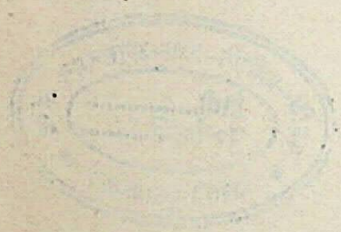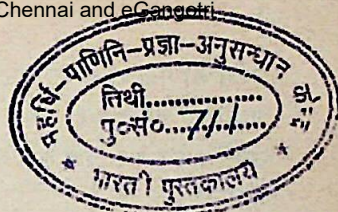
श्रावण का महीना था। प्रातःकाल बादलों के हट जाने पर निर्मल धूप से कलकत्ते का आकाश भर उठा। मार्ग में गाड़ी, बग्घियों का आवागमन जारी था। आफिसों, कॉलिजों तथा अदालतों में जाने वालों के लिए घर-घर में तरकारियाँ लाई गई थीं तथा चूल्हे जलने का धुआँ उठ रहा था। कलकत्ता नगर की सैंकड़ों गलियों तथा सड़कों पर स्वर्णिम प्रकाश की धारा अपूर्व यौवन का प्रवाह लिए, बढ़ती चली जा रही थी।

ऐसे ही समय में एक दिन कोई काम न रहने से विनय भूषण अपने मकान की दूसरी मंजिल के बरामदे में अकेला खड़ा हुआ लोगों का आवा-गमन देख रहा था। कॉलिज की पढ़ाई बहुत दिन पहले समाप्त हो चुकी थी, तो भी वह घर-गृहस्थी के कामों की देखभाल नहीं करता था। उसने अपना मन सभा-समितियों का संचालन करने और अखबारों में लेख लिखने की ओर लगा दिया था—परन्तु इस कार्य से उसके मन को पूर्ण सन्तोष नहीं मिला था। अब उसे कौन-सा काम करना चाहिए, यह ठीक निश्चय न हो पाने के कारण ही उसका मन चंचल हो रहा था। बरामदे के कोने में पक्षियों द्वारा घोंसला तैयार करते समय की बोलियाँ उसके मन में किसी अस्पष्ट भाव को जन्म दे रही थीं।

ठीक इसी समय उसने पास की दुकान पर खड़े होकर, लम्बा तथा ढीला कुरता पहिने हुए भिखारी साधु को यह गाते हुए सुना—

'वह अद्भुत पन्छी पिंछड़े में
कैसे आता जाता?
इसे पकड़ कर मन की बेड़ी
पहिनाना है भाता।'

विनय की इच्छा हुई कि वह उस साधु को बुलाकर, अनजान पक्षी वाला वह गीत लिख ले। किन्तु आलस्यवश वह उसे बुला नहीं सका। केवल उस गीत को ही अपने मन में गुनगुनाता रहा।

ठीक इसी समय उसके मकान के सामने, एक किराये की गाड़ी से किसी

रईस की एक बहुत बड़ी बग्घी आकर टकरा गई और उस समय किराये की गाड़ी को चकनाचूर करती हुई तेजी से आगे बढ़ गई। किराये की गाड़ी उससे टकराकर एक ओर झुक गई तथा उसका एक पहिया टूटकर अलग जा पड़ा।

विनय यह दृश्य देखते ही झटपट बरामदे के नीचे उतरकर सड़क पर जा पहुँचा। वहाँ उसने देखा कि उस टूटी हुई गाड़ी में से एक १७-१८ साल की युवती उतरकर नीचे आ गई है तथा अन्य लोग अभी तक गाड़ी के भीतर बैठे हुए एक बूढ़े भले-मानुष को नीचे उतारने की चेष्टा कर रहे हैं।

विनय ने आगे बढ़कर उस वृद्ध पुरुष को सहारा देते हुए नीचे उतार लिया, फिर उसकी ओर देखता हुआ बोला—'आपको चोट तो नहीं लगी ?'

'नहीं, चोट नहीं' कहते हुए, उन्होंने हँसने की चेष्टा की परन्तु वह हँसी उसी क्षण विलीन हो गई। जैसे ही वह अचेत होकर धरती पर गिरने लगे, विनय ने उन्हें मजबूती से पकड़ लिया फिर उस घबराई हुई लड़की की ओर देखता हुआ बोला—'मेरा घर यहीं सामने ही है, आप अन्दर चलिए, चिन्ता की कोई बात नहीं है।'

लड़की ने विरोध नहीं किया। तब विनय उन्हें साथ ले, अपने घर चला आया। भीतर लाकर उसने वृद्ध को एक बिछौने पर लिटा दिया। लड़की ने चारों ओर दृष्टि घुमाकर देखा—वहीं पास ही कोने में एक सुराही से गिलास में पानी लेकर वृद्ध के मुँह पर छींटे देकर पंखा झलने लगी। एक क्षण ठहरकर उसने विनय से कहा—'आप अगर किसी डॉक्टर को बुला सकें तो ठीक रहेगा।'

डॉक्टर विनय के मकान के पास ही रहता था। उसने एक नौकर डॉक्टर को बुलाने भेज दिया।

कमरे में एक ओर मेज तथा एक बड़ा आइना था। वहीं तेल की शीशी, कंघा, ब्रुश आदि सामान भी रखा हुआ था। लड़की के चेहरे का प्रतिबिम्ब उस आइने में पड़ रहा था। उसके पीछे खड़ा हुआ विनय उस रूप को मन्त्रमुग्ध की भाँति एकटक देखने लगा।

विनय बचपन से ही कलकत्ते में किराये का मकान लेकर रहता आ रहा था। पुस्तकों से उसका जो परिचय था उसके अतिरिक्त किसी भले

घर की बहू-बेटी के सम्पर्क में वह कभी नहीं आया था।

आइने पर दृष्टि डालते हुए वह इस समय सोच रहा था, 'जिसके मुख का प्रतिबिम्ब उसे दिखाई दे रहा है, वह वास्तव में बहुत ही सुन्दर है।' परन्तु उस मुखमण्डल की प्रत्येक रेखा को पृथक् भाव से देखने की क्षमता उसमें न थी। वह केवल उसके स्नेह से भरे, घबराए हुए तरुण मुख की कोमलता एवं उज्ज्वलता को ही देख सका, जो उसे सृष्टि के तत्काल प्रकाशित आश्चर्य की भाँति प्रतीत हुई।

कुछ देर बाद वृद्ध ने धीरे-धीरे अपनी आँखें खोलीं। फिर 'बेटी' कह-कर एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा। युवती ने आँखों में आँसू भरते हुए उससे पूछा—'पिताजी! आपको कहाँ चोट लगी है?'

'अरे, मैं कहाँ आ गया?' कहते हुए वृद्ध ने ज्योंही उठने की इच्छा प्रकट की, त्योंही विनय उन्हें रोकते हुए बोला—'अभी आप इसी प्रकार लेटे रहें। डॉक्टर साहब आते ही होंगे—।'

तब उन्हें जैसे सभी बातें याद आ गईं। बोले—'चोट तो कोई ज्यादा नहीं, यों ही सिर में कुछ दर्द-सा हो रहा है। डॉक्टर बुलाने की तो कोई आवश्यकता ही न थी।'

तभी डॉक्टर साहब भी अपनी साज-सज्जा सहित वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने वृद्ध के शरीर को देखते हुए कहा—'कोई खास बात नहीं है। गर्म दूध के साथ थोड़ी-सी ब्राण्डी पिला देने से ही सब ठीक हो जायेगा।' इतना कहकर, वे दवा की एक छोटी शीशी देकर चले गए। उनके जाते ही वृद्ध अत्यन्त चिन्तित और संकोचशील हो उठे। लड़की ने उसके मन के भाव को समझते हुए कहा—'पिताजी! आप चिन्ता न करें। डॉक्टर की फीस और औषधि का मूल्य हम घर चलकर इनके पास भेज देंगे।'

इतना कहकर उसने विनय के मुँह की ओर देखा। वे आँखें कैसी विचित्र थीं। उन्हें देखकर यह तर्क मन में उठता ही नहीं था कि वे छोटी हैं या बड़ी, काली हैं या भूरी। पहली दृष्टि पड़ते ही यह जान पड़ता था, जैसे उनमें सन्देह, संकोच अथवा द्विविधा रंचमात्र भी नहीं है। यह दृष्टि एक स्थिर शक्ति से परिपूर्ण है।

विनय ने बोलने की चेष्टा की—'फीस बहुत मामूली है, उसके लिए आप लोग चिन्ता न करें, उसे तो मैं ही···।'

लड़की उसके मुँह की ओर देख रही थी, अतः वह अपनी बात को पूरी न कर सका। परन्तु उसके मन में यह निश्चय हो गया कि किसी भी प्रकार फीस का रुपया तो उसे लेना ही पड़ेगा।

तभी वृद्ध बोले—'देखिये, मुझे ब्राण्डी की कोई आवश्यकता नहीं है।' परन्तु लड़की बीच में ही बोल पड़ी—'परन्तु पिताजी ! डॉक्टर साहब तो कह गए हैं।'

उन्होंने उत्तर दिया, 'डॉक्टर लोग तो यों ही कहा करते हैं—मुझे जितनी दुर्बलता है, वह थोड़ा-सा गर्म दूध पीते ही दूर हो जायेगी।'

तभी नौकर दूध ले आया। वृद्ध ने उसे पीने के बाद कहा—'अब हम लोग जा रहे हैं, आपको बहुत कष्ट दिया।'

तभी लड़की ने विनय के मुँह की ओर देखते हुए उत्तर दिया, 'नहीं पिताजी ! यह नहीं होगा। गाड़ी···।'

वृद्ध सज्जन बोले—'हमारा घर पास ही है। टहलते-टहलते चले जायेंगे। अब इन्हें और अधिक कष्ट क्यों देती हो ?'

परन्तु विनय जाकर एक गाड़ी ले आया। गाड़ी पर चलते हुए वृद्ध ने विनय से पूछा—'आपका शुभ नाम।'

'मेरा नाम विनयभूषण चट्टोपाध्याय है।' विनय बोला।

वृद्ध—'और मेरा नाम परेशचन्द्र भट्टाचार्य है। समीप ही अठहत्तर नम्बर के मकान में रहता हूँ। कभी समय मिलने पर आप मेरे घर पधारें तो बड़ी खुशी होगी।'

लड़की ने विनय की ओर दृष्टि उठाकर जैसे इस अनुरोध का समर्थन किया। विनय इसी समय गाड़ी पर साथ बैठकर उनके घर जाने को प्रस्तुत था, परन्तु ऐसा करना शिष्टाचार के कहीं विरुद्ध न हो, यह विचारकर वह खड़ा ही रहा। गाड़ी चलने पर लड़की ने उसे नमस्कार किया। परन्तु विनय जैसे इसके लिए तैयार नहीं था, अतः उसने नमस्कार का उत्तर न दिया। हतबुद्धि-सा स्थिर खड़ा रहा। जब वह घर लौटा तो इस त्रुटि के लिए उसका हृदय उसे बार-बार धिक्कार रहा था। उन लोगों के आने से लेकर विदा होने के समय तक के अपने सम्पूर्ण व्यवहार पर जब उसने विचार करना आरम्भ किया, तो उसे लगा, जैसे वह निरन्तर अशिष्टता का प्रदर्शन करता रहा हो। इस विषय को लेकर, उसके हृदय में उथल-पुथल मचने

लगी। जिस रूमाल से लड़की ने अपने पिता का मुंह पौंछा था, वह बिछौने पर अभी तक पड़ा हुआ था। विनय ने उसे झटपट उठा लिया। तभी उसके मन में भिखारी का स्वर गूंज उठा—

'यह अद्‌भुत पंछी पिंजड़े में······।'

दिन चढ़ आया। बरसात की धूप तेज हो उठी। गाड़ियों के झुण्ड आफिसों की ओर द्रुतगति से दौड़ने लगे। विनय अपने किसी भी दैनिक कार्यक्रम में मन को न लगा सका। आज जैसी अपूर्व, आनन्दमयी घोर वेदना उसे पहले कभी नहीं हुई थी। उसे अपना छोटा-सा घर और उसके चारों ओर फैली हुई कुत्सित कलकत्ता नगरी एक माया परी के समान लगने लगी। वहाँ सम्भव असम्भव हो जाता है, असाध्य साध्य हो जाता है तथा अरूप भी स्वरूप धारण कर लेता है। वर्षाकाल के प्रभात की चमकती हुई धूप की आभा उसके मस्तिष्क में प्रवेश करने लगी। उसके हृदय के सामने ज्योतिर्मयी यवनिका-सी आ पड़ी, जिसने उसके दैनिक जीवन की सारी तुच्छताओं को ढक दिया। उसे इच्छा होने लगी कि अपनी परिपूर्णता को आश्चर्यजनक रूप से प्रकट कर दे परन्तु उसका कोई उपाय न देखकर वह पीड़ित हो उठा। वह विचार करने लगा—उसका घर बहुत मामूली है, सामान सब अस्त-व्यस्त पड़ा है, बिछौने साफ नहीं हैं, और अपने कमरे में वह फूलों का एक गुच्छा तक लाकर नहीं रख सकता। तभी उसे एक और ध्यान आया—'काश! जिस समय वे दोनों गाड़ियाँ लड़ी थीं, तभी मैं उस रईस की बग्घी के दोनों घोड़ों को जाकर पकड़ लेता और उन्हें रोककर खड़ा हो जाता तो···?' अपने इस कल्पित विक्रम का हृदय पर प्रभाव पड़ते ही वह एक बार फिर आइने के पास जाकर अपना चेहरा देखे बिना न रहा।

उसी समय उसकी दृष्टि पड़ी कि एक सात-आठ वर्ष का बालक नीचे खड़ा हुआ उसके मकान का नम्बर देख रहा है। विनय ने बिना किसी प्रकार का सन्देह किये ऊपर से कहा—'चले आओ, यही मकान है।' फिर चप्पलों को चटकाता हुआ, सीढ़ियों से उतरकर तुरन्त नीचे जा पहुँचा और अत्यन्त आग्रहपूर्वक उस लड़के को अपने साथ कमरे में ले आया और उसके मुँह की ओर देखने लगा। लड़का बोला—'मुझे दीदी ने भेजा है।' इतना कहकर उसने विनय के हाथ में एक पत्र दे दिया।

विनय ने पत्र लेकर पहले लिफाफे के ऊपर दृष्टि डाली। स्पष्ट स्त्रियों जैसी लिखावट में, अंग्रेजी अक्षरों में उसका नाम-पता लिखा था। भीतर कोई पत्र नहीं था, केवल रुपये रखे थे।

लड़का लौटने को उद्यत हुआ, परन्तु विनय ने उसे जाने न दिया। वह उसके गले में हाथ डालकर, दूसरी मंजिल के एक कमरे में ले गया।

लड़के का रंग अपनी बहिन की अपेक्षा कुछ साँवला था, परन्तु सूरत-शक्ल में वह मिलता था। उसे देखकर विनय के हृदय में एक विशेष स्नेह एवं आनन्द होने लगा।

लड़का बड़ा तेज था। कमरे में प्रवेश करते ही वह दीवार पर लगे एक चित्र को देखते हुए बोला—'यह चित्र किसका है?'

विनय ने कहा—'यह मेरे मित्र का चित्र है।'

लड़के ने पूछा—'मित्र का चित्र है! कौन हैं आपके ये मित्र?'

विनय हँसता हुआ बोला—'तुम इन्हें नहीं पहचानते। ये मेरे मित्र हैं गौर मोहन, जिन्हें हम 'गोरा' कहकर पुकारते हैं। बचपन में हम एक साथ पढ़े हैं।'

लड़के ने कहा—'क्या अब भी पढ़ते हैं?'

'नहीं, अब तो नहीं पढ़ते।' विनय ने कहा।

'तो क्या आप सब पढ़ चुके?' लड़के ने पूछा।

विनय उस छोटे बच्चे के सामने भी अपने गर्व का प्रलोभन न रोक सका। बोला—'हाँ, सब पढ़ चुका।'

लड़के ने आश्चर्यचकित हो एक लम्बी साँस ली। शायद सोच रहा था कि वह भी इतनी विद्या न जाने कब तक पढ़कर समाप्त करेगा।

तभी विनय ने पूछा—'तुम्हारा नाम क्या है?'

'मेरा नाम है सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय।' उसने उत्तर दिया।

'मुखोपाध्याय।' विनय ने आश्चर्य में पड़कर कहा।

तब उसे धीरे-धीरे सब परिचय प्राप्त हुआ। परेश बाबू इनके पिता नहीं हैं—इन दोनों भाई-बहिनों को उन्होंने बचपन से पाला-पोसा है। लड़के की बहिन का नाम पहले राधारानी था, परन्तु परेश बाबू की पत्नी ने उसे बदलकर अब 'सुचरिता' रख दिया है।

कुछ ही देर में विनय के साथ सतीश की खूब घनिष्ठता हो गई। जब

वह घर जाने को प्रस्तुत हुआ, तब विनय ने पूछा—'अकेले जा सकोगे ?'

'क्यों नहीं?' उसने गर्व के साथ कहा—'आया भी तो अकेला ही हूँ।'

'मैं तुम्हें पहुँचा आऊँ ?'

अपनी शक्ति के सम्बन्ध में विनय का यह अविश्वास देखकर सतीश का मन क्षुब्ध हो उठा। बोला—'क्यों ? मैं तो अकेला ही जा सकता हूँ।'

यह कहकर वह अपने अकेले जाने के विषय में अनेक आश्चर्यजनक उदाहरण प्रस्तुत करने लगा। परन्तु फिर भी विनय उसके साथ उसके मकान के दरवाजे तक क्यों गया, इसका ठीक कारण उसकी समझ में नहीं आया।

घर के द्वार पर पहुँचकर उसने पूछा, 'आप भीतर नहीं चलेंगे क्या ?'

विनय ने अपने मन को संयत करते हुए कहा—'फिर किसी दिन आऊँगा।'

घर लौटकर विनय ने उक्त पता लिखे हुए लिफाफे को जेब से निकाल कर बड़ी देर तक देखा। प्रत्येक अक्षर की बनावट एवं रेखायें जैसे उसके हृदय में अंकित हो गईं। फिर उसने रुपयों सहित उस लिफाफे को यत्न-पूर्वक बक्स में रख दिया। इन रुपयों को किसी कुसमय में भी व्यय करने की सम्भावना नहीं रही।

२

वर्षा ऋतु की सन्ध्या में आकाश का अन्धकार मानो भीगकर भारी हो उठा था। वर्णहीन एवं वैचित्र्य-हीन मेघों के निःशक्त शासन के नीचे, कलकत्ता नगर जैसे अपनी ही पूंछ के बीच मुँह छिपाकर कुण्डली बनाये हुए निरानन्द कुत्ते के समान चुपचाप पड़ा हुआ था। कल सायंकाल से ही रिम-झिम पानी की बूँदें पड़ रही थीं। इस वर्षा ने मार्ग की मिट्टी को कीचड़ बना दिया था, परन्तु उस कीचड़ को बहा ले जाने की शक्ति वह न दिखा सकी थी। आज दिन के चार बजे से ही वर्षा बन्द हो गई थी, परन्तु बादलों का रुख अच्छा नहीं था। इस वर्षा की आशंका से, जब निर्जन कमरे में भी मन नहीं लगता और बाहर भी प्रसन्नता का अनुभव नहीं होता, उस समय दो व्यक्ति एक तिमंजिले मकान की भीगी हुई छत पर, बेंत के मूढ़ों पर बैठे हुए वार्तालाप कर रहे थे।

वे दोनों बचपन के मित्र थे। स्कूल से लौटने पर वे इसी छत पर दौड़ते और खेलते-कूदते थे। परीक्षा के दिनों में दोनों ही इस छत पर तेजी से घूमते और चिल्ला-चिल्लाकर अपना पाठ रटते थे। गर्मी के दिनों में कॉलिज से लौटकर, इसी छत पर रात को भोजन करते थे, कभी-कभी उन्हें तर्क करते हुए रात के दो भी बज जाते थे और सुबह धूप पड़ने पर जब जगते तो देखते कि रात को वहीं चटाई पर दोनों सो गये थे।

कॉलिज की पढ़ाई समाप्त होने पर इसी छत पर महीने में एक बार 'हिन्दू हितैषी सभा' का अधिवेशन हुआ करता था। इन दोनों मित्रों में से एक उस सभा का सभापति था, दूसरा मन्त्री।

सभापति का नाम था—गौर मोहन। परन्तु उसके सभी आत्मीय मित्र उसे गोरा कहते थे। वह अन्य लोगों से जैसे बिल्कुल भिन्न था। कॉलिज में संस्कृत के अध्यापक उसे रजतगिरि कहकर पुकारते थे। उसके शरीर का रंग गोरा था, पीले रंग की आभा ने उसे तनिक भी स्निग्ध नहीं किया था। उसकी लम्बाई प्रायः छः फुट थी—हड्डियाँ चौड़ी थीं। दोनों हाथों की मुट्ठियाँ किसी बाघ के पंजे के समान बड़ी थीं। गले की आवाज इतनी गम्भीर थी कि उसे सुनने वाला अचानक चौंक पड़ता था। उसके मुख की बनावट भी अनावश्यक रूप से बड़ी तथा दृढ़ थी। जबड़े और ठोड़ी किसी दुर्ग-द्वार की सांकल की भाँति थी। आँखों के ऊपर भौंहों की रेखायें नहीं थीं, ललाट कानों तक चौड़ा होता चला गया था। उसके ऊपर नाक तलवार की तरह झुक रही थी, दोनों आँखें छोटी परन्तु तीक्ष्ण थीं, उसकी दृष्टि तीर की नोंक की भाँति, अत्यन्त दूर के लक्ष्य को भी सन्तुलित किए रहती और क्षण-भर में ही लौटकर समीप की किसी वस्तु को बिजली की भाँति चोट पहुँचा सकती थी। गोरा को देखकर कोई सुन्दर नहीं कह सकता था, परन्तु उसे बिना देखे रहा भी नहीं जाता था। सभी के बीच में होने पर भी उसके ऊपर दृष्टि अचानक ही चली जाती थी।

उसका मित्र साधारण बंगाली सभ्य पुरुष की भाँति शिक्षित, नम्र एवं उज्ज्वल था। स्वभाव की कोमलता एवं बुद्धि की प्रखरता ने उसके मुख की शोभा को विशेष महत्त्वपूर्ण बना दिया था। कॉलिज में वह निरन्तर ही अधिक नम्बर और छात्रवृत्तियाँ पाता आया था। गोरा किसी भी प्रकार उसके साथ नहीं चल पाता, क्योंकि पाठ्य विषयों में उसकी गति नहीं थी;

वह उन्हें न समझता था और न याद ही कर पाता था। यद्यपि विनय ही उसका वाहन बनकर, उसे सब परीक्षाओं में अपने पीछे-पीछे घसीटता, उत्तीर्ण कराता आया था।

उस समय गोरा कह रहा था—'सुनो, अविनाश जो ब्राह्म-समाजियों की निन्दा कर रहा था, उससे प्रतीत होता है कि वह बहुत स्वस्थ एवं स्वाभाविक अवस्था में है। तुम उस पर एकाएक नाराज क्यों हो गए ?'

विनय बोला—'कितना आश्चर्य है ? उस विषय में भी कोई प्रश्न उठ सकता है, इसका मैंने विचार तक नहीं किया था।'

गोरा—'यदि यही बात है, तो अवश्य तुम्हारे हृदय में कोई दोष उत्पन्न हो गया है। एक दल के व्यक्ति सामाजिक बन्धनों को तोड़कर सभी बातों में उलटी रीति से चलते रहें और समाज के लोग उनके प्रति अच्छे विचार रखें, यह स्वाभाविक नियम नहीं है। उसमें भी उन्हें अवश्य गलत समझेंगे। अपितु वे जो सीधा काम करेंगे, उसमें भी उन्हें टेढ़ापन दिखाई पड़ेगा। उसकी अच्छाइयाँ भी उन्हें बुरी लगेंगी। ऐसा करना उचित भी है। समाज को छोड़कर स्वेच्छाचारी हो जाने की जो सजायें हैं, यह भी उन्हीं में से एक है।'

विनय—'जो स्वाभाविक है, वह भला भी है, यह मैं नहीं कह सकता।'

गोरा कुछ तेज होते हुए बोला—'मुझे भले की आवश्यकता नहीं है। संसार में दो-चार व्यक्ति भले भी रहें। परन्तु अन्य सब लोगों को स्वाभाविक रूप से ही रहना चाहिये। अन्यथा न तो काम ही चलेगा और न प्राण ही बचेंगे। ब्राह्म-समाजी बनकर जिन्हें बहादुरी दिखाने का शौक है, उन्हें यह दुःख सहना ही पड़ेगा। ब्राह्म-समाजियों से जो लोग पृथक् हैं, वे कार्यों को भूल समझकर निन्दा ही करेंगे। वे लोग भी अपनी बहादुरी पर छाती फुलायेंगे तथा प्रतिपक्षी भी उनके पीछे प्रशंसा करते हुए चलेंगे। संसार में ऐसा नहीं होता और यदि होता भी तो उससे संसार को कुछ सुविधा न होती।'

विनय—'मैं दल-निन्दा की बात नहीं करता, व्यक्तिगत···।'

गोरा—'दल की निन्दा, कैसी निन्दा ? यह तो मतामत का विचार हुआ। व्यक्तिगत निन्दा ही होनी चाहिये। अच्छा, तो तुम किसी की निन्दा नहीं करते थे ?'

विनय—'करता था और खूब करता था। परन्तु अब उसके लिए लज्जित हूँ।'

गोरा अपने दायें हाथ की मुट्ठी बाँधकर बोला—'परन्तु विनय, अब यह नहीं चलेगा, किसी भी प्रकार नहीं।'

विनय कुछ देर चुप रहा, फिर बोला—'क्यों क्या हो गया? तुम्हें किसका भय लगता है?'

गोरा—'मैं देख रहा हूँ कि तुमने स्वयं को दुर्बल बना लिया है।'

विनय ने उत्तेजित होते हुए कहा—'दुर्बल! क्या तुम नहीं जानते कि मैं चाहूँ तो अभी उनके घर जा सकता हूँ? उन्होंने मुझे बुलाया भी, परन्तु मैं गया ही नहीं।'

गोरा—'यद्यपि गये नहीं, परन्तु उस बात को किसी तरह भूल नहीं पाते। हर समय यही कहते हो 'गया नहीं?' इससे तो अच्छा होता कि चले ही जाते।'

'तो तुम जाने के लिए कहते हो?'

गोरा अपने घुटने को थपथपाते हुए बोला—'मैं तो नहीं कहता, परन्तु यह लिखे देता हूँ कि जिस दिन तुम आओगे उस दिन चले ही आओगे। जाने के दूसरे ही दिन तुम उनके साथ खाना शुरू कर दोगे तथा ब्राह्म-सभा के खाते में अपना नाम लिखाकर, उसके दिग्विजयी प्रचारक भी बन जाओगे।'

विनय—'यह क्या कह रहे हो? फिर?'

गोरा—'फिर? इससे बढ़कर बुरी चीज और कोई नहीं है। ब्राह्मण-पुत्र होकर भी तुम बुरी तरह जाकर मरोगे, तुम्हारा आचार-विचार नष्ट हो जायेगा, कम्पास टूटे हुए नाविक की भाँति तुम्हें पूर्व-पश्चिम का ज्ञान न रहेगा। तब तुम समझोगे कि जहाज का बन्दरगाह पर पहुँचना ही कुसंस्कार है, उसका बहते जाना ही यथार्थ है। परन्तु इन बातों की बकवास के लिए मेरे पास धैर्य नहीं—तुम्हें जाना है तो चले जाओ। जब तुम अधःपतन के मार्ग पर पाँव बढ़ाते ही जा रहे हो, तो फिर हमें भी उसी ओर ले जाने की चेष्टा क्यों करते हो?'

विनय हँस पड़ा, कहने लगा—'डाक्टर के निराश हो जाने पर रोगी सदैव मर ही जाता है ऐसी बात नहीं है। मुझे तो अन्तकाल का कोई लक्षण

दिखाई नहीं देता।'

गोरा—'नहीं दीखता ?'

'नहीं।'

'नाड़ी शायद बन्द होने को है न ?'

'नहीं तो, खूब चल रही है।'

'क्या ऐसा अनुभव नहीं होता कि सुन्दर हाथों से परोसा हुआ भोजन, चाहे म्लेच्छ का अन्न ही क्यों न हो, देवता का भोग हो जायगा ?'

विनय बहुत परेशान हो उठा था, बोला—'गोरा ! बस, कुछ न कहो।'

गोरा—'इसमें लज्जित होने की तो कोई बात ही नहीं है। स्त्री हाथ असूर्यम्पश्य नहीं होता। पुरुषों के साथ जिसका 'शेक हैण्ड' चलता हो, उस पवित्र हाथ का उल्लेख तक जब तुमसे सहन नहीं हुआ, तो नासंशे मरणाय संजयः।'

विनय—'देखो गोरा, मैं स्त्री जाति के प्रति श्रद्धा रखता हूँ। हमारे शास्त्रों में भी···।'

गोरा—'तुम जिस भाव से स्त्री जाति के प्रति श्रद्धा रखते हो, उसके लिए शास्त्रों की दुहाई न दो। उसे भक्ति नहीं कहते। उसे जो कहते हैं, वह यदि कहूँगा तो तुम मारने दौड़ोगे।'

विनय—'यह बात तुम अपनी शारीरिक शक्ति के कारण कह रहे हो।'

गोरा—'स्त्रियों के लिए शास्त्र में 'पूजाहि गृहदीप्तयः' कहा गया है। वे पूज्य ही हैं। वे गृह को प्रकाशित करती हैं, पुरुषों के हृदय को भी वे प्रदीप्त करती हैं, अतः पाश्चात्य परम्परानुसार उन्हें जो मान दिया जाता है, उसे पूजा न कहना ही उचित होगा।'

विनय—'यदि किसी जगह विकृति देखी जाती हो, तो क्या इसीलिए एक उच्च विचारधारा पर कटाक्ष करना उचित होगा ?'

गोरा अधीर होते हुए बोला—'विनय, जब तुम्हारी विवेक-बुद्धि नष्ट हो गई है, तब तुम मेरी बात मान लो। मेरा कहना है कि पाश्चात्य शास्त्रों में जो स्त्रियों के लिए उक्तियाँ कही गई हैं, उनके भीतर वासना भरी है। स्त्री जाति की पूजा करने का स्थान है—माता का घर, सती लक्ष्मी गृहणी का

आसन। इन स्थानों से हटाकर उसकी अन्यत्र स्तुति की जाये, उसमें अपमान छिपा हुआ है। पतंगे की भाँति तुम्हारा मन जिस कारण परेश बाबू के मकान के चारों ओर घूम रहा है, उसे अंग्रेजी में 'लव' कहते हैं। परन्तु मैं यही चाहता हूँ कि अंग्रेजी की नकल करके तुम उस 'लव' को ही संसार में चरम अथवा परम पुरुषार्थ मानकर, उसी की उपासना करने में जुट जाओ।'

कोड़े की चोट खाये हुए घोड़े की भाँति उछलता हुआ विनय बोला—'गोरा! बस अब रहने दो। बहुत हो गया।'

गोरा—'बहुत कहाँ हुआ? कुछ भी नहीं हुआ है। हमने स्त्री और पुरुष को उनके उचित स्थान पर भली-भाँति देखना सीखा ही नहीं है, इसी-लिए हमने कितने ही कवित्व-भरे विचारों को एकत्रित कर रक्खा है।'

विनय बोला—'अच्छा, मैं माने लेता हूँ कि स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध जिस स्थान पर रखने से ठीक हो सकता था, उसे हम लोग अप्रवृत्तियों की झोंक में लाँघ जाते हैं और मिथ्या बना देते हैं, परन्तु क्या यह अपराध केवल विदेशों का ही है? इस विषय में यदि अंग्रेजी का कवित्व मिथ्या है, तो हम लोग यह कामिनी और कंचन के त्याग की बातें लेकर बड़ी-बड़ी डींगें हाँकते हैं, यह भी तो मिथ्या ही है। जिसे लेकर मनुष्य की प्रकृति सहज ही आत्म-विस्मृत हो जाये, इससे मनुष्य को बचाने के लिए कोई प्रेम के सौन्दर्य-अंश को ही कवित्व के द्वारा उज्ज्वल बना देता है और उसके बुरे अंश को छिपा देता है। परन्तु कोई-कोई उसके बुरे अंश को ही बड़ा बनाकर कामिनी और कंचन के त्याग का विधान बना देते हैं। यह दोनों, दो विभिन्न प्रकृति के लोगों की प्रणालियाँ हैं। यदि तुम एक की निन्दा करते हो तो दूसरी को रियायत देने से भी काम नहीं चलेगा।

गोरा—'न, मैंने तुम्हें गलत समझा था। तुम्हारी हालत अभी अधिक खराब नहीं हुई है। अब भी, जबकि तुम्हारे मस्तिष्क के भीतर 'फिलॉसफी' उपस्थित है, तुम निर्भीक बनकर 'लव' (प्रेम) कर सकते हो, परन्तु समय रहते अपने को सम्हाल लेना—मित्रों का तो यही अनुरोध है।'

विनय घबराकर बोला—'अरे तुम पागल हो गये हो क्या? मेरा लव कैसा? फिर भी यह बात मुझे स्वीकार करनी ही पड़ेगी कि परेश बाबू को जसा मैंने देखा है, उनके बारे में जो कुछ सुना है उससे मेरे हृदय में उन

लोगों के प्रति यथेष्ट श्रद्धा उत्पन्न हो गई है।'

गोरा—'ठीक है। उस आकर्षण को ही सम्हालकर चलना पड़ेगा। उन लोगों के सम्बन्ध में प्राणी-वृत्तान्त के अध्याय का आविष्कार न भी करो, तो क्या हर्ज है? विशेषतः वे ठहरे शिकारी जीव, उनके आन्तरिक मामलों को जानते हुए, तुम यहाँ तक भीतर जा सकते हो कि सम्भवतः फिर तुम्हारी यह चोटी भी दिखाई न पड़े।'

विनय—'देखो, तुममें एक बहुत बड़ा दोष है। तुम समझते हो कि ईश्वर ने सभी शक्तियाँ केवल तुम्हीं को दी हैं और हम सब दुर्बल प्राणी ही हैं।'

विनय की यह बात गोरा को कुछ नई-सी जान पड़ी। उसने उत्साह के आवेश में विनय की पीठ पर एक हल्की-सी थपकी लगाते हुए कहा—'ठीक है, मेरा यही दोष तो एक बड़ा भारी दोष है।'

इसी समय गोरा के बड़े भाई महिम अपना स्थूल शरीर लिये, हाँफते-हाँफते ऊपर आ पहुँचे। आते ही बोले—'गोरा!'

गोरा झट उठकर खड़ा हो गया, बोला—'कहिये, क्या आज्ञा है?'

महिम—'मैं यह देखने आया हूँ कि बरसात के बादल गरजते-गरजते हमारी छत पर भी उतर आये हैं या नहीं। आज क्या बात है? शायद इतनी देर में तुम अंग्रेजों को हिन्द महासागर में आधी दूर तक भगा आये हो। इसमें अंग्रेजों की कुछ हानि तो मुझे दिखाई नहीं देती, परन्तु नीचे कोठरी में बड़ी बहू (तुम्हारी भावज) सिर के दर्द से बेहाल पड़ी हैं। तुम्हारे सिंहनाद से उन्हें कष्ट हो रहा है।'

महिम यह कहकर नीचे चले गये।

गोरा लज्जित होकर खड़ा-का-खड़ा रह गया। उसे कुछ क्रोध भी आ रहा था—पता नहीं, अपने ऊपर अथवा किसी दूसरे पर। कुछ देर बाद उसने जैसे मन-ही-मन कहा—'सभी बातों में मैं आवश्यकता से अधिक तेज हो उठता हूँ। पता नहीं, दूसरों के लिए यह कितना असहनीय हो जाता है।'

तभी विनय ने गोरा के पास आकर स्नेहपूर्वक उसका हाथ पकड़ लिया।

३

गोरा और विनय छत से नीचे उतरने को तैयार ही थे कि गोरा की माँ ऊपर आ पहुँचीं। विनय ने उनके चरण स्पर्श कर प्रणाम किया।

गोरा की माँ 'आनन्दमयी' देखने से गोरा की माँ जैसी मालूम नहीं होती थीं। वे दुबली-पतली तथा इकहरे शरीर की थीं। मस्तक के कुछ बाल श्वेत हो गये थे, परन्तु वे ऊपर से दिखाई ही नहीं देते थे। अचानक देखने पर उनकी आयु चालीस वर्ष से भी कम की प्रतीत होती थी। मुँह की बनावट बड़ी कोमल थी। नाक, हौंठ, ठोड़ी तथा ललाट की रेखाओं को जैसे किसी ने बड़े यत्न से अंकित किया था। चेहरे पर तेज तथा बौद्धिक प्रखरता का भाव परिलक्षित होता था। रंग साँवला था—जिसकी गोरे रंग से तुलना हो सकती थी। उन्हें देखने पर एक बात पर सभी की दृष्टि जा पड़ती थी कि वे साड़ी के साथ शेमीज पहिनती थीं। जिस समय की बात हम कह रहे हैं, उस समय यद्यपि नवयुवतियों में शेमीज या कुर्ती पहनने की प्रथा प्रचलित हो चुकी थी, परन्तु बड़ी आयु की गृहणियाँ उस पहनावे को क्रिस्तान कहकर घृणा की दृष्टि से देखती थीं। आनन्दमयी के पति कृष्णदयाल बाबू कमसरियेट में कर्मचारी थे। आनन्दमयी विवाह के बाद से ही उनके साथ पश्चिमांचल में रही थीं। इस कारण उनके हृदय में कभी यह विचार प्रविष्ट भी नहीं हुआ था कि अच्छी तरह अंग ढकने वाले कपड़ों का पहनावा लज्जा अथवा उपहास की बात भी हो सकती है। वे सवेरे उठकर घर-द्वार की सफाई करतीं तथा बरतन माँज-धोकर ठीक स्थान पर रख देती थीं। रसोई पकातीं, सिलाई करतीं तथा कपड़ों को धूप में सुखाने के लिए डाल दिया करती थीं। वे हिसाब-किताब ठीक करतीं, आत्मीयों, स्वजनों तथा पड़ोसियों की खोज-खबर लेतीं, परन्तु तो भी उनका समय मानो बीतता ही नहीं था। शरीर अस्वस्थ हो जाने पर भी वे उसे कभी महत्त्व नहीं देती थीं। कहतीं—'मुझे कोई बीमारी नहीं हो सकती। बिना काम किये मैं जीऊँगी भी कैसे?' उन्हें देखकर हृदय में उनके प्रति स्वाभाविक रूप से श्रद्धा उत्पन्न हो उठती थी।

गोरा की माँ ऊपर आकर बोलीं—'गोरा की आवाज जब नीचे तक सुनाई देती है, तभी मैं जान लेती हूँ कि विनय अवश्य आया होगा। कई

दिन से यहाँ सन्नाटा छा रहा था। बताओ बेटा विनय, आते क्यों नहीं ? तबियत तो खराब नहीं है न ?'

विनय ने कुछ कुण्ठित होकर कहा—'नहीं माँ, तबियत तो ठीक है। इधर बादल-पानी के कारण आना हो ही न सका।'

गोरा बीच में ही बोल पड़ा—'यही बात है। जब पानी न बरसेगा तो यह कहेंगे कि धूप तेज पड़ रही थी। इनके मन की असली बात को तो एक ईश्वर ही जानते हैं।'

विनय ने चिढ़ते हुए कहा—'गोरा, तुम व्यर्थ बकवास कर रहे हो।'

आनन्दमयी बोलीं—'ठीक तो है, गोरा ! मनुष्य का मन सदा एक-सा नहीं रहता। इस प्रकार की बातें तुम्हें नहीं कहनी चाहिये। अधिक छेड़छाड़ से दूसरे का मन दुखने लगता है।' फिर विनय से कहने लगीं—'विनय बेटा, आओ मेरे कमरे में चलो, मैंने तुम्हारे लिए कुछ खाने का सामान तैयार कर रखा है।'

गोरा सिर हिलाते हुए बोला—'न माँ, यह नहीं हो सकता। मैं तुम्हारे कमरे में विनय को खाना नहीं खाने दूँगा।'

आनन्दमयी ने कहा—'अरे गोरा ! मैंने तो तुझसे किसी दिन खाने के लिए नहीं कहा। तुम दोनों बाप-बेटे अजीब शुद्धि आचार के पक्षपाती बन बैठे हो। वे भी कुछ दिनों से अपने ही हाथ का पकाया हुआ खाना खाते हैं। परन्तु मेरा विनय बहुत सीधा लड़का है। उसमें तेरी भाँति कट्टरता नहीं है। तू ही उसे सदाचारीपन का ढोंग सिखाता रहता है। अपनी ही भाँति इसे भी कट्टर बनाना चाहता है।'

गोरा—'यह ठीक है माँ। मैं इसे अवश्य ही रोक रखूँगा। जब तक तुम अपनी ईसाई दासी लछमियाँ को अपने यहाँ रक्खोगी, तब तक मैं अथवा विनय कोई भी, तुम्हारे कमरे में खाना नहीं खायेगा।'

आनन्दमयी—'अरे गोरा, तू ऐसी बातें न कर। बचपन में तू सदा उसी के हाथ से खाता-पीता था। सच पूछो तो लछमियाँ ने ही तुझे पाल-पोसकर इतना बड़ा बनाया है। कुछ दिन पहले तू उसके हाथ की बनी चटनी के बिना खाना ही नहीं खाता था। बचपन में जब तेरे चेचक निकली थी, तब लछमियाँ ने तेरी जैसी सेवा की, उसे तो मैं कभी भुला ही नहीं सकती।'

गोरा—'पर, अब उसे पेंशन दे दो, माँ। उसे जमीन खरीद दो, घर

बनवा दो, जो जी में आये करो, परन्तु अब उसे घर में रखने से काम नहीं चलेगा।'

आनन्दमयी—'गोरा, तू समझता है कि किसी को धन दे देने से ही उससे उऋण हुआ जा सकता है? वह न रुपये चाहती है, न जमीन, न घर। वह तो केवल तुझे देखना चाहती है। बिना देखे तो वह मर ही जायेगी।'

गोरा—'तब तुम खुशी से उसे अपने पास रखो, परन्तु तुम्हारे घर में विनय खाना नहीं खायेगा। जो नियम बना है, उसे मानना ही पड़ेगा। उसके विरुद्ध नहीं जा सकता। माँ, तुम इतने बड़े प्रसिद्ध पण्डितवंशी की पुत्री होकर भी सदाचार का पालन नहीं करतीं, इससे अधिक आश्चर्य और खेद की बात क्या होगी?'

आनन्दमयी—'बेटा, तेरी माँ पहले बहुत कट्टर सदाचारिणी थी। इस आचार-पालन के लिए ही मुझे बहुधा रोना भी पड़ता था। उस समय तेरा जन्म भी नहीं हुआ था। मैं प्रतिदिन शिव की मूर्ति बनाकर पूजा करती थी और तेरे पिता उसे देखते ही उठाकर फेंक देते थे। उस समय अपरिचित ब्राह्मण के हाथ से बनी रसोई खाने में भी घृणा लगती थी। तब दूर-दूर तक रेलगाड़ी नहीं थी। तेरे पिता को यात्रा में बैलगाड़ी, घोड़ा-गाड़ी, पालकी अथवा ऊँट पर चढ़कर जाना पड़ता था। उस समय दो-दो दिन मैं भूखी-प्यासी ही बनी रहती थी। तेरे पिता ने मेरे आचार-विचार को छुड़ाने की बहुत चेष्टा की। वे मुझे साथ लेकर ही सब जगह जाते थे। अतः साहब लोग उनकी बड़ी प्रशंसा करते थे। अब बुढ़ापे में नौकरी छोड़ देने पर जब उनके पास खूब रुपया जमा हो गया तो वे कट्टर सदाचारी हिन्दू बन गए हैं। परन्तु मुझसे अब यह नहीं हो सकता। मेरी सात पीढ़ियों के जो संस्कार एक-एक करके उखाड़ डाले गए वे अब फिर से नहीं जम सकते।'

गोरा—'अच्छा, तो पूर्व पुरुषों की बात जाने दो। वे अब आपत्ति करने के लिए नहीं आयेंगे, परन्तु तुम्हें हम लोगों के लिए कुछ बातें तो माननी ही पड़ेंगी। शास्त्र का मान चाहे न रखो लेकिन हमारे स्नेह का मान तो रखना ही पड़ेगा।'

आनन्दमयी—'अरे, तू मुझे इतना क्या समझा रहा है? मेरे मन की जो दशा है, उसे मैं ही जानती हूँ। मेरे पति और पुत्र को यदि मेरे आचरण

से कष्ट हो, तो मुझे सुख कहाँ मिलेगा ? परन्तु तू यह नहीं जानता कि तुझे गोद में लेने के दिन से मैंने सब आचार-विचार त्याग दिये। किसी छोटे बालक को गोद में उठाने पर ही यह समझ में आता है कि पृथ्वी पर कोई प्राणी जाति लेकर उत्पन्न नहीं होता। मैंने जिस दिन से इस बात को समझा, उसी दिन से मुझे यह निश्चय हो गया कि यदि मैं किसी को ईसाई अथवा छोटी जाति समझकर घृणा करूँगी तो ईश्वर तुझे भी मेरी गोद से छीन लेंगे। तू मेरी गोद को, मेरे घर को सुशोभित रख, मैं संसार की सभी जातियों के हाथ का पानी पीती रहूँगी।'

आज आनन्दमयी की बातें सुनकर विनय के मन में अचानक किसी सन्देह का आभास उत्पन्न हुआ। उसने एक बार आनन्दमयी और फिर गोरा के चेहरे की ओर देखा, परन्तु फिर शीघ्र ही उस सन्देह को उन सभी तर्कों सहित अपने मन से निकाल फेंका।

गोरा बोला—'माँ, तुम्हारी यह युक्ति मेरी समझ में नहीं आई। जो लोग आचार मानते हैं, जाति का विचार रखते हैं, शास्त्र को मानकर चलते हैं, उनके घर में भी लड़के जीवित रहते हैं। फिर तुम्हें यह किसने बताया कि ईश्वर तुम्हारे सम्बन्ध में किसी विशेष नियम से काम लेंगे ?'

आनन्दमयी—'जिन्होंने तुझे दिया है, उन्होंने मुझे यह बुद्धि भी दी है। मैं इसके लिए क्या करूँ ? तू ही बता, इसमें मेरा क्या वश है। पर पागल, मैं सोचकर भी निश्चय नहीं कर पाती कि तेरे इस पागलपन पर हँसूँ या रोऊँ ? खैर, इन बातों को छोड़। तो विनय मेरे कमरे में खाना नहीं खायेगा ?'

गोरा—'उसे अवसर मिले तो अभी दौड़ पड़ेगा। खाने का उसे बड़ा लोभ है। परन्तु माँ, मैं उसे नहीं जाने दूँगा। वह ब्राह्मण का लड़का है, दो मिठाइयाँ देकर भुलावा देने से काम न चलेगा। उसे बहुत त्याग करना पड़ेगा, प्रवृत्तियों को सम्हालना होगा, तभी ब्राह्मण के गौरव की रक्षा कर सकेगा। माँ, मैं तुम्हारे पाँव पड़ता हूँ, तुम इसका बुरा न मानना।'

आनन्दमयी—'भला, मैं क्यों बुरा मानूँगी ? अरे, तू यह कह क्या रहा है ? परन्तु मैं तुझे इतना बताए देती हूँ कि तू जो कुछ कह रहा है, उसके सम्बन्ध में तुझे पता नहीं है। मुझे बहुत कष्ट होता है कि मैंने तुझे पाल-पोसकर इतना बड़ा किया। परन्तु, खैर—चाहे जो हो तू जिसे धर्म कहता

है, मैं उसे मानकर नहीं चल सकती। तू मेरे चौके में, मेरे हाथ की बनी हुई रसोई न खाये तो न सही—परन्तु मैं तुझे अपनी आँखों के सामने तो रख सकूँगी, मेरे लिए यही बहुत है।' फिर विनय से बोलीं—'बेटा विनय! तुम उदास न होना, तुम्हारा हृदय कोमल है। तुम सोचते होगे कि गोरा की बातों से मुझे इतना दुःख मिला, परन्तु ऐसी कोई बात नहीं है। किसी और दिन मैं तुम्हें निमन्त्रण देकर, किसी अच्छे ब्राह्मण के हाथ से रसोई बनवाकर खिलाऊँगी, परन्तु हाँ, मैं यह सबको बताए देती हूँ कि मैं तो लछमियाँ के हाथ का ही पानी पीऊँगी।'

गोरा की माँ नीचे चली गई। विनय कुछ देर मौन खड़ा रहा। फिर वह धीरे-से बोला—'गोरा, यह तो मुझे ज्यादती जान पड़ी।'

गोरा—'ज्यादती किसकी?'

विनय—'तुम्हारी?'

गोरा—'न भाई, रत्ती-भर भी नहीं। जहाँ जिसकी सीमा है मैं उसे वहीं रखकर चलना चाहता हूँ। किसी प्रकार सुई की नोंक के बराबर भी भूमि छोड़ देने से, फिर कुछ भी शेष नहीं रहता।'

विनय—'परन्तु माँ की बात दूसरी है।'

गोरा—'माँ का क्या महत्त्व है, यह मैं भली प्रकार जानता हूँ। मेरी माँ की भाँति कितने ही लोगों की माँ हैं। परन्तु यदि मैं आचार मानना छोड़ दूँ, तो सम्भवतः एक दिन माँ को भी छोड़ बैठूँगा। देखो विनय, तुम एक बात स्मरण रखो—हृदय एक उत्तम वस्तु है, परन्तु वह सर्वोत्तम नहीं है।'

विनय कुछ सोचकर बोला—'गोरा! देखो, आज माँ की बातें सुनकर मेरे हृदय में कुछ उथल-पुथल-सी हो रही है। जान पड़ता है—माँ के मन में कोई ऐसी बात है, जिसे वे किसी कारणवश हमें समझा नहीं पातीं और इसीलिए उन्हें इतना कष्ट हो रहा है।'

गोरा ने अधीर होते हुए कहा—'अरे विनय, इन कल्पनाओं में मत पड़ो, इनसे कष्ट के अतिरिक्त कुछ लाभ न होगा।'

विनय—'तुम में यही एक बड़ा दोष है कि तुम किसी बात को भली प्रकार देखे बिना, उसे कल्पना कहकर उड़ा देते हो। मैं तुम्हें बताता हूँ कि मैंने कई बार अनुभव किया है कि माँ किसी विशेष चिन्ता में डूबी रहती

हैं। किसी बात को वे ठीक से मिला नहीं पातीं। इसलिए उनकी गृहस्थी भी उन्हें दुःख पहुँचाती है। परन्तु गोरा, तुम उनकी बातों को कभी कान लगाकर भी सुनो।'

गोरा—'कान लगाकर और ध्यान देकर जो कुछ सुना जा सकता है, उसे मैं सुन लेता हूँ। उससे अधिक सुनने की चेष्टा करने से भूल हो जाने की सम्भावना है। अतः मैं वह चेष्टा ही कभी नहीं करता।'

४

जिस बात को मत की दृष्टि से एक बार सुन लिया है, उसे जब किसी व्यक्ति पर प्रयुक्त किया जाता है, तो वह निश्चित विचार टिकता नहीं है—कम-से-कम विनय का तो नहीं टिकता, क्योंकि उसके हृदय की अन्तः-वृत्ति अत्यन्त प्रबल है। यही कारण है कि वह तर्क के समय एक मत को उच्च मान लेता है परन्तु व्यवहार के समय मनुष्य को उससे अधिक मानकर नहीं रह सकता। गोरा द्वारा प्रचारित जिन मतों को विनय ने मान लिया था, कितना अंश मत के कारण है—इसे कहना कठिन है।

वर्षा ऋतु की सन्ध्या में कीचड़ से बचता हुआ जब वह धीरे-धीरे अपने घर को लौटा तो उसके हृदय में मत और मनुष्य के प्रति एक भीषण द्वन्द्व मचा हुआ था। वर्तमान समय के अनेक गुप्त एवं प्रकट आघात से बचने के लिए, समाज को अपनी रक्षा के निमित्त खानपान, छूआछूत सभी बातों के प्रति विशेष सतर्क रहना पड़ेगा—इस मत को उसने गोरा के मुँह से सुनकर सहज ही मान लिया था। विरोधी विचार वालों के साथ इस सम्बन्ध में उसने अनेक तीक्ष्ण तर्क किये थे। उसने कहा था, 'जब शत्रु ने किले पर चारों ओर से आक्रमण कर दिया हो, उस समय प्रत्येक द्वार पर तथा छिद्र को हम प्राणपण से बचाने की चेष्टा करें, तो इसे उदारता का भाव नहीं माना जायेगा।'

परन्तु आज आनन्दमयी के कमरे में भोजन करने से उसे गोरा ने रोका तो उसके हृदय में भीतर-ही-भीतर एक वेदना का अनुभव होने लगा।

विनय के पिता नहीं थे। माँ भी उसे बचपन में ही छोड़ गई थी।

चाचा गाँव में रहते हैं और वह बचपन से ही कलकत्ते में अकेला रहकर पढ़ा-लिखा तथा बड़ा हुआ है। गोरा के साथ मित्रता होने पर जिस दिन उसने आनन्दमयी को देखा, तभी से वह उन्हें माता के समान मानता चला आया है। उसके घर कई बार उसने छीना-झपटी कर खाना खाया है या भोजन के सम्बन्ध में आनन्दमयी ने गोरा के साथ पक्षपात किया है, यह लाँछन लगाकर उसने कई बार बनावटी ईर्ष्या भी प्रकट की है। कभी दो-चार दिन विनय के न आने पर आनन्दमयी कितनी उदास होकर उसकी प्रतीक्षा करती थीं, इन बातों को भी वह भली-भाँति जानता था। आज वही विनय सामाजिक घृणा के कारण आनन्दमयी के कमरे में बैठकर न खाये—इसे आनन्दमयी तथा विनय कैसे सहन कर सकते हैं ?

'अब माँ किसी अच्छे ब्राह्मण के हाथों रसोई बनवाकर मुझे खिलायेंगी —अपने हाथों से कभी न खिलायेंगी'—यह मर्मभेदी बात उन्होंने कितने हँसकर कह दी, इसको सोचता हुआ विनय अपने मकान पर जा पहुँचा।

खाली मकान में अन्धेरा छाया हुआ था। चारों ओर कागज बिखरे पड़े थे। दियासलाई जलाकर उसने लैम्प जलाया। उस पर नौकर के हाथ के बहुत से दाग पड़े हुए थे। कमरे में पहुँचकर जैसे उसका दम घुटने लगा। मनुष्य के संग और स्नेह के भाव ने मानो आज उसके हृदय को दबा दिया। देशोद्धार तथा समाज-रक्षा के इन कर्तव्यों को वह किसी भी प्रकार स्पष्ट एवं सत्य न बना सका। इन सबकी अपेक्षा अधिक सत्य तो वह अनजाना पक्षी था, जो एक दिन सावन के उज्ज्वल प्रभात में पिंजड़े के पास आकर फिर उससे दूर चला गया। परन्तु वह उस अनजान पक्षी की बात को किसी भी प्रकार अपने हृदय पर असर नहीं डालने देगा। अतः वह मन को सहारा देने के लिए आनन्दमयी के जिस कमरे से गोरा ने उसे लौटा दिया था, उसी कमरे का चित्र अपने हृदय में अंकित करने लगा।

वह सोचने लगा—नक्काशीदार सफेद पत्थर का फर्श चमचमा रहा होगा। एक ओर चौकी पर हंस के पंख के समान श्वेत एवं कोमल बिछौना बिछा होगा। बिछौने के समीप ही छोटी-सी स्टूल पर रेंडी के तेल का दीपक जल रहा होगा। माँ रंगीन सूत लेकर उस दीपक के पास बैठी झुककर चादर बुन रही होंगी। लछमियाँ नीचे बैठी हुई अपनी उल्टी-सीधी भाषा में अनर्गल वार्तालाप कर रही होगी। माँ उसकी बातों को अधिकांश अन-

सुनी कर देती होंगी। माँ को जब कोई मानसिक कष्ट होता होगा तभी वे कोई-न-कोई सिलाई या कसीदे का काम लेकर बैठ जाती होंगी। उनके कार्यरत चेहरे पर विनय ने मन-ही-मन अपनी दृष्टि जमा ली। वह मन-ही-मन बोल उठा—'इस स्नेहपूर्ण मुख की कान्ति मेरे मन के विक्षेप से मेरी रक्षा करे। वह मुख ही मेरे लिए मातृभूमि की प्रतिमा बन जाए। मुझे कर्तव्य की प्रेरणा दे तथा उसे दृढ़ बनाये।'

उसने मन-ही-मन एक बार 'माँ' कहकर पुकारा, फिर बोला—'माँ, तुम्हारा यह अन्न मेरे लिए अमृत नहीं है, इसे मैं किसी भी शास्त्र के प्रमाण से स्वीकार करने को तैयार नहीं हूँ।'

कमरा निस्तब्ध था। केवल घड़ी की टिक्-टिक् की आवाज आ रही थी। वहाँ ठहरना विनय को असह्य हो उठा। लैम्प के पास ही दीवार पर एक छिपकली किसी पतंगे को पकड़ने की घात लगाये थी। उसकी ओर देखता हुआ विनय उठकर खड़ा हो गया। फिर हाथ में छाता लेकर बाहर निकल पड़ा।

उसके मन में कोई निश्चय नहीं था कि उसे कहाँ जाकर क्या करना है। सम्भवत: आनन्दमयी के पास ही लौट जाने की उसकी इच्छा हो रही थी परन्तु फिर मन में विचार उठा—'आज रविवार है। ब्राह्म-समाज में बाबू केशवचन्द्र सेन का व्याख्यान होगा, उसे सुनना चाहिये।' यह विचार आते ही वह सब संकल्प-विकल्पों को त्याग, तेजी के साथ उधर ही चल पड़ा। वह यह अनुभव कर रहा था कि व्याख्यान अब समाप्त हो चुका होगा, तो भी वह अपने संकल्प से विचलित नहीं हुआ।

गन्तव्य स्थान पर पहुँचकर उसने देखा कि उपासक लोग उपासना इत्यादि समाप्त कर मन्दिर से बाहर निकल रहे हैं। वह छाता लगाकर मार्ग में एक ओर खड़ा हो गया। उसी समय परेश बाबू शान्त और प्रसन्न मुख लिये बाहर निकले। उनके साथ चार-पाँच व्यक्ति और थे। उनमें से एक युवक के मुख पर विनय की दृष्टि गैस के प्रकाश में क्षणभर को जा पड़ी। उसके बाद गाड़ी के पहिये की आवाज सुनाई दी। फिर पलभर में ही वह दृश्य अन्धकार के महासमुद्र में पानी के बुदबुदे की भाँति विलीन हो गया। विनय ने अंग्रेजी के बहुत से उपन्यास पढ़े थे, परन्तु भद्र बंगाली परिवार में जो उसने जन्म लिया था, उसका संस्कार कहाँ जाता ? 'इस प्रकार मन में

आकर्षण लेकर किसी स्त्री को देखने की चेष्टा करना उस स्त्री के लिए अपमानजनक और निन्दनीय होता है।' इस विचार को विनय किसी भी तर्क से अपने हृदय से नहीं निकाल पाया। अतः विनय का मन प्रसन्नता के साथ ही अत्यन्त ग्लानि से भर गया। उसे ध्यान आया, जैसे उसका पतन हो गया। गोरा के साथ यद्यपि वह तर्क कर आया है, परन्तु जहाँ सामाजिक अधिकार न हो, वहाँ किसी नारी की ओर प्रेम की दृष्टि से देखना उसे पुरातन जीवन के संस्कार जैसे खटकने लगा।

उस दिन फिर गोरा के घर विनय का जाना नहीं हुआ। अनेक प्रकार के विचार करता हुआ, वह अपने घर लौट आया। दूसरे दिन तीसरे पहर, जब वह घूमते-घूमते गोरा के घर पहुँचा उस समय बरसात समाप्त होकर सन्ध्या का अन्धकार घना हो चुका था। गोरा उस समय बत्ती जलाए लिखने में व्यस्त था।

कागज से दृष्टि हटाये बिना ही गोरा ने कहा—'विनय, आज वायु किस ओर से बह रही है?'

विनय उसकी बात पर ध्यान न देता हुआ बोला—'गोरा, मैं तुमसे एक बात पूछता हूँ। क्या भारतवर्ष तुम्हारे समीप खूब सत्य, खूब स्पष्ट है? तुम उसे दिन-रात याद रखते हो, परन्तु मैं पूछता हूँ किस प्रकार याद रखते होगे?'

गोरा ने लिखना बन्द कर दिया। वह विनय के मुख पर कुछ देर तक तीक्ष्ण दृष्टि गढ़ाये रहा। फिर कलम रखकर, कुर्सी के सहारे पीठ टेककर बोला—'जिस प्रकार जहाज समुद्र में चल देने पर कप्तान आहार, विहार, काम तथा विश्राम के समय भी समुद्र पार के बन्दरगाह को अपने मन में रखता है, उसी प्रकार मैं भी भारतवर्ष को याद रखता हूँ।'

विनय—'तुम्हारा भारतवर्ष है कहाँ?'

गोरा छाती पर हाथ रखते हुए बोला—'इस स्थान पर, जहाँ कम्पास दिन-रात अपना काँटा घुमाए हुए है, वही है। तुम्हारे मार्शमैन साहब की 'हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' में नहीं।'

विनय—'तुम्हारे कम्पास का काँटा जिस ओर है, उस ओर भी कुछ है क्या?'

गोरा उत्तेजित होता हुआ बोला—'क्यों नहीं? मैं मार्ग भूल सकता

हूँ, डूबकर मर सकता हूँ, परन्तु मेरा वह लक्ष्य का बन्दरगाह ज्यों-का-त्यों है। वही मेरा पूर्णस्वरूप भारतवर्ष है। जो भारतवर्ष धन से पूर्ण, ज्ञान से पूर्ण तथा धर्म से पूर्ण है, वह कहीं भी नहीं है। चारों ओर केवल मिथ्या आडम्बर है। यही तुम्हारा कलकत्ता शहर, यह ऑफिस, यह अदालत, यही ईंट और काठ के बने हुए बुदबुदे। छिः!'

गोरा यह कहकर विनय के मुख की ओर कुछ देर तक एकटक देखता रहा। विनय कोई उत्तर न दे, सोचने लगा। गोरा बोला—'यहीं, जहाँ हम पढ़ते-लिखते हैं, नौकरी की आशा में घूमते हैं, भूत की भाँति परिश्रम करके हम क्या कर रहे हैं, इसका कुछ भी ठिकाना नहीं। इस मायावी के मिथ्या भारतवर्ष को हमने सत्य समझ रखा है। इसी कारण पच्चीस करोड़ मनुष्य झूठी प्रतिष्ठा को प्रतिष्ठा मानकर, मिथ्या कर्म मानकर दिन-रात विभ्रान्त-से हुए घूमते रहते हैं। इसी मरीचिका के भीतर से क्या हम लोग किसी प्रकार की चेष्टा प्राप्त कर सकेंगे? इसलिए हम प्रतिदिन सूख-सूखकर मर रहे हैं। यह एक सच्चा भारतवर्ष—परिपूर्ण भारतवर्ष है। उस स्थान पर स्थिर न होने से हम लोग क्या बुद्धि और क्या हृदय में वास्तविक प्राणरस को नहीं खींच सकते? इसलिए मैं कहता हूँ कि सबकुछ भूलकर पुस्तकों की उपाधियों का मोह, उच्चवृत्ति का प्रलोभन सबको फेंककर, हमें उसी बन्दरगाह की ओर जहाज को ले जाना होगा। डूबना होगा तो सब डूब जायेंगे, मरना होगा तो मर जायेंगे। भारतवर्ष की सच्ची व पूर्ण मूर्ति को मैं यों ही कभी नहीं भूल सकता।'

विनय—'क्या ये सब बातें केवल आवेश की नहीं हैं? क्या यह तुम सत्य कह रहे हो?'

गोरा बादल की भाँति गरजता हुआ बोला—'मैं सत्य कह रहा हूँ।'

विनय—'परन्तु जो लोग तुम्हारी तरह नहीं देख पाते?'

गोरा ने मुट्ठी बाँधते हुए कहा, 'उन्हें दिखाना होगा। सत्य की स्पष्ट मूर्ति देखे बिना लोग किसी के सम्मुख आत्म-समर्पण नहीं करेंगे। भारतवर्ष की सर्वांगीण मूर्ति को सबके सम्मुख उपस्थित कर दो। तभी लोग पागल होंगे। तब हमें द्वार-द्वार चन्दा माँगने के लिए नहीं दौड़ना होगा। प्राण देने के लिए सभी की उत्सुकता बढ़ जायेगी।'

विनय—'तब या तो मुझे संसार के अन्य दस आदमियों की तरह बहते

हुए चले जाने दो, अन्यथा भारत की वह मूर्ति दिखाओ।'

गोरा—'उसके लिए पहले साधना करो। यदि मन में विश्वास रहेगा, तो उस कठोर साधना में भी सुख पाओगे। हमारे शौकीन पेट्रियट (देश-भक्त) लोगों में सच्चा विश्वास नहीं है तभी वे अपने अथवा किसी अन्य के समक्ष कुछ जोर से दावा नहीं कर सकते। यदि कभी स्वयं कुबेर ही उन्हें वर देने आ जायें तो भी वे लोग लाट साहब के चपरासी की चमकती हुई चपरास से अधिक शायद कुछ नहीं माँग सकेंगे। उनमें आत्म-विश्वास नहीं है, इसीलिए भरोसा भी नहीं है।'

विनय—'देखो गोरा, सबका स्वभाव एक-सा नहीं होता। तुमने अपने हृदय के भीतर अपना विश्वास पाया है। अतः तुम उसे अपने ही बल पर खड़ा भी रख सकते हो, परन्तु इसी कारण दूसरे की अवस्था ठीक से नहीं समझ सकते। मैं कहता हूँ, तुम मुझे चाहे जिस काम में लगा दो, दिन-रात काम कराओ। अन्यथा लगता है, जब तक तुम्हारे पास रहकर जो वस्तु पाता हूँ, उसे तुमसे दूर चले जाने पर न पा सकूँगा, जिससे मैं उसे ग्रहण कर जीवित रह सकूँ।'

गोरा—'काम की बात कहते हो। इस समय उन लोगों का काम एकमात्र वही है जो कुछ अपने देश का है। उसी पर संकोचहीन, संशयहीन, सम्पूर्ण श्रद्धा को प्रकट कर देशवासियों के हृदय में उस श्रद्धा का संचार कर देना चाहिये। देश के सम्बन्ध में लज्जा करते हुए, हम लोगों ने अपने हृदय को दासता के विष द्वारा दुर्बल बना दिया है। यदि हम लोगों में से प्रत्येक व्यक्ति अपने उदाहरण से उसका प्रतिकार करे तो हमें कार्य के लिए क्षेत्र मिल जायेगा। अभी हम जो कार्य करना चाहते हैं, वह केवल इतिहास की स्कूली किताब के द्वारा पराये काम की नकल बनकर रह जाती है। उस झूठे काम में क्या हम कभी सच्चे भाव से अपने सम्पूर्ण हृदय को लगा सकेंगे? ऐसा करने से तो हम अपने को केवल हीन बना डालेंगे।'

इसी समय हाथ में हुक्का लिये महिम बाबू ने मन्द गति एवं आलस्य-भाव से उस कमरे में प्रवेश किया। प्रतिदिन ऑफिस से लौटने के पश्चात्, जलपान का आवश्यक कार्य समाप्त कर एक पान मुँह में रखकर तथा पाँच-छः पान पानदान में रखकर, सड़क के किनारे बैठे हुए तम्बाकू पीना उनका इस समय का कार्य है। कुछ देर बाद जब मुहल्ले के इष्ट-मित्र

उनके पास आ जुड़ेंगे, तब सदर दरवाजे के पास वाली बैठक में महफिल-सी लग जायेगी।

महिम के कमरे में प्रविष्ट होते ही गोरा कुर्सी छोड़कर उठ खड़ा हुआ। महिम ने हुक्के में दम लगाते हुए कहा, 'तुम भारत का उद्धार करने में लगे हो, पहले अपना तो उद्धार कर लो।'

गोरा महिम के मुँह की ओर देखता रहा। महिम ने फिर कहा, 'हमारे दफ्तर में जो नया बड़ा साहब आया है, उसकी शक्ल बिलकुल शिकारी कुत्ते जैसी है। वह बहुत पाजी है। बाबू लोगों को 'बेबून' (एक जाति का बन्दर) कहता है। किसी की माँ मर जाने पर भी छुट्टी नहीं देता। कहता है यह झूठ है। किसी बंगाली बाबू को महीने भर पूरा वेतन नहीं मिलता। छोटी-छोटी बातों पर जुर्माना करके पैसे काट लेता है। एक अखबार में उसकी शिकायत की चिट्ठी छपी थी। वह कहता है कि यह मेरा ही काम है। उसका कहना बिलकुल गलत भी नहीं है। अब जब तक मैं अपने नाम से ही उस चिट्ठी का एक कड़ा प्रतिवाद लिखकर न छपवा दूँ, तब तक मुझे टिकने न देगा। तुम दोनों तो विश्वविद्यालय रूपी समुद्र को मथने से निकले हुए दो रत्न हो। अतः तुम्हें एक चिट्ठी मन लगाकर लिख देनी होगी। उसमें जोड़ना होगा—'even handed justice, never failing generousity, king courteousness. आदि आदि।'

गोरा चुप रहा। विनय हँसकर बोला—'दादा, इतनी झूठी बातें एक साँस में चलायेंगे?'

महिम—'सुनो, 'शठे शाठ्यं समाचरेत्'। मैं बहुत दिन उन लोगों के सम्पर्क में रहा हूँ। मुझसे कुछ छिपा नहीं है। झूठी बातें ऐसी जमा सकते हैं कि उसके लिए उनकी प्रशंसा करनी पड़ती है। आवश्यकता पड़ने पर वे झूठ बोलने में भी नहीं हिचकते। यदि एक झूठ बोले तो सभी लोग सियारों भी भाँति उसके स्वर में स्वर मिला उठते हैं। वे हम लोगों की भाँति एक-दूसरे को पकड़वाकर वाहवाही लूटना नहीं चाहते। निश्चय जानो कि कोई पकड़वा न सके तो उन्हें ठगने से पाप भी नहीं लगेगा।'

इतना कहकर महिम ठहाका मारकर हँसने लगे। विनय भी हँसे बिना न रहा।

महिम बोले—'तुम उनके मुँह पर सच्ची बात कहकर उन्हें चौंकाना

चाहते हो। ईश्वर यदि तुम्हें बुद्धि न देंगे तो देश की ऐसी दुर्दशा क्यों होगी? यह मानना ही पड़ेगा कि जिससे शरीर में शक्ति है, उसकी चोरी को बहादुरी कहने की चेष्टा कर दिखाओ, तो वह लज्जा से अपना सिर नहीं झुकाता, इसके विपरीत वह अपने सेंध लगाने के औजारों को उठाकर बड़े सचरित्र व्यक्ति की भाँति मारने के लिए दौड़ता है। कहो, सत्य है कि नहीं ?'

विनय—'सत्य तो है ही।'

महिम—'इससे अच्छा उपाय यह है कि तुम ऐसे धूर्त व्यक्ति से, उसकी, पूर्ण रूप से सेवा-सुश्रूषा करते हुए यह कहो कि हे परमहंस महात्मा-जी! आप कृपा करके अपनी झोली को थोड़ा-सा झाड़ दीजिए, मैं उसकी धूल पाकर कृतार्थ हो जाऊंगा; तो उस स्थिति में तुम्हारे घर के माल का कम-से-कम एक हिस्सा तो लौट कर आ ही सकता है। इसमें शान्ति-भंग होने का भी कोई खटका नहीं रहता। यदि विचार कर देखो तो यही वास्तविक देश-भक्ति है। परन्तु मेरे भाई गोरा इससे चिढ़ते हैं। ये जब से कट्टर हिन्दू बने, तब से मुझे भैया कहकर खूब मानने लगे हैं। यद्यपि इनके सामने मेरी ये बातें ठीक बड़े भाई जैसी नहीं हुई परन्तु भाई, मैं क्या करूँ? झूठी बात के विषय में भी तो सच्ची बात कहनी ही पड़ेगी। अच्छा विनय, मुझे उस लेख की जरूरत है। थोड़ा ठहरो, मैंने उसे नोट कर लिया है। उस कागज को ले आऊँ।'

इतना कहकर महिम तम्बाकू पीते हुए वहाँ से चले गये।

गोरा ने विनय से कहा—'विनय, तुम बड़े भाई के कमरे में जाकर उन्हें रोके रखो। तब तक मैं अपना यह लेख लिख डालूँ।'

५

'अजी, सुन रहे हो? डरो मत, मैं तुम्हारी पूजा की कोठरी में नहीं आऊँगी। सन्ध्या-पूजन समाप्त करने के बाद तुम जरा मेरे कमरे में आना। मैं जानती हूँ कि दो नये संन्यासियों के आ जाने से कुछ दिन तुमसे भेंट न हो सकेगी। इसीलिए कहती हूँ कि भूल मत करना। एक बार आना अवश्य।' यह कहकर आनन्दमयी गृहस्थी के काम में लग गईं।

कृष्णदयाल बाबू साँवले रंग और दोहरे शरीर के हैं। माथा विशेष लम्बा नहीं। चेहरे पर दो बड़े नेत्र ही ऐसे हैं, जिन पर दृष्टि बरबस जा पड़ती है। शेष चेहरा दाढ़ी-मूँछ से ढक रहा है। बाल कुछ-कुछ सफेद हो चले हैं। वे गेरुआ रंग का रेशमी वस्त्र पहिनते हैं और पीतल का कमण्डल लिये रहते हैं। पैरों में खड़ाऊँ रहती हैं। सिर के सामने के बाल कुछ गिर गये हैं, शेष में गाँठ बाँधकर उन्हें जटा-जूट-सा बना दिया है।

एक समय था, जब ये पश्चिम में रहते थे और पल्टन में अंग्रेजों की सोहबत में रहकर मद्य-माँस का खूब सेवन करते थे। उस समय देश के पुरोहित, पण्डे, वैष्णव तथा संन्यासियों का अपमान करने में ही ये अपना पौरुष समझते थे। परन्तु आजकल हिन्दू धर्म का कोई ऐसा चिह्न नहीं है जो इन्होंने धारण न कर रखा हो। अब किसी नये संन्यासी को देखते ही उसके पास किसी नई साधना का मार्ग सीखने जा बैठते हैं। समय का फेर जो ठहरा! मुक्ति के निगूढ़ मार्ग तथा योग की निगूढ़ प्रणाली को प्राप्त करने के लिए हर समय लालायित रहते हैं। कुछ समय से तान्त्रिक साधना का उपदेश ले रहे थे कि इसी समय उन्हें एक नये बौद्ध संन्यासी का पता मिल गया, तभी से उनके पास जाने को मन चंचल किए रहते हैं।

कृष्णदयाल बाबू की पहली स्त्री एक पुत्र को जन्म देने के बाद ही स्वर्गवासिनी हो गई थी। उस समय ये तेईस वर्ष के थे। माँ की मृत्यु का कारण लड़के को मानकर उन्होंने उसे क्रुद्ध हो अपनी ससुराल में छोड़ दिया तथा स्वयं वैराग्य की ओर बढ़ गये थे। परन्तु उसके छः महीने बाद ही वह नशा उतर जाने पर, काशीवासी सार्वभौम महाशय की पौत्री, पितृ-हीना आनन्दमयी के साथ अपना दूसरा विवाह कर बैठे थे।

पश्चिम में जाकर कृष्णदयाल ने नौकरी की तथा अनेक उपायों द्वारा मालिकों को भी प्रसन्न कर दिया। इसी बीच जब सार्वभौम की मृत्यु हो गई, तब वे अपनी पत्नी को अपने साथ लेकर ही रहने लगे।

इन्हीं दिनों सिपाही विद्रोह हुआ। कृष्णदयाल ने अपने कौशल से एकाध उच्च पदाधिकारी अंग्रेज की जान बचाई। उसके बदले में इन्हें यश तथा जागीरें मिलीं। गदर के कुछ दिनों बाद वे नौकरी छोड़, बालक गोरा को साथ ले, कुछ दिनों काशी में रहे। गोरा जब पाँच वर्ष का हुआ, तब वे काशी से कलकत्ते चले आये। वहाँ अपनी पहली पत्नी के पुत्र (बड़े लड़के)

महिम को भी उन्होंने ननिहाल से अपने पास बुला लिया। महिम जब पढ़-लिखकर योग्य हुआ तो अपने पिता के मित्रों के सम्बन्ध से उसे सरकारी खजाने में नौकरी मिल गई। तभी से वह अपना कार्य योग्यतापूर्वक कर रहा है।

गोरा बचपन से ही मुहल्ले तथा स्कूल के लड़कों की सरदारी करता था। वह हर समय अध्यापकों की नाक में दम किए रहता। कुछ बड़ा होते ही वह छात्र-संघ में 'स्वतन्त्रता खोकर कौन जीना चाहता है' तथा 'जहाँ बीस करोड़ मनुष्य रहें, वहाँ क्या नहीं किया जा सकता,' आदि भावों से पूर्ण कवितायें सुनाकर तथा अंग्रेजी में जोशीले भाषण दे देकर, नन्हें विद्रोहियों का सरदार बनने लगा। अन्त में जब एक समय उसने छात्र-सभा रूपी अण्डे के खोल को तोड़कर, बड़े लोगों के समाज में कल-काकली सुनाना शुरू किया तो कृष्णदयाल बाबू को उससे बड़ा आश्चर्य होने लगा।

गोरा की प्रतिष्ठा बाहर के लोगों में देखते-देखते खूब बढ़ने लगी, परन्तु घर में उसे कोई कुछ नहीं समझता था। महिम उस समय नौकरी करता था। उसने 'पेट्रियट दादा' तथा 'हरीश मुखर्जी दि सैकिण्ड' आदि व्यंग्य-वचन कहकर गोरा को दबाने की बड़ी चेष्टा की। कभी-कभी तो उनमें हाथापाई तक की नौबत आ जाती थी। अंग्रेजों के प्रति गोरा के इस विद्वेष को देखकर आनन्दमयी कभी-कभी बहुत चिन्तित हो जाती थीं। वे उसे अनेक प्रकार से समझाने का प्रयत्न करती थीं, परन्तु फल कुछ नहीं निकलता था। गोरा सदैव ही बाजार अथवा मार्ग में अवसर मिलने पर किसी अंग्रेज के साथ मार-पीट करने में अपना जीवन सफल समझता था।

अचानक केशवचन्द्र के व्याख्यानों पर रीझकर गोरा ब्राह्म-समाज की ओर विशेष आकर्षित होने लगा। उन्हीं दिनों कृष्णदयाल बाबू अधिक आचारनिष्ठ हो उठे, यहाँ तक कि कभी गोरा उनके कमरे में जाता तो वे घबरा जाते थे। घर में दो-तीन कमरे उन्होंने अलग ले रखे थे और अपने उस स्वतन्त्र भाग के एक द्वार पर उन्होंने 'साधना आश्रम' का बोर्ड लिखकर टाँग दिया था।

पिता के इस स्वभाव से गोरा का मन विद्रोही हो उठा। उसने सोचा यह सब मूर्खता मैं न सह सकूंगा, मेरे लिए यह सब आँख की किरकिरी है। तभी गोरा ने अपने पिता से सब सम्बन्ध विच्छेद कर घर से बाहर चले

जाने का विचार किया, परन्तु उस समय आनन्दमयी ने किसी प्रकार से समझा-बुझाकर रोक लिया।

पिता के पास जो विद्वान् ब्राह्मण आते थे, गोरा समय मिलते ही उनसे विवाद करने लगता था। उस विवाद को हाथापाई कहना ही अधिक उचित होगा। उन ब्राह्मण पण्डितों में अधिकांश ऐसे थे जिनमें विद्वत्ता तो बहुत कम थी, परन्तु धन का लोभ अधिक था। विवाद में गोरा से उनका वश न चलता था, अतः वे उससे वैसे ही भयभीत रहते थे जैसे कोई बाघ से डरता हो। उनमें केवल हरिश्चन्द्र विद्यावागीश ही ऐसे निकले, जिनके लिए गोरा के हृदय में श्रद्धा उत्पन्न हुई।

कृष्णदयाल बाबू ने विद्यावागीश जी को वेदान्त चर्चा के लिए बुला रखा था। अपने उद्धत स्वभावानुसार जब गोरा उनसे विवाद करने पहिले-पहल पहुँचा, तभी उसे यह आभास हो गया कि उनसे वाग्युद्ध करना कठिन है। वे केवल विद्वान् ही नहीं थे, अपितु उनके मन में अद्भुत उदारता भी विद्यमान थी। गोरा को यह कल्पना भी नहीं थी कि केवल संस्कृति पर व्यक्ति ऐसी तीक्ष्ण एवं प्रशस्त बुद्धि वाला भी हो सकता है। विद्यावागीश जी के चरित्र में जो क्षमा एवं शान्ति से पूर्ण अविचल धैर्य की गम्भीरता थी, उसके समक्ष अपने को अशान्त रखना गोरा के लिए सम्भव न था। गोरा किसी कार्य को अधूरा नहीं छोड़ता था, अतः दर्शनशास्त्र की तह तक पहुँचने के लिए वह उसकी चिन्ता में डूब गया।

दैवयोग से उन्हीं दिनों किसी अंग्रेज पादरी ने हिन्दूशास्त्र एवं समाज पर लाँछन लगाते हुए एक समाचार-पत्र में लेख लिखकर भारतवासियों को तर्क-युद्ध के लिए ललकारा। गोरा उसे पढ़कर आग-बबूला हो गया। यद्यपि अब तक वह स्वयं समय-समय पर शास्त्र एवं लोकाचारों की निन्दा करता था, परन्तु अब एक विदेशी द्वारा हिन्दू समाज की अवज्ञा करना उसे सहन न हुआ।

गोरा ने भी समाचार-पत्रों में लेख लिखकर उस तर्क-युद्ध में भाग लेना आरम्भ कर दिया। विपक्ष ने हिन्दू समाज पर जितने दोष लगाये थे, उनमें से किसी को गोरा ने स्वीकार न किया। दोनों ओर से अनेक उत्तर-प्रत्युत्तर छपे। अन्त में, सम्पादक को भी यह कहना पड़ा कि अब इस सम्बन्ध में हम कोई तर्क नहीं छापेंगे।

परन्तु गोरा को घुन लग गई थी। अतः उसने 'हिन्दुत्व' नामक एक पुस्तक अंग्रेजी में लिखनी आरम्भ कर दी। उस पुस्तक में उसने अपनी पूरी शक्ति से हिन्दू धर्म तथा समाज की श्रेष्ठता के प्रमाण संग्रहीत किये थे।

इस प्रकार पादरी के साथ विवाद कर धीरे-धीरे गोरा ने अपनी वकालत के सम्मुख स्वयं ही अपनी हार मान ली। वह कहने लगा—'हम अपने देश को विदेशी की अदालत में अभियुक्त की भाँति खड़ा कर, उसकी मर्जी के अनुसार विचार नहीं करने देंगे, हम उसका विलायती आदर्शों से मेल कर लज्जित न होंगे और न इसमें किसी गौरव का ही अनुभव करेंगे। हमने जिस देश में जन्म लिया है, उस देश के आचार-विचार, विश्वास, शास्त्र तथा समाज के लिए अपने तथा दूसरों के निकट तनिक भी लज्जित न होंगे। देश का जो कुछ अच्छा अथवा बुरा है, उस सबको शक्ति एवं गर्व-पूर्वक शिरोधार्य कर उसे अपमान से बचायेंगे।'

यह निश्चय कर गोरा नित्य गंगा-स्नान तथा सन्ध्या-पूजन करने लगा। उसने चोटी रखा ली और छुआछूत का विचार भी आरम्भ कर दिया। अब वह नित्य सवेरे उठकर माता-पिता के पैर छूता है तथा जिस महिम को वह बातबात में अंग्रेजी में 'कैड़' तथा 'स्नाब' कहता था, उसी को देखकर उठ खड़ा होता है तथा प्रणाम करता है। इस सहसा उत्पन्न होने वाली भक्ति को देखकर महिम जो मुँह में आता है कहता है, परन्तु गोरा उसे कोई जवाब नहीं देता।

गोरा ने अपने उपदेश तथा आचरण से जैसे देशवासियों के एक दल को जगा दिया। वे एक प्रकार की खींचातानी से मुक्ति पा गये। वे भी उसके स्वर में स्वर मिलाकर कह उठे—'हम अच्छे हैं या बुरे, सभ्य हैं अथवा असभ्य, परन्तु इसके लिए किसी से जवाबदेही नहीं करना चाहते। हम भली-भाँति यह अनुभव कर सकते हैं कि हम वास्तव में हमीं हैं।'

परन्तु कृष्णदयाल बाबू को गोरा के इस नवीन परिवर्तन से कोई प्रसन्नता नहीं हुई। उन्होंने एक दिन गोरा को अपने पास बुलाकर कहा—'देखो, हिन्दू धर्म बहुत गहन है। जिसे ऋषियों ने स्थापित किया है, उसकी गहराई तक पहुँचना प्रत्येक का काम नहीं है। मेरी सम्मति में बिना समझे-बूझे धर्म के लिए आन्दोलन न करना ही उत्तम है। तुम अभी बच्चे हो, केवल अंग्रेजी ही पढ़े हो। पहिले जो तुम ब्राह्म-समाज की ओर झुके, वह

तुम्हारे लिए ठीक था। इसीलिए मैं तुम पर नाराज होने की अपेक्षा प्रसन्न हुआ था, परन्तु इस समय तुम जिस मार्ग पर चल रहे हो, वह मुझे तुम्हारे लिए ठीक नहीं जान पड़ता। यह मार्ग तुम्हारे लिए अच्छा न रहेगा।'

गोरा ने उत्तर दिया—'बाबूजी, आप कहते हैं ? मैं हिन्दू हूं। हिन्दू धर्म के गूढ़ मर्म को आज नहीं तो कल समझ लूंगा और यदि कभी न समझ सका तो चलना तो इसी मार्ग से है। हिन्दू समाज के साथ मेरा जो पूर्व-जन्म का सम्बन्ध है, उसे तोड़ नहीं सकता। ब्राह्मण के घर जन्मा हूँ, अतः किसी-न-किसी जन्म में तो इस हिन्दू धर्म की चरम सीमा को प्राप्त कर लूँगा। यदि भूल से किसी दूसरी ओर झुक गया, तो फिर भी अन्त में दूने वेग से मुझे इसी ओर तो लौटना पड़ेगा।'

कृष्णदयाल ने मस्तक हिलाते हुए कहा—'परन्तु भैया ! केवल हिन्दू कह देने से ही हिन्दू नहीं हुआ जा सकता। मुसलमान होना सरल है, क्रिश्चियन भी हर कोई हो सकता है, परन्तु हिन्दू, बस भाई, यह तो बड़ी कठिन बात है।'

गोरा—'आपका कहना ठीक है, परन्तु मैं जब हिन्दू होकर हिन्दू के घर जन्मा हूँ, तब तो थोड़ी-थोड़ी साधना कर आगे पहुँच ही जाऊंगा।'

कृष्णदयाल—'बहस करके तो मैं तुम्हें ठीक से नहीं समझा सकता। हाँ, जो तुम कहते हो वह भी सत्य हो सकता है। जिसका जो कर्मफल है, निर्दिष्ट धर्म है, उसे एक दिन घूम-फिरकर अपने धर्म में आना ही होता है। रोक तो कोई सकता नहीं। फिर ईश्वर की इच्छा में हम कर भी क्या सकते हैं ?'

कर्म फल तथा भगवान् की इच्छा, सोऽहंवाद एवं भक्ति-तत्त्व सभी को कृष्णदयाल पूर्णतः समान भाव से ग्रहण करते हैं, परन्तु इसमें परस्पर किसी प्रकार के समन्वय की भी आवश्यकता है, इसे वे अनुभव नहीं करते।

६

आज बहुत दिन बाद कृष्णदयाल पूजा-पाठ आदि नित्य कर्म तथा स्नान-भोजनादि से छुट्टी पाकर आनन्दमयी के कमरे में फर्श पर अपने कम्बल का आसन बिछाकर, जैसे अलग जा बैठे।

आनन्दमयी ने कहा—'अजी, सुनते हो ! तुम तो तपस्या में लगे रहते हो, घर की कुछ चिन्ता नहीं है, परन्तु मैं गोरा के लिए हमेशा डरते-डरते अधमरी हुई जाती हूँ।'

कृष्णदयाल—'क्यों, क्या भय है ?'

आनन्दमयी—'सो तो मैं ठीक नहीं कह सकती। परन्तु मुझे जान पड़ता है कि गोरा ने जो हिन्दू आचार पर चलना आरम्भ किया है, यह उसके लिए अच्छा न होगा। मेरा हृदय कहता है कि इस ढंग से चलने पर कभी-न-कभी एक विपत्ति अवश्य आ उपस्थित होगी। मैंने तुमसे तभी कहा था कि उसका जनेऊ मत करो, परन्तु उन दिनों तो हिन्दू धर्म को मानते ही नहीं थे। तुमने कहा था कि गले में एक डोरा पहिना देने से कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। परन्तु डोरा केवल डोरा ही नहीं रहता—अब उसे कैसे सम्भालोगे, किस प्रकार रोकोगे ?'

कृष्णदयाल—'वाह, शायद सारा दोष मेरा ही है ? आरम्भ में तो तुम्हीं ने गलती की। तुमने उसे किसी प्रकार छोड़ना ही नहीं चाहा। उन दिनों मैं भी गँवार था—धर्म-कर्म को कुछ जानता ही न था। आज जैसा समय होता तो कभी ऐसा काम न करता।'

आनन्दमयी—'तुम चाहे कुछ भी कहो, परन्तु मैं किसी प्रकार नहीं मान सकती कि मैंने वैसा करके कोई अधर्म किया था। तुम्हें स्मरण होगा कि पुत्र-प्राप्ति के लिए मैंने क्या किया ? जिसने जो बताया, वही करती रही। कितने ही गण्डे, ताबीज और मन्त्र मनाते-मनाते थक गई। तब एक दिन स्वप्न में मैंने देखा कि ठाकुरजी की पूजा के लिए एक डलिया भरकर बेला के फूल लिए बैठी हूँ। फिर देखा कि फूल नहीं रहे, उनके स्थान पर डलिया में एक छोटा-सा गोरा लड़का बैठा है। आह, वह कैसा स्वप्न था, क्या कहूँ ! मेरी आँखों में उस समय आनन्द के आँसू बहने लगे थे। उस समय ज्यों ही उस लड़के को गोद में उठाने का विचार किया, त्यों ही मेरी आँखें खुल गईं। उस स्वप्न के दस दिन बाद ही मैंने गोरा को पाया। वह तो ठाकुरजी का प्रसाद है। क्या है और किसका है, जो किसी को लौटा देती ? पूर्व-जन्म में उसे गर्भ में धारण करके शायद मैंने बहुत कष्ट पाया था, इसी-लिए अब वह मुझे माँ कहने आया है। तुम्हीं सोचो कि वह कहाँ से किस प्रकार आया ? उन दिनों चारों ओर मारकाट मच रही थी। हम स्वयं भी

अपने प्राण बचाने की फिक्र में थे, कि उसी समय एक दिन आधी रात को एक गर्भवती मेम हमारे घर में आ छिपी। तुम तो उसे भय के मारे अपने घर में रखना ही न चाहते थे। परन्तु मैंने तुमसे छिपाकर एक कोठरी में ठहरा दिया। उसी रात उसने लड़के को जन्म दिया और फिर तभी बेचारी स्वयं भी मर गई। उस माता-पिता से वंचित बालक को यदि मैं न पालती तो क्या करती? हमने उसे पादरी को सौंप देना चाहा पर पादरी क्या उसका माँ-बाप था, अथवा उसने उसके प्राण बचाये थे? इस प्रकार मैंने जिस बालक को पाया क्या वह किसी अन्य प्रकार के बालक से कम है? तुम कुछ भी क्यों न कहो, परन्तु जिस ईश्वर ने मुझे यह दिया है, वे उसे यदि स्वयं न ले लें तो अपने प्राण रहते इस बालक को मैं अन्य किसी को न लेने दूंगी।'

कृष्णदयाल—'यह तो मैं जानता हूँ। तुम गोरा के लिए रहो। मैंने भी तो कोई रुकावट नहीं डाली। परन्तु जनेऊ करके, उसे अपना लड़का बताकर परिचय दिये बिना समाज में भी तो नहीं रह सकता था। यह लाचारी थी। अब केवल दो बातें विचारणीय हैं। न्याय से मेरी सारी पूंजी और जायदाद महिम को ही मिलनी चाहिए, क्योंकि यही उसका सच्चा उत्तराधिकारी है।'

आनन्दमयी—'तुम्हारी सम्पत्ति और जायदाद में से हिस्सा लेना चाहता ही कौन है? तुमने जो धन इकट्ठा किया है, उसे महिम को दे देना, गोरा उसमें से एक पैसा भी न लेगा। वह मर्द का बालक है। पढ़ा-लिखा है, स्वयं परिश्रम करके कमा खायेगा—पराये धन में वह क्यों हिस्सा लेने लगा? वह जीवित रहे, मेरे लिए तो यही बहुत है। मुझे किसी और सम्पत्ति की आवश्यकता नहीं है।'

कृष्णदयाल—'न, मैं उसे कुछ भी न दूं, यह न होगा। अपनी जागीर उसे दे दूंगा। किसी समय उसकी आय एक हजार रुपये वार्षिक तक हो सकेगी। चिन्ता है तो केवल यही कि उसके ब्याह का क्या होगा? अब तक मैंने किया सो किया, परन्तु अब हिन्दू धर्मानुसार उसका विवाह किसी ब्राह्मण के घर न कर सकूंगा, तुम इसमें चाहे क्रोध ही क्यों न करो।'

आनन्दमयी—'अरे, तुम्हारी तरह यह सारी पृथ्वी गंगाजल और गोबर से ही चौका नहीं लगाती। शायद इसीलिए मुझे भी धर्म का ज्ञान

नहीं है। मैं उसका विवाह ब्राह्मण के घर करूँगी और नाराज भी क्यों होऊँगी ?'

कृष्णदयाल—'क्या कहा ? तुम तो ब्राह्मण की पुत्री हो !'

आनन्दमयी—'ब्राह्मण-पुत्री हूँ, तो क्या ? ब्राह्मण के आचार का पालन तो मैंने छोड़ ही रखा है। महिम के विवाह के समय लोगों ने मुझे ईसाई जात की बताकर काम बिगाड़ना चाहा था, परन्तु तभी मैं अपनी खुशी से अलग हो गई। सारी दुनिया मुझे क्रिस्तानी कहती है और न जाने क्या-क्या कहती है, परन्तु मैं उन सबकी बातें सुन लेती हूँ। मैं कहती हूँ कि क्रिस्तानी मनुष्य नहीं हैं ? तुम हिन्दू ही यदि ऊँची जाति हो और भगवान् के अधिक प्रिय हो, तो वही भगवान् तुम्हारे मस्तक को भी कभी मुगल और कभी क्रिस्तानी के चरणों पर क्यों झुकाते हैं ?'

कृष्णदयाल—'ये सब बहुत गम्भीर बातें हैं। तुम स्त्री जाति उन्हें न समझ सकोगी। परन्तु हमारा समाज एक है, इसे तुम जानती हो अतः उसी को मानकर तुम्हें चलना चाहिये।'

आनन्दमयी—'मुझे यह सब समझाने से क्या प्रयोजन ? जब मैंने गोरा को अपना लड़का मानकर पाला-पोसा है तो आचार-विचार का आडम्बर करने से समाज रहे अथवा न रहे परन्तु धर्म अवश्य नहीं रहेगा। मैंने धर्म के भय से किसी दिन कुछ छिपाया नहीं, केवल एक ही बात छिपाई है और भय से अधमरी हो रही हूँ। ईश्वर न जाने कब क्या करें, इसलिए चाहती हूँ कि गोरा से सब बात खुलासा कह दूँ। फिर जो भाग्य में लिखा होगा, वह हो जायेगा।'

कृष्णदयाल ने घबराकर कहा—'न, न, मेरे जीवन में यह कभी न होगा। गोरा को तो तुम जानती ही हो। यह सुनकर न जाने वह क्या कर बैठे ? उसके बाद समाज में हलचल मच जावेगी, उस समय सरकार भी इस समाचार को पाकर न जाने क्या कर बैठे ? यद्यपि गोरा का पिता लड़ाई में मारा गया और यह भी जानता हूँ कि उसकी माँ भी मर गई। परन्तु यह सब समाचार हमें तभी मजिस्ट्रेट को दे देना चाहिये था। अब इस बात को लेकर कोई गड़बड़ी हुई तो मेरा सारा साधन-भजन मिट्टी में मिल जायेगा। तब सिर पर क्या मुसीबत आयेगी, यह भी नहीं कहा जा सकता।'

आनन्दमयी ने कोई उत्तर न दिया, वह चुप बैठी रहीं। कुछ देर बाद कृष्णदयाल फिर बोले—'मैंने गोरा के विवाह के लिए एक उपाय सोचा है। परेश भट्टाचार्य मेरे साथ पढ़ते थे। स्कूल इन्स्पेक्टरी से पेन्शन लेकर अब वह कलकत्ते में ही रह रहे हैं। वे कट्टर ब्राह्म-समाजी हैं। सुना है, उनके कई लड़कियाँ हैं। गोरा को यदि उनके घर आने-जाने दिया जाय तो सम्भव है कि उनमें से कोई लड़की उसे पसन्द आ जाये। फिर जैसी ईश्वरेच्छा।'

आनन्दमयी—'तुम क्या कह रहे हो? क्या गोरा एक ब्राह्म के घर आयेगा-जायेगा? वह तो कट्टर हिन्दू है, ब्राह्मों से उसे घोर घृणा है।'

अभी बात पूरी भी न हुई थी कि गोरा मेघ-गर्जन के समान स्वर से 'माँ' कहता हुआ वहाँ पहुँचा। कृष्णदयाल को यहाँ बैठा देख उसे कुछ आश्चर्य भी हुआ। आनन्दमयी तुरन्त उठकर गोरा के पास पहुँचीं और अपनी दोनों आँखों से स्नेह बरसाती हुई बोलीं, 'क्यों बेटा, क्या चाहिए?'

'कोई खास बात तो नहीं है। इस समय रहने दो।' कहकर गोरा ने लौटने का उपक्रम किया।

कृष्णदयाल बोले—'गोरा, जरा बैठ जाओ। तुमसे एक बात कहनी है। मेरे एक ब्राह्म मित्र हाल ही में कलकत्ते आये हैं। वे हेढोतल्ला मुहल्ले में रहते हैं।'

गोरा—'परेश बाबू तो नहीं?'

कृष्णदयाल—'तुम उन्हें कैसे जानते हो?'

गोरा—'विनय उनके मकान के पास ही रहता है, उसी से समाचार सुना था।'

कृष्णदयाल—'मेरी इच्छा है कि तुम उनके पास जाकर कुशल-समाचार ले आओ।'

गोरा ने अपने मन में कुछ सोचा, फिर एक साथ बोला, 'अच्छा, कल चला जाऊँगा।'

आनन्दमयी को इस उत्तर से कुछ आश्चर्य-सा हुआ।

तभी गोरा फिर कुछ सोचकर बोला—'न, कल तो मैं न जा सकूँगा।'

कृष्णदयाल—'क्यों?'

गोरा—'कल मुझे त्रिवेणी जाना है।'

कृष्णदयाल कुछ चकित होकर बोले—'त्रिवेणी!'

गोरा—'जी हाँ, कल सूर्य-ग्रहण का स्नान जो है।'

आनन्दमयी—'गोरा, तेरी बातें बड़ी विचित्र हैं। स्नान करने को कलकत्ते की गंगा नहीं है क्या? त्रिवेणी बिना क्या स्नान ही न होगा? तू तो देश के सब आदमियों से आगे बढ़ा जाता है!'

गोरा इसका उत्तर दिए बिना ही लौट गया।

गोरा ने त्रिवेणी स्नान का निश्चय किया था, उसका एकमात्र यही कारण था कि वहाँ अनेक तीर्थयात्री एकत्रित होंगे। वह जहाँ भी तनिक अवसर पाता, वहीं सब संकोच तथा पूर्व-संस्कार को बलपूर्वक त्यागकर देश के सर्व-साधारण लोगों के समक्ष खड़ा हो, हृदय से यह कहना चाहता था कि, 'मैं तुम लोगों का हूँ और तुम मेरे हो।'

७

प्रातःकाल उठकर विनय ने देखा कि सुबह का प्रकाश दुधमुँहे बालक की हँसी की भाँति निर्मल होकर खिल उठा है। दो-एक श्वेत बादल बिना प्रयोजन के इधर-से-उधर प्रकाश में उड़ रहे हैं।

निर्मल प्रभात के स्मरण में डूबा जिस समय वह पुलकित हो अपने बरामदे में खड़ा था उसी समय उसने देखा कि परेश बाबू एक हाथ में छड़ी लिये तथा दूसरे में सतीश का हाथ पकड़े, सड़क पर धीरे-धीरे चले आ रहे हैं। सतीश ने जैसे ही मुँह उठाकर विनय को बरामदे में खड़ा देखा, तैसे ही वह उसका नाम लेकर चिल्ला उठा। विनय भी झटपट ऊपर से नीचे उतर आया। तभी परेश बाबू ने सतीश को साथ लेकर उसके घर में प्रवेश किया।

सतीश ने विनय का हाथ पकड़ते हुए कहा—'विनय बाबू! उस दिन आपने हमारे घर आने को कहा था, परन्तु आये क्यों नहीं?'

विनय सतीश की पीठ पर स्नेहपूर्वक हाथ फेरता हुआ हँसने लगा। परेश बाबू छड़ी को टेबिल के सहारे सावधानी से खड़ा करके बोले—'सुना, उस दिन सतीश यहाँ आया था। आपको बहुत परेशान किया। यह इतना बकता है कि इसकी दीदी ने इसे बख्तियार खिलजी की उपाधि दे दी है।'

विनय बोला—'मैं भी खूब बक सकता हूँ। इसी से हम दोनों में खूब पटती है। क्यों सतीश बाबू!'

सतीश चुप रहा, परन्तु फिर यह सोचकर कि इस नये काम के आगे कहीं उसका गौरव न घट जाये, बोला—'खूब, ठीक तो है, बख्तियार खिलजी का नाम क्या बुरा है ? बख्तियार खिलजी ने तो लड़ाई लड़ी थी ! उसने बंगाल भी जीता था न ?'

विनय हँसकर बोला—'पहिले वह लड़ाई लड़ता था, परन्तु अब उसकी आवश्यकता नहीं पड़ती, इसलिए अब वह केवल लैक्चर ही देता है और बंगाल को भी जीत लेता है।'

इस प्रकार बहुत देर तक वार्तालाप होता रहा। परेश बाबू ने बहुत कम बातें कीं। वे प्रसन्न और शान्त मुख से बीच-बीच में केवल हँस देते थे। दो-एक बातों में बोले भी बहुत कम। विदा होते समय उन्होंने कुर्सी से उठकर कहा—'हमारे घर का नम्बर अठहत्तर है। यहाँ से बराबर दाहिने हाथ की ओर जाकर···।'

सतीश बीच में ही बोल उठा—'ये हमारा घर जानते हैं। उस दिन मेरे साथ घर के द्वार तक भी गये थे।'

कोई कारण तो न था, परन्तु विनय इस बात से मन-ही-मन लज्जित हो उठा। जैसे उसकी चोरी पकड़ ली गई हो।

वृद्ध बोले—'तब तो आप हमारा घर जानते हैं। अस्तु, फिर कभी आपको···।'

विनय—'उसके लिए आपको कहना न होगा। कलकत्ता जैसा बड़ा शहर होने के कारण ही अभी तक हम अपरिचित रहे थे।'

विनय परेश बाबू को सड़क तक पहुँचा आया। फिर दरवाजे के पास कुछ देर खड़ा रहा। परेश बाबू छड़ी टेकते हुए धीरे-धीरे चले। सतीश उनके साथ लगातार बातें करता जाता था।

विनय ने मन-ही-मन कहा—'परेश बाबू जैसा वृद्ध मैंने कोई नहीं देखा। जिन्हें देखते ही मन में श्रद्धा उत्पन्न होती है और चरण छूने को जी करता है। सतीश भी कितना अच्छा और तेज लड़का है। भविष्य में वह योग्य व्यक्ति बनेगा। जैसी बुद्धि है वैसा ही भोला भी है।'

वे वृद्ध और बालक चाहे कितने भी भले क्यों न हों, परन्तु इतनी थोड़ी देर के परिचय से उनके प्रति ऐसी भक्ति और स्नेह का उमड़ना साधारणतः कभी सम्भव न होता, परन्तु विनय का हृदय ऐसी स्थिति में था कि इससे

अधिक परिचय की उसने आकांक्षा ही नहीं की थी।

तत्पश्चात् विनय मन-ही-मन सोचने लगा—'परेश बाबू के घर जाना ही चाहिये; न जाना शिष्टाचार एवं सभ्यता के विरुद्ध है।'

परन्तु गोरा द्वारा बताया गया, उसके दल का भारतवर्ष कहने लगा, 'खबरदार! तुम्हारा वहाँ जाना नहीं हो सकता।'

विनय ने हर बार अपने दल के भारतवर्ष की निषेधाज्ञा मानी है—मन में अनेक बार द्विविधा होने पर भी मानी है। परन्तु आज उसके हृदय में एक प्रकार का विद्रोह दिखाई दिया। उसे अनुभव हुआ, भारतवर्ष जैसे केवल विरोध की मूर्ति ही है।

नौकर ने आकर कहा—'भोजन तैयार है।' परन्तु विनय ने अभी तक स्नान भी नहीं किया था। बारह बज चुके थे। उसने जोर से सिर हिलाकर कहा—'मैं नहीं खाऊँगा, तुम जाओ।' यह कहकर वह कन्धे पर छाता रख, घर से बाहर निकल गया।

विनय सीधा गोरा के घर गया। वह जानता था कि एम्हर्स्ट स्ट्रीट में एक किराये का मकान लेकर 'हिन्दू हितैषी कार्यालय' स्थापित हुआ है। गोरा प्रतिदिन दोपहर को कार्यालय में जाकर उसके दल के सम्पूर्ण बंगाल के लोगों को सजग तथा तत्पर रहने के लिए अपने हाथ से पत्र लिखता था। वहीं उसके भक्त उसका उपदेश सुनने आते थे और उसके सहकारी बनकर अपने को धन्य समझते थे।

उस दिन गोरा उस समय उसी कार्यालय में काम करने गया था। विनय एक साथ दौड़कर आनन्दमयी के कमरे में जा पहुँचा। आनन्दमयी उस समय बैठी हुई भोजन कर रही थीं तथा लछमियाँ उनके पास बैठी पंखे से हवा कर रही थी।

आनन्दमयी ने आश्चर्यचकित होकर कहा—'अरे विनय, आज तुझे क्या हो गया है?'

विनय सामने ही बैठ गया और बोला—'माँ, बड़ी भूख लगी है खाने को दो।'

आनन्दमयी चिन्तित होकर बोलीं—'तूने तो मुश्किल खड़ी कर दी। रसोई बनाने वाला महाराज तो चला गया। तुम लोग···।'

विनय बोला—'मैं क्या महाराज के हाथ की रसोई खाने आया हूँ?

मैं तुम्हारी थाली का प्रसाद खाऊँगा, माँ ! लछमियाँ, ला एक गिलास पानी तो दे।'

लछमियाँ जैसे ही पानी लाई, वह उसे एक ही साँस में चढ़ा गया। तब आनन्दमयी ने एक और थाली मँगाकर उसमें स्नेहपूर्वक अपनी थाली का अन्न रख दिया और विनय, जैसे बहुत दिनों का भूखा हो, बैठकर उसे खाने लगा।

आनन्दमयी के हृदय की एक वेदना आज जैसे दूर हो गई। उसका प्रसन्न मुख देखकर विनय की छाती से भी जैसे एक बोझ उतर गया। फिर वे बैठकर तकिये का गिलाफ सीने लगीं। विनय उन्हीं के पैरों के पास कुहनी पर अपना मस्तक रखकर लेट गया तथा सबकुछ भूलकर ठीक पहले दिनों की भाँति प्रसन्न होकर बातें करने लगा।

८

विनय आनन्दमयी के घर से निकलकर मार्ग में जैसे उड़ता चला जा रहा था। उसका जी चाहता था कि जिस बात को लेकर वह कई दिनों तक संकोच से पीड़ित रहा, उसे आज सबके सामने सिर ऊँचा करके कह दे।

जिस समय वह अठहत्तर नम्बर के दरवाजे के पास पहुँचा, ठीक उसी समय परेश बाबू दूसरी ओर से वहाँ आ खड़े हुए।

'आओ विनय बाबू, मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई !' कहते हुए वे विनय को भीतर ले गए। सड़क के किनारे ही उनकी बैठक थी, वहाँ ले जाकर विनय को बैठाया। कमरे में एक टेबिल था, उसके एक ओर पीठदार बैंच तथा दूसरी ओर काठ और बेंत की दो कुर्सियाँ रखी हुई थीं। दीवार पर एक ओर ईसा का रंगीन चित्र तथा दूसरी ओर केशवचन्द्र सेन का फोटो लगा हुआ था। टेबिल के ऊपर दो-चार दिन के समाचार-पत्र तह किए हुए रखे थे। कोने में एक छोटी-सी आलमारी थी जिसके ऊपर कपड़े से ढका हुआ एक ग्लोब रखा था।

विनय बैठ गया। उसका हृदय चंचल हो उठा। मालूम पड़ता था, जैसे उसकी पीठ की ओर खुले हुए दरवाजे से कोई बैठक के भीतर प्रवेश कर रहा हो।

परेश बाबू बोले—'सोमवार को सुचरिता मेरे एक मित्र की पुत्री को पढ़ाने जाती है। वहाँ सतीश की आयु का एक लड़का भी है, इसी से सतीश भी उसके साथ जाता है। मैं अभी उन्हें पहुँचा कर लौटा हूँ। यदि थोड़ी भी देर हो जाती तो आपसे भेंट न हो पाती।'

परेश बाबू से विनय खुलकर बातें करने लगा। उस दौरान में परेश बाबू को विनय का सब हाल मालूम हो गया। विनय के माँ-बाप नहीं हैं। चाचा-चाची गाँव में रहकर जमीन-जायदाद को देखते हैं। उसके दो चचेरे भाई उसी के साथ कलकत्ते में एक घर में रहकर पढ़ते थे। उनमें से बड़ा भाई वकालत पास करके जिले की अदालत में प्रैक्टिस करता है तथा छोटा भाई हैजे की बीमारी से कलकत्ते में ही मर गया। चाचा कहते हैं विनय डिप्टी क्लेक्टर के लिए प्रयत्न करे, परन्तु वह कोई प्रयत्न न कर व्यर्थ के कामों में लगा हुआ है।

इस प्रकार कोई एक घण्टा बीत गया। बिना कार्य के और अधिक रुकना उचित न समझ, विनय उठ खड़ा हुआ। बोला—'सतीश भाई के साथ मुलाकात न हो सकी, यही दुःख रहा। उनसे कह दें कि मैं आया था।'

परेश बाबू बोले—'आप कुछ देर और ठहरते तो उन लोगों से भी भेंट हो जाती। अब उनके आने में अधिक देर नहीं है।'

केवल इसी कारण और बैठ जाने में विनय को लज्जा-सी लगी। कुछ और आग्रह होने पर बैठ भी जाता, परन्तु परेश बाबू अधिक बोलने या आग्रह करने के आदी नहीं थे। अतः उसे चल ही देना पड़ा। परेश बाबू बोले—'यदि आप फिर आयें तो मुझे बहुत खुशी होगी।'

सड़क पर आकर विनय ने अपने घर लौटने की कोई आवश्यकता न समझी। वहाँ कोई कार्य भी न था। विनय अखबारों में लेख लिखता था, उसके अंग्रेजी लेखों की लोग प्रशंसा भी खूब करते थे। परन्तु पिछले दिनों से उसे लिखने के समय कुछ सूझता ही न था। टेबिल के सामने अधिक देर बैठने पर उसका जी उचट जाता, इसी से आज वह अकारण उल्टी ओर चल पड़ा।

दो-चार कदम आगे बढ़ते ही उसे एक बालक की आवाज सुनाई दी, 'विनय बाबू! ओ विनय बाबू!'

उसने सिर उठाकर देखा कि एक गाड़ी की खिड़की पर झुका हुआ

सतीश उसे पुकार रहा है। गाड़ी के भीतर गद्दी पर कुछ साड़ी और कुछ सफेद कुरते की आस्तीन देखकर यह समझने में भी देर न लगी कि वहाँ कौन बैठा है।

बगाली शिष्टता के अनुसार गाड़ी की ओर देखना उसे कठिन हो उठा। तभी सतीश ने गाड़ी से उतरकर उसका हाथ पकड़ते हुए कहा—'हमारे घर चलिये।'

विनय बोला—'मैं अभी तुम्हारे घर से ही आ रहा हूँ।'

सतीश ने कहा—'वहाँ हम लोग तो थे नहीं। अब फिर चलिए।'

सतीश का हठ विनय नहीं टाल सका। सतीश विनय को लेकर घर में घुसते ही चिल्लाकर बोला—'बाबा, विनय बाबू को ले आया हूँ।'

विनय घर में आकर बैठ गया। उसका हृदय जोर-जोर से धड़कने लगा। परेश बाबू बोले—'मालूम होता है, आप थक गये हैं। सतीश ऊधमी लड़का है।'

घर में अपनी दीदी के साथ जब सतीश ने प्रवेश किया, तब विनय को एक हल्की-सी सुगन्धि का अनुभव हुआ। इसके बाद सुनाई दिया, परेश बाबू कह रहे थे—'राधे! विनय बाबू आये हैं, इन्हें तो तुम जानती ही होगी?'

विनय ने चकित हो, सिर उठाकर देखा—सुचरिता उसे नमस्कार कर सामने की कुर्सी पर बैठ गई। विनय भी उसे प्रति-नमस्कार करना न भूला।

सुचरिता ने वृद्ध से कहा—'ये रास्ते में जा रहे थे। सतीश इन्हें देखते ही गाड़ी से उतरकर यहाँ खींच लाया।' फिर विनय की ओर देखती हुई बोली—'विनय बाबू, आप शायद किसी काम से जा रहे थे। आपको कुछ असुविधा तो नहीं हुई?'

विनय को यह कभी आशा भी न थी कि सुचरिता उसे सम्बोधन करके कोई बात कहेगी। वह कुण्ठित और व्यग्र होता हुआ बोला, 'नहीं, असुविधा तो कुछ नहीं हुई।'

तभी सतीश सुचरिता की साड़ी खींचता हुआ बोला—'दीदी, चाबी दो न। अपना बाजा लाकर विनय बाबू को दिखा दूँ।'

सुचरिता हँसकर बोली—'यह लो, आरम्भ हो गया। बख्तियार के साथ जिसकी मैत्री हो, फिर उसकी जान नहीं बचेगी—बाजा तो सुनना ही

पड़ेगा —विनय बाबू, आपका यह छोटा मित्र अभी अनेक प्रकार से आपको तंग करेगा । क्या पता, आप इसके उत्पातों को सह भी सकेंगे या नहीं ?'

विनय ने संकोच के भाव से कहा—'न, आप कुछ ख्याल न करें । मुझे यह बहुत अच्छा लगता है ।'

अपनी दीदी से चाबी लेकर सतीश बाजा और कुछ खिलौने उठा लाया । वह बहुत देर तक अपने सीखे हुए अनेक खेलों तथा बाजे से सबका मनोरंजन करता रहा ।

कुछ देर बाद लीला ने वहाँ आकर कहा, 'बाबूजी, आप लोगों को माँ ऊपर बुला रही हैं ।'

९

ऊपर वाले बरामदे में एक टेबिल पर सफेद कपड़ा बिछा हुआ था । उसके चारोंओर कुर्सियाँ रखी थीं । रेलिंग के बाहर, कार्निस के ऊपर छोटे-छोटे गमलों में पाम तथा अन्य फूलों के पौधे थे । बरामदे के ऊपर से रास्ते के किनारे मौलश्री तथा कृष्णचूड़ा के वृक्ष वर्षा के जल से धुलकर स्निग्ध दिखाई दे रहे थे ।

अभी तक सूर्य अस्त नहीं हुआ था । पश्चिमी आकाश से हल्की धूप सीधी होकर बरामदे के एक कोने में पड़ रही थी ।

उस समय छत पर कोई नहीं था । कुछ देर बाद सतीश एक सफेद और काले रंग के छोटे-से कुत्ते को लेकर आ पहुँचा । उस कुत्ते का नाम था टेनी । वह कुत्ता जितनी क्रियाएँ जानता था, उन सबको सतीश ने विनय को दिखलाया । उसने एक पैर उठाकर सलाम किया तथा बिस्कुट का टुकड़ा देखते ही दोनों पैर सटाकर भीख माँगी । इस प्रकार टेनी ने जो ख्याति पायी, उससे सतीश को एक गर्व का अनुभव होने लगा । बीच-बीच में किसी कमरे से लड़कियों की हँसी, खिलखिलाहट तथा उसके साथ ही एक मर्द की आवाज सुनाई दे रही थी । विनय का मन उसे सुनकर एक अपूर्व मधुरता के साथ-साथ ईर्ष्या से भर रहा था । स्त्रियों के गले की ऐसी आनन्दमयी ध्वनि उसने पहले कभी नहीं सुनी थी । यह आनन्द की माधुरी उसके इतने समीप बह रही है फिर भी वह उससे इतनी दूर है ! सतीश

उसके कानों के पास न जाने क्या-क्या कह रहा था, परन्तु उसका मन किसी और ही तरफ था।

परेश वाबू की पत्नी अपनी तीनों लड़कियों को साथ लिये छत पर आईं। उनके साथ ही एक युवक भी आया, जो उनके दूर के रिश्ते में कोई आत्मीय लगता था।

परेश बाबू की पत्नी का नाम था वरदासुन्दरी। उनकी आयु कम नहीं है, परन्तु उन्हें देखते ही प्रतीत होता है कि बड़े यत्न से श्रृंगार करके आई हैं। अपनी आयु का अधिकांश भाग देहातिन स्त्रियों की भाँति विताकर, अब कुछ समय से नये जमाने के साथ चलने को चिन्तित बनी रहती हैं। यही कारण है कि उनकी रेशमी साड़ी बार-बार खिसक जाती है और ऊँची एड़ी का जूता खूब खट्-खट् बोलता है। संसार में कौन वस्तु ब्राह्म है, कौन अब्राह्म इस विषय में वे सदैव सतर्क रहती हैं। इसीलिए उन्होंने राधारानी का नाम बदलकर सुचरिता रख दिया। किसी ब्राह्म परिवार के व्यक्ति को पृथ्वी पर आसन बिछाकर खाते देखकर उन्हें सहज ही आशंका हो उठती थी कि कहीं ब्राह्म-समाज मूर्ति-पूजा की ओर तो अग्रसर नहीं हो रहा है।

उनकी बड़ी लड़की का नाम लावण्य है। वह मोटी-ताजी तथा हँस-मुख है। लोगों से वार्तालाप करना उसे प्रिय है। उसका चेहरा गोल, आँखें बड़ी तथा रंग उज्ज्वल श्याम है। वेषभूषा के सम्बन्ध में वह कुछ उदासीन-सी है, परन्तु इस बारे में उसे अपनी माता की आज्ञानुसार ही चलना पड़ता है। ऊँची एड़ी का जूता उसे सुविधाजनक नहीं लगता, फिर भी पहिनना ही पड़ता है। तीसरे प्रहर श्रृंगार करते समय माँ अपने हाथ से उसके मुँह पर पाउडर तथा गालों पर रंग लगा देती हैं। वह कुछ मोटी है, इसलिए वरदा-सुन्दरी उसका ब्लाउज ऐसा कसा हुआ बनवाती हैं कि लावण्य जब पहनकर निकलती है, तब ऐसा लगता है, जैसे जूट के बोरे को मशीन में कसकर दबा दिया गया हो।

मझली लड़की का नाम है ललिता। वह बड़ी लड़की से भिन्न है। उसका सिर लम्बा है तथा रुग्ण-सी जान पड़ती है। रंग भी अधिक साँवला है तथा विशेष बातचीत भी वह नहीं करती है। चाहे जिसे कठोर बातें सुना बैठती है। वरदासुन्दरी मन-ही-मन उससे डरती हैं और सहज में उससे

बोलने की हिम्मत नहीं करतीं।

छोटी लड़की का नाम लीला है। उसकी उम्र दस वर्ष के करीब है। दौड़ने तथा उपद्रव करने में वह बहुत तेज है। हमेशा सतीश के साथ मारपीट करती है।

वरदासुन्दरी के आते ही विनय उठ खड़ा हुआ तथा मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम किया। परेश बाबू बोले, 'उस दिन इन्हीं के घर में हम लोग···।'

वरदासुन्दरी बीच में ही कह उठीं—'अरे आपने बड़ा उपकार किया। मैं आपको हृदय से धन्यवाद देती हूँ।'

विनय यह सुनकर इतना शरमाया कि वह ठीक प्रकार से कुछ उत्तर भी न दे सका।

जो युवक लड़कियों के साथ आया था, उसके साथ भी विनय का परिचय हुआ। उसका नाम सुधीर था और वह बी० ए० में पढ़ता था। उसका चेहरा सुन्दर तथा आकर्षक था। रंग गोरा था। आँखों पर सुनहरी कमानी का चश्मा लग रहा था। उसका स्वभाव चंचल लगता था, क्योंकि वह घड़ी भर भी ठीक न बैठ पाता था, कुछ-न-कुछ करता ही रहता था। लड़कियों के साथ हँसी-मजाक कर उन्हें खिझाया करता था। लड़कियों के साथ उसका यह संकोचहीन व्यवहार विनय को बड़ा नवीन और आश्चर्य-जनक-सा लगा। पहले तो उसने अपने हृदय में इस व्यवहार को निन्दनीय अनुभव किया, परन्तु फिर उससे ईर्ष्या हो उठी।

वरदासुन्दरी बोलीं—'मुझे ऐसा प्रतीत होता है, जैसे मैंने एकाध बार आपको समाज-मन्दिर में देखा है।'

विनय को लगा, जैसे उनकी कोई चोरी पकड़ ली गई हो। वह लज्जित-सा होकर बोला—'जी, कभी-कभी केशव बाबू का भाषण सुनने चला जाता हूँ।'

वरदासुन्दरी—'आप शायद कॉलेज में पढ़ते हैं?'

'जी, अब तो वहाँ नहीं पढ़ता।' विनय ने उत्तर दिया।

'कॉलेज में आपने कहाँ तक शिक्षा प्राप्त की?'

'मैंने एम० ए० पास किया है।'

यह सुनकर वरदासुन्दरी को बालकों जैसे भोले चेहरे वाले विनय के प्रति हृदय में श्रद्धा उमड़ आई। वे एक उसाँस लेकर परेश बाबू की ओर

देखती हुई बोलीं—'मेरा मनुआ यदि आज होता तो वह भी एम० ए० पास कर चुका होता !'

वरदासुन्दरी का पहला पुत्र मनोरंजन नौ वर्ष की आयु में ही स्वर्गवासी हो चुका था। अतः वह जब किसी नवयुवक को उच्च शिक्षा प्राप्त करते, ऊँचा पद पाते, किताब लिखते अथवा कोई अच्छा काम करते देखतीं, तो उन्हें उस समय यही आभास होने लगता था कि यदि उनका मनुआ आज जीवित होता तो वह भी इन सब कामों को अवश्य कर चुका होता। परन्तु आज जब वह नहीं था तो इस समय जन-समाज में अपनी पुत्रियों के गुणों का प्रचार करना ही उन्होंने अपना विशेष कर्तव्य बना रखा था। उन्होंने विनय को यह बात विशेष रूप से बताई कि उनकी पुत्रियाँ पढ़ने-लिखने में बहुत तेज हैं। विनय ने यह भी सुना कि मेम ने उनकी पुत्रियों की बुद्धि, गुण तथा चातुर्य के सम्बन्ध में कब-कब कौन-सी बात कही थी। उसने यह भी सुना कि गर्ल्स स्कूल में पारितोषिक-वितरण करने के लिए जब लेफ्टीनेन्ट गवर्नर तथा उनकी पत्नी आई थीं, तब उन्हें हार पहिनाने के लिए विद्यालय की समस्त छात्राओं में से केवल लावण्य को ही चुना गया था।

अन्त में वरदासुन्दरी ने लावण्य से कहा—'बेटी ! सिलाई के जिस काम पर तुमने इनाम पाया था, जरा उसे तो ले आओ।'

एक रेशमी कामदार तोते की तसवीर, इस घर के परिचित घनिष्टों के बीच विशेष प्रसिद्ध हो चुकी थी। बहुत दिन हुए, मेम की सहायता से लावण्य ने इस अद्‌भुत वस्तु को बनाया था। यद्यपि इस कारीगरी में लावण्य का अपना कोई विशेष हाथ न था, परन्तु जिस व्यक्ति से नया-नया परिचय होता था, उसे यह नुमायशी तोता अवश्य दिखाया जाता था। जिस समय उस तोते की रचना में की गई कारीगरी को विनय विस्मयपूर्ण मुद्रा में देख रहा था, ठीक उसी समय नौकर ने एक चिट्ठी लाकर परेश बाबू के हाथ में दी।

परेश बाबू उस पत्र को पढ़कर प्रसन्न हो उठे। बोले—'उन्हें ऊपर ले आओ।'

वरदासुन्दरी ने पूछा—'कौन हैं ?'

परेश बाबू बोले—'मेरे बाल्यकाल के मित्र कृष्णदयाल ने अपने पुत्र को हम लोगों से मिलने के लिए भेजा है।'

यह सुनते ही विनय का हृदय उछलने लगा और मुँह विवर्ण हो उठा। परन्तु शीघ्र ही वह मुट्ठी बांध, कड़ा जी करके ऐसे बैठ गया मानो वह किसी प्रतिपक्षी के विरुद्ध अपने को तैयार कर रहा हो। इस परिवार के लोगों को गोरा अवज्ञापूर्वक देखेगा तथा उनपर अश्रद्धा से विचार करेगा—यह ध्यान आते ही विनय को जैसे किसी ने कुछ उत्तेजित-सा कर दिया।

१०

एक तश्तरी में कुछ मिठाई तथा चाय का सब सामान सजाकर, उसे एक नौकर के हाथ में दे सुचरिता छत के ऊपर आ बैठी। उस समय दरबान के साथ गोरा भी वहाँ पहुँच गया। उसका लम्बा-चौड़ा डील-डौल, गोरा शरीर तथा भारतीय पहनावा देखकर सब आश्चर्यचकित-से हो उठे।

गोरा के मस्तक पर गोपीचन्दन का तिलक लग रहा था। मोटे कपड़े की धोती, मोते सूत की चादर तथा पैरों में देशी जूता, यही उसकी वेश-भूषा थी, मानो वह वर्तमान युग के विरुद्ध एक मूर्तिमान विद्रोह की भांति आ-उपस्थित हुआ हो। विनय ने भी उसका ऐसा वेश पहिले कभी नहीं देखा था।

गोरा के हृदय में आज एक विशेष प्रकार की अग्नि जल रही थी जिसका एक स्पष्ट कारण भी था।

कल सवेरे ग्रहण-स्नान के लिए जो स्टीमर यात्रियों को लेकर त्रिवेणी गया था, उसमें अनेक स्त्रियाँ अपने एकाध अभिभावक पुरुषों के साथ मार्ग के बीच-बीच में सवार हुई थीं। जहाज में अधिक यात्री हो जाने पर जो स्थानाभाव हुआ उससे धक्का-मुक्की तक की नौबत आ चुकी थी। अनेक यात्री जिनके पैर कीचड़ से भरे थे, उसी भीड़ की धक्का-मुक्की में जहाज के तख्ते पर चढ़ते समय फिसल जाने से नदी के पानी में गिर पड़ते थे। किसी-किसी को जहाज का खलासी भी धकेलकर बाहर कर देता था। कोई तो स्वयं तो चढ़ गया, परन्तु अपने साथियों के बिछुड़ जाने से दुःखी हो रहा था। कभी-कभी पानी बरस उठता तो यात्री भीग भी जाते थे। बैठने की जगह भी कीचड़ से भर गई थी। सब लोगो के चेहरे पर भय तथा

दीनता के चिह्न दिखाई दे रहे थे। वे सब ऐसे सामर्थ्यहीन तथा भाग्यहीन थे कि जहाज के मल्लाह से लेकर कप्तान तक किसी से भी अपने कष्ट में सहायता की आशा नहीं रखते थे। ऐसी दशा में गोरा अपनी सम्पूर्ण शक्ति से उनकी सहायता कर रहा था।

ऊपर जहाज के फर्स्ट क्लास के डेक पर एक अंग्रेज तथा एक नयी रोशनी के बंगाली बाबू रेलिंग पकड़े, परस्पर हास्यालाप करते हुए तथा सिगरेट का धुआँ उड़ाते हुए उस दृश्य को देख रहे थे। कभी-कभी किसी यात्री की विशेष दुर्दशा पर अंग्रेज हँस उठता था तथा उसके साथ ही वे बंगाली बाबू भी अपनी क्रूरतापूर्ण हँसी से साथ देने लगते थे।

दो-तीन स्टेशन जब इस प्रकार पार हो गये तो गोरा से और अधिक सहन न हुआ। वह ऊपर जाकर गरजते हुए बोला—'तुम लोगों को धिक्कार है जो जरा शर्म तक नहीं आती।' अंग्रेज ने यह सुनते ही कुछ कड़ी दृष्टि से गोरा को सिर से पाँव तक देखा। तभी बंगाली बाबू बोले—'शर्म कैसी ? क्या देश के इन पशु समान मूर्खों के लिए शर्म की जाए ?'

गोरा ने क्रोध में तमतमाते हुए कहा—'मूर्ख की अपेक्षा सबसे बड़ा पशु वह है जिसके हृदय तो है लेकिन उस हृदय में दया नहीं है।'

बंगाली खिसियाता हुआ बोला—'यह तुम्हारी जगह नहीं। यह फर्स्ट क्लास है, तुम नीचे उतर जाओ।'

गोरा बोला—'वास्तव में यह जगह मेरे योग्य नहीं है। मैं तुम्हारे साथ नहीं बल्कि इन यात्रियों के साथ रहूँगा। परन्तु मैं यह कहे जाता हूँ कि फिर तुम मुझे अपने इस फर्स्ट क्लास में आने के लिए मत कहना।' इतना कहकर गोरा तेजी से नीचे उतर गया।

चन्दननगर पहुँचने पर वह अंग्रेज़ जहाज से नीचे उतरने लगा तो अचानक ही गोरा के पास पहुँचकर उसने अपने सिर से टोप उठाते हुए कहा—'मैं अपने निर्दयतापूर्ण व्यवहार पर लज्जित हूँ। आशा है, आप क्षमा करेंगे।'

अंग्रेज तो यह कहकर झटपट चला गया, अपने देशवासी शिक्षित बंगाली बाबू का वह अहंभाव, जो उन्होंने एक विदेशी के साथ मिलकर अपने देशवासियों की दुर्दशा पर प्रदर्शित किया था, गोरा के हृदय को जलाने लगा। देश के लोगों ने अपने को इस भयानक अपमान के तथा

दुर्व्यवहार के सम्मुख नतमस्तक कर रखा है, उन्हें यदि पशु समझा जाये तो वे अपना पशुत्व भी स्वीकार कर लेते हैं तथा इस बात को वे स्वाभाविक तथा उचित भी मान लेते हैं, यह हमारा पतन नहीं तो और क्या है? अवश्य ही इस विकार की जड़ में एक देशव्यापी गहरा अज्ञान भरा हुआ है। गोरा का हृदय इन बातों से फटने लगा। उसके मन में सबसे बड़ा दुःख यही था कि देश के चिरकालिक अपमान तथा दुर्गति को देखते हुए भी यहाँ के पढ़े-लिखे लोग इतने निष्ठुर बन जाते हैं कि अपने को इससे पृथक समझने में ही गर्व का अनुभव करने लगते हैं।

यही कारण था कि ऐसे शिक्षित लोगों की पढ़ी हुई विद्या तथा नकल करने के संस्कार की एकदम उपेक्षा करने के लिए ही आज गोरा अपने माथे पर गोपीचन्दन का तिलक लगाकर तथा देशी जूता पहनकर, छाती फुलाये हुए एक ब्राह्म-समाजी के घर आया था।

विनय मन-ही-मन समझ गया कि गोरा का आज का यह पहिनावा साधारण नहीं अपितु सामयिक है। वह किस समय न जाने क्या कर बैठे यह विचार कर विनय कुछ भयभीत भी हुआ।

वरदासुन्दरी जिस समय विनय से कुछ बातें कर रही थीं, उस समय सतीश छत के कोने में लट्टू घुमा रहा था, परन्तु गोरा को देखते ही उसका खेल बन्द हो गया। वह चुपचाप विनय के पास आ खड़ा हुआ तथा गोरा की ओर टकटकी लगाये हुए विनय के कान में धीरे से बोला—'क्या यही तुम्हारे मित्र हैं?'

विनय—'हाँ!'

छत पर पहुँचकर गोरा ने विनय की ओर इस तरह देखा जैसे उसे देखा ही न हो। फिर परेश बाबू को नमस्कार करके वह मेज के समीप एक कुर्सी खींचकर बैठ गया। वहीं एक ओर लड़कियों को भी बैठी हुई देखकर उसे यह बात मर्यादा के विरुद्ध लगी।

इस असभ्य व्यक्ति (गोरा) के पास से वरदासुन्दरी अपनी लड़कियों को हटा ले जाना चाहती थीं। उसी समय परेश बाबू ने उसकी ओर देखते हुए कहा—'ये मेरे मित्र कृष्णदयाल बाबू के लड़के गौर मोहन हैं।'

तब गोरा ने भी उनकी ओर देखते हुए प्रणाम किया। यद्यपि सुचरिता ने प्रसङ्गवश विनय के मुंह से गोरा की बात सुन रखी थी, परन्तु उसे कभी

अनुमान भी न हुआ था कि विनय का मित्र यही व्यक्ति होगा। गोरा की वेश-भूषा को देखकर सुचरिता को उससे कुछ घृणा हुई। अंग्रेजी पढ़े-लिखे व्यक्ति में हिन्दूपन की यह बनावट उसे सहन न थी।

परेश बाबू ने पहले तो अपने मित्र कृष्णदयाल बाबू की कुशलता का समाचार पूछा। फिर अपने विद्यार्थी जीवन की बात स्मरण करते हुए गोरा से बोले—'कॉलेज में हम दोनों एक मत के थे। दोनों ही मनमौजी थे तथा आचार-विचार कुछ भी नहीं मानते थे। हम लोग मजे से होटल में बैठकर खाना खाते और कभी-कभी तो शाम को गोलदिग्घी वाले मुसलमान की दूकान से कबाब लेकर भी खा लिया करते थे। इसके उपरान्त आधी-आधी रात तक हिन्दू समाज के सुधार की आलोचना किया करते थे।'

वरदासुन्दरी ने प्रश्न किया—'अब वे क्या करते हैं?'

गोरा—'अब तो वे हिन्दू आचार-विचार से रहते हैं।'

हिन्दू आचार-विचार का नाम सुनते ही वरदासुन्दरी क्रोध के मारे जल उठीं—'क्या इसमें इन्हें लज्जा नहीं आती?'

गोरा ने हँसते हुए कहा—'लज्जा तो दुर्बल स्वभाव का लक्षण है। बहुत से व्यक्ति अपने पिता का परिचय देने में भी लज्जित होते हैं।'

वरदासुन्दरी—'परन्तु पहले तो ब्राह्म थे ना।'

गोरा—'किसी समय तो मैं भी ब्राह्म ही था।'

वरदासुन्दरी—'अब आप शायद साकार उपासना में विश्वास कर उठे हैं?'

गोरा—'हृदय में ऐसा कोई कुसंस्कार नहीं, जो मैं अकारण ही साकार उपासना पर अश्रद्धा रखूं। साकार की निन्दा करने से वह छोटा नहीं हो जाता। उसके रहस्य का भेद किसे मिल सका है?'

तभी परेश बाबू नम्र-भाव से बोले—'परन्तु आकार नाशवान् है। उसका अन्त अवश्यम्भावी है।'

गोरा—'जिसका 'आदि' है, उसका 'अन्त' भी अवश्य होगा। इसमें कोई आश्चर्य नहीं। अनन्त ब्रह्म स्वयं को प्रकाशित करने के लिए ही अन्त का आश्रय लेता है। अन्त भी उसी अनन्त के अन्तर्गत है। अन्त उस प्रकाश का विधायक है। प्रकाश की स्थिति उदय-अस्त के भीतर ही समझनी चाहिये। जिस प्रकार वाक्य के भीतर भाव रहता है, उसी प्रकार आकार

के भीतर निराकार भी सम्पूर्ण रूप से व्याप्त है।'

वरदासुन्दरी बोलीं—'आकार निराकार से भी बड़ा है—यह आप क्या कह रहे हैं?'

गोरा—'मैं न कहूँ तो भी कुछ न होगा, जो जैसा है, वैसा ही रहेगा। आकार कोई मेरे कथन पर ही निर्भर नहीं है। यदि निराकार की पूर्णता यथार्थ होती, तब तो आकार को कहीं स्थान ही नहीं मिलता।'

सुचरिता मन में सोचने लगी—'काश, इस समय कोई ऐसा व्यक्ति यहाँ होता जो इस उद्दण्ड युवक को विवाद में हराकर ऐसा नीचा दिखाता कि फिर यह आकार का कभी नाम ही न लेता।'

विनय गोरा की बातों को चुपचाप सुन रहा था, यह देखकर वरदा-सुन्दरी और भी अधिक कुढ़ गई। गोरा इस प्रकार उत्तेजित होकर बातें कर रहा था कि उसकी उत्तेजना दबाने के लिए सुचरिता मन-ही-मन उत्तेजित हो उठी।

इसी समय नौकर चाय बनाने के लिए केतली में गरम पानी ले आया। सुचरिता उठकर चाय बनाने लगी। बीच-बीच में विनय ने एक-दो बार चकित दृष्टि से उसके मुँह की ओर देखा। यद्यपि उपासना के सम्बन्ध में विनय का गोरा से विशेष मतभेद न था। परन्तु एक ब्राह्म-परिवार के बीच बिना बुलाये आकर इस समय वह जिस धृष्टतापूर्वक विपक्षी के मतों की आलोचना कर रहा था, उससे विनय के हृदय को ठेस लगी। गोरा की इस धृष्टता के समक्ष भी परेश बाबू जिस प्रशान्त भाव से उसके तर्क के विपरीत गम्भीर प्रसन्नता की झलक लिये हुए थे, उसे देखकर विनय का हृदय उनके प्रति भक्ति से भर गया। वह सोचने लगा—'मतामत मिथ्या है। हृदय के भीतर परिपूर्ण आनन्द का विकास तथा शान्ति ही सबसे अधिक दुर्लभ है। सत्यासत्य के सम्बन्ध में लोग कितना ही विवाद क्यों न करें, परन्तु जो सत्य है, वह सत्य ही रहेगा।' परेश बाबू का स्वभाव था कि वे हर प्रकार के वार्तालाप के बीच में कभी-कभी आँखें बन्द कर अन्तःकरण में प्रस्तुत विषय का अनुशीलन कर लिया करते थे। विनय उनके ध्यान-मग्न प्रसन्न मुख को टकटकी लगाये देख रहा था। गोरा जो इस समय परेश बाबू के विरुद्ध बढ़-बढ़कर बातें कर रहा था, उससे उसके हृदय को बड़ी चोट लग रही थी।

सुचरिता ने चाय के कई प्याले तैयार कर, परेश बाबू के मुँह की ओर देखा। वह किससे चाय पीने के लिए कहे और किससे न कहे—उसके हृदय में वह बड़ी द्विविधा थी। तभी वरदासुन्दरी ने गोरा के मुँह की ओर देखते हुए कहा—'आप तो यह सबकुछ खायेंगे ही नहीं ?'

गोरा—'जी नहीं।'

'क्यों जाति चली जायगी क्या ?' वरदासुन्दरी बोली।

'जी हाँ !'

'आप जाति-पाँति को भी मानते हैं ?'

'जाति कोई मेरी बनाई हुई तो है नहीं, जो उसे नहीं मानूंगा ? जब समाज को मानता हूँ तो जाति को भी क्यों न मानूंगा ?'

'क्या समाज की सभी बातें माननीय हैं ?'

'जी हाँ, न मानने का अर्थ है—समाज को तोड़ना।'

'समाज को तोड़ने में हानि ही क्या है ?'

'जिस डाली पर सब लोग बैठे हों उसे काटकर गिरा देने में भी क्या दोष है ?'

सुचरिता हृदय में कुढ़ती हुई बोली—'माँ, तुम इनके साथ व्यर्थ विवाद क्यों कर रही हो ? ये हमारे हाथ का कुछ नहीं खायेंगे, बस !'

गोरा ने तब एक बार सुचरिता की ओर देखा। उधर सुचरिता ने विनय की ओर देखते हुए सन्देह भरे स्वर में कहा—'क्या आप···?'

विनय कभी चाय नहीं पीता था। मुसलमान के हाथ की बनी हुई पावरोटी तथा बिस्कुट खाना भी उसने बहुत दिनों से छोड़ रखा था। परन्तु आज वह सुचरिता के हाथ की चाय कैसे न पिये ? वह बोला—'क्यों नहीं, अवश्य पीऊँगा।' इतना कहकर उसने गोरा के मुँह की ओर देखा। गोरा के होंठों पर व्यंग्यपूर्ण मुस्कान थी। विनय को चाय यद्यपि अच्छी न लगी तो भी उसने पीना नहीं छोड़ा। वरदासुन्दरी यद्यपि मन-ही-मन सोचने लगीं —'ओह ! विनय कितना अच्छा लड़का है।'

वे गोरा की ओर से मुँह फिराकर विनय की ओर स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखने लगीं। परेश बाबू यह देखकर धीरे-धीरे अपनी कुर्सी को गोरा के पास खिसकाकर ले गए और उससे बातचीत करने लगे।

इसी समय चीना-बादाम वाला आवाज लगाता हुआ नीचे मार्ग से जा

रहा था। लीलावती उसकी आवाज को सुनकर ताली बजाती हुई उठ खड़ी हुई और कहने लगी—'भैया ! जरा चीना-बादाम वाले को बुलाओ।'

सतीश यह सुनकर छत के बरामदे पर पहुँचकर उसे पुकारने लगा।

इसी समय वहाँ एक सज्जन और आ उपस्थित हुए। सबने उनसे पानू बाबू कहकर बात की, परन्तु उनका वास्तविक नाम हारान चन्द्र था। अपनी विद्वत्ता एवं बुद्धिमत्ता के कारण वे समाज में बहुत विख्यात थे। यद्यपि कोई स्पष्ट रूप से कुछ कहता तो न था, परन्तु सबका अनुमान यही था कि सुचरिता का विवाह उन्हीं के साथ होगा। पानू बाबू का वास्तव में सुचरिता की ओर लगाव भी था। इस कारण कभी-कभी सखियाँ सुचरिता से हँसी भी कर बैठती थीं।

पानू बाबू हरिश्चन्द्र विद्यालय में अध्यापक थे। अध्यापक होने के कारण वरदासुन्दरी की उन पर कोई विशेष श्रद्धा नहीं थी। वह सदैव यही दिखाने का प्रयत्न करती थीं कि पानू बाबू, जो उनकी किसी पुत्री पर अपना स्नेह प्रदर्शित नहीं करते हैं यह अच्छी ही बात है, क्योंकि वे अपना दामाद केवल उसी को बनायेंगी, जो कम-से-कम डिप्टी मजिस्ट्रेट होने की योग्यता रखता हो।

सुचरिता ने पानू बाबू के सामने जब चाय का एक प्याला रखा तो लावण्य दूर से ही यह देखकर मुँह टेढ़ा कर मुस्करा दी। विनय से उसकी हँसी छिपी न रही। थोड़े समय में ही विनय की दृष्टि अब बहुत सतर्क हो गई है। पहले वह इतना चतुर न था।

पानू बाबू और सुधीर इस घर की लड़कियों से बहुत समय से परिचित हैं तथा इस परिवार के साथ ऐसे घुल-मिल गए हैं कि अब वे लड़कियों के बीच परस्पर इशारेबाजी का विषय भी बन चुके हैं, यह बात देखकर विनय के हृदय में अविचार उत्पन्न होने लगा।

इधर पानू बाबू उर्फ हारान बाबू को देखकर सुचरिता के हृदय को कुछ ढाढ़स बँधा। वह सोचने लगी—यदि ये किसी प्रकार गोरा को अपने तर्क से हरा दें तो उसे बड़ी प्रसन्नता होगी। यद्यपि वह कई बार हारान बाबू के मत-सम्बन्धी वाद-विवाद से नाराज हो चुकी थी, परन्तु आज उन्हीं तर्कवीर को देखकर उसने प्रसन्नतापूर्वक चाय तथा डबल रोटी से उनका सत्कार किया।

परेश बाबू बोले—'पानू बाबू, ये हमारे···।'

हारान बाबू बीच में ही कह उठे—'मैं इन्हें अच्छी तरह जानता हूँ। किसी समय ये हमारे ब्राह्म-समाज के अत्यन्त उत्साही युवक थे।'

इतना कह, गोरा से कोई बातचीत न कर, हारान बाबू चाय पीने लगे।

उन दिनों दो बंगाली व्यक्ति सिविल सर्विस की परीक्षा पास करके लौटे थे। सुधीर ने इनमें से एक की प्रशंसा करनी आरम्भ कर दी। उसे सुनकर हारान बाबू ने कहा—'बंगाली चाहे परीक्षा पास क्यों न करलें, परन्तु वे कोई काम नहीं कर सकते।' कोई भी बंगाली मजिस्ट्रेट या जज जिले के काम को नहीं चला सकता, यह सिद्ध करने के लिए हारान बाबू बंगालियों के चरित्र सम्बन्धी अनेक दोष एवं दुर्बलताओं की व्याख्या करने लगे।

उनकी आलोचना सुनते-सुनते गोरा की भौंहें चढ़ गईं तथा मुँह लाल हो गया। उसने यथाशक्ति अपने सिंहनाद को रोकने का प्रयत्न करते हुए कहा—'यदि आपका यही मत सच्चा है तो आराम कुर्सी पर बैठे पाव रोटी किस मुँह से खाते हैं?'

हारान बाबू ने यह सुनकर भौंहें सिकोड़ते हुए उत्तर दिया—'आप क्या करने को कहते हैं?'

गोरा—'यदि हो सके तो आप बंगालियों के चरित्र सम्बन्धी दोषों को दूर कीजिए, अन्यथा गले में फाँसी लगाकर मर जाइए। हमारी जाति कुछ नहीं कर सकती—यह बात यों ही सहज कह देने की नहीं है। यह बात कहते समय आपके गले में यह पाव रोटी अटक क्यों नहीं गई?'

हारान—'सत्य बोलने में कोई भय है?'

गोरा—'आप क्रुद्ध न हों, यदि इस बात को आप वास्तव में सत्य समझ सकते तो इस प्रकार गर्व से न कहते। आप इस बात को हृदय में असत्य जानते हुए भी किसी कारणवश सत्य मान बैठे हैं, इसीलिए ऐसी बात आपके मुँह से निकली। हारान बाबू, झूठ बोलना पाप है और झूठी निन्दा करना और भी बड़ा पाप है। स्वजाति की निन्दा से बढ़कर कोई दूसरा पाप नहीं है।'

हारान बाबू क्रोध से भर गए। गोरा बोला—'क्यों, आप ही अपनी

जाति में सबसे बड़े हैं ? क्या आप क्रोध करें और हम लोग आपके मुँह से अपने पूर्वजों की निन्दा सुनते रहें ?'

अब तो हारान बाबू को चुप बैठे रहना और भी कठिन हो गया। वे और भी तेज आवाज में बंगालियों की निन्दा करने लगे। उन्होने बंगाली समाज की अनेक कुप्रथाओं का वर्णन करते हुए कहा कि इन्हीं कारणों से बंगाली जाति की उन्नति की कोई आशा नहीं रही है।

गोरा बोला—'आप जिन्हें कुप्रथा कहते हैं, वह केवल अंग्रेजी की किताब में पढ़ी हुई बातें ही हैं—उस सम्बन्ध में आप स्वयं कुछ नहीं जानते। जब आप ठीक इसी प्रकार अंग्रेजों की समस्त कुप्रथाओं के सम्बन्ध में भी कह सकें, तभी आगे बात कर सकते हैं।'

परेश बाबू ने इस प्रसंग को समाप्त कर देना चाहा, परन्तु क्रुद्ध हारान बाबू उसे न छोड़ सके। इसी समय सूर्य अस्त हो गया। पश्चिमी आकाश में चारों ओर लालिमा भर गई। चिड़िया अपने घोंसलों को चल दीं। इस जातीय आलोचना से विनय के हृदय में अनेक प्रकार के बेसुरे तार बज उठे। तभी परेश बाबू सायंकालीन उपासना के लिए छत से नीचे उतरकर बाग में बने हुए पत्थर के चबूतरे पर जा बैठे।

जिस प्रकार वरदासुन्दरी का मन गोरा से दूर हट गया था, उसी प्रकार हारान बाबू से भी वे प्रसन्न न थीं। इन दोनों का विवाद जब उन्हें असह्य हो गया, तब वे पुकारकर बोलीं—'चलो विनय बाबू, हम लोग उस कमरे में चलते हैं।'

वरदासुन्दरी का यह प्रेमपूर्ण पक्षपात स्वीकार कर विनय सबको छोड़कर उनके साथ चल दिया। वरदासुन्दरी ने अपनी पुत्रियों को भी बुला लिया और विनय से उनके गुणों का वर्णन करने लगीं। वे लावण्य से बोलीं—'बेटी, तुम अपनी कापी तो विनय बाबू को दिखा दो।'

घर में आने वाले नये व्यक्ति को कापी दिखाने का अभ्यास लावण्य को पुराना हो गया था। वह किसी भी नये व्यक्ति के आते ही जान लेती थी कि अब उसे कापी दिखानी होगी। इस कार्य के लिए वह प्रतीक्षा भी करने लगती थी; परन्तु आज इन तर्क की बातों में उलझ जाने से वह अब तक उदास बैठी थी।

विनय ने कापी को खोलकर देखा। उसमें अंग्रेजी के मूर तथा लाँगफेलो

की कवितायें लिखी थीं। अक्षर खूब बनाकर लिखे गये थे। कविताओं के शीर्षक तथा प्रारम्भिक अक्षर रोमन लिपि में थे।

उस लिपि को देखकर विनय को बहुत आश्चर्य हुआ। उन दिनों स्त्रियों द्वारा मूर की कविता हाथ से लिखना साधारण बात न थी। विनय के मन को उससे प्रभावित देखकर वरदासुन्दरी ने अपनी मँझली पुत्री से कहा—'बेटी ललिता! तुम्हारी यह कविता…'

ललिता ने बीच में ही कठोर स्वर में कहा—'नहीं माँ, मुझसे यह सब न होगा। वह मुझे ठीक-ठीक याद भी तो नहीं है।' इतना कह, खिड़की के समीप खड़ी हो, सड़क की ओर देखने लगी।

तब वरदासुन्दरी ने विनय को समझा दिया कि इसे सबकुछ याद है, परन्तु यह इतनी गूढ़ प्रकृति की है कि अपने गुणों को किसी के सामने प्रकट नहीं करती। फिर उन्होंने ललिता की विचित्र विद्याबुद्धि के प्रमाण में दो-एक घटनायें विस्तारपूर्वक कह सुनाईं कि वह बचपन से ही ऐसी है। किसी से अधिक बोलती नहीं, शोक के अवसर पर भी उसकी आँखों में आँसू नहीं आते, आदि। यह भी कहा कि उसका आचरण भी अपने पिता के समान है।

अब लीला की बारी थी। उससे कुछ पढ़ने के लिए कहते ही वह खूब जोर से खिलखिला उठी, फिर ग्रामोफोन के रिकार्ड की भाँति बिना कुछ तात्पर्य समझे 'Twinkle Twinkle little stars' शीर्षक कविता एक ही साँस में पढ़ गई।

तभी संगीत-विद्या का परिचय देने का अवसर निकट आया जानकर ललिता कमरे से बाहर निकल आई।

बाहर की छत पर उस समय खूब वाद-विवाद चल रहा था। हारान बाबू क्रुद्ध होकर, तर्क छोड़ गाली देने पर उतर आये थे। उनकी इस असहिष्णुता से लज्जित तथा क्षुब्ध होकर सुचरिता ने गोरा का पक्ष ले लिया था। यह बात हारान बाबू के लिए और अधिक अशान्तिदायक सिद्ध हुई।

सन्ध्या के अन्धकार तथा सावन के बादलों ने आकाश को ढक दिया। बेला-चमेली की मालाओं से सड़क को सुवासित करता हुआ फेरीवाला भी चला गया। सामने वाली सड़क पर मौलश्री के पत्तों पर जुगनू चमक रहे

थे। बगीचे वाले तालाब पर भी गहरा अन्धेरा छा गया था।

सन्ध्याकालीन ब्राह्मोपासना के पश्चात् परेश बाबू फिर छत पर आ पहुँचे। उन्हें देखकर गोरा तथा हारान बाबू दोनों ही लज्जित हो चुप हो गए। गोरा उठ खड़ा हुआ और बोला—'रात्रि हो गई—अब मैं जाता हूँ।'

विनय भी कमरे से निकलकर छत पर आ गया था। परेश बाबू ने गोरा से कहा—'तुम्हारा जब जी चाहे, यहाँ आ जाया करो। कृष्णदयाल मेरे भाई के समान हैं। उससे मेरा मत नहीं मिलता, साक्षात्कार भी नहीं होता, पत्र-व्यवहार भी बन्द है, परन्तु जब बाल्यकाल की मित्रता रक्त में बस जाती है, वह कभी टूट नहीं सकती। उनके नाते तुमसे भी मेरा अत्यन्त निकट का सम्बन्ध है।'

परेश बाबू के शान्ति एवं स्नेहपूर्ण शब्दों को सुनकर इतनी देर के तर्क से सन्तप्त गोरा का हृदय जैसे शीतल हो गया। आते समय उसने परेश बाबू को कुछ विशेष श्रद्धा से नमस्कार न किया था, परन्तु अब जाते समय उसने सच्ची भक्ति से उन्हें प्रणाम किया। चलते समय गोरा ने सुचरिता से कुछ भी नहीं कहा। सुचरिता ने इसे अशिष्टता ही समझा। विनय ने भी परेश बाबू को प्रणाम किया, फिर उसने सुचरिता की ओर देखते हुए नमस्कार किया और कुछ लज्जित-सा होकर शीघ्रतापूर्वक गोरा के पीछे-पीछे चल दिया।

हारान बाबू इस समय वहाँ उपस्थित न थे। वे कुछ देर पहले ही हटकर कमरे के भीतर चले गये थे और वहाँ टेबिल के ऊपर रखी हुई ब्राह्म-संगीत की एक पुस्तक लेकर उसके पन्ने पलट रहे थे।

विनय और गोरा के चले जाने पर वे फिर छत पर आ पहुँचे और परेश बाबू से कहने लगे—'देखिये, हर व्यक्ति के साथ बहू-बेटियों को बातें करने देना मैं उचित नहीं समझता।'

सुचरिता उनपर पहले से ही जली-भुनी बैठी थी। इस समय वह अपने को और अधिक न रोक सकी। बोली—'यदि बाबूजी इस नियम को मानते तो आपके साथ भी हम लोगों की कोई बातचीत हो पाती?'

हारान बाबू ने कुछ झेंपते हुए कहा—'अपने समाज के भीतर बातचीत अथवा मेल-मुलाकात होना अनुचित नहीं है।'

तभी परेश बाबू हँसते हुए बोले—'आप परिवार के अन्तःपुर को कुछ

और बड़ा करके सामाजिक अन्तःपुर बनाने की बात कहते हैं, परन्तु मैं यह उचित समझता हूँ कि विभिन्न मतावलम्बियों के सम्पर्क में आने से लड़कियों की बुद्धि का विकास होगा और वे संसार की बहुत-सी अच्छी बातों को जान सकेंगी। इसमें भय अथवा लज्जा का कोई कारण दिखाई नहीं देता।'

हारान—'मैं यह नहीं कहता कि विभिन्न मत के लोगों से बहू-बेटियाँ न मिलें, परन्तु इनके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये, इस शिष्टता को वे लोग जानते तक नहीं हैं।'

परेश बाबू—'अरे यह आप क्या कहने लगे ? आप जिसे अशिष्टता कहते हैं, वह केवल एक संकोच है। पराई बहू-बेटियों से वार्तालाप करने में बहुत-से लोग सकुचाते हैं। यह संकोच स्त्रियों के साथ हेल-मेल किये बिना कभी न मिट सकेगा।'

११

उस दिन सुचरिता के सामने गोरा को बहस में हराकर अपनी विजय-पताका उड़ाने की हारान बाबू की प्रबल इच्छा थी। प्रारम्भ में सुचरिता भी उनसे यही आशा रखती थी परन्तु दैवयोग से इसका बिलकुल उलटा हुआ। यद्यपि धर्म तथा सामाजिक विश्वास में सुचरिता का मत गोरा से मेल नहीं खाता था, परन्तु स्वजाति एवं स्वदेश के दुःख का अनुभव होना उसके लिए स्वाभाविक था। परन्तु उस दिन जब स्वजाति-निन्दा सुनकर गोरा एकाएक गरजने लगा तो उसके हृदय में भी उसके अनुकूल प्रतिध्वनि होने लगी। क्योंकि उसके सम्मुख दृढ़ विश्वास के साथ स्वदेश के प्रति ऐसी बात आज तक किसी ने नहीं कही थी।

इसके उपरान्त जब हारान बाबू ने गोरा और विनय के चले जाने पर उनके सम्बन्ध में सामान्य ईर्ष्यावश अभद्रता का दोषारोपण किया, तब भी उसे इस आशय के प्रतिकार स्वरूप गोरा तथा विनय का पक्ष ही लेना पड़ा।

इसका तात्पर्य यह नहीं कि गोरा के प्रति सुचरिता के मन का विरोध शान्त हो चुका था। गोरा का गले पड़ जाने का उद्धत स्वभाव तो उसके हृदय पर अभी तक आघात पहुँचा रहा था। वह अभी तक यही समझ

रही थी कि हिन्दूपन के भीतर प्रतिकूलता का कुछ भाव अवश्य है। वह अपने भक्ति-विश्वास में पर्याप्त नहीं है और विपक्षी पर आघात करने के लिए सदैव उग्र बना रहता है।

उस दिन सन्ध्या को सब बातों में, सब कामों में, भोजन करने के समय तथा लीला से वार्तालाप करते समय सुचरिता के हृदय में एक प्रकार की पीड़ा कष्ट पहुँचाने लगी। काँटा कहाँ गड़ा है, यह जानने पर ही उसे निकाला जा सकता है। अतः मन का काँटा निकाल देने के लिए उस रात को वह छत पर अकेली बैठी रही।

उसने रात्रि के अन्धकार की निर्मल धारा में अपने हृदय के ताप को धो डालने का प्रयत्न किया, परन्तु कोई सफलता न मिली। उसने अपने हृदय पर एक असह्य बोझ लिये रोने की चेष्टा की, परन्तु उसे रुलाई भी न आई।

एक अपरिचित युवक मस्तक पर तिलक लगाकर आया। कोई उसे तर्क में हराकर उसका घमण्ड चूर न कर सका, इसीलिए सुचरिता इतनी देर तक रंज कर रही थी। फिर उसने सोचा कि इससे बढ़कर हास्यास्पद और क्या बात होगी। यह जानकर उसने इस कारण को अपने मन से निकाल फेंका। तब उसे वास्तविक कारण याद हो आया, उसका स्मरण आते ही वह लज्जित हो उठी। आज तीन-चार घण्टे वह उस युवक के सामने ही बैठी रही। बीच-बीच में उसका पक्ष लेकर बोलती भी रही। परन्तु उस युवक ने एक बार भी आँख उठाकर उसकी ओर नहीं देखा। जाते समय भी उसने उसपर दृष्टि नहीं डाली। इस कठोर उपेक्षा से उसके हृदय पर गहरी चोट लगी, इसमें सन्देह नहीं। पर स्त्रियों से मिलने का अभ्यास होने के कारण हृदय में जो एक प्रकार का संकोच होता है, उसका आभास विनय के व्यवहार में था, परन्तु गोरा के आचरण में तो संकोच नाम-मात्र को भी न था। उसकी उस कठोर उदासीनता को सहन कर लेना अथवा अवज्ञा करके उड़ा देना सुचरिता के लिए आज असम्भव क्यों हो गया? इतनी कठिन उपेक्षा सहकर भी जो उसने तर्क में सहयोग दिया था, अपनी उस वाचालता के कारण, वह मानो मरी जा रही थी। हारान के अनुचित तर्क से जब सुचरिता एक बार अत्यन्त उत्तेजित हो उठी थी, तब गोरा ने उसकी ओर देखा था। उस दृष्टि में संकोच नाम-मात्र को न

था, परन्तु उस दृष्टि के भीतर क्या छिपा था, यह जानना ही कठिन है। तो क्या वह अपने मन में यह सोच रहा था कि यह स्त्री बड़ी निर्लज्ज है, जो पुरुषों के वाद-विवाद में इस प्रकार बिना बुलाये योग देने आ गई है? यदि उसने यही सोचा हो तो इससे भी क्या बनता-बिगड़ता है, परन्तु तो भी सुचरिता को अत्यन्त पीड़ा का अनुभव हुआ। वह सभी को भूल जाने, मिटा डालने की चेष्टा करने लगी, परन्तु उसमें किसी प्रकार सफल न हो सकी। उसे गोरा के ऊपर क्रोध हो आया। उसने गोरा को कुसंस्कार-ग्रस्त उद्धत युवक समझकर सब प्रकार से उसका निरादर करना चाहा, परन्तु उस विशालकाय वज्र-कण्ठ पुरुष की निस्संकोच दृष्टि की याद आते ही सुचरिता मन-ही-मन सकुचा कर रह गई। बहुत कुछ विचार करके उसने अन्त में यही निश्चय किया कि उसकी इच्छा विशेष रूप से गोरा को हरा देने की थी। इसलिए उसके हृदय पर यह अटल उदासीन भाव इतना अधिक आघात पहुँचा रहा है।

इस प्रकार मन के साथ खींचातानी करते हुए बहुत रात बीत गई। सब लोग दीपक बुझाकर घर में सोने चले गये। सदर दरवाजा बन्द होने का शब्द उसने सुना। उसे ज्ञात हुआ कि अब दरवान भी भोजन करके सोने जा रहा है। इसी समय ललिता अपने सोने के समय के कपड़े पहनकर छत पर आई। वह सुचरिता से बिना कुछ कहे-सुने छत के एक कोने में रेलिंग पकड़ कर जा खड़ी हुई। सुचरिता उसे देख मन-ही-मन कुछ हँसी। वह समझ गई कि ललिता उससे नाराज हो गई। आज ललिता के साथ उसके सोने की जो बात थी उसे वह एकदम भूल ही गई थी। परन्तु ललिता के समक्ष भूल की बात कहने से अपराध क्षमा नहीं होता था। उसके सम्मुख भूल जाना ही सबसे बड़ा दोष था। वह समय पर प्रतिज्ञा का स्मरण कराने वाली लड़की नहीं थी। इतने समय तक वह पत्थर की भाँति कठोर बिछौने पर पड़ी रही थी। जितना ही समय बीत रहा था, उतना ही उसका क्रोध बढ़ता जाता था। अन्त में जब क्रोध असह्य हो गया, तब वह इस समय चारपाई से चुपचाप उठकर यह बतलाने के लिए आई थी कि मैं अभी तक सोई नहीं हूँ।

सुचरिता उसे देख, कुर्सी से उठकर उसके पास जा गले से लिपट गई और कहने लगी—'मेरी लक्ष्मी, मेरी ललिता बहिन, क्रोध न करो।'

ललिता ने उसका हाथ हटाते हुए कहा—'नहीं, क्रोध क्यों करूँगी ? तुम बैठो न !'

सुचरिता उसका हाथ खींचते हुए बोली, 'चलो बहिन, सोने चलें।'

ललिता ने कुछ उत्तर न दिया। वह चुप खड़ी रही। अन्त में सुचरिता ही उसे जबरदस्ती खींचकर सोने के कमरे ले में गई।

ललिता तुनककर बोली—'तुमने इतनी देर क्यों कर दी ? जानती नहीं, ग्यारह बज चुके हैं ? मैं बहुत देर से तुम्हारे आने की राह देख रही थी, न आने पर छत पर जा पहुँची। अब तुम शीघ्र सो भी जाओगी ?'

सुचरिता ने उसे छाती मे लिपटाते हुए कहा—'बहिन, आज मुझसे अन्याय हो गया है, क्षमा कर दो न।'

इस प्रकार सुचरिता के अपराध स्वीकार कर लेने पर ललिता का क्रोध शान्त हुआ। फिर वह विनम्र होकर बोली—'बहिन, तुम इतनी देर तक अकेली बैठी किसके बारे में सोच रही थीं। हारान बाबू के बारे में तो नहीं ?'

सुचरिता उसके गाल पर हल्का-सा तमाचा लगाकर बोली—'हट !'

हारान बाबू से ललिता की नहीं बनती थी। यहाँ तक कि अन्य बहिनों की भाँति हारान बाबू की बात छेड़कर सुचरिता के साथ हँसी करना भी उसे पसन्द नहीं था। हारान बाबू सुचरिता के साथ विवाह करना चाहते हैं, यह याद आते ही उसे क्रोध हो आता था।

कुछ देर चुप रहकर ललिता ने फिर कहा—'अच्छा बहिन, विनय बाबू तो भले जान् पड़ते हैं ?'

शायद सुचरिता के हृदय का भाव जानने के लिए ही उसने यह प्रश्न उठाया था।

सुचरिता ने कहा—'हाँ, विनय बाबू अच्छे ही क्या, बहुत अच्छे हैं।'

ललिता ने जिस अभिप्राय से प्रश्न किया था, वह पूर्ण सिद्ध न हुआ। तब वह फिर बोली—'अच्छा बहिन, कहो तो, गौरमोहन कैसे थे ? मुझे तो अच्छे न लगे। उनका चेहरा और वेश सभी विचित्र था। तुम्हें कैसे लगे थे ?'

सुचरिता—'उनके रोम-रोम में हिन्दुत्व भरा है।'

ललिता—'यह बात नहीं, हमारे मौसा महाशय भी तो बड़े हिन्दू हैं,

परन्तु उनका ढंग इस प्रकार का है ? इसका क्या ढंग है मैं नहीं जान सकी।'

सुचरिता हँसकर बोली—'कैसा भी क्यों न हो।'

इतना कहते ही उसे गोरा के ऊँचे मस्तक पर लगे तिलक का स्मरण हो आया। उसका ध्यान आते ही सुचरिता का हृदय क्रोध से भर उठा। क्रोध आने का यही कारण था, जैसे उस तिलक के द्वारा गोरा ने अपने मस्तक पर बड़े-बड़े अक्षरों में यह लिख रखा हो कि मैं तुम लोगों से भिन्न हूँ। काश, वह उसके इस प्रचण्ड अभिमान को मिट्टी में मिला सकती तो उसके शरीर की ज्वाला शान्त हो जाती।

कुछ देर बाद दोनों सो गईं। रात के दो बजने पर सुचरिता ने जागकर देखा कि बाहर खूब पानी बरस रहा है तथा बीच-बीच में उसकी मसहरी के भीतर से बिजली की छटा दीख जाती है। घर के कोने में रखा हुआ दीपक बुझ गया था। उस रात्रि के सन्नाटे तथा घने अन्धकार में वर्षा के झर-झर शब्द ने सुचरिता के हृदय में एक प्रकार की पीड़ा भर दी। वह करवटों को बदलती हुई, सोने की चेष्टा करने लगी। समीप ही ललिता को गहरी नींद में पड़ी देखकर उसे ईर्ष्या भी हुई परन्तु उसे फिर किसी तरह नींद नहीं आई। अन्त में वह बिछौने से उठकर बाहर आ गई और खुली खिड़की के पास खड़ी होकर सामने छत की ओर देखने लगी। वायु के झोंकों के कारण कभी-कभी उसके शरीर पर पानी की बूंदों के छींटे आ पड़ते थे। घूम-फिरकर फिर वही सन्ध्या समय की बातें उसके मस्तिष्क में चक्कर काटने लगीं। सूर्यास्त के समय की कालिमा से रंजित गोरा का चमकता हुआ चेहरा स्पष्ट चित्र की भाँति उसकी स्मृति में जाग उठा। उसे गोरा का गम्भीर कण्ठ जैसे स्पष्ट सुनाई देने लगा—'आप जिन्हें अशिक्षित समझते हैं मैं उन्हीं के दल का हूँ। आप जिन्हें कुसंस्कार कहते हैं, मैं उन्हें संस्कार कहता हूँ। जब तक आप देश के लोगों के साथ आकर एक स्थान पर खड़े न होंगे, तब तक मैं आपके मुंह से निन्दा का एक भी शब्द न सुन सकूंगा।' हारान बाबू ने इसके उत्तर में कहा था—'ऐसा करने से देश का सुधार कैसे होगा ?'

गोरा गरजते हुए बोला—'सुधार से बढ़कर स्वदेश-प्रेम है। जब हम लोगों का मत एक होगा, विचार एक होंगे तब समाज-सुधार अपने आप हो

जावेगा। आप अलग होकर देश को अनेक खण्डों में बाँटना चाहते हैं, इससे सुधार होना असम्भव है। आप कहते हैं कि देश के लोग कुसंस्कारों से जकड़े हैं, अतः हम उनसे अगल रहेंगे, परन्तु मैं कहता हूँ कि मैं किसी की अपेक्षा श्रेष्ठ होकर, किसी से भी अलग नहीं रहूँगा। इस प्रकार एक हो जाने पर कौन संस्कार रहेगा और कौन संस्कार न रहेगा, इसे मेरा देश जाने अथवा देश के जो विधाता हैं वे जानें।' इस पर हारान वावू ने कहा—'देश में ऐसी कुप्रथा और कुसंस्कार छाए हुए हैं जो एक नहीं होने देते।'

गोरा ने उत्तर दिया—'यदि आप यह सोच लें कि पहले उन प्रथाओं अथवा कुसंस्कारों को दूर करने के बाद देश एक होगा तो आपकी यह समझ वैसी ही होगी, जैसे कोई समुद्र को लाँघकर पार करना चाहे। 'अपमान तथा अहंकार का विचार त्यागकर नम्रतापूर्वक सबको अपना समझना' इस सर्वप्रियता के समक्ष सैकड़ों त्रुटियाँ शक्तिहीन हो जायेंगी। सभी देशों तथा समाजों में अपूर्णताएँ हैं, परन्तु जव तक देश के लोग स्वजाति-प्रेम के धागे में वँधे रहते हैं, तव तक वे त्रुटियाँ कोई विशेष हानि नहीं पहुँचा पातीं। सड़ने का कारण वायु में ही मौजूद है। जीवित रहते हम उनसे बचे रहते हैं। परन्तु मरते ही सड़ जाते हैं। यदि आपको अपने देश से प्रेम नहीं है तो आप देश की त्रुटियों का संशोधन नहीं कर सकते। इस प्रकार समाज के विपरीत चलकर यदि आप कोई संशोधन करना चाहेंगे तो हम लोग उसे सहन नहीं करेंगे, चाहे आप लोग हों अथवा पादरी हों।'

हारान वावू बोले—'क्यों नहीं कीजियेगा?'

गोरा ने कहा—'न करने का भी कारण है। माता-पिता की शिक्षा सहन की जा सकती है, परन्तु पहरेदार-नौकर की शिक्षा सहन करने की अपेक्षा अपमान सहना अच्छा है। उस शिक्षा को स्वीकार करने से मनुष्यत्व नष्ट हो जाता है। आप लोग पहले आत्मीय बनें, फिर संशोधक बनें, अन्यथा आपकी कही हुई भली बात से हमारा अनिष्ट ही होगा।' इस प्रकार गोरा तथा हारान वावू के वीच जो वार्तालाप हुआ था, वह एक-एक करके सुचरिता के हृदय में सुधि बनकर उठने लगा। इसके साथ ही उसके मन में एक अपरिचित कष्ट की पीड़ा का अनुभव होने लगा। वह थककर बिछौने पर लेट गई तथा आँखों पर हथेली रखकर सभी चिन्ताओं को मन से हटा-

कर सोने की चेष्टा करने लगी, परन्तु उसके मुख और कानों में सनसनाहट मची हुई थी और सभी विचार फिर से उसके मन में उमड़े चले आ रहे थे।

१२

विनय और गोरा परेश बाबू के घर से निकलकर सड़क पर आ गये। गोरा को शीघ्रतापूर्वक चलता देखकर विनय ने कहा—'भाई कुछ धीरे-धीरे चलो। तुम्हारे पैर मेरे पैरों से बहुत बड़े हैं। यदि तुमने अपनी चाल धीमी न की तो मैं तुम्हारे साथ चलने में थक जाऊँगा।'

गोरा ने उसी प्रकार चलते हुए कहा—'मैं अकेला ही जाना चाहता हूँ। मुझे आज बहुत कुछ सोच-विचार करना है।'

इतना कहकर वह अपनी स्वाभाविक चाल से भी अधिक तेजी के साथ चला गया।

विनय के हृदय को बहुत ठेस लगी। आज उसने गोरा के विरुद्ध विद्रोह करके नियम तोड़ा था। इस सम्बन्ध में यदि गोरा उसका तिरस्कार करता तो वह प्रसन्न होता। उसकी छाती का बोझ भी तब कुछ हल्का हो जाता।

विनय का साथ छोड़कर गोरा जो नाराज होता हुआ चला गया था, उसे विनय ने अन्याय नहीं समझा। दोनों मित्रों के बहुत दिनों के सम्बन्धों में आज सचमुच विघ्न उपस्थित हो गया था।

बरसात की रात के सन्नाटेपूर्ण अन्धकार को कँपाता हुआ बादल बीच-बीच में गरज उठता था। विनय के मन पर एक बोझ लद गया। उसे जान पड़ा, जैसे अब वह जिस मार्ग पर चला जा रहा था, आज उसे छोड़कर उसने दूसरी नई राह पकड़ी है। इस अन्धकार के बीच गोरा कहाँ गया और कहाँ वह चला जा रहा है?

दूसरे दिन सवेरे उठने पर विनय हल्का हो चुका था। रात को उसने मन की वेदना को विविध कल्पनाओं द्वारा अनावश्यक रूप से बढ़ा दिया था। दूसरे दिन प्रातःकाल के समय गोरा के साथ मित्रता तथा परेश बाबू के परिवार के साथ मेल-जोल परस्पर विशेष विरोधी नहीं जान पड़े। 'क्या यह बात भी कोई चिन्ता करने की है? कभी नहीं।' इतना कहकर वह

कल रात की अपनी मानसिक पीड़ा का स्मरण कर, अपनी उस बेवकूफी पर स्वयं ही हँस उठा।

फिर वह कन्धे पर एक चद्दर डाल, तेजी के साथ गोरा के घर जा पहुँचा। गोरा उस समय नीचे की बैठक में बैठा हुआ अखबार पढ़ रहा था। जिस समय विनय मार्ग में था, तभी गोरा की दृष्टि उस पर पड़ चुकी थी। विनय ने आते ही बिना कहे-सुने गोरा के हाथ से अखबार छीन लिया।

तभी गोरा ने कहा—'शायद तुम भूल रहे हो, मैं गौर मोहन हूँ—कुसंस्कारों से घिरा हुआ एक हिन्दू।'

विनय बोला—'भूल शायद तुम्हीं से हुई है। मैं श्रीयुत विनय हूँ, उस गौर मोहन के कुसंस्कारों में घिरा एक मित्र।'

गोरा—'परन्तु गौर मोहन इतना निर्लज्ज है कि वह अपने कुसंस्कारों के लिए किसी के सम्मुख लज्जा का अनुभव नहीं करता।'

विनय—'विनय भी ठीक वैसा ही है। अन्तर केवल इतना ही है कि वह अपने संस्कार लेकर प्रतिपक्षी पर हमला करने नहीं जाता।'

बात ही बात में दोनों मित्रों में वाक्युद्ध प्रारम्भ हो गया। यहाँ तक कि पड़ोसियों को भी इसका पता लग गया कि आज विनय की भेंट गोरा से हुई है।

गोरा बोला—'अच्छा, तुम परेश बाबू के घर आते-जाते हो, इस बात को उस दिन मेरे सामने अस्वीकार करने की क्या आवश्यकता थी?'

विनय—'मैंने किसी आवश्यकतावश स्वीकार नहीं किया था। मैं तब नहीं आता-जाता था। इसीलिए आना-जाना अस्वीकार किया। इतने दिन बाद कल सबसे पहली बार मैं उनके घर गया था।'

'मुझे सन्देह होता है कि तुम अभिमन्यु की भाँति प्रविष्ट होना तो जानते हो, परन्तु निकलना नहीं जानते।'

'तुम्हारा यह विचार यथार्थ भी हो सकता है। मेरा तो सम्भवतः यह जन्म-जात स्वभाव है कि जिसे श्रद्धा अथवा प्यार करता हूँ उससे फिर अलग नहीं हो सकता। मेरे इस स्वभाव से तुम भी परिचित होगे।'

'तो अब वहाँ आना-जाना निरन्तर चलता रहेगा?'

'ऐसी तो कोई बात नहीं कि अकेला मैं ही आता-जाता रहूँ। तुम्हें भी

चलने-फिरने की शक्ति मिली है। तुम कोई जड़ पदार्थ तो हो नहीं !'

'मैं तो आऊँगा-जाऊँगा ही, परन्तु तुम्हारे लक्षणों से ऐसा आभास होता है कि तुम जड़-मूल से ही चले जाओगे। कहो, गरम चाय कैसी लगी थी ?'

'कुछ कड़ी थी।'

'फिर ?'

'न पीना उससे भी कड़ा होता।'

'तो सामाजिक नियमों का पालन केवल शिष्टाचार तक ही सीमित है ?'

'हर समय यह बात नहीं चलती। देखो गोरा, जहाँ समाज के साथ हृदय की मुठभेड़ हो, वहाँ मेरे लिए...।'

गोरा का धैर्य समाप्त हो उठा। विनय पूरी बात कहे इसके पूर्व ही वह गरजता हुआ बोला—'क्या कहा, हृदय ? तुम समाज को छोटा अथवा तुच्छ समझते हो, तभी बात-बात में तुम्हारे हृदय की टक्कर समाज से होती है। परन्तु समाज को चोट पहुँचाने से उसका दर्द कितनी दूर तक जा पहुँचता है, यदि तुम्हें इसका कुछ अनुमान होता तो तुम्हें हृदय की बात उठाते हुए भी लज्जा आती। मालूम होता है, परेश बाबू की लड़कियों के हृदय को जरा-सी चोट लगने से तुम्हारा हृदय भी घायल हो जायेगा। परन्तु जब इतने ही के लिए तुम सारे देश को अनायास कष्ट पहुँचा सकते हो तो यह भी स्मरण रखो कि मुझे उस समय कहीं तुम से अधिक कष्ट मालूम होता है।'

विनय—'भाई सच बात कहूँ ? यदि एक प्याली चाय पीने से सम्पूर्ण देश को चोट पहुँचती है तो मेरी समझ में उस चोट से देश का उपकार ही होगा। इस आघात से भी यदि देश को बचाकर चलाया गया, तो देश निस्सन्देह अत्यन्त दुर्बल हो जायेगा।'

गोरा—'महोदय, मैं इन युक्तियों को खूब जानता हूँ। इतना नासमझ न समझ बैठना ! परन्तु ये सब बातें इस समय की नहीं हैं। रोगी बालक जब औषधि नहीं पीना चाहता, तब स्वस्थ माँ उस औषधि को स्वयं पीकर, उसे यह बताती है कि मेरी और तेरी एक-सी हालत है। यह युक्ति की नहीं, बल्कि प्यार की बात है। यदि प्यार न हो, तो युक्ति चाहे कितनी

भी क्यों न हो, माता का सम्बन्ध लड़के के साथ नष्ट हो जाता है। उस समय कार्य भी नष्ट हो जाता है। मैं उस चाय की प्याली के लिए विवाद नहीं करना चाहता। परन्तु देश के साथ सम्बन्ध-विच्छेद को मैं सहन नहीं कर सकता। उसकी अपेक्षा चाय पीना बहुत सरल है तथा परेश बाबू की लड़की के मन को कष्ट देना बहुत कठिन। सम्पूर्ण देश के साथ एकात्म होकर मिलना हमारी वर्तमान अवस्था का सबसे प्रधान कार्य है। जब मिलन हो जायगा तब चाय पीओगे अथवा नहीं, इस तर्क की मीमांसा केवल दो ही बातों में हो जायेगी।'

विनय—'तब तो देखता हूँ कि मुझे चाय की दूसरी प्याली पीने में बहुत देर लगेगी।'

गोरा—'नहीं, अधिक देर की क्या आवश्यकता है, परन्तु विनय, तुम मुझे क्यों घेरते हो? हिन्दू-समाज की अनेक अप्रिय वस्तुओं के समान अब मुझे भी त्याग देने का समय आ पहुँचा है अन्यथा परेश बाबू की लड़कियों के हृदय को बहुत चोट पहुँचेगी।'

इसी समय अविनाश ने कमरे में प्रवेश किया। वह गोरा का शिष्य था। गोरा के मुँह से जो कुछ सुनता, उसे अपनी बुद्धि और भाषा के द्वारा संक्षिप्त तथा विकृत स्वरूप देकर चारों ओर कहता फिरता था। जो लोग गोरा की बातों को नहीं समझ पाते थे, वे ही अविनाश की बातों को भली-भाँति समझकर उसकी प्रशंसा करते थे।

अविनाश के हृदय में विनय के प्रति तीव्र ईर्ष्या का भाव था। अतः वह समय मिलते ही मूर्खों की भाँति उससे तर्क करने का प्रयत्न करता था। विनय जब उसकी मूर्खता पर अधीर हो उठता था, तब गोरा अविनाश का पक्ष लेकर स्वयं बहस करने लगता था। उस समय अविनाश भी यह समझता कि जैसे गोरा के मुख से उसी की युक्तियाँ निकल रही हैं।

अविनाश के आ जाने से गोरा के साथ विनय के वार्तालाप में विघ्न पड़ गया। तब विनय उठकर ऊपर चला गया। वहाँ भण्डार-घर के सामने बरामदे में बैठी हुई आनन्दमयी सब्जी काट रही थीं।

आनन्दमयी ने उसे देखते ही कहा—'विनय, तुम्हारी आवाज बहुत देर से सुन रही हूँ। आज इतनी जल्दी कैसे आ गए? जलपान करके तो चले थे न?'

और कोई दिन होता तो विनय कह भी देता कि कुछ नहीं खाया है तथा आनन्दमयी के सामने बैठकर उनसे माँग-माँगकर खूब भोजन करता, परन्तु आज उसने उत्तर दिया—'नहीं माँ, मैं घर से जलपान करके चला हूँ।'

आज विनय गोरा के निकट अपने अपराध बढ़ाना नहीं चाहता था। उसका परेश बाबू के साथ जो संसर्ग था, उसके लिए भी गोरा ने अभी तक उसे क्षमा नहीं किया था। यद्यपि यह अनुभव करके विनय के मन में एक क्लेश हो रहा था। वह जेब से चाकू निकालकर आलू छीलने लगा।

पन्द्रह मिनट बाद विनय ने नीचे जाकर देखा कि गोरा अविनाश के साथ कहीं चला गया है। वह बहुत देर तक बैठक में चुपचाप बैठा रहा, फिर एक लम्बी साँस लेता हुआ बाहर निकल आया और घर को चल दिया। दोपहर का भोजन करने के पश्चात् उसका हृदय गोरा के पास पहुँचने को फिर चंचल हो उठा। गोरा के सामने स्वयं को झुकाने में विनय ने कभी संकोच नहीं किया था, परन्तु अपना अभिमान न रहने पर भी मित्रता के अभिमान को रोकना कठिन होता है। परेश बाबू के निकट जाने के कारण, विनय अपने को गोरा के सम्मुख अपराधी मानकर इतने दिनों की निष्ठा को कुछ विचलित-सा तो अवश्य समझ रहा था, परन्तु अभी तक वह यही सोचे बैठा था कि इसके लिए गोरा केवल परिहास तथा भर्त्सना ही करेगा। उसे यह स्वप्न में भी ध्यान नहीं आया था कि इतनी-सी बात के लिए गोरा उसे अपने से इतनी दूर ठेलकर पृथक् रखने की चेष्टा करेगा। अतः वह अपने घर से कुछ दूर निकलकर फिर वापिस लौट आया। मित्रता का अपमान होने के भय से वह गोरा के घर नहीं जा सका।

१३

इस प्रकार बहुत दिन बीतने पर, एक दिन विनय जब दोपहर का भोजन करने के पश्चात् कागज, कलम लेकर गोरा को चिट्ठी लिखने के विचार से बैठा, तभी किसी ने नीचे से 'विनय' कहकर आवाज दी। विनय कलम छोड़कर शीघ्रता से नीचे उतर पड़ा। वहाँ आगन्तुक को देखकर बोला—'आइये महिम दादा, ऊपर चलिये।'

ऊपर पहुँचकर महिम विनय के पलंग पर भली-भाँति जम गये। घर के सामान को एक बार पैनी दृष्टि से देखने के बाद उन्होंने कहा—'आज रविवार के दिन अपनी नींद खराब करके जो मैं यहाँ आया हूँ, उसका एक विशेष कारण है। तुम्हें मेरा एक उपकार करना होगा।'

विनय ने पूछा—'कौनसा उपकार ?'

महिम—'पहले वचन दो, तब कहूँगा।'

विनय—'यदि वह मेरे द्वारा सम्भव हो सके, तभी तो वचन दिया जा सकता है ?'

'वह तुम्हारे द्वारा ही होगा। अधिक कुछ नहीं करना है। एक बार तुम्हारे 'हाँ' कह देने से ही काम चल जायेगा।'

'फिर आप इस प्रकार क्यों कह रहे हैं ? आप तो जानते ही हैं कि मैं भी आपके घर का एक व्यक्ति हूँ। आपके उपकार से मेरा मुँह मोड़ना तो असम्भव ही है।'

महिम ने जेब से एक पत्ते की पुड़िया निकालकर, दो पान विनय को दिए तथा शेष चार पान अपने मुँह में रखकर कहना आरम्भ किया—'शशिमुखी को तुम जानते ही हो। देखने-सुनने में बुरी नहीं है अर्थात् वह अपने बाप को नहीं गई। अब उसकी उम्र दस वर्ष की हो आई है। ब्याह कर देने का समय भी आ गया है। वह किसी अयोग्य अथवा बदमाश लड़के के हाथ न पड़ जाये, इस चिन्ता से मुझे रात भर नींद नहीं आई है।'

विनय ने कहा—'आप इतने चिन्तित क्यों होते हैं ? अभी तो अच्छा लड़का ढूंढ़ने को बहुत समय पड़ा है।'

'यदि तुम्हारे कोई लड़की होती तब तुम समझते कि मैं इतना क्यों घबरा रहा हूँ। हर वर्ष उम्र तो अपने आप बढ़ जाती है। पर वर अपने आप घर नहीं चला आता। अतः जितने दिन अधिक बीतते हैं उतना ही मन चिन्तित रहता है। यदि तुम आश्वासन दो तो कुछ दिन धैर्य धारण कर सकता हूँ।'

'मेरा तो अधिक लोगों से परिचय नहीं है। कलकत्ते में आपके घर के अतिरिक्त मैं अन्य किसी का घर नहीं जानता, यह कहना भी गलत न होगा। फिर भी मैं कुछ प्रयत्न करूंगा।'

'शशिमुखी के स्वभाव और चरित्र को तो तुम जानते ही होगे ?'

'जानता क्यों नहीं ? बड़ी भोली लड़की है—उसे बचपन से ही देख जो रहा हूँ ?'

'तो फिर और कहीं तलाश करने की क्या आवश्यकता है, भाई ? मैं उसे तुम्हीं को भेंट करूँगा।'

विनय ने घबराकर कहा—'आप यह क्या कह रहे हैं ?'

'क्या अनुचित कहता हूँ ?'—महिम ने उत्तर दिया—'तुम हम लोगों से अवश्य बड़े हो परन्तु यदि इतने पढ़े-लिखे होकर भी तुम कुल का ढोंग मानते रहो, तब तो बस सबकुछ हो चुका।'

'न, कुल की बात तो नहीं है परन्तु उम्र…।'

'वाह ! शशि की उम्र कम है ! हिन्दू घर की कन्या है। मेम तो हो नहीं सकती। हमारे समाज में इसी उम्र में लड़की का विवाह कर दिया जाता है। फिर शास्त्र में भी तो लिखा है—'कन्याया द्विगुणो वरा' अर्थात् कन्या से वर की आयु दुगुनी होनी चाहिए।'

महिम सहज में छोड़ने वाला व्यक्ति नहीं था। उसने विनय को चंचल कर दिया। लाचार होकर वह बोला—'मुझे कुछ सोचने का समय तो दीजिए।'

महिम ने कहा—'मैं भी आज रात को ही विवाह करने के लिए नहीं कह रहा हूँ।'

'फिर भी घर के लोगों की…।'

'हाँ, हाँ, क्यों नहीं ? उनकी सम्मति तो लेनी ही पड़ेगी। तुम्हारे चाचा जीवित हैं। उनकी राय के बिना तो कोई काम हो ही नहीं सकता।'

इतना कहकर महिम ने जेब से पानों का दूसरा दोना निकालकर खाया तथा ऐसा भाव जताता हुआ चल दिया, जैसे बात पक्की हो गई हो।

कुछ समय पूर्व एक बार आनन्दमयी ने शशि का विवाह विनय के साथ कर देने का प्रस्ताव स्पष्ट रूप से किया था, परन्तु उस समय जैसे विनय ने उसे सुना ही नहीं था। आज भी उसे यह बात कुछ जँची नहीं थी, फिर भी उसने हृदय में अपने लिए एक स्थान बना लिया। विनय ने सोचा—यह विवाह हो जाने पर गोरा किसी भी प्रकार उसे आत्मीयता के सम्बन्ध से अलग न कर सकेगा। अब तक वह विवाह-सम्बन्ध को हृदय के आवेग से सम्मिलित कर उसका उपहास ही करता आया था। यही कारण है कि

शशिमुखी के साथ विवाह करना आज उसे उतना असम्भव नहीं जान पड़ा। सत्य तो यह है कि उसने विवाह को उतना महत्त्व ही नहीं दिया। महिम के इस प्रस्ताव को लेकर उसे गोरा के साथ बहाना करने का एक अवसर मिल गया। इन बातों को सोचकर विनय मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुआ। विनय चाहता था कि इस सम्बन्ध के लिए गोरा स्वयं उस पर दवाव डाले, इसीलिए वह महिम को सहज में स्वीकृति न देकर, गोरा से अपने लिए अनुरोध करना चाहता था।

इन सब विचारों के आते ही विनय निश्चिन्त हो गया। उसी समय वह तैयार होकर गोरा के घर को चल पड़ा। वह कुछ ही दूर गया था कि किसी ने उसे पुकारा—'विनय बाबू!'

विनय ने घूमकर देखा कि सतीश उसे पुकार रहा है।

सतीश को साथ लेकर विनय फिर घर लौट आया। वहाँ सतीश ने जेब से रूमाल की एक पोटली निकालते हुए कहा—'रंगून में मेरे एक मामा रहते हैं। उन्होंने वहाँ से ये फल माताजी के पास भेजे थे, माताजी ने सौगात के तौर पर पांच-छः फल आपके पास भेजे हैं।'

विनय ने फल ले लिये। तत्पश्चात् असमान आयु के दोनों मित्रों में कुछ देर तक विभिन्न बातें होती रहीं। सतीश बोला—'विनय बाबू! माताजी ने कहा है कि आपको अवकाश हो तो हमारे घर अवश्य आइये। आज लीला की वर्ष-गाँठ का दिन है।'

विनय ने कहा—'भाई! आज तो मेरे पास समय नहीं है। एक आवश्यक कार्य से जा रहा हूँ।'

'कहाँ जा रहे हो?'

'अपने मित्र के घर।'

'वही आपके मित्र न?'

'हाँ, वही।'

विनय अपने मित्र के घर जा सकता है, परन्तु उसके घर नहीं जा सकता, यह कारण सतीश की समझ में नहीं आया। जबकि विशेषकर विनय का मित्र (गोरा) उसे अच्छा नहीं लगा था। सतीश की दृष्टि में वह पाठशाला के प्रधानाध्यापक से भी कठोर व्यक्ति था। वह उसे आर्गन बाजा सुनाकर प्रशंसा प्राप्त कर सके, ऐसा व्यक्ति नहीं था। कुछ देर चुप

रहकर सतीश बोला—'नहीं, विनय बाबू ! आप हमारे ही घर चलिए।'

विनय कुछ ही देर में हार मान गया। उसके मन में कुछ देर तो द्विविधा रही, परन्तु अन्त में सतीश का हाथ पकड़कर वह अठहत्तर नम्बर वाले मकान के मार्ग पर चल दिया। बर्मा से आए हुए जिन फलों की सौगात उसे भेजी गई थी, उनकी वह उपेक्षा नहीं कर सका।

परेश बाबू के घर पहुँचकर विनय ने देखा कि पानू बाबू तथा अन्य अनेक अपरिचित व्यक्ति उनके घर से निकल रहे हैं। शायद उन्हें लीला के जन्म-दिवस के उपलक्ष्य में भोजन का निमन्त्रण दिया गया था। पानू बाबू इस प्रकार चले गए जैसे उन्होंने विनय को देखा ही नहीं था।

घर में घुसकर विनय ने बड़ी जोर की हँसी तथा दौड़-धूप का शब्द सुना।

कुछ देर बाद सुचरिता ने कमरे से निकलकर विनय से कहा—'माँ ने आपको बैठने के लिए कहा है, वे अभी आती हैं। बाबूजी भी अनाथ बाबू के घर गये हैं, वे भी लौटने ही वाले हैं।' फिर विनय का संकोच दूर करने के लिए सुचरिता ने गोरा की चर्चा छेड़ दी। वह हँसते हुए बोली—'मालूम होता है, अब वे फिर कभी हमारे घर नहीं आयेंगे।'

विनय ने कहा—'क्यों ?'

सुचरिता—'हम पुरुषों के सामने निकलती हैं तथा उनके पास बैठती हैं; यह देखकर उन्हें अवश्य ही आश्चर्य हुआ होगा। घर-गृहस्थी के काम के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर स्त्रियों को देखना शायद उन्हें पसन्द नहीं है ?'

विनय को इसका उत्तर देना कठिन जान पड़ा। वह इसका प्रतिवाद कर प्रसन्न हो सकता था, परन्तु वह झूठ कैसे बोले ? बोला, 'गोरा यही चाहता है कि स्त्रियों को घर के काम में ही अपना चित्त लगाना चाहिए।'

सुचरिता—'तब तो स्त्री-पुरुष भीतर-बाहर को मिलकर बाँट लेते तो अधिक अच्छा रहता। पुरुष को घर में घुसने दिया जाता है अतः बहुत सम्भव है कि ये बाहर का कर्तव्य-पालन भली-भाँति नहीं कर पाते। क्या आप भी अपने मित्र के मत से सहमत हैं ?'

स्त्री-जाति के कर्तव्यों के सम्बन्ध में विनय अब तक गोरा के विचारों का ही प्रतिपादक रहा था। इस विषय पर अखबारों में लेख भी लिखे थे।

परन्तु इस समय वह यह नहीं कहना चाहता था कि उसके विचार भी यही हैं। बोला—'देखिए, इन सब बातों में हम अपने प्राचीन संस्कारों का पक्ष लेते हैं। इसीलिए स्त्रियों को घर से बाहर निकालना ठीक नहीं है, युक्ति तो यहाँ उपलक्ष्य मात्र है, वास्तविक वस्तु तो संस्कार है।'

सुचरिता ने गोरा की आलोचना को समाप्त न होने दिया। गोरा के पक्ष में विनय भी जो कहना चाहता था, उसे खूब स्पष्टता से कहता रहा। विनय की इस उत्तेजना से सुचरिता के हृदय में एक अपूर्व आनन्द जन्म लेने लगा।

विनय बोला—'शास्त्रों में कहा गया है—'आत्मान विद्धिः' अर्थात् अपने को जानो। अन्यथा किसी प्रकार मुक्ति नहीं होगी। मैं कहता हूँ कि मेरा मित्र गोरा भारतवर्ष के उसी आत्मबोध के प्रकाश स्वरूप से प्रकट हुआ है। मेरी दृष्टि में वह असाधारण व्यक्ति है। जबकि हमारा मन एक तुच्छ आकर्षण के लोभ में पड़कर नवीनता के फेर में पड़ा हुआ है, तब वही एक आदमी ऐसा है जो उसके विरुद्ध सिंह के समान गरजता हुआ, पुराने मन्त्र 'आत्मान विद्धिः' का उच्चारण कर रहा है।'

परेश बाबू के घर से शीघ्र विदा लेकर, वहीं से गोरा के घर जाने का निश्चय करके विनय यहाँ आया था। गोरा की चर्चा चलने पर उसके हृदय का उत्साह उसके घर जाने को और अधिक बढ़ गया।

इसी समय घड़ी ने टन-टन करके चार बजाये। उसको सुनते ही विनय कुर्सी से उठकर खड़ा हो गया।

सुचरिता बोली—'आप अभी से चल दिए ? माँ तो आपके लिए भोजन बना रही हैं। कुछ देर और ठहरने में क्या कोई विशेष हानि हो जायेगी ?'

विनय के लिए यह बात प्रश्न न होकर आज्ञा थी। वह जहाँ का तहाँ फिर बैठ गया। तभी रंगीन रेशमी वस्त्र पहिने, लावण्य कमरे में आई और कहने लगी—'चलिए भोजन तैयार है। माँ ने आपको छत पर बुलाया है।'

छत पर पहुँचकर विनय भोजन करने लगा। वरदासुन्दरी ने अपने बच्चों का जीवन-वृत्तान्त सुनाना आरम्भ कर दिया। सुचरिता को ललिता घर के भीतर खींच ले गई। लावण्य एक कुर्सी पर बैठी गर्दन झुकाये, लोहे की सलाखों से बुनने का काम करने लगी। उसके विषय में कभी किसी ने

कहा था कि बुनाई का काम करते समय उसकी उँगलियों की क्रीड़ा अत्यन्त सुन्दर लगती है। तभी से लावण्य को लोगों के सामने आवश्यकता न होते हुए भी बुनाई करने का अभ्यास-सा पड़ गया था।

परेश बाबू भी आ पहुँचे थे। सन्ध्या हो चली थी। आज रविवार के दिन समाज-मन्दिर में उपासना के लिए जाने की बात पहले ही निश्चित हो चुकी थी। वरदासुन्दरी विनय से बोलीं—'यदि आपको आपत्ति न हो तो आज हमारे साथ समाज-मन्दिर में चलिये।'

विनय इन्कार न कर सका। तब सभी लोग गाड़ियों में बैठकर, उपासना के लिए चल दिए। लौटते समय, जब ये लोग गाड़ी पर सवार हो रहे थे, उस समय सुचरिता जैसे अचानक चौंकती हुई-सी कह उठी—'अरे, गौर मोहन बाबू तो वे चले जा रहे हैं।'

गोरा ने इन सभी लोगों को देख लिया था, इसमें किसी को सन्देह नहीं था। परन्तु जैसे उसने कुछ देखा ही नहीं, ऐसे भाव दिखाता हुआ, वह तेजी से चला गया। गोरा के इस उद्दण्ड स्वभाव को देखकर विनय ने परेश बाबू के परिवार के सम्मुख लज्जित होकर मस्तक नीचा कर लिया परन्तु मन में वह समझ गया कि इस दल में मुझे भी उपस्थित देखकर ही गोरा इस प्रकार चला गया है। विनय के हृदय में जिस आनन्द का प्रकाश अब तक जल रहा था, वह एकाएक जैसे बुझ गया। सुचरिता विनय के मन के भाव को ताड़ गई। परन्तु विनय जैसे मित्र तथा ब्राह्म-समाज के प्रति ऐसी अन्यायपूर्ण अश्रद्धा देखकर, उसे गोरा के ऊपर क्रोध हो आया। उसने मन-ही-मन किसी प्रकार गोरा को परास्त करने की इच्छा प्रकट की।

दोपहर के समय गोरा जब भोजन करने के लिए बैठा तो आनन्दमयी ने उससे धीरे से कहा—'आज जब सुबह विनय आया था, क्या तुम्हारी उससे भेंट नहीं हुई ?'

गोरा ने प्याली की ओर से सिर उठाये बिना उत्तर दिया—'हुई थी।'

कुछ देर आनन्दमयी चुप रहीं, फिर बोलीं—'मैंने उसे ठहरने को कहा था। परन्तु न जाने क्यों वह अनमना होकर चला गया।'

गोरा ने कोई उत्तर नहीं दिया।

आनन्दमयी बोलीं—'विनय के मन में न जाने कौन-सा कष्ट है। पहिले मैंने कभी उसे इतना उदास नहीं देखा था। अब उसका दृश्य देखकर मुझे

दुःख होता है।'

गोरा चुपचाप खाता रहा। आनन्दमयी उसे अत्यन्त स्नेह करती थीं, इसीलिए मन-ही-मन डरती भी थीं। वह उनके आगे कभी अपने मन का भाव प्रकट नहीं करता था और वे भी उससे अधिक हठ नहीं करती थीं। कोई और दिन होता तो वे यहीं चुप रह जातीं, परन्तु आज उनके मन में बहुत पीड़ा हो रही थी, अतः कुछ देर ठहरकर फिर कहने लगीं—'देखो गोरा, मैं एक बात कहती हूँ। तुम नाराज न होना। विनय तुम्हें प्राणों से अधिक चाहता है, तभी वह तुम्हारी सब बातें सह लेता है। परन्तु तुम जो उसे अपने मार्ग पर चलाने के लिए जबर्दस्ती करते हो, वह उसके लिए सुख की बात न होगी।'

गोरा ने बात टालने के लिए कहा—'माँ, थोड़ा दूध और ले आओ।'

बात यहीं समाप्त हो गई। भोजन के बाद आनन्दमयी तख्त के ऊपर बैठकर चुपचाप सिलाई का काम करने लगीं। घर के किसी नौकर के दुर्व्यवहार की चर्चा करती हुई लछमियाँ उनका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने का व्यर्थ प्रयत्न करते हुए फर्श के ऊपर लेट गई।

चिट्ठी-पत्री लिखने में गोरा ने बहुत समय लगा दिया। विनय सुबह यह देखकर लौट गया था कि गोरा उससे नाराज है। परन्तु गोरा इस समय उसके आने की फिर प्रतीक्षा कर रहा था, क्योंकि वह जानता था कि विनय उसकी नाराजगी दूर करने के लिए उसके पास फिर अवश्य आयेगा।

परन्तु समय निकल जाने पर भी विनय न आया। गोरा भी लिखना छोड़कर उठने ही वाला था कि तभी महिम उसके पास आ पहुँचे। वे आते ही कुर्सी पर बैठ गए, फिर बिना किसी प्रकार की भूमिका बाँधे बोल उठे—'गोरा, शशिमुखी के विवाह के विषय में तुमने क्या सोचा है ?'

गोरा ने अब तक इस विषय पर ध्यान ही नहीं दिया था, अतः अपराधी की भाँति चुप रह गया।

महिम को जब कोई उत्तर न मिला तो उन्होंने गोरा का संकट दूर करने के लिए विनय की बात छेड़ दी।

गोरा ने इस सम्बन्ध में विनय का प्रसंग आने की बात कभी सोची तक न थी। क्योंकि वह तथा विनय यह निश्चय किए बैठे थे कि देश की सेवा में अपना जीवन अर्पण करने के लिए वे कभी विवाह नहीं करेंगे।

इसका ध्यान आते ही गोरा बोला—'विनय विवाह क्यों करने लगा ?'

महिम—'मालूम होता है यह तुम्हारा कट्टर हिन्दूपन ही ऐसा कहलवा रहा है। तुम लाख चोटी रखो और तिलक लगाओ, परन्तु तुम्हारी हड्डियों में साहबी ढंग भरा हुआ है। तुम्हें क्या पता कि शास्त्रों के अनुसार ब्राह्मण के पुत्र का विवाह होना आवश्यक है।'

महिम बाबू आजकल के लड़कों की भाँति न तो आचार का उल्लंघन करते थे और न शास्त्र की ही परवाह करते थे। होटल में भोजन करके बहादुरी दिखाना भी उन्हें प्रिय न था। गोरा की भाँति श्रुति-स्मृति को लेकर झगड़ना भी उन्हें प्रिय न था। परन्तु 'यस्मिन देशे पदां चरः' अर्थात् 'जैसा देश हो, वैसा ही करना चाहिये' सिद्धान्त को वे मानते थे। इसी कारण आज गोरा के सम्मुख अपना कार्य सिद्ध करने के लिए उन्हें शास्त्र की दुहाई देनी पड़ती थी।

यदि यह प्रस्ताव दो दिन पूर्व आया होता तो सम्भवतः गोरा उस पर ध्यान भी नहीं देता, परन्तु आज उसे यह अनुभव हुआ कि यह बात सर्वथा उपेक्षा के योग्य नहीं है। कम-से-कम इसी प्रस्ताव को लेकर उसे विनय के घर जाने का बहाना मिल रहा था।

अन्त में गोरा ने कहा—'पहले यह तो देख लूं कि विनय क्या चाहता है ?'

महिम—'अब देखने-सुनने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारी किसी बात को वह टालेगा नहीं। केवल तुम्हारे कहने भर की देर है, वैसे वह राजी हो गया है!'

उसी समय सन्ध्या को गोरा विनय के घर जा पहुँचा। आँधी की भाँति घर में प्रवेश करने पर गोरा ने देखा कि वहाँ कोई नहीं है। नौकर से पूछने पर पता चला कि विनय बाबू अठहत्तर नम्बर के घर में गए हुए हैं।

यह सुनकर परेश बाबू तथा ब्राह्म-समाज के विरुद्ध गोरा का हृदय एकदम विष से भर गया। वह मन में विद्रोह लिये तुरन्त परेश बाबू के घर की ओर चल दिया। वह चाहता था कि वहाँ पहुँचकर वह ऐसी बातें करे जिससे वहाँ ब्राह्म-परिवार में आग-सी लग जाये तथा विनय बेचैन हो उठे।

परेश बाबू के घर जाकर उसे मालूम हुआ कि वहाँ भी कोई नहीं है, सब उपासना मन्दिर गए हैं। क्षण भर के लिए उसके हृदय में संशय हुआ

कि शायद विनय भी वहीं गया हो।

गोरा से तब रहा नहीं गया। वह अपनी आँधी के समान स्वाभाविक चाल से मन्दिर की ओर चल पड़ा। वहाँ द्वार पर पहुँचकर उसने देखा कि विनय वरदासुन्दरी के पीछे गाड़ी पर चढ़ रहा है, तथा खुली सड़क पर पराये परिवार की स्त्रियों के साथ निर्लज्ज की भाँति एक ही गाड़ी में बैठ रहा है। वह मन-ही-मन बोला—'मूर्ख ! स्वयं को नागपाश में इसी प्रकार फँसाया जाता है ! इतनी जल्दी, इतने सहज सब हुआ तो शायद मेरी मित्रता भी अब भद्र पुरुष के साथ नहीं रही। वह आँधी की भाँति वहाँ से लौट पड़ा तथा विनय गाड़ी के अन्धेरे के भीतर सड़क की ओर देखता हुआ चुपचाप बैठा रहा।

वरदासुन्दरी समझ रही थीं कि विनय के हृदय पर आचार्य के उपदेश का प्रभाव पड़ रहा है। इसीलिए उन्होंने उससे कोई बात नहीं की।

१४

गोरा रात को लौटकर अन्धेरे में ही छत पर टहलने लगा।

तभी महिम ने हाँफते हुए छत पर आकर कहा—'विनय के घर गये थे क्या ?'

गोरा ने स्पष्ट उत्तर देते हुए कहा—'शशिमुखी का विवाह विनय के साथ न हो सकेगा।'

'क्यों, क्या विनय नहीं चाहता ?'

'नहीं, मैं नहीं चाहता !'

महिम ने हाथ उल्टा करके कहा—'ओह, यह कोई नया झंझट उठा। तुम्हारी राय क्यों नहीं है, कारण तो बताओ ?'

गोरा—'मैंने खूब विचार कर लिया है कि हम विनय को अपने समाज में नहीं रख सकते। उसके साथ हमारे घर की लड़की का विवाह नहीं हो सकेगा।'

मैंने बहुत से कट्टर हिन्दू देखे, परन्तु तुम्हारे जैसा कोई नहीं मिला। तुम तो भविष्य देखकर विधान की व्यवस्था करते हो।'

फिर बहकते हुए बोले—'तुम कुछ भी क्यों न कहो, मैं लड़की को किसी

मूर्ख व्यक्ति के हाथों न सौंपूंगा। तुम मेरी लड़की को समुद्र में क्यों डालना चाहते हो ? तुम्हारे तो सभी विचार उल्टे हैं।'

फिर महिम ने नीचे आकर आनन्दमयी से कहा—'माँ, तुम्हीं अब गोरा को समझाओ।'

आनन्दमयी घवराकर बोलीं—'क्यों, क्या हुआ ?'

महिम—'शशिमुखी का विवाह विनय के साथ करने को मैं लगभग एक बात पक्की कर चुका था। गोरा को भी राजी कर लिया था। परन्तु अब गोरा से मालूम हुआ है कि विनय में हिन्दूपन यथेष्ट नहीं है। इसी से विवाह का विरोध कर उठा है। अब तुम प्रयत्न करो कि लड़की ठिकाने लग जाए। ऐसा वर ढूंढ़ने से भी न मिलेगा।'

इतना कहकर उसकी जो बातचीत गोरा से हुई थी, वह सब सुना दी। विनय और गोरा का मतभेद गम्भीर होता जा रहा है, यह अनुमान कर आनन्दमयी का हृदय बेचैन हो उठा।

आनन्दमयी ने ऊपर पहुँचकर देखा कि गोरा टहलना समाप्त करके एक कुर्सी पर बैठा हुआ तथा दूसरी पर पैर रखे हुए कोई पुस्तक पढ़ रहा है। आनन्दमयी एक कुर्सी पर उसी के पास जा बैठीं। तब गोरा ने कुर्सी से पैर हटाकर माँ के मुँह की ओर देखा।

आनन्दमयी बोलीं—'बेटा ! मेरी एक बात मानो। विनय के साथ झगड़ा अथवा मनमुटाव मत करो। मेरी दृष्टि में तुम दोनों भाई हो, तुम्हारा आपस में वियोग मुझे सहन न होगा।'

गोरा ने कहा—'यदि मित्र स्नेह का बन्धन काटना चाहे तो मैं उसके पीछे भागने में अपना समय नष्ट नहीं करूँगा।'

आनन्दमयी—'बेटा, मुझे नहीं पता कि तुम दोनों में क्या झगड़ा है, परन्तु यदि तुम्हें यह विश्वास है कि विनय स्नेह-बन्धन तोड़ रहा है तो तुम्हारी मित्रता की शक्ति कहाँ रही ?'

'मैं सीधे मार्ग पर चलना पसन्द करता हूँ। जिनका स्वभाव दो नावों पर पैर रखने का है, उन्हें मेरी नाव से पैर अवश्य हटाना पड़ेगा चाहे इसमें मुझे कष्ट हो अथवा उन्हें।'

'परन्तु हुआ क्या, यह तो बताओ ? वह ब्राह्म-लोगों के घर आता-जाता

है, इतना ही तो उसका अपराध है न ?'

'इसमें और बातें हैं माँ !'

'होंगी, परन्तु मैं यही कहती हूँ कि सभी बातों में तुम जो जिद पकड़ते हो उसे छोड़ते नहीं हो। फिर विनय से ही इतना क्यों चिढ़ते हो ? उसे इतना सहज क्यों छोड़ देना चाहते हो ? तुम्हारा अविनाश यदि तुम्हारा दल छोड़ना चाहे तो क्या तुम उसे भी इसी प्रकार सहज में छोड़ दोगे ? क्या तुम्हारा मित्र होने के कारण ही विनय तुम्हारी दृष्टि में सबसे छोटा अथवा निकम्मा हो गया ?'

गोरा चुप होकर विचार करने लगा। आनन्दमयी की इस बात ने जैसे उसकी आँखें खोल दी थीं। अब तक वह सोचता आ रहा था कि मैं कर्तव्य के लिए अपने मित्र को छोड़ रहा हूँ, परन्तु अब उसे अनुभव हुआ कि बात वास्तव में इससे बिल्कुल विपरीत है। मित्र के इस अभिमान में धक्का लगते ही उसे कष्ट होने लगा। वह सोच रहा था कि विनय को बाँध रखने के लिए मित्रता का बन्धन ही पर्याप्त है, कोई अन्य उपाय करना मित्रता का अपमान करना होगा।

आनन्दमयी ने जैसे ही देखा कि उसकी बात गोरा के हृदय पर कुछ प्रभावोत्पादक हुई है, तभी वे और कुछ न कहकर धीरे-धीरे चलने को तैयार हुईं। गोरा ने भी अधिक कुछ न कहा। उसने चादर उठाकर कन्धे पर डाल ली।

आनन्दमयी ने यह देखकर पूछा—'कहाँ जा रहे हो ?'

गोरा ने कहा—'विनय के घर जा रहा हूँ।'

आनन्दमयी और कुछ न पूछकर नीचे को चल दीं। तभी सीढ़ियों पर किसी के आने की आहट सुनकर एकाएक रुककर बोल उठीं—'लो, विनय तो स्वयं ही आ गया।'

विनय आ पहुँचा था। उसे देखकर आनन्दमयी की आँखों में आँसू भर आये। वे प्रेमपूर्वक उसके शरीर पर हाथ फेरती हुई बोलीं—'विनय, क्या खाना खाकर नहीं आये ?'

'नहीं माँ !' विनय ने उत्तर दिया।

'तो आज तुम यहीं खा लेना।' वे बोलीं।

विनय ने गोरा के मुख पर दृष्टि डाली तो गोरा बोल उठा—'तुम्हारी

उम्र बड़ी है। मैं तुम्हारे ही घर जा रहा था।'

आनन्दमयी के हृदय का बोझ जैसे उतर चुका था। वे शीघ्रतापूर्वक नीचे चली गईं।

फिर दोनों मित्र बैठक में आ बैठे। गोरा के मन में जो आया, वही कहकर उसने मौन तोड़ा।

दोनों जब खाने के लिए बैठे, तब उनके वार्तालाप को सुनकर आनन्दमयी ने अनुभव किया कि अभी तक उनके हृदय साफ नहीं हुए हैं। अभी तक रुकावट मौजूद है। वे बोलीं—'विनय, रात बहुत हो गई है। तुम आज यहीं सो जाओ। मैं तुम्हारे घर खबर भेजे देती हूँ।'

विनय ने गोरा के मुँह पर दृष्टि डालते हुए कहा—'भुक्त्वा राजपदाचरेत्—अर्थात् खाना खाकर राजाओं की भाँति रहे। खा-पीकर मार्ग में चलना निषेध है। अतः आज यहीं सो जाऊँगा।'

भोजन के बाद दोनों मित्र चटाई बिछाकर छत पर जा बैठे।

गिरजे की घड़ी में ग्यारह बज गये थे। गाड़ियों के चलने की घरघराहट भी धीमी पड़ गई थी। अंग्रेजों के मौहल्ले में किसी के जागने के लक्षण दिखाई नहीं देते थे, केवल पड़ोस के अस्तबल में काठ के फर्श पर घोड़ों की टाप की आवाज कभी-कभी सुनाई दे जाती थी—कभी-कभी कुत्ते भी भौंकने लगते थे।

कुछ देर दोनों चुप रहे। तत्पश्चात् विनय ने कहा—'भाई गोरा, मेरा हृदय भर चुका है, अब तुमसे कहे बिना न रहा जायेगा। मैं भला-बुरा कुछ नहीं समझ पाता परन्तु यह निश्चित है कि कोई चतुराई अब न चल सकेगी। मैंने पुस्तकों में बहुत-सी बातें पढ़ी हैं तथा सभी से यह कहता आया हूँ कि मैं सब-कुछ जानता हूँ। जिस प्रकार चित्र में देखकर यह समझता था कि तैरना सहज है, परन्तु आज जल के भीतर गिरकर, यह जान चुका हूँ कि वह वैसा नहीं है।'

इतना कहकर विनय ने धैर्य रखकर, अपने जीवन की विचित्र घटना को गोरा के सम्मुख कहना आरम्भ किया।

विनय बोला—'मेरे लिए आजकल दिन और रात में कोई भेद नहीं रहा। सम्पूर्ण आकाश में मेरे लिए कहीं रत्ती-भर भी स्थान खाली नहीं है, मानो वह किसी ठोस पदार्थ से भर गया हो। जिस प्रकार मधु-मास में मधु

(शहद) का छत्ता फटना चाहता है वही स्थिति मेरी हो रही है। आज सभी वस्तुयें मेरे समीप एक अपूर्व भाव से आ रही हैं। मैं नहीं जानता कि संसार की सभी वस्तुओं को मैं इतना प्यार क्यों करता हूँ? आकाश ऐसा विचित्र तथा प्रकाश ऐसा अपूर्व क्यों है? मार्ग से अपरिचित पथिक का प्रभाव भी ऐसी गम्भीरता से सत्य क्यों होता है? मेरा हृदय कहता है कि मैं इन सबके लिए कुछ करूँ। अपनी सम्पूर्ण शक्ति को आकाश के सूर्य की भाँति संसार का चिरस्थाई पदार्थ बना डालूँ।'

विनय किसी व्यक्ति विशेष के सम्बन्ध में यह बातें कर रहा है, ऐसा समझ में नहीं आता था, जैसे वह मुँह पर किसी का नाम न ला सकता हो। संकेत में भी किसी का नाम बताने में वह कुण्ठित हो रहा था। वह मन के जिस भाव की आलोचना कर रहा था, मानो उसके निकट वह अपने को अपराधी अनुभव कर रहा था। वह इसे एक प्रकार का अन्याय अथवा किसी के प्रति चोरी छिपे अपमान करना मानता था, परन्तु आज वह शान्त आकाश के नीचे इस रात के समय, अपने मित्र के सम्मुख इस अन्याय को छिपा न सका।

'आह! वह मुख कैसा है, जैसे पूर्णिमा का निष्कलंक चन्द्रमा हो। उसके निर्मल प्राणों की ज्योति उसके मस्तक की कोमलता में प्रकट एवं विकसित हो रही है। उसका मुस्कराता हुआ चेहरा कमल के समान खिल रहा है। उस मुख की उपमा चन्द्रमा अथवा कमल, किससे दी जाये? उसकी वह चिकुर राशि, दोनों कटीले नेत्र तथा सीधी चितवन चित्त चुराये लेती है। वह मधुर मूर्ति मानो मेरे नेत्रों के सम्मुख खड़ी है और मुझसे वार्तालाप कर रही है।' विनय अपने जीवन तथा यौवन को धन्य मान उठा। संसार के सहस्त्रों व्यक्ति जिसे बिना देखे ही अपना जीवन समाप्त कर बैठते हैं, उसी को अपनी आँखों के समक्ष इस प्रकार मूर्तिमान देखने से बढ़कर और क्या बात हो सकती थी?

'परन्तु यह कैसा पागलपन, कैसा अन्याय है? कुछ भी क्यों न हो, परन्तु अब किसी प्रकार इसे मन में नहीं रोका जा सकता। यदि कोई इस प्रेम-प्रवाह का किनारा बता दे, तो अच्छा रहे अन्यथा यदि उसे किसी ने उसमें धकेल दिया अथवा यह स्वयं ही धँस गया, तो फिर बाहर निकलने का क्या उपाय होगा? कठिनाई तो यह है कि उससे बाहर निकलने की

फिर इच्छा ही न होगी। जीवन के समस्त संस्कारों तथा मर्यादा को खो देना ही जीवन का सार्थक परिणाम जान पड़ता है।'

गोरा चुपचाप सुन रहा था। इस छत पर ऐसी ही चाँदनी रात के सन्नाटे में इन दोनों मित्रों में कितनी ही बार ऐसी बातें हुई हैं। साहित्य, काव्यालाप तथा लोक-चरित्र की कितनी ही आलोचनायें हुई हैं, समाज तथा भविष्यत्-जीवन के सम्बन्ध में भी कितने ही संकल्प किये गए थे, ऐसी बात आज से पहले कभी नहीं हुई थी। मानव-हृदय के सत्य का ऐसा प्रकाश गोरा के समक्ष कभी उपस्थित न हुआ था। इन वस्तुओं को वह कवि का चमत्कार मानकर, अभी तक इनकी उपेक्षा करता आया था। परन्तु आज इन्हें प्रत्यक्ष देखकर किसी प्रकार उनकी उपेक्षा नहीं कर सका। इतना ही नहीं, उसका मन चंचल हो उठा। सारे शरीर में रोमांच हो आया। उसकी नस-नस में एक अज्ञात शक्ति बिजली की भाँति दौड़ गई। उसके यौवन के अज्ञात भाग का एक पर्दा कुछ देर के लिए हट गया—और तब, शरत्काल की चाँदनी ने उस स्थान पर प्रवेश करके एक अपूर्व माया को फैला दिया।

चाँद किस समय पश्चिम की ओर झुका तथा कब छतों से नीचे उतर गया, इसे दोनों में से किसी ने न जाना। देखते-ही-देखते पूर्व की ओर आकाश में सफेदी छाने लगी। उस समय विनय का हृदय कुछ हल्का हुआ तो उसे लज्जा-सी आने लगी। कुछ देर चुप रहकर उसने कहा—'तुम्हारे निकट मेरी ये सभी बातें बहुत तुच्छ हैं। तुम मन-ही-मन मेरी निन्दा कर रहे होंगे। परन्तु मैं क्या करूँ? तुमसे कोई बात मैंने छिपाई नहीं है, आज भी नहीं छिपा सका। अब तुम समझो अथवा मत समझो।'

गोरा बोला—'विनय, मैं इन बातों को ठीक-ठीक समझ सका या नहीं, यह नहीं कह सकता। दो दिन पूर्व तुम भी इन्हें नहीं समझते थे। आज तक के वे आवेग तथा आवेश, अब तक बहुत तुच्छ लगते थे, इसे मैं स्वीकार नहीं कर सकता। मैं भी नहीं कह सकता कि वास्तव में यह विषय तुच्छ है। मैंने इसकी शक्ति तथा गम्भीरता को कभी प्रत्यक्ष नहीं देखा, इसलिए मुझे यह सब मिथ्या-सा प्रतीत होता था। परन्तु तुम्हारे इतने दीर्घ अनुभव को मैं कैसे कहूँ? सत्य बात तो यह है कि जो व्यक्ति जिस सीमा में रहकर काम करता है, उससे बाहर का पदार्थ यदि उसकी दृष्टि में तुच्छ न जान पड़े तो वह कोई काम नहीं कर सकता। यही कारण है कि ईश्वर ने मनुष्य

की दृष्टि में दूर की वस्तु छोटी कर दी हैं। वह सब वस्तुओं को वास्तविक सत्य के रूप में दिखाकर विपत्ति में नहीं डालना चाहता। हम लोगों को भी एक दिशा निश्चित कर, उसी ओर जाना होगा। सब ओर दौड़ने की आदत छोड़नी पड़ेगी। किसी एक मार्ग का अवलम्बन करना ही ठीक है, अन्यथा कभी सत्य की प्राप्ति नहीं होगी। तुम जिस स्थान पर खड़े होकर सत्य की जिस मूर्ति को देख रहे हो, मैं उस मूर्ति का अभिवादन करने के लिए उसके पास तक न पहुँच सकूँगा। ऐसा करने से तो मैं अपने जीवन के सत्य को भी खो दूँगा, क्योंकि इस ओर सत्य और उस ओर असत्य है।'

विनय बोला—'सत्य तुम्हारी ओर तथा असत्य मेरी ओर रहे। मैं स्वयं को पूर्ण करना चाहता हूँ, परन्तु तुम अपना जीवन नष्ट करने को उद्यत हो।'

गोरा कुछ नाराज होकर बोला—'विनय, तुम बात-बात में कविता मत छाँटो, मैं तुम्हारी बातें सुनकर समझ गया हूँ कि तुम अपने जीवन में एक निश्चित सत्य के समक्ष मुँह किये खड़े हो। उसके साथ कपट-भाव से काम नहीं चलेगा। सत्य की रक्षा करने के लिए उसके समीप आत्म-समर्पण करना पड़ेगा।'

'मैं जिस समाज की परिधि में हूँ, उस समाज को, सत्य को, मैं भी किसी दिन इसी प्रकार देखूँ यही मेरी इच्छा है। तुम इतने दिन तक कविताओं में पढ़कर प्रेम के परिचय से तृप्त बने रहे। मैंने पुस्तकों में वर्णित स्वदेश-प्रेम को जाना है। आज जब तुम्हारे समक्ष प्रेम प्रकट हुआ, तब तुम समझ सके हो कि पुस्तकों में पढ़े प्रेम की अपेक्षा यह कितना सत्य है। इसी प्रकार जिस दिन मेरे समक्ष स्वदेश-प्रेम पूरी तरह से प्रकट होगा, उस दिन वह मेरे प्राण, माँस, शरीर, आकार तथा विकास सभी को अपनी ओर आकर्षित कर लेगा।'

'स्वदेश-प्रेम की वह सत्यमूर्ति कितनी आश्चर्यजनक होगी! तुम्हारी यह बात सुनकर आज मैं भी मन-ही-मन कुछ अनुभव करने लगा हूँ। तुम्हारे जीवन के इस अज्ञान ने मेरे हृदय को बड़ी ठेस पहुँचाई है। तुमने जो अनुभव किया, उसे मैं भी अनुभव कर सकूँगा या नहीं—इसे तो नहीं कह सकता, परन्तु तुम्हारे अन्तःकरण द्वारा मैंने उसके स्वाद का बहुत कुछ अनुभव कर लिया है।'

इतना कहकर गोरा चटाई से उठकर छत पर टहलने लगा। पूर्व दिशा की स्वच्छता उसके समीप एक प्राकृतिक वाक्य की भाँति प्रकट हो उठी। मानो किसी तपोवन से एक वेदमन्त्र उसके समक्ष उपस्थित हो गया हो। उसके प्राण, चेतना तथा सम्पूर्ण शक्ति, मानो सभी उस परमानन्द में निमग्न हो गये।

कुछ समय बाद जब वह प्रकृतिस्थ हुआ तो कहने लगा—'विनय, तुम्हें इस प्रेम को भी लाँघकर मेरा साथ देना होगा। मुझे जो महाशक्ति अपनी ओर खींच रही है, वह कितनी प्रभावशालिनी है, यह मैं तुम्हें किसी दिन दिखाऊँगा। मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि अब मैं तुम्हें किसी और के हाथों में न खेलने दूँगा—तुम्हें छोड़ूँगा नहीं।'

विनय भी चटाई छोड़कर उसके पास आ खड़ा हुआ। गोरा ने उसे दोनों हाथों से आलिंगनबद्ध करते हुए उत्साह के साथ कहा—'हम दोनों एक साथ जियेंगे, मरेंगे तथा एक होकर रहेंगे। हमें कोई एक-दूसरे से अलग नहीं कर सकता।'

गोरा के इस गम्भीर उत्साह का वेग विनय के हृदय में भी हिलोरें लेने लगा। उसने बिना कुछ कहे स्वयं को गोरा के आकर्षण में छोड़ दिया।

गोरा तथा विनय पास-पास घूमने लगे। पूर्व दिशा में जब लालिमा छा चुकी थी। गोरा बोला—'भाई, मैं अपनी देवी को जिस स्थान पर देख रहा हूँ, वहाँ कृत्रिम सौन्दर्य के लिए स्थान नहीं है। यहाँ दुर्भिक्ष, दरिद्रता, कष्ट तथा अपमान का निवास है। वहाँ गीत गाकर तथा फूल चढ़ाकर पूजा करने से कोई लाभ नहीं है, वहाँ प्राण देकर पूजा करनी पड़ेगी। देवी की आराधना के लिए बलिदान की आवश्यकता होती है। उस पूजा में मुझे जितना आनन्द मिलता है, उतना अन्यत्र कहीं नहीं है। वहाँ शक्ति भर जाना पड़ेगा तथा सर्वस्व देना होगा। वहाँ माधुर्य नहीं, अपितु एक दुर्लभ साहस का आविर्भाव होता है।'

'उस वीणा के भीतर ऐसी कठिन झंकार है जिससे सातों स्वर एक साथ बोल उठते हैं तथा तार टूटकर गिर जाते हैं। उसके स्मरण मात्र से ही मेरा हृदय हर्ष से भर जाता है। मैं सोचता हूँ—यह आनन्द है, वास्तविक आनन्द है, यही जीवन का ताण्डव-नृत्य है। मैं अरुणिम आकाश में एक बन्धनहीन ज्योतिर्मय भविष्य को देख रहा हूँ। देखो, मेरे हृदय के

भीतर यह कौन डमरू बजा रहा है ?

इतना कहकर गोरा ने विनय का हाथ अपनी छाती पर रख लिया।

विनय बोला—'मैं तुम्हारे ही मार्ग पर चलूँगा। परन्तु इतना कहे देता हूँ कि मुझे फिसलने मत देना। तुम जिधर जाओ, उसी ओर मुझे भी विधाता की भाँति निर्दयी बनकर, अपने साथ खींच ले जाना। हम दोनों का मार्ग एक ही होगा, परन्तु हम दोनों की शक्ति समान नहीं है।'

गोरा ने कहा, 'हम दोनों की प्रकृति में अन्तर है, परन्तु हम उस महान आनन्द से अपनी प्रकृति को एक कर देंगे। हम अपने सामान्य प्रेम की अपेक्षा महान प्रेम में मिलकर एक हो जाएँगे। जब तक वह अखण्ड प्रेम सत्य रूप में परिणित न होगा, तब तक हम दोनों के बीच अनेक आघात-प्रतिघात तथा विरोध चलते रहेंगे। तदुपरान्त हम सबकुछ भूलकर, आत्म-त्याग की अटल शक्ति से मिलकर एक हो जायेंगे। वह निश्चल आनन्द ही हमारी मित्रता का अन्तिम परिणाम होगा।'

विनय गोरा का हाथ पकड़कर बोला—'सच ?'

गोरा ने कहा—'उस समय तक मैं तुम्हें अनेक कष्ट दूँगा। मेरे सभी अत्याचार तुम्हें सहन करने होंगे। क्या हम अपनी मित्रता को जीवन के अन्तिम लक्ष्य तक नहीं निभा सकेंगे ? जो होगा, उसे बचाते हुए चलेंगे, फिर भी यदि मित्रता न रहे तो उपाय ही क्या है ! परन्तु यदि वह बची रही तो एक-न-एक दिन सफल अवश्य होगी।'

इसी समय दोनों को पीछे से किसी के पैरों की आहट सुनाई दी। चौंककर देखा कि आनन्दमयी छत पर आ गई हैं। उन्होंने दोनों को हाथ पकड़कर कमरे की ओर जाते हुए कहा—'चलो रे, रात भर जागते ही रहे हो, अब सो जाओ।'

दोनों बोले—'माँ, अब नींद न आयेगी।'

'अवश्य आयेगी'—कहकर आनन्दमयी दोनों को कमरे के भीतर ले पहुँचीं। फिर दोनों को बिस्तर पर सुलाकर कमरे का दरवाजा बन्द कर दिया तथा स्वयं सिरहाने बैठकर पंखा झलने लगीं।

विनय बोला—'माँ, तुम यहाँ पंखा झलोगी तो हम सो न सकेंगे।'

आनन्दमयी ने कहा—'देखूँ तो सही, क्यों न सो सकोगे ? मेरे चले जाने पर तुम फिर बातें करने लगोगे, पर मेरे रहते यह न हो सकेगा।'

थोड़ी देर में जब दोनों सो गए, तब आनन्दमयी धीरे-धीरे कमरे से बाहर निकल आईं। सीढ़ियों से उतरते समय उन्होंने देखा कि महिम ऊपर आ रहे हैं। आनन्दमयी बोलीं—'अभी लौट चलो। कल सारी रात वे लोग जगे हैं। मैं उन्हें अभी-अभी सुलाकर आ रही हूँ।'

महिम ने कहा—'वाह, मित्रता वास्तव में यही है। कुछ विवाह की बात भी चली थी क्या ?'

आनन्दमयी—'मुझे नहीं मालूम ।'

महिम—'मालूम होता है, मामला जम गया है। भला, कब उठेंगे ? विवाह शीघ्र न होने पर और भी अनेक विघ्न उठ सकते हैं।'

आनन्दमयी ने हँसते हुए कहा—'तुम दोनों को सोने दो। कोई विघ्न न पड़ेगा। वे आज दिन में ही सोकर उठ आयेंगे।'

१५

वरदासुन्दरी बोलीं—'आप सुचरिता का विवाह करेंगे अथवा नहीं ?'

परेश बाबू ने अपने स्वाभाविक गम्भीर भाव से पकी हुई दाढ़ी पर कुछ देर हाथ फेरते हुए कोमल स्वर में कहा, 'कहीं लड़का भी तो मिले !'

वरदासुन्दरी—'क्यों पानू बाबू के साथ उसके विवाह का क्या हुआ ? हम सभी इस बात को जानते हैं और सुचरिता भी जानती है।'

परेश बाबू—'परन्तु मैं समझता हूँ कि सुचरिता पानू बाबू को नहीं चाहती।'

वरदासुन्दरी—'मुझे ऐसी बातें अच्छी नहीं लगतीं। मैं सुचरिता को अपनी पुत्रियों से भिन्न नहीं समझती। इसलिए मैं यह कहती हूँ कि पानू बाबू कोई ऐसे-वैसे नहीं हैं। उनके समान धार्मिक व्यक्ति यदि उसे चाहते हों, तो क्या यह कोई कम सौभाग्य की बात है ? इस अवसर को हाथ से नहीं जाने देना चाहिए। मेरी लावण्य यद्यपि देखने में उससे कहीं अच्छी है, परन्तु मैं आपको विश्वास दिलाये देती हूँ कि हम लोग उसका विवाह जहाँ करना चाहेंगे, उसमें वह 'नाहीं' नहीं करेगी। अब यदि आप सुचरिता के दिमाग को आसमान पर चढ़ा दें तो फिर उसके लिए वर मिलना ही कठिन हो जायेगा।'

परेश बाबू चुप रहे। वे वरदासुन्दरी से विवाद नहीं करते थे—खासकर सुचरिता के विषय में।

सतीश को जन्म देकर जब सुचरिता की माँ का स्वर्गवास हुआ, उस समय सुचरिता की आयु सात वर्ष की थी। उस समय उसके पिता रामशरण हवलदार पत्नी की मृत्यु के पश्चात् ब्राह्म-समाज में जा मिले थे। तत्पश्चात् लोगों के अत्याचारों से परेशान होकर, वे ढाका चले गये। जिस समय वे वहाँ के डाकघर में काम करते थे, उस समय उनको परेश बाबू से गहरी मित्रता हो गई। सुचरिता भी तभी से परेश बाबू को अपने पिता के समान मानने लगी थी।

फिर अचानक रामशरण की मृत्यु हो गई। वह अपने पुत्र और पुत्री को परेश बाबू को सौंप गये थे, तभी से सतीश और सुचरिता परेश बाबू के घर रहने लगे थे।

पाठक यह जान ही चुके हैं कि हारानचन्द्र उर्फ पानू बाबू बड़े ही उत्साही ब्राह्म थे। ब्राह्म-समाज में सभी काम उनके हाथ में थे। वे रात्रि-पाठशाला के शिक्षक, समाचार-पत्र के सम्पादक तथा विद्यालय के मन्त्री थे। वे कभी शिथिल नहीं होते थे। उनके प्रति सबके मन में यह विश्वास था कि वे किसी दिन ब्राह्म-समाज में ऊँचा पद प्राप्त करेंगे। अंग्रेजी भाषा पर उनके अधिकार तथा दर्शनशास्त्र की पारदर्शिता के सम्बन्ध में उनका यश छात्रों द्वारा ब्राह्म-समाज के बाहर भी दूर-दूर तक फैल चुका था। इन्हीं सब गुणों के कारण सुचरिता भी अन्य ब्राह्मों की भाँति हारान बाबू पर विशेष श्रद्धा रखती थी। ढाका से जब वह कलकत्ते आई तब हारान बाबू का परिचय प्राप्त करने के लिए उसके हृदय में एक विशेष उत्सुकता भी थी।

कुछ दिनों बाद परिचय, परिचय तक ही सीमित न रहा। हारान बाबू सुचरिता के प्रति अपने हृदय का प्रेम निःसंकोच रूप से प्रकट करने लगे। उन्होंने सुचरिता की सम्पूर्ण कमियों को दूर करने में तथा उसके उत्साह को बढ़ाने में ऐसा ध्यान दिया कि सब लोग यह स्पष्ट रूप से अनुभव करने लगे कि सुचरिता को अपनी संगिनी बनाने की उनकी प्रबल इच्छा है।

सुचरिता को जब यह पता चला कि उसने हारान बाबू के हृदय पर विजय प्राप्त कर ली है, तब वह मन-ही-मन गर्व का अनुभव करने लगी।

कन्या-पक्ष की ओर से कोई प्रस्ताव न रखे जाने पर भी, जब सब

लोगों ने यह निश्चय समझ लिया कि सुचरिता का विवाह हारान बाबू के साथ ही होगा, तब सुचरिता ने भी मन-ही-मन उसमें योग दिया था। सुचरिता चाहती थी कि जिन हारान बाबू ने ब्राह्म-समाज के उत्कर्ष के लिए अपना जीवन उत्सर्ग किया है, वह उनके प्रत्येक कार्य में सहायता पहुँचाये। विवाह की कल्पना उसे भय, आवेश तथा कठिन उत्तरदायित्व द्वारा निर्मित पत्थर के दुर्ग की भाँति अमोघ प्रतीत होती थी। उस दुर्ग पर अधिकार कोई सरल बात न थी।

इस अवस्था में यदि विवाह हो जाता तो कन्या-पक्ष वाले उसे अपना सौभाग्य मानते, परन्तु हारान बाबू अपने महान् जीवन की जिम्मेदारी को इतना ऊँचा समझते थे कि केवल प्रेम से आकृष्ट होकर ही विवाह कर लेना उन्हें उचित न लगता था। इस विवाह से ब्राह्म-समाज को कितना लाभ पहुँच सकेगा, इस दृष्टि से वे सुचरिता की परीक्षा लेने लगे।

इस प्रकार किसी की परीक्षा लेने में अपनी परीक्षा भी देनी पड़ती है। हारान बाबू परेश बाबू के घर में घुल-मिल गये। यहाँ तक कि 'पानू बाबू' के जिस नाम से उन्हें उनके घर वाले पुकारते थे, उनके प्रति उसी नाम का व्यवहार परेश बाबू के घर में भी होने लगा। अब उन्हें अंग्रेजी भाषा के भण्डार, तत्त्व-ज्ञान के आधार तथा ब्राह्म-समाज के निमित्त मंगल-अवतार के रूप में देखना असम्भव हो गया था। वे मनुष्य भी हैं यह परिचय सब परिचयों से अधिक घनिष्ट हो उठा। तब वे केवल श्रद्धा के पात्र न रहकर, अच्छे-बुरे लगने वाले भाव के वशीभूत भी हो गये।

हारान बाबू ने जिस भाव से सुचरिता को पहले अपनी ओर आर्कषित किया था, वही भाव अधिक निकट आने पर सुचरिता के हृदय पर चोट पहुँचाने लगा। ब्राह्म-समाज के भीतर जो सत्य, शिव तथा सुन्दर था, उसकी संरक्षता का भार हारान बाबू ने ले रखा था इसीलिए, उन्हें अत्यन्त असंगत रूप में तुच्छ देखना पड़ा। सत्य के साथ मनुष्य का यथार्थ सम्बन्ध भक्तिमय होता है, वह स्वभाव को विनम्र बना देता है। परन्तु जहाँ मनुष्य विनम्र न बनकर उद्धत तथा अहंकारी बन जाता है, वहाँ वह अपनी तुच्छता को उस सत्य की तुलना में अधिक स्पष्ट कर बैठता है। हारान बाबू का यही भेद परेश बाबू के साथ सुचरिता ने देखा था तथा मन-ही-मन उसकी आलोचना भी की थी। परेश बाबू के शान्त मुखमण्डल को देखकर, उसे

सत्य का महत्त्व दृष्टिगोचर होता था, परन्तु हारान बाबू के लिए वैसी बात नहीं थी। ब्राह्म-समाज के वस्त्रों से ढकी हुई, उनकी स्वयं को उच्च सिद्ध करने की उग्र प्रवृत्ति उनका अशोभनीय रूप प्रकट किया करती थी।

ब्राह्म-समाज की भलाई पर दृष्टिपात करते हुए, जिस समय हारान बाबू परेश बाबू को भी अपराधी सिद्ध करना चाहते थे, उस समय चोट खाई नागिन की भाँति सुचरिता मन मसोसकर रह जाती थी। वह उनके इस व्यवहार को सहन नहीं कर पाती थी। उन दिनों शिक्षित बंगालियों के बीच श्रीमद्भागवद् गीता के पठन-पाठन का प्रचलन नहीं था, परन्तु परेश बाबू कभी-कभी सुचरिता को गीता पढ़ाते थे। कालीसिंह बाबू द्वारा किया गया महाभारत का बंगला अनुवाद भी उन्होंने सुचरिता को पढ़कर सुना दिया था।

हारान बाबू को यह बातें अच्छी नहीं लगती थीं। वे ब्राह्म-परिवार में अन्य धर्मों के सभी ग्रन्थों का बहिष्कार करने के पक्षपाती थे। इन ग्रन्थों को उन्होंने स्वयं भी नहीं पढ़ा था। वे रामायण, महाभारत तथा गीता आदि ग्रन्थों को कुसंस्कारजनित हिन्दुओं के ढोंग ग्रन्थ समझकर उन्हें समाज से दूर रखना चाहते थे। धर्मशास्त्रों में केवल बाइबल का ही आश्रय लेते थे। शास्त्र-चर्चा तथा अनेक बातों में परेश बाबू केवल ब्राह्म-समाज की सीमा में बँधकर ही नहीं रहे थे। यह बात हारान बाबू को बुरी लगती थी। परन्तु सुचरिता को यह कभी पसन्द नहीं था कि कोई व्यक्ति प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष में परेश बाबू के इस आचरण पर दोषारोपण करे। जब कभी ऐसी स्पर्द्धा का अवसर आता तभी सुचरिता की दृष्टि में हारान बाबू गिर जाते थे। यहाँ तक कि उनके इस ओछेपन से सुचरिता के हृदय में अश्रद्धा उत्पन्न हो गई थी।

यद्यपि सुचरिता का हृदय हारान बाबू की इस संकीर्णता के कारण उनसे विमुख होता चला जा रहा था, फिर भी किसी के मन में यह सन्देह नहीं था कि उसका विवाह हारान बाबू से न होगा। परेश बाबू भी मन-ही-मन सुचरिता के प्रति हारान बाबू के दावे को अमान्य नहीं करते थे। सब लोग हारान बाबू को ब्राह्म-समाज का भावी कर्णधार मानते थे, इसलिए परेश बाबू यह सोचते रहते थे कि सुचरिता उनके लिए उपयुक्त जीवन-संगिनी हो भी सकेगी अथवा नहीं। यह विचार तो उनके हृदय में कभी

आया भी नहीं था कि हारान बाबू सुचरिता के लिए कहाँ तक उपयुक्त ठहरेंगे।

जिस प्रकार इस विवाह के सम्बन्ध में किसी ने सुचरिता की ओर से विचार करना आवश्यक नहीं समझा, उसी प्रकार सुचरिता ने भी कभी अपनी सुविधा-असुविधा की बात नहीं सोची थी। ब्राह्म-समाज की अन्य लड़कियों की भाँति उसने भी वह विचार कर लिया था कि जिस दिन हारान बाबू उसकी माँग करेंगे, उसी दिन वह भी उस महत्त्वपूर्ण उत्तर-दायित्व को स्वीकार कर लेगी।

यह प्रसंग इसी प्रकार चला आ रहा था कि इसी बीच जब उस दिन गोरा के कारण हारान बाबू के साथ सुचरिता की गर्मा-गर्मी हो गई तो परेश बाबू के मन में यह शंका उत्पन्न हुई कि सुचरिता हारान बाबू पर पूर्ण श्रद्धा नहीं रखती है। सम्भवतः दोनों की प्रकृति परस्पर न मिलने में कोई कारण अवश्य है। इसलिए जब वरदासुन्दरी ने हारान बाबू के साथ सुचरिता के विवाह का प्रसंग चलाया, उस समय परेश बाबू उसका समर्थन नहीं कर सके।

उस दिन वरदासुन्दरी ने सुचरिता को एकान्त में अपने पास बुलाकर कहा—'सुनो, तुमने तो अपने बाबू को चिन्ता में डाल दिया है।'

सुचरिता यह सुनते ही जैसे चौंक पड़ी। कभी भूल से भी परेश बाबू की चिन्ता का कारण बन सके, इससे बढ़कर कोई कष्ट उसे नहीं था। उसका चेहरा उतर गया। वह सिटपिटाकर बोली—'क्यों, मैंने क्या किया है?'

वरदासुन्दरी ने कहा—'क्या पता बेटी, उन्हें किसी प्रकार यह अनुभव हुआ है कि तुम हारान बाबू को नहीं चाहती हो। सब ब्राह्म-समाजी यह समझते हैं कि पानू बाबू के साथ तुम्हारा विवाह एक प्रकार से निश्चित ही है। ऐसी अवस्था में यदि तुम···।'

सुचरिता चिन्तित होकर बोली—'माँ, इस सम्बन्ध में मैंने तो किसी से कुछ कहा-सुना तक नहीं, फिर यह क्या बात है?'

सुचरिता के चकित होने का भी कारण था। वह हारान बाबू से खीझती अवश्य रही थी, परन्तु विवाह-प्रस्ताव के विरुद्ध उसने कभी सोचा भी नहीं था। वह समझती थी कि सुख-दुःख की दृष्टि से वह बात विचार

करने के योग्य नहीं है।

तभी उसे यह ध्यान आया कि उस दिन परेश बाबू के समक्ष ही उसने हारान बाबू से विरक्तता प्रकट की थी। उसी कारण परेश बाबू के चिन्तित होने की बात स्मरण कर, उसके हृदय को आघात पहुँचा। उसने निश्चय किया कि भविष्य में वह कभी ऐसी गलती नहीं करेगी।

उस दिन हारान बाबू के आने पर, वरदासुन्दरी ने उन्हें एकान्त में ले जाकर कहा—'पानू बाबू, आप हमारी सुचरिता से विवाह करना चाहते हैं, यह बात सभी के मुँह सुनी जाती है। परन्तु आपने कभी ऐसी बात नहीं की है। यदि वास्तव में आपका विचार है तो स्पष्ट क्यों नहीं कहते ?'

हारान बाबू अब अधिक देर न कर सके। उन्होंने सोचा—यदि वे इस सुचरिता को अपने हाथ में ले सकें तो सब बातों से निश्चिन्त हो जायेंगे। ब्राह्म-समाज के हितचिन्तन की योग्यता की परीक्षा बाद में भी ली जा सकती है। वे बोले—'इसके कहने की कोई आवश्यकता नहीं समझी, इसलिए कभी नहीं कहा। मैं सुचरिता की आयु अठारह वर्ष की हो जाने की प्रतीक्षा कर रहा था, बस···।'

वरदासुन्दरी—'आप प्रत्येक बात में आवश्यकता से अधिक बढ़ जाते हैं। हम तो कन्या के विवाह के लिए चौदह वर्ष की आयु ही पर्याप्त समझते हैं।'

उसी दिन चाय पीने की मेज पर, सुचरिता का व्यवहार देखकर परेश बाबू चकित रह गए। इधर बहुत दिनों से सुचरिता ने हारान बाबू का इतना सत्कार नहीं किया था। यहाँ तक कि जिस समय हारान बाबू जाने के लिए प्रस्तुत हुए, उस समय सुचरिता ने लावण्य की नई शिल्प-कथा का परिचय देने के लिए, उनसे कुछ देर ठहरने का अनुरोध किया।

परेश बाबू निश्चिन्त हो गए। उनके मन में जो सन्देह उठा था, वह शान्त हो गया। उन्होंने सोचा—शायद वह मेरी भूल थी। इसके लिए वह मन-ही-मन हँसे भी किन्तु उन्होंने समझा—इन दोनों में कोई कलह हो गई होगी जो अब शान्त हो गई है।

उसी समय हारान बाबू ने परेश बाबू से विवाह का प्रस्ताव भी किया। वे बोले—'मैं चाहता हूँ कि अब इस सम्बन्ध में अधिक विलम्ब न किया जाये।'

परेश बाबू को कुछ आश्चर्य-सा हुआ। वे बोले—'आपकी राय में लड़कियों का विवाह अठारह वर्ष की आयु से पहले होना ही नहीं चाहिये। इस सम्बन्ध में आपने समाचार-पत्र में लेख भी तो लिखे थे?'

हारान बाबू ने कहा—'परन्तु यह नियम सुचरिता के लिए नहीं है। उसके मन की स्थिति इस आयु में ऐसी है, जो बड़ी उम्र की लड़कियों में भी नहीं पाई जाती।'

परेश बाबू दृढ़तापूर्वक बोले—'पानू बाबू, यह सत्य ही क्यों न हो, परन्तु मेरी दृष्टि में विवाह करने में कोई अहितकर कारण नहीं है। इसीलिए आपके मतानुसार विवाह योग्य अवस्था हो जाने तक ठहरना ही हमारा कर्तव्य है।'

हारान बाबू अपने मन की दुर्बलता प्रकट हो जाने के कारण लज्जित से होते हुए बोले—'कर्तव्य तो वास्तव में यही है। मेरी इच्छा केवल यही है कि एक दिन सब समाज को बुलाकर, ईश्वर का नाम ले, इस सम्बन्ध को पक्का कर दिया जाये।'

परेश बाबू ने उत्तर दिया—'हाँ, यह प्रस्ताव वास्तव में प्रशंसनीय है।'

१६

दो-तीन घण्टे सोने के बाद गोरा की नींद टूटी तो उसने देखा कि विनय उसके पास ही सो रहा है। स्वप्न में किसी प्रिय वस्तु के खो जाने पर, उसे जाग्रत अवस्था में ज्यों की त्यों देखने पर जो आनन्द आता है, वही गोरा को भी हुआ। विनय को छोड़ देने से उसका जीवन कितना सारहीन हो जाता, इसका अनुभव गोरा को सोकर उठने के बाद हुआ। वह आनन्द के आवेग में विनय को हाथ से हिलाकर जगाते हुए बोला—'चलो, आज कार्य करना है।'

गोरा का प्रतिदिन का कार्य था कि वह पड़ोस के सभी छोटे लोगों के घर जाता था। उनका उपकार करने अथवा उपदेश देने के लिए नहीं अपितु केवल भेंट करने के लिए ही। अशिक्षित समाज में वह रोजाना इस प्रकार आता-जाता था। वे गरीब लोग गोरा को 'बाबूजी' कहते और हाथ में

हुक्का देकर आदर करते थे। उनका आतिथ्य ग्रहण करने के लिए ही गोरा ने तम्बाकू पीने की आदत डाल ली थी।

इस समाज में गोरा का सबसे बड़ा भक्त था—'नन्द'। वह एक बढ़ई का लड़का था। उम्र बाईस वर्ष थी। अपने पिता की दुकान में लकड़ी के सन्दूक बनाया करता था। नन्द की भाँति बन्दूक का अचूक निशाना लगाने वाला कोई शिकारी भी न था। गोरा ने अपने खिलाड़ी समाज में प्रतिष्ठित परिवार के छात्रों के साथ-साथ इन बढ़ई तथा लुहारों के लड़कों को भी मिला लिया था। इस सम्मिलित दल में खेल तथा व्यायाम के करतबों में नन्द सबसे अधिक होशियार था। इस कारण कई कुलीन छात्र उससे द्वेष भी रखते थे, परन्तु गोरा के भय से सभी उसे अपना सरदार स्वीकार करते थे।

कई दिन हुए, रुखानी पर गिर पड़ने से नन्द के पैर में घाव हो गया था, इसलिए वह खेलने न आ सका। विनय के कारण गोरा का हृदय कई दिनों से व्याकुल था, अतः वह अपने इन साथियों के घर नहीं जा सका था। आज वह विनय को साथ ले बढ़ई टोले में जा पहुँचा।

एक दो-मंजिले मकान के द्वार पर पहुँचते ही उसे स्त्रियों के रोने का शब्द सुनाई दिया। नन्द का पिता अथवा अन्य कोई भाई-बन्धु उस समय घर पर नहीं था। पास में एक तम्बाकू की दूकान थी। दूकानदार ने उसे बताया—'आज सवेरे ही नन्द की मृत्यु हो गई, सब लोग उसका दाह-संस्कार करने के लिए गये हैं।'

'ऐसा स्वस्थ, हृष्ट-पुष्ट, तेजस्वी युवक नन्द आज सवेरे मर गया' यह सुनते ही गोरा के शरीर में बिजली दौड़ गई। वह पत्थर की मूर्ति के समान अचल खड़ा रहा। यद्यपि नन्द एक साधारण बढ़ई का लड़का था, परन्तु उसके अभाव में गोरा को संसार सूना दिखाई देने लगा। उसकी मृत्यु पर शोक करने वालों की संख्या कम थी, परन्तु गोरा के हृदय की दशा एकदम विचित्र हो गई। नन्द के जैसा दृढ़ जीवन उसने आज तक नहीं देखा था।

यह पूछने पर कि उसकी मृत्यु कैसे हुई, उसे पता चला कि उसे पक्षाघात रोग हो गया। नन्द के पिता ने डॉक्टर बुलाकर उसे दिखाना चाहा था परन्तु उसकी माँ ने यह कहकर रोक दिया था कि उसके बेटे को भूत लगा है। भूत झाड़ने वाला ओझा रात-भर बैठा हुआ झाड़-फूंक करता रहा

परन्तु वह भूत ऐसा प्रबल था कि आखिर नन्द को पकड़कर ले ही गया। बीमारी के दौरान नन्द ने गोरा को खबर भेजने के लिए घर वालों से कहा था, परन्तु उन्होंने यह सोचकर खबर नहीं दी कि वह आते ही डॉक्टरी इलाज कराने की जिद करने लगेगा।

वहाँ से लौटते समय विनय ने कहा—'मूर्खता है! क्या रोग था और क्या इलाज हुआ!'

गोरा बोला—'इस मूर्खता की बात को एक ओर रखकर तथा स्वयं को हमसे अलग समझकर, तुम शान्ति प्राप्त करने की चेष्टा करो। यदि तुम इसे अच्छी तरह समझ पाते तो कभी इसे मामूली बात कहकर भुला देने की चेष्टा न करते।'

मन की उत्तेजना के समान गोरा के पैरों की गति भी बढ़ने लगी। विनय चुपचाप उसके साथ तेजी से चलने लगा।

कुछ देर तक चुपचाप चलने के बाद गोरा ने कहा—'नहीं, मैं इस विषय को सहसा नहीं सह सकूंगा। यह जो भूत वाला ओझा मेरे नन्द को मार गया है, उसकी सख्त चोट मेरे हृदय पर लगी है—सारे देश को लगी है। मैं इन बातों को साधारण समझकर छोड़ दूंगा तो सारे देश का अनिष्ट होगा।'

इतने पर भी जब विनय ने कुछ न कहा, तब गोरा गरजता हुआ बोला—'विनय, तुम अपने मन में जो सोच रहे हो मैं उसे भली-भांति समझ रहा हूँ। तुम सोच रहे हो कि इसका प्रतिकार आने में अभी बहुत समय है, परन्तु मैं यह नहीं मानता। मेरे देश पर जो दुःख पड़ रहा है, उस सबका प्रतिकार अवश्य है, चाहे वह कठिन ही क्यों न हो। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि वह प्रतिकार हमीं लोगों के पास है। इसलिए मैं सब ओर से दुःख, दुर्गति तथा अपमान को सह रहा हूँ।'

विनय ने कहा—'इस देशव्यापी दुर्गति के समक्ष मैं अपना विश्वास स्थिर रखने में असमर्थ हूँ।'

गोरा—'दुर्गति अथवा दुःख सदा रहेगा, मैं इसे स्वीकार नहीं करता। तमाम संसार की दमन-शक्ति तथा प्राण-शक्ति उसे भीतर अथवा बाहर से केवल आघात ही पहुंचा रही है। विनय, मैं तुमसे कहता हूँ कि देश अवश्य

मुक्त होगा। यह असम्भव नहीं है। यह दृढ़ विश्वास लेकर ही हमें सावधान रहना होगा। तुम तो यह सोचकर निश्चिन्त बैठे हो कि भारतवर्ष अपनी स्वाधीनता के लिए किसी दिन युद्ध करेगा, परन्तु मैं कहता हूँ कि युद्ध आरम्भ हो गया है। प्रयत्न बराबर चल रहे हैं। इस समय यदि तुम हाथ पर हाथ रखे बैठे रहे तो इससे बड़ी कायरता और क्या होगी ?'

विनय—'गोरा, देखो मेरा तुमसे एक ही मतभेद है। मैं देखता हूँ कि देश में जो काम हो रहा है, उसके सम्बन्ध में तुम नित्य ही नये दृष्टिकोण से विचार करते हो। जिस प्रकार हम अपने श्वास-प्रश्वास को भूले हुए हैं, उसी प्रकार हम सबको ही भूल बैठे हैं। हम न कोई आशा करते हैं और न निराश ही हैं। न हमें सुख है, न दुःख है। समय बड़ी उदासी से बीत रहा है। चारों ओर से घेरे में पड़कर हम अपनी अथवा अपने देश की तो बात भी नहीं सोच सकते।'

गोरा का मुँह एकाएक लाल हो गया। उसके मस्तक की नसें तन गईं। उसने तेजी से जाते हुए एक गाड़ी वाले को अपनी तेज आवाज द्वारा, सड़क के लोगों को चकित करते हुए कहा—'गाड़ी रोको! उस गाड़ी को रोको!' उस गाड़ी को एक मोटा बाबू हाथों में घड़ी बाँधे हुए हाँक रहा था। उसने एक बार पीछे की ओर मुड़कर देखा, फिर अपने पीछे एक आदमी को दौड़कर आते देख, दोनों तेज घोड़ों को चाबुक लगा, पल-भर में गाड़ी को भगा ले गया।

एक बूढ़ा मुसलमान फल, अण्डे, तरकारी, रोटी तथा मक्खन से भरी एक डलिया को अपने सिर पर रखे चला जा रहा था। घड़ी व चश्माधारी बाबू ने उसे गाड़ी के सामने से हट जाने के लिए जोर से पुकारा, परन्तु उस बूढ़े ने आवाज नहीं सुनी। इससे पूर्व कि गाड़ी उसके ऊपर होती हुई निकल जाती, एक आदमी ने आगे बढ़कर, उसका हाथ पकड़, अपनी ओर खींच लिया। इस प्रकार उसके प्राण तो बच गये, परन्तु उसकी टोकरी सिर से लुढ़ककर पृथ्वी पर जा गिरी और सारा सामान इधर-उधर फैल गया। गाड़ी वाले बाबू ने क्रुद्ध होकर उसे 'डैम-सुअर' की गाली दी तथा उसके मुँह पर तड़ाक से एक चाबुक मारकर, घोड़ों की रास ढीली कर दी। चाबुक की चोट लगते ही बुड्ढे के सिर से खून बहने लगा। उसने 'अल्लाह' कहकर एक लम्बी साँस ली तथा धरती पर बिखरी हुई चीजों को उठा-

उठाकर टोकरी में रखना आरम्भ कर दिया। गोरा भी आगे बढ़कर उसकी चीजों को उठाने में मदद देने लगा। यह देखकर उस बूढ़े मुसलमान बटोही ने अत्यन्त लज्जित होते हुए कहा—'बाबू, आप क्यों कष्ट कर रहे हैं ? ये चीजें तो खराब हो गईं। अब किसी काम न आयेंगी।'

गोरा जानता था कि उसकी सहायता करना आवश्यक है। टोकरी भर जाने पर उससे कहा—'तुम्हारी जो चीजें खराब हो गईं, उनका दाम मालिक से न मिलेगा। इसलिए तुम मेरे घर चलो, मैं तुम्हें पूरा दाम देकर ये चीजें खरीद लूंगा। परन्तु एक बात मैं तुमसे कहता हूँ कि तुमने इस अपमान को जो चुपचाप सह लिया है, उसके लिए अल्लाह तुम्हें कभी क्षमा न करेगा।'

उसने कहा—'अल्लाह मुझे क्यों सजा देगा ? जो अपराधी है उसी को सजा मिलेगी।'

गोरा—'अन्याय सह लेने वाला भी अपराधी होता है। यदि वह न सहा जाये तो फिर कोई किसी से अन्यायपूर्ण व्यवहार कर ही नहीं सकेगा। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि सहिष्णुता कोई गुण नहीं है, उसे एक प्रकार का दोष ही समझना चाहिये। सहिष्णु लोगों से दुष्टों की संख्या बढ़ती है। तुम्हारे मुहम्मद साहब इसको जानते थे, इसलिए वे धर्म-प्रचार में सहिष्णुता से काम नहीं लेते थे।'

गोरा का घर वहाँ से दूर था। अतः वह उस बूढ़े मुसलमान को विनय के घर ले गया। गोरा ने मेज की दराज के सामने खड़े होकर विनय से कहा—'रुपया निकालो।'

विनय बोला—'इतनी जल्दबाजी क्यों करते हो ? अभी दिये देता हूँ।' कहकर वह चाबी ढूंढ़ने लगा, परन्तु वह न मिली। तब गोरा ने अधिक प्रतीक्षा न कर, बन्द दराज को जोर से खींच लिया। उससे ताला टूट गया और दराज बाहर निकल आया।

दराज खुलते ही गोरा की दृष्टि सबसे पहले उसमें रखे हुए परेश बाबू के परिवार के चित्र पर पड़ी। उस चित्र को विनय ने अपने मित्र सतीश से प्राप्त किया था।

गोरा ने रुपये लेकर उस बूढ़े मुसलमान को दे दिये, परन्तु चित्र के विषय में कुछ न कहा। गोरा की चुप्पी देखकर विनय ने भी कोई बात नहीं

छेड़ी। परन्तु यदि चित्र के विषय में दो-चार बातें हो जातीं तो उसका मन हल्का अवश्य हो जाता।

तभी गोरा ने एकाएक कहा—'अच्छा, अब मैं चलता हूँ।'

विनय बोला—'माँ ने मुझे भी तुम्हारे ही घर खाने को बुलाया है। अतः मैं भी साथ ही चलता हूँ।'

दोनों घर से बाहर निकले। मार्ग में गोरा कुछ न बोला। दराज के चित्र ने उसे यह अनुभव करा दिया था कि विनय के हृदय में एक ऐसी गुप्त धारा बह रही है, जिससे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

घर के समीप पहुँचते ही दिखाई दिया कि महिम द्वार पर खड़े हुए मार्ग की ओर देख रहे हैं। दोनों को एक साथ आते देख, वे बोले—'क्या बात है? कल रात-भर तुम दोनों जागते रहे। मैं समझ रहा था कि अब कहीं सड़क के किनारे जाकर सो गए होगे। दिन भी बहुत चढ़ आया। अच्छा, विनय बाबू अब तुम स्नान कर लो।'

इस प्रकार विनय को स्नान के लिए भेजकर महिम ने गोरा से कहा—'गोरा, जो बात मैंने कही थी, तुम उस पर कुछ विचार करो। तुम्हें विनय के सम्बन्ध में यह सन्देह है कि वह हिन्दू धर्म के आचार-विचार को नहीं मानता, परन्तु तुम्हीं सोचो कि ऐसा कट्टर हिन्दू पात्र आजकल कहाँ मिल सकता है? केवल कट्टर हिन्दू होने से ही काम नहीं चलेगा, लड़के का शिक्षित तथा सुशील होना भी आवश्यक है। यदि तुम्हारे भी लड़की होती तो तुम्हारी राय भी अवश्य मेरी जैसी ही होती।'

गोरा बोला—'ठीक है। मैं समझता हूँ, विनय को भी इसमें कोई ऐतराज न होगा।'

महिम—'तो सुनो, विनय की आपत्ति की चिन्ता नहीं, मैं तो तुम्हारी अस्वीकृति से डरता हूँ। तुम एक बार स्वयं विनय से इसके लिए अनुरोध करो, मैं यही चाहता हूँ। यदि उससे काम न चला तो फिर मैं कुछ कहूँगा।'

गोरा—'अच्छा।'

महिम ने मन-ही-मन कहा—'अब क्या है, काम हो गया। मिठाई के लिए हलवाई को, दूध-दही के लिए अहीर को अभी बयाना दिए आता हूँ।'

अवसर पाकर गोरा ने विनय से कहा—'तुम्हारा विवाह शशिमुखी के साथ करने के लिए दादा बहुत जोर डाल रहे हैं। इस सम्बन्ध में तुम क्या

कहते हो ?'

विनय बोला—'पहले तुम बताओ कि तुम्हारी क्या राय है ?'

गोरा—'मेरी राय में कोई बुराई नहीं है।'

विनय—'पहले तो तुम बुरा बताते थे और यह कहते थे कि हम दोनों कभी विवाह न करेंगे।'

गोरा—'परन्तु अब यह निश्चित रहा कि तुम विवाह करो, मैं नहीं करूंगा।'

विनय—'एक स्थान की यात्रा में दो रातें और दो फल किसलिए ?'

गोरा—'दो रात्रियां तथा दो फल होने के भय से ही व्यवस्था करनी पड़ती है। परमात्मा किसी को सहसा ही भार-ग्रस्त तथा किसी को भार-हीन बनाते हैं। इन दोनों प्रकार के जीवों को यदि मिलकर चलना हो तो एक के ऊपर बाहरी बोझ डालकर दोनों का भार बराबर कर लेना चाहिए। तुम जब विवाह की जिम्मेदारी से दबोगे, तभी हम दोनों एक गति से चल सकेंगे।'

विनय हँसकर बोला—'यदि यही बात है तो इस ओर कुछ भी रख दो।'

गोरा—'इस वजन के सम्बन्ध में तुम्हें कोई आपत्ति तो नहीं है ?'

विनय—'जब वजन रखना आवश्यक ही हो तो जो मिल जाये, उसी से काम चलाया जा सकता है। वह कुछ भी क्यों न हो।'

विनय अच्छी तरह समझ रहा था कि गोरा ने इस विवाह में इसीलिए विशेष उत्साह दिखाया है कि कहीं वह परेश बाबू के परिवार में अपना विवाह न कर बैठे। यह ध्यान में आते ही विनय मन-ही-मन हँस पड़ा। दोपहर को भोजनोपरान्त, सारा दिन नींद में बीता। जब संसार के ऊपर सन्ध्या के अन्धकार का पर्दा गिरा, उस समय छत पर बैठे हुए विनय ने सीधे आकाश की ओर देखते हुए कहा—'गोरा, मैं तुमसे एक बात कहता हूँ। हम लोगों के स्वदेश-प्रेम में कोई बहुत बड़ी कमी है। इसीलिए हम आधे भारतवर्ष को देख पाते हैं।'

'सो कैसे ?' गोरा ने पूछा।

'हम लोग भारतवर्ष को केवल पुरुषों का ही देश समझते हैं। स्त्रियों की ओर हमारा ध्यान ही नहीं जाता।'

'सम्भवतः तुम अंग्रेजों की भाँति स्त्रियों को घर-बाहर, जल-थल, शून्य, आहार, आमोद-प्रमोद, कार्य तथा अन्य सभी स्थानों पर देखना चाहते होगे। परन्तु इसका परिणाम यह होगा कि तुम पुरुषों की अपेक्षा नारियों को ही अधिक देखते रहोगे। इस प्रकार दृष्टि का सामंजस्य नष्ट हो जायेगा।'

'न, मेरी बातों को इस प्रकार उड़ा देने से काम न चलेगा। मैं स्त्रियों को अंग्रेजों की भाँति देखूँ अथवा नहीं, इस बात को तुम क्यों उठाते हो? मेरा अभिप्राय तो यह है कि हम लोग स्वदेश के भीतर स्त्रियों वाले आधे अंश की यथेष्ट चिन्ता नहीं करते। तुम्हारी ही बात करता हूँ, तुम स्त्रियों के सम्बन्ध में पल भर को भी नहीं सोचते। जैसे तुम्हारी दृष्टि में देश स्त्रियों से रहित है। परन्तु इस प्रकार समझना, सत्य जानना नहीं है।'

गोरा ने कहा—'मैंने जब अपनी माँ को देखा और जाना, तभी अपने देश की सभी स्त्रियों को भी जान लिया। मेरी तो यही धारणा है।'

'यह तो तुम अपने को भुलावे में डालने के लिए एक बात गढ़ कर कह रहे हो।' विनय ने उत्तर दिया—'घर के भीतर यदि स्त्रियों को देखा जाय तो वास्तव में उनको यथार्थ रूप में देखना नहीं है। यदि मैं अंग्रेजों के समाज से कोई तुलना करूँ तो तुम क्रुद्ध हो जाओगे, यह जानता हूँ। परन्तु मैं यह अवश्य जानना चाहता हूँ कि हमारी स्त्रियाँ समाज में किस प्रकार प्रकट हों, जिससे मर्यादा का उल्लंघन भी न हो सके? फिर भी, यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि इस प्रकार स्त्रियों को दबाये रखने से स्वदेश हमारे निकट अर्द्धसत्य ही बना हुआ है, वह हमारे हृदय में पूर्ण प्रेम तथा पूर्ण शक्ति नहीं दे पाता।'

गोरा बोला—'जिस प्रकार समय के दो भाग रात और दिन हैं, उसी प्रकार समाज के दो भाग पुरुष और स्त्री हैं। समाज की स्वाभाविक दशा में स्त्रियाँ रात्रि के समान रहेंगी। उनके कार्य गूढ़ एवं एकाकी होंगे। समाज की अस्वाभाविक अवस्था में जहाँ रात को गैस की बत्ती जलाकर दिन बनाया जाता है, उस रोशनी में नाच-गाना किया जाता है, वहाँ स्वाभाविक सन्नाटे का एकान्त भंग हो जाता है, क्षति की पूर्ति नहीं होने पाती, मनुष्य उन्मत्त बना रहता है। इसी प्रकार यदि हम स्त्रियों को कर्म-क्षेत्र में खींच लायेंगे तो उनके निगूढ़ कर्म की व्यवस्था नष्ट हो जाएगी,

समाज का स्वास्थ्य बिगड़ जाएगा तथा शान्ति में विघ्न आ पड़ेगा। इसलिए मैं कहता हूँ कि यदि हम पुरुष यज्ञ के क्षेत्र में रहें तथा स्त्रियाँ घर के भण्डार की देख-रेख रखें, तभी यह सम्पन्न हो सकेगा। जो लोग सम्पूर्ण शक्तियों को एक ही ओर, एक ही स्थान पर, एक ही प्रकार से व्यय करना चाहते हैं, वे उन्मत्त हैं। उनकी उन्मत्तता विनाश की ओर ले जाने वाली है।'

विनय—'गोरा, तुम जो कहते हो मैं उसका प्रतिवाद नहीं करना चाहता, परन्तु मैंने जो कुछ कहा था, उसका प्रतिवाद तुमने भी नहीं किया है। वास्तव में बात···।'

गोरा ने बीच में बात काटते हुए कहा—'देखो विनय, इस विषय को लेकर यदि अधिक बातचीत की जाएगी तो वह बिल्कुल बहस का रूप धारण कर लेगी। मैं समझता हूँ कि स्त्रियों के विषय में आजकल जितने तुम सतर्क एवं सचेत हो उठे हो, उतना मैं कभी नहीं रहा। परन्तु तुम जो अनुभव करते हो, उसे मुझसे भी कराने की असफल चेष्टा मत करो। इस सम्बन्ध में हम दोनों में मतभेद रहना ही क्यों न स्वीकार कर लिया जाए? यही ठीक भी रहेगा।'

गोरा ने बात उड़ा दी। परन्तु बीज को हवा में उड़ा देने से भी वह मिट्टी में गिरता है तथा अवसर पाकर अंकुरित हो जाता है। गोरा ने अपने जीवन-क्षेत्र से स्त्री-जाति को एकदम अलग रखा था। उसे कभी स्वप्न में भी यह अनुभव नहीं हुआ था कि यह अभाव है। आज विनय की बदली हुई हालत को देख, संसार में स्त्री-जाति का विशेष प्रभाव उसके समक्ष प्रत्यक्ष हो उठा। परन्तु उसका स्थान और प्रयोजन क्या है, इस प्रश्न का वह कोई ठीक उत्तर न दे सका। कारण, उसने विनय से बहस नहीं की। जिन विषयों को समझता नहीं, उन पर आलोचना करना उसे स्वीकार नहीं था।

रात्रि के समय जब विनय अपने घर लौटने को हुआ, तब आनन्दमयी उसे अपने पास बुलाकर बोलीं—'भैया, शशिमुखी के साथ तेरा विवाह पक्का हो गया?'

विनय ने सलज्ज मुस्कान लिये कहा—'हाँ माँ, इस शुभ कार्य का संयोजक गोरा है।'

आनन्दमयी बोलीं—'शशिमुखी बहुत अच्छी लड़की है, परन्तु भैया, अभी तू यह लड़कपन मत कर। मैं देखती हूँ आजकल तेरा चित्त स्थिर नहीं है, इसीलिए तू इस काम को झटपट कर डालना चाहता है। अभी सोचने-समझने का समय है। तू सयाना हो चुका है, इतने बड़े कार्य को तुच्छ समझकर मत कर डालना।'

इतना कहकर आनन्दमयी उसके शरीर पर हाथ फेरने लगीं। विनय बिना कुछ कहे धीरे-धीरे चला गया।

१७

आनन्दमयी की इन बातों को सोचता हुआ विनय अपने घर चला गया। उसने आज तक आनन्दमयी की किसी भी बात की उपेक्षा नहीं की थी। उस रात उसके हृदय पर जैसे एक बोझ रखा रहा।

दूसरे दिन प्रातःकाल उठने पर विनय को अपनी तबियत कुछ हल्की-सी लगी। उसे लगा, जैसे उसे किसी भारी बोझ से मुक्ति मिल गई हो। विनय को अनुभव हुआ—जैसे वह गोरा की मित्रता को भारी मूल्य देकर चुका रहा है। उसने शशिमुखी से विवाह करने की स्वीकृति देकर जीवन भर के लिए बन्धन मोल ले लिया है। गोरा ने उसके ऊपर जो यह मिथ्या-सन्देह किया था कि वह किसी ब्राह्म-समाजी की लड़की से विवाह करना चाहता है, सो उसने इस सन्देह से स्वयं को शशिमुखी के साथ विवाह की स्वीकृति जमानत के रूप में रखकर छुड़ा लिया है। इस घटना के पश्चात् विनय परेश बाबू के घर बिना किसी संकोच के और अधिक आने-जाने लगा।

विनय जिसे स्वीकार करे, उसके समीप उसके परिवार का-सा आदमी बन जाना, उसके लिए कोई कठिन बात नहीं है। कुछ ही दिनों में वह परेश बाबू के परिवार में अत्यन्त आत्मीय हो उठा। उसका व्यवहार ही ऐसा सुन्दर था।

ललिता के मन में जब तक यह सन्देह रहा कि सुचरिता का मन विनय की ओर आकर्षित हो गया है, तभी तक वह मन-ही-मन उसके विरुद्ध रही, परन्तु जब उसे यह प्रतीत हो गया कि उसकी यह धारणा भ्रम थी, तब

उसे भी शान्ति प्राप्त हो गई। फिर उसने भी बिना बाधा के विनय को असाधारण व्यक्ति स्वीकार कर लिया।

हारान बाबू विनय से कभी विरक्त नहीं हुए। उन्होंने सबकी अपेक्षा विशेष रूप से यह अनुभव किया था कि विनय एक भला आदमी है और उसे शिष्ट व्यवहार का पूर्ण ज्ञान है। परन्तु उनके मन में यह बात अवश्य बनी रही कि गोरा इस ज्ञान से सर्वथा शून्य है।

हारान बाबू के समक्ष विनय कभी बहस की कोई बात नहीं उठाता था। इसीलिए विनय के द्वारा चाय की मेज पर कभी शान्ति भंग होने का अवसर नहीं आया। परन्तु हारान बाबू की अनुपस्थिति में सुचरिता स्वयं ही विनय को समाज सम्बन्धी मत की चर्चा एवं आलोचना में सम्मिलित कर लिया करती थी। वह यह भी अनुभव करती थी कि गोरा तथा विनय जैसे शिक्षित युवक जिस प्रकार प्राचीन संस्कारों का समर्थन करते हैं उन्हें वह किसी प्रकार दमन नहीं कर सकती है। यदि वह गोरा और विनय को न जानती होती तो उनके मतों का समर्थन किसी दूसरे व्यक्ति से सुनकर, उसे अवज्ञा के योग्य अवश्य ठहरा देती। परन्तु जब से उसने गोरा को देखा, तब से वह उसे अश्रद्धापूर्वक अपने हृदय से निकाल नहीं पाई थी। यही कारण था कि वह अवसर मिलने पर विनय के समक्ष गोरा के मत और जीवन की आलोचना करना आरम्भ कर देती थी। बीच-बीच में वह विनय की बातों का प्रतिवाद करके, अन्त में उससे पेट की बात भी निकलवा लिया करती थी। परेश बाबू यह समझते थे कि सब मतों की बातें सुनना सुचरिता की सर्वतोमुखी शिक्षा के लिए सरल उपाय है। यही कारण था कि वे कभी भी ऐसे तर्क-वितर्कों से सशंकित नहीं हुए और न उनमें कोई बाधा ही पहुँचाई।

एक दिन सुचरिता ने पूछा—'गौर मोहन बाबू क्या वास्तव में जाति-भेद के समर्थक हैं? अथवा वे केवल स्वदेश-प्रेम दिखाने के लिए ऐसा करते हैं?'

विनय ने उत्तर दिया—'क्या आप सीढ़ी के स्तरों को मानती हैं? ये सब भी उसी के विभाग हैं। कोई ऊपर है तो कोई नीचे है।'

सुचरिता—'नीचे से ऊपर चढ़ने के लिए तो मानना ही पड़ेगा। न मानने का कोई कारण नहीं है। परन्तु समतल भूमि में सीढ़ी न मानने के

सिद्धान्त से भी काम चल सकता है।'

विनय—'आप ठीक कहती हैं। हमारा समाज एक सीढ़ी के समान है। जाति-भेद और वर्णाश्रम का एक ही उद्देश्य है—मानव जीवन को नीचे से उठाकर एक परिणाम पर ले जाना। यदि हमारी धारणा यह होती कि समाज का परिणाम यह संचार ही है तो किसी भी विभागीय व्यवस्था की आवश्यकता नहीं थी। उस समय यूरोपियन समाज की भाँति हममें से कोई भी एक दूसरे की अपेक्षा अधिकतर अपना अधिकार प्राप्त करने के लिए छीना-झपटी और मार-काट न करता।'

सुचरिता—'क्षमा करें, आपकी बात मेरी समझ में नहीं आई। आप जिस उद्देश्य से समाज में वर्ण-भेद का प्रचलन बताते हैं, क्या उस उद्देश्य को आप सफल हुआ मानते हैं?'

विनय—'पृथ्वी पर सफलता का स्वरूप देख पाना कठिन है। भारत ने जाति-भेद नाम से जिस सामाजिक समस्या का उत्तर दिया था, वह अभी जीवित है। यूरोप में सामाजिक समस्या का कोई उचित उत्तर आज तक नहीं दे सका। वहाँ केवल हाथापाई ही हो रही है। परन्तु भारतवर्ष का यह उत्तर मानव-समाज को अभी तक सफलता की प्रतीक्षा करा रहा है।'

सुचरिता ने संकोचपूर्ण भाव से पूछा—'आप नाराज न हों, कृपया सच बात कहिएगा। इन बातों को आप गौर मोहन बाबू की प्रतिध्वनि की भाँति कह रहे हैं अथवा इन पर आपको स्वयं भी विश्वास है?'

विनय हँसकर बोला—'मैं आप से कह रहा हूँ। गोरा की भाँति मेरा विश्वास शक्तिशाली नहीं है। जाति-भेद की गन्दगी तथा समाज के किनारों को जब मैं देखता हूँ तो मन में भाँति-भाँति के सन्देह करता हूँ। परन्तु गौर मोहन बाबू कहते हैं, बड़ी वस्तु को जब छोटे रूप में देखा जाता है, तभी सन्देह उत्पन्न होता है। वृक्ष की टूटी हुई शाखा तथा सूखी पत्तियों को देखकर, उसे वृक्ष की चरम सीमा मान लेना ही बुद्धि का विकार है। मैं टूटी हुई शाखा की बात तो नहीं कहता, परन्तु मेरा मत है कि सम्पूर्ण वनस्पति को देखकर ही उसका तात्पर्य समझने की चेष्टा करनी चाहिये।'

सुचरिता बोली—'वृक्ष के रूखे पत्तों पर चाहे ध्यान न दिया जाये, परन्तु उसके फल को तो देखना ही होगा। हमारे देश के लिए जाति-भेद

रूपी फल कैसा है ?'

विनय—'आप जिसे जाति-भेद का फल बता रही हैं, वह वास्तव में अवस्था का फल है। हिलते हुए दाँतों से किसी वस्तु को चबाने में पीड़ा होती है, उसमें सब दाँतों का कोई अपराध नहीं है। उसके लिए तो केवल हिलता हुआ दाँत ही अपराधी है। हम लोगों के भीतर अनेक कारणों से विकार एवं दुर्बलताओं का प्रवेश हो गया है। इसीलिए हम भारतवर्ष के उद्देश्यों को सफल न बनाकर, विकृत ही कर रहे हैं। गौर बाबू इसीलिए तो कहते है—स्वस्थ तथा सबल बनो।'

सुचरिता—'अच्छा, तो क्या आप वास्तव में ब्राह्मण जाति को देवता मानते हैं और यह विश्वास रखते हैं कि ब्राह्मणों की चरण-रज से मनुष्य पवित्र हो जाता है ?'

विनय—'इस संसार में अनेक प्रकार के सम्मान करना ही हमारी सृष्टि का रहस्य है। ब्राह्मण को यदि हम वास्तव में ब्राह्मण बना सकें, तो क्या वह कम लाभदायक होगा ? हम नर-देव चाहते हैं। यदि हम वास्तव से ही नर-देव को चाहें तो उसे अवश्य पा सकेंगे। अन्यथा जो पापी अनेक प्रकार के दुष्कर्म करते हैं तथा जिनका पेशा ही हमारे मस्तक पर अनेक पैरों की धूलि लगाना है, वे तो पृथ्वी पर केवल बोझ ही बढ़ाते रहेंगे।'

सुचरिता—'ठीक, क्या आपके वास्तविक नर-देव आजकल कहीं मिल सकते हैं ?'

विनय—'जिस प्रकार बीज के भीतर वृक्ष रहता है, उसी प्रकार वे भी भारतवर्ष के वास्तविक अभिप्राय एवं प्रयोजन के भीतर मौजूद हैं। अन्य देश वेलिंगटन के समान सेनापति, न्यूटन के समान वैज्ञानिक तथा रथचाईल के समान धनाड्य व्यक्ति चाहते हैं, परन्तु हमारा देश वास्तविक ब्राह्मण को चाहता है। ब्राह्मण वास्तव में वह है जिसे भय नहीं है, जो लोभ से घृणा करता है, जो कष्टों पर सहनशीलता से विजय प्राप्त करता है, जो अभावों पर दृष्टि नहीं डालता, जिसने विशुद्ध हृदय को परब्रह्म में लीन कर रखा है, जो अटल है, शान्त है तथा युक्त है; उसी ब्राह्मण को भारतवर्ष चाहता है। उसी ब्राह्मण को जब वह यथार्थ भाव से प्राप्त करेगा, तभी स्वाधीन होगा। हम भारतवासी राजा के आगे अपना मस्तक झुकाते हैं। अत्याचारी का बन्धन स्वयं ही अपने गले में डाल लेते हैं, हमारा सिर

अपने भय के सम्मुख झुका हुआ है। हम अपने ही लोभ-जाल में जकड़े हुए हैं, हम अपनी ही मूर्खता के दासानुदास हैं। ब्राह्मण तपस्या करें और उस भय, लोभ तथा मूर्खता से हमें मुक्त करें। हम उनके समीप युद्ध नहीं चाहते, वाणिज्य नहीं चाहते और न उनसे हमारा कोई अन्य प्रयोजन ही है।'

परेश बाबू अब तक चुपचाप सुन रहे थे। उन्होंने धीरे से कहा—'मैं यह तो नहीं कह सकता कि मैं भारतवर्ष को जानता हूँ और न यही जानता हूँ कि भारत ने क्या चाहा था और उसे कभी मिला भी या नहीं, परन्तु प्रश्न यह है कि जो समय बीत गया, क्या वह फिर कभी लौटकर आ सकता है? हमारी साधना का विषय यही है, जो वर्तमान में सम्भव है। अतीत की ओर हाथ बढ़ाकर समय नष्ट करने से भला क्या काम हो सकता है?'

विनय बोला—'आप जो कह रहे हैं, मैंने भी उस पर कई बार सोचा है, परन्तु गौर बाबू का कहना है कि हम अतीत को भूल बैठे हैं, क्या इसीलिए वह अतीत हो गया? कोई भी सत्य कभी अतीत होता ही नहीं।'

सुचरिता बोली—'आप जिस प्रकार बातें कर रहे हैं, उस प्रकार साधारण आदमी अपनी नहीं कहते—इसलिए आपके मत को सम्पूर्ण देश की वस्तु मान लेने में सन्देह होता है।'

विनय—'हमारे देश में जो साधारण लोग अपने हिन्दुपन का अभिमान करते हैं, उस कोटि में आप गौर मोहन बाबू को मत समझिए। वे तो हिन्दू धर्म को भीतर से तथा बहुत बड़े रूप में देखते हैं। वे कभी ऐसा नहीं सोचते कि हिन्दू-धर्म का प्राण इतना कोमल है कि थोड़ी-सी छुआछूत से ही सूख जाता है अथवा साधारण से आघात से ही उसकी मृत्यु हो जाती है।'

सुचरिता—'परन्तु देखा तो यही जाता है कि वे छुआछूत के विषय में बड़ी सावधानी से काम लेते हैं।'

विनय—'उनकी यह सतर्कता एक अद्भुत चीज है। यदि उनसे प्रश्न किया जाये तो वे तुरन्त उत्तर देंगे—'हाँ, मैं यह जानता हूँ कि छू लेने से जाति का चला जाना अथवा खा लेने से पाप का लगना भ्रामक सत्य है'—परन्तु मैं यह अवश्य जानता हूँ कि ये सब उनकी जोर-जबर्दस्ती की बातें हैं।

ये बातें जितनी असंगत हैं, उतना ही वे इन पर अधिक जोर देते हैं। मूर्ख लोग वर्तमान आचार की साधारण बात को अस्वीकार कर, कहीं बड़ी बातों को भी कुसंस्कार कहकर अश्रद्धा की दृष्टि से देखने लगें, इसलिए गौर मोहन बाबू बिना विचार किये सभी बातों पर चलना चाहते हैं। यहाँ तक कि मेरे सामने भी अपनी इन बातों के सम्बन्ध में कुछ भी शिथिलता नहीं दिखाते।'

परेश बाबू—'ब्राह्म लोगों में भी इस प्रकार के बहुत से लोग हैं। वे इस शंका से कि कहीं कोई अपनी भूल से भी यह न समझ बैठे कि वे हिन्दू-धर्म की कुप्रथाओं को स्वीकार करते हैं, हिन्दू आचार से सभी प्रकार का सम्पर्क, बिना कोई विचार किये ही समाप्त कर देना चाहते हैं। वे या तो ढोंग रचते हैं अथवा हर काम को आवश्यकता से अधिक करते हैं। वे यह समझते हैं कि सत्य दुर्बल है, इसीलिए कला-कौशल अथवा शक्ति द्वारा ही वे उसकी रक्षा करना अपना कर्तव्य समझते हैं। 'सत्य मेरे ऊपर निर्भर है, मैं सत्य के ऊपर निर्भर हूँ'—जिन लोगों की ऐसी धारणा होती है, वे ही कट्टर कहे जाते हैं। मेरी तो ईश्वर से यही प्रार्थना है 'कि चाहे ब्राह्मण समाज हो अथवा देवमन्दिर, मैं बिना विद्रोह किये ही सत्य को सदैव मस्तक झुकाकर प्रणाम किया करूँ—ऐसा मुझे बल दे। कोई बाधा मुझे उससे रोक न सके।'

परेश बाबू इतना कहकर चुप हो गये, जैसे उन्होंने अपने हृदय का समाधान कर लिया था। उन्होंने इन शब्दों द्वारा सम्पूर्ण आलोचना के ऊपर, जैसे कोई एक बड़ा 'स्वर' गूंजा दिया। वह स्वर कोई बातों का साधारण स्वर नहीं, अपितु परेश बाबू की प्रशान्त गम्भीरता का उच्च स्वर था। सुचरिता और ललिता के मुख पर आनन्द मिश्रित भक्ति की एक आभा खिल उठी। विनय चुप रहा। वह मन-ही-मन यह अनुभव कर रहा था कि गोरा के भीतर एक प्रचण्ड जबर्दस्ती है। सत्य का प्रचार करने वालों के वाक्य, मन तथा कर्म में जो एक स्वाभाविक, सरल शान्ति होनी चाहिये, वह उसमें नहीं है। परेश बाबू की बातों ने उसके हृदय के भावों पर जैसे एक और आघात किया।

रात को सुचरिता अपने बिस्तर पर जा लेटी। ललिता भी उसके पलंग के किनारे आ बैठी। सुचरिता ने अनुभव किया कि ललिता मन की

किसी बात को कहने के लिए व्याकुल है। यह भी उसने अनुमान कर लिया कि यह बात विनय के सम्बन्ध में ही हो सकती है। यह विचार कर उसने स्वयं ही बात आरम्भ की और बोली—'मुझे विनय बाबू बड़े भले लगते हैं।'

ललिता ने कहा—'वे गौर बाबू की बातों को ही घुमा-फिराकर कहते हैं, इसलिए शायद तुम्हें पसन्द हैं।'

सुचरिता इन शब्दों के भीतर छिपे हुए संकेत को समझकर भी टाल गई। उसने सरलतापूर्वक कहा—'है तो यह सत्य परन्तु उनके मुँह से गौर बाबू की बातें सुनने में मुझे बड़ा आनन्द आता है, जैसे मैं गौर बाबू को प्रत्यक्ष देख रही होऊँ।'

ललिता—'परन्तु मुझे अच्छा नहीं लगता, यों कहो कि क्रोध भी आ जाता है।'

सुचरिता ने आश्चर्य से भरकर पूछा—'क्यों ?'

ललिता—'गोरा ! गोरा ! गोरा ! रात-दिन केवल गोरा की धुन ही लगी रहती है। माना कि उनके मित्र गोरा बहुत बड़े और अच्छे आदमी हैं, परन्तु हैं तो मनुष्य ही।'

सुचरिता ने हँसते हुए कहा—'हैं तो, परन्तु उनके मनुष्यत्व में कमी क्या आ गई ?'

ललिता—'उनके मित्र ने उन्हें इस प्रकार ढक रखा है कि वे स्वयं को प्रगट भी नहीं कर पाते। जैसे किसी के सिर पर भूत सवार हो गया हो। ऐसी अवस्था वाले मनुष्य पर मुझे क्रोध आता है और उस भूत से भी अश्रद्धा हो जाती है।'

ललिता की झल्लाहट देख, सुचरिता चुपचाप हँस पड़ी।

ललिता ने कहा—'दीदी ! तुम हँस रही हो, परन्तु मैं तुमसे कहती हूँ कि यदि कोई व्यक्ति इस प्रकार मुझे ढकने का प्रयत्न करता है तो मैं उसे एक दिन भी सहन नहीं करती। मान लो तुम्हीं हो, तुमने मुझे अपने प्रभाव से ढक नहीं रखा है—इसीलिए मैं तुम्हें इतना चाहती और मानती हूँ। वास्तविक बात यह है कि तुम्हें यह शिक्षा बाबूजी से मिली है, क्योंकि वे प्रत्येक के लिए उसका स्थान छोड़ देते हैं।'

सुचरिता और ललिता दोनों ही इस परिवार में परेश बाबू की अनन्य

भक्त थीं। 'बाबूजी' कहते ही उनकी छाती जैसे फूल उठती थी।

सुचरिता बोली—'बाबूजी से भी भला किसकी तुलना की जा सकती है? परन्तु बहिन, कुछ भी क्यों न हो, विनय बाबू में बोलने की शक्ति बड़ी ही विलक्षण है।'

ललिता—'ये विचार उनके अपने हृदय के नहीं हैं, इसलिए वे उन्हें अलंकारित ढंग से बोल सकते हैं। यदि वे अपने विचारों को कहते तो उनकी बातचीत अधिक सरल और स्वाभाविक होती। मुझे तो ऐसे अद्‌भुत ढंग से बोलने की अपेक्षा, स्वाभाविक ढंग से बोलना अधिक प्रिय है।'

सुचरिता—'तुम नाराज होती हो बहिन? गौर मोहन बाबू की बातें ही विनय बाबू की अपनी बातें बन गई हैं। दोनों अभिन्न हृदय मित्र जो हैं।'

ललिता—'यदि यह बात है तो और भी बुरी है। ईश्वर ने हमें बुद्धि इसलिए नहीं दी कि हम दूसरे के विचारों की व्याख्या और वर्णन करें। मुझे ऐसी अद्‌भुत बातें नहीं सोचनी चाहिये।'

सुचरिता—'परन्तु तू यह नहीं समझती कि विनय बाबू और गौर मोहन बाबू का हृदय मिलकर एक हो गया है। दोनों परम-स्नेही हैं।'

ललिता को अब असह्य हो उठा। बोली—'नहीं, यह बात नहीं है। दोनों हृदयों में पूर्ण मेल नहीं हुआ। वास्तव में यह बात है कि गौर मोहन बाबू को बड़ा मानकर, उनके पीछे चलना विनय बाबू के स्वभाव में भर गया है। यह उनकी दासता है, स्नेह नहीं है। वे जबर्दस्ती यह समझाना चाहते हैं कि गौर मोहन बाबू से उनका मत पूर्णतः मिल जाता है। प्रीति जहाँ होती है, वहीं प्रीति पात्र के साथ मतभेद होने पर भी उसके कोई आँच नहीं पहुँचती। मनुष्य अन्धभक्त हुए बिना भी आत्म-त्याग कर सकता है तथा दूसरे को मानकर चल सकता है। विनय बाबू में यह बात नहीं है। वे गौर बाबू की बातों को प्रेम के कारण ही मानते हैं, हृदय से स्वीकार नहीं कर पाते। यह उनकी बातों से ही प्रतीत होता है। दीदी! सच कहना, क्या तुम यह नहीं समझीं?'

ललिता की बात यहाँ तक पहुँचेगी, यह सुचरिता ने सोचा ही नहीं था। उसका कौतूहल गोरा को सम्पूर्ण रूप से जानने के लिए ही था। वह विनय को गोरा से अलग नहीं करना चाहती थी। अतः ललिता के प्रश्न

का स्पष्ट उत्तर न देते हुए वह बोली—'अच्छा, तेरी बात स्वीकार किए लेती हूँ। बता, अब क्या करना होगा ?'

'मेरा हृदय चाहता है कि मैं विनय बाबू को उनके मित्र के बन्धन से छुड़ाकर मुक्ति दिलवा दूँ।'

सुचरिता—'बहिन ! बात तो अच्छी है, प्रयत्न कर देखो।'

ललिता—'यह कार्य केवल मेरे किए से न होगा। तुम भी यदि ध्यान दो तो हो सकता है।'

सुचरिता यद्यपि यह समझ चुकी थी कि विनय उस पर आसक्त है, तो भी इस समय उसने ललिता की बात हँसकर टाल देना चाहा।

ललिता बोली—'वे जब गौर बाबू के शासन-बन्धन को ढीला करके तुम्हारे पास आते हैं तथा तुमसे आश्रय प्राप्ति की इच्छा करते हैं, आत्म-समर्पण का भाव प्रकट करते हैं तभी वे मुझे अच्छे लगते हैं। इस अवस्था में कोई अन्य व्यक्ति होता तो, वह निश्चय ही ब्राह्म-समाजी महिलाओं को बुरा-भला कहकर एक नाटक लिख डालता, परन्तु उनका हृदय अब भी उदार है। इसका यही प्रमाण है कि वे बाबूजी पर भक्ति रखते हैं तथा तुम्हें चाहते हैं। दीदी, विनय बाबू को अपने पैरों पर खड़ा करना होगा। उन्हें परावलम्बी से स्वावलम्बी एवं स्वाभिमानी बनाना होगा। वे जो केवल गौर मोहन बाबू के मत का प्रचार करते रहते हैं, यही मेरे लिए असह्य है।'

इसी समय वहाँ 'दीदी, दीदी' कहता हुआ सतीश आ पहुँचा। आज विनय उसको किले के मैदान में सर्कस दिखाने के लिए ले गया था। यद्यपि रात बहुत बीत चुकी थी परन्तु यह बालक अपने सर्वप्रथम सर्कस देखने के उत्साह, आनन्द एवं आश्चर्य को सँभाल नहीं पाया था। उसने सर्कस का वर्णन करते हुए कहा—'मैं आज विनय बाबू को अपने ही पलंग पर सोने के लिए पकड़े ला रहा था। वे दरवाजे के भीतर आये भी परन्तु वैसे ही वापिस लौट गए। बोले, कल आऊँगा। दीदी, मैंने उनसे कहा कि एक दिन तुम्हें भी सर्कस दिखा लायें।'

ललिता ने प्रश्न किया—'इस पर वे क्या बोले ?'

वे बोले—'स्त्रियाँ बाघ देखकर डर जायेंगी, परन्तु दीदी मैं तो जरा भी न डरा।' कहकर सतीश ने पौरुष के अभिमान में अपनी छाती को फुला दिया।

ललिता बोली—'सो तो ठीक है। तुम्हारे मित्र हारान बाबू कितने साहसी हैं, यह मेरी समझ में खूब आ गया है। पर भाई, तुम्हें हम लोगों को सर्कस दिखाने के लिए साथ ले ही चलना होगा।'

सतीश—'कल तो सर्कस दिन में होगा।'

ललिता—'यह और भी अच्छा रहा। हम दिन में ही सर्कस देखने चलेंगे।'

दूसरे दिन विनय के आने पर ललिता ने कहा—'लो, विनय बाबू ठीक समय पर आ गये, चलिए।'

विनय ने पूछा—'कहाँ चलना है ?'

ललिता—'सर्कस।'

'सर्कस ?' विनय हतबुद्धि-सा रह गया। उसने सोचा, 'दिन के समय हजारों पुरुषों के सामने वह औरतों को लेकर सर्कस कैसे जायेगा ?'

ललिता बोली—'हमें साथ ले जाने से शायद गौर बाबू नाराज होंगे। क्यों विनय बाबू यही बात है ?'

ललिता का यह प्रश्न सुनकर विनय चौंक पड़ा।

वह फिर बोली—'औरतों को सर्कस ले जाने के सम्बन्ध में भी क्या गौर बाबू की राय निश्चित है।'

विनय ने कहा—'निश्चित है।'

ललिता—'वह क्या है ? आप तनिक उसकी व्याख्या कर दीजिए। मैं दीदी को बुलाये लाती हूँ, वह भी सुन लेंगी।'

विनय ठठाकर हँस पड़ा।

ललिता ने पूछा, 'विनय बाबू, आप हँसते क्यों हैं ? कल आपने सतीश को बताया था कि स्त्रियाँ बाघ से डरती हैं। क्या आप भी किसी से डरते हैं ?'

इसके पश्चात् उस दिन विनय उन महिलाओं को लेकर सर्कस गया। ललिता तथा उस घर की अन्य स्त्रियों को यह बात उसके व गोरा के सम्बन्ध में न जाने कैसी लगी होगी, यह विचार उसके हृदय में हल-चल मचाने लगा।

उसके पश्चात् जब विनय की भेंट ललिता से हुई तो उसने आश्चर्य

का-सा भाव दिखाते हुए पूछा—'उस दिन सर्कस जाने का जिक्र आपने गौर बाबू से किया तो था नहीं ?'

प्रश्न की चोट विनय के हृदय की गहराई तक जा पहुँची। तब उसे कहना पड़ा—'न, अभी तक तो नहीं किया है।' इस उत्तर को देते समय उसका चेहरा लज्जा के मारे कानों के सिरे तक तमतमा उठा।

इसी बीच लावण्य आ गयी। वह बोली—'आइये, विनय बाबू चलिये।'

ललिता ने पूछा—'कहाँ, सर्कस में ?'

लावण्य बोली—'वाह, आज सर्कस कहाँ है ? मैं विनय बाबू को इसलिए कहती हूँ कि वे चलकर मेरे रूमाल के चारों ओर पैंसिल से एक किनारे की बेल खींच दें—मैं उसे काढ़ लूंगी। ड्राइंग में विनय बाबू बड़े होशियार हैं।'

इतना कहकर लावण्य उसे पकड़कर ले गई।

१८

प्रातःकाल गोरा कोई लेख लिख रहा था। तभी विनय अचानक उसके पास जाकर घबराया हुआ सा बोला—'उस दिन मैं परेश बाबू की लड़कियों को सर्कस दिखाने के लिए गया था।'

गोरा ने लिखते-लिखते कहा—'हाँ, मैंने सुना था।'

विनय ने चकित होकर पूछा—'किससे सुना तुमने ?'

गोरा बोला—'अविनाश से। उस दिन वह भी सर्कस देखने गया था।'

और अधिक कुछ न कह, वह फिर लिखने लग गया। गोरा ने अविनाश के मुंह से पहिले ही सुन लिया था, अतः अब उस बात में टीका-टिप्पणी की कोई गुंजायश ही न रही थी। पुरातन संस्कारवश, विनय को इससे बहुत लज्जा अनुभव हुई। उसके सर्कस मे जाने की बात यदि समाज में प्रकाश में न आती तो उसे प्रसन्नता होती।

इसी समय उसे ध्यान आया कि कल रात देर तक जागते रहकर वह मन-ही-मन ललिता से झगड़ता रहा है। ललिता यह समझती है कि विनय गोरा को उसी प्रकार मानकर चलता है, जैसे विद्यार्थी अध्यापक को। इस

तरह का अन्याय करके भी मनुष्य एक-दूसरे को नहीं समझ सकता है। गोरा तथा विनय की आत्मा एक हो गई है। वे दोनों घनिष्ठ मित्र हैं। गोरा में कई असाधारण गुणों के कारण विनय उस पर भक्ति रखता है, परन्तु केवल इसीलिए ललिता ने जो समझ रखा है, वह विनय तथा गोरा दोनों के साथ अन्याय है। विनय न तो स्वयं अल्प-वयस्क है और न गोरा उसका अभिभावक ही है।

गोरा ने लिखने में चित्त लगाया। विनय ललिता के दो-तीन प्रश्नों का उत्तर मन-ही-मन सोचने लगा। परन्तु उन प्रश्नों को वह हृदय से न हटा सका।

विचार करते-करते विनय के हृदय में विद्रोह उत्पन्न हो उठा। वह सर्कस देखने गया तो क्या हुआ? अविनाश कौन है जो प्रत्येक बात में गोरा से उसकी आलोचना करता है? या गोरा ही उसकी गतिविधि के सम्बन्ध में उसके प्रति अकार्यजन से वार्तालाप क्यों करता है? मैं कोई गोरा का नौकर अथवा कैदी तो हूँ नहीं, जो उसकी आज्ञानुसार आचरण करूँ। मैं किससे मिलूँ, किसके साथ वार्तालाप करूँ अथवा कहीं जाऊँ तो इसका विवरण गोरा को क्यों दूँ? मित्रता में यह कैसा भारी उपद्रव है?

विनय यदि अपनी दुर्बलता को अपने हृदय में इस प्रकार स्पष्ट रूप से न देख पाता तो उसे गोरा तथा अविनाश के ऊपर इतना क्रोध कभी न आता। वह कोई भी बात गोरा के सम्मुख छिपा नहीं पाता था, इसीलिए वह आज मन-ही-मन स्वयं को ही गोरा के समीप अपराधी पा रहा था। परन्तु मित्रता में यह विवशता क्यों? सर्कस जाने की बात को लेकर यदि गोरा उसे एकाध उल्टी-सीधी बात सुनाता तो उसके हृदय को सान्त्वना तो भी मिलती। परन्तु गोरा ने मौन धारण करके जो उसका अपमान किया है, इसलिए ललिता की बात उसके हृदय में काँटे की भाँति चुभने लगी।

इसी समय महिम ने हुक्का लिये हुए घर के भीतर प्रवेश किया। पानों की डिबिया में से एक पान का बीड़ा विनय के हाथ में देते हुए वे बोले—'विनय, यहाँ तो सब ठीक है। अब तुम्हारे चाचा की स्वीकृति आने भर की देर है। उसके मिलते ही मैं निश्चिन्त हो जाऊँगा। तुमने उन्हें पत्र तो लिख ही दिया होगा?'

इस समय विवाह की चर्चा विनय को बहुत अप्रिय लगी, परन्तु वह

जानता था कि इसमें महिम का कोई दोष नहीं है। उसने उनको वचन दे दिया था, परन्तु इस वचन को देने में भी उसे अपनी हीनता का ही अनुभव हुआ। आनन्दमयी ने भी उसे टोका ही था। स्वयं को भी इस विवाह के प्रति कोई विशेष लगाव नहीं था। फिर, क्यों इस प्रकार सब बातें कर तुरन्त पक्की कर डाली गईं? गोरा ने शीघ्रता की, यह भी नहीं कहा जा सकता। विनय स्वयं ही यदि अस्वीकृति का भाव दिखाता तो गोरा कभी हठ न करता। पर तभी ललिता की व्यंग्योक्ति उसके मन को दुखाने लगी। मानो वह भीतर-ही-भीतर नस्तर का काम कर रही हो। वह अत्यन्त प्रेम के कारण ही गोरा के प्रभुत्व को सहने का अभ्यस्त हो गया था। इसीलिए यह प्रभुत्व का सम्बन्ध ही अब मित्रता के सिर चढ़ गया है। विनय ने अब तक इसका अनुभव नहीं किया था, परन्तु अब अनुभव करने से हो भी क्या सकता था? अब वह विवाह को अस्वीकार तो नहीं कर सकता। तो क्या उसे शशिमुखी के साथ विवाह करना ही होगा?

उसने उत्तर दिया—'जी नहीं, चाचाजी के पास अभी तक पत्र नहीं भेजा है।'

महिम ने कहा—'वास्तव में भूल मेरी ही है। यह चिट्ठी मुझे ही लिखनी चाहिए थी। उनका नाम और पूरा पता तो बताओ।'

विनय—'आप घबरायें नहीं। आश्विन अथवा कार्तिक में तो विवाह हो नहीं सकेगा। रहा अगहन, सो उसमें भी एक विघ्न है। पता नहीं कब, मेरे वंश में एक दुर्घटना हो गई थी। तभी से हमारे वंश में अगहन में कोई शुभ कार्य नहीं होता।'

हाथ का हुक्का कोने में रखते हुए महिम ने कहा—'विनय, तुम पढ़े-लिखे होकर भी इन बातों को मानते हो? इस मनहूस देश में एक तो वैसे ही मुहूर्त ढूंढ़ने से भी नहीं मिलते, फिर घर बैठे पत्रा खोल देने से तो संसार का काम कैसे चल सकेगा?'

विनय—'तो फिर आप भादों अथवा क्वार को ही निषिद्ध क्यों मानते हैं?'

महिम—'मैं कब मानता हूं? इस देश में भगवान को न मानने से तो कोई नुकसान नहीं होता, परन्तु भादों, क्वार, शनि, वृहस्पति, तिथि तथा नक्षत्रों को न मानने से तो कोई घर में भी नहीं रहने देगा। कोई काम

करते समय यदि मुहूर्त ठीक न हो तो चित्त अप्रसन्न हो जाता है। जिस प्रकार बिगड़ी हुई हवा लगने से मलेरिया होता जाता है, उसी प्रकार यह डर भी एक है, इसे मैं किसी प्रकार नहीं हटा सकता।'

विनय—'तो फिर मेरे वंश में से भी अगहन का डर कोई नहीं मिटा सकता है, अन्य लोग चाहे मान भी जायें परन्तु मेरी चाची तो किसी भी प्रकार तैयार न होंगी।'

इस प्रकार उस दिन विनय ने विवाह की बात को टाल दिया।

विनय की बातचीत से गोरा को यह समझते देर न लगी कि उसके भावों में परिवर्तन उपस्थित हो गया है। उसे यह भी पता चल गया था कि अब परेश बाबू के घर वह पहले से अधिक आने-जाने लगा है। अतः विवाह के प्रस्ताव में से इस प्रकार उसे निकलते देखकर गोरा के हृदय में सन्देह उत्पन्न होने लगा।

गोरा ने लिखना छोड़कर सिर उठाते हुए कहा—'विनय, जब तुम भाई साहब को एक बार वचन दे चुके हो तो फिर इन्हें द्विविधा में डालकर कष्ट क्यों पहुँचाना चाहते हो ?' विनय ने असहिष्णु होते हुए कहा—'मैंने वचन दिया है अथवा वह मुझसे जबर्दस्ती लिया गया है ?'

विनय के इस आकस्मिक परिवर्तन को देखकर गोरा को आश्चर्य हुआ। वह खड़ा होकर बोला—'तुमसे यह वचन जबर्दस्ती किसने लिया ?'

विनय ने कहा—'तुमने।'

गोरा—'इस सम्बन्ध में तो मेरी तुमसे कोई अधिक बातें भी नहीं हुईं, क्या इसी को तुम वचन लेना कह रहे हो ?'

विनय के पास कोई विशेष प्रमाण न था। गोरा सत्य ही कह रहा था। उसकी गोरा से जो बात इस सम्बन्ध में हुई थी, उसमें आग्रह अथवा जबर्दस्ती का कोई भाव नहीं था। फिर भी यह सत्य था कि गोरा की सम्मति को विनय ने जैसे मजबूरन मान लिया था। इसीलिए विनय ने लड़खड़ाते हुए कहा—'किसी बात को जबर्दस्ती कहलवाने के लिए बहुत बातों की आवश्यकता नहीं होती।'

गोरा कुर्सी से उठते हुए बोला—'तो तुमने अपनी बात फेर ली ? यह कोई ऐसी बेशकीमती वस्तु नहीं जिसे मैं तुमसे जबर्दस्ती लेता।'

महिम पास के कमरे में ही थे। गोरा ने उन्हें जोर से आवाज दी—

'भाई साहब !'

महिम हड़बड़ाकर भागे आये। गोरा बोला—'मैं पहले ही कहता था कि शशिमुखी का विवाह विनय के साथ नहीं हो सकता। मेरी धारणा मिथ्या नहीं हो सकती।'

महिम ने कहा—'हां, कहा तो था। तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति ऐसी बात कह भी नहीं सकता था। और लोग तो अपनी भतीजी के विवाह में पहले से ही उत्साह दिखलाते हैं।'

गोरा—'परन्तु आपने मेरे द्वारा विनय से आग्रह क्यों कराया ?'

महिम—'मैं समझता था कि तुम्हारे कहने से काम हो जायगा।'

गोरा लाल आँखें करते हुए बोला—'मैं इन बातों को नहीं चाहता। मेरा काम विवाह की बिचवाली करना नहीं है—मेरा काम तो दूसरा ही है।'

इतना कहकर गोरा घर से बाहर चल दिया। हतबुद्धि के समान महिम वहीं खड़े रहे। उनके कुछ कहने के पूर्व ही विनय चल दिया। महिम हुक्का उठाकर चुपचाप पीने लगे।

इससे पूर्व भी विनय के साथ गोरा के झगड़े हुए थे, परन्तु उनका स्वरूप इतना उग्र कभी नहीं रहा। विनय पहले तो अपनी करतूत कर दुःखी हुआ, फिर घर पहुँचकर तो वह उसके हृदय में बाण की तरह खटकने लगी। उसे यह स्मरण कर बहुत कष्ट हुआ कि घड़ी भर के भीतर ही उसने गोरा को कितनी गहरी चोट दी है। इस घटना में उसने जो गोरा को दोष दिया था, वह उसे अत्यन्त अनुचित तथा असंगत प्रतीत हुआ। वह अपने को बार-बार धिक्कारता हुआ कहने लगा—'अन्याय ! घोर अन्याय !!'

दो बजे के समय, जब आनन्दमयी सबको खिला-पिलाकर तथा स्वयं भी भोजन से निवृत होकर सिलाई करने के लिए बैठीं, तभी विनय अचानक उनके पास जा बैठा। आनन्दमयी ने महिम द्वारा आज सुबह-सुबह ही अनेक बातें सुनी थीं। भोजन के समय जब उन्होंने गोरा के गम्भीर मुख को देखा था, तब भी वे ताड़ गई थीं कि आज कोई खटपट अवश्य हुई है।

विनय आते ही बोला—'माँ, मैंने अन्याय किया है। शशिमुखी के बिवाह के सम्बन्ध में आज मैंने गोरा से जो बातें कहीं हैं, वे सब निरर्थक हैं।'

आनन्दमयी ने उत्तर दिया—'एक साथ रहने पर, आपस में कभी खटपट हो जाती है। मन में किसी व्यथा का बोझ होता है, तो वह इसी प्रकार निकला करता है। मन का मैल निकल जाना ही अच्छा है। दो दिन बाद तुम भी इस झगड़े की बात भूल जाओगे और गोरा भी भूल जायेगा।'

विनय—'माँ, मैं तुमसे यही कहने आया हूँ कि शशिमुखी के साथ विवाह करने में मुझे कोई ऐतराज नहीं है।'

आनन्दमयी—'जब तक यह झगड़ा समाप्त नहीं होता, तब तक दूसरे झंझट में पड़ने की आवश्यकता नहीं। विवाह कोई गुड़िया का खेल तो है ही नहीं। हाँ, यह झगड़ा अवश्य दो-तीन दिन का ही है।'

विनय को यह बात नहीं जँची। वह इस प्रस्ताव को लेकर गोरा के पास तो नहीं जा सका, किन्तु महिम के पास पहुँचकर बोला—'विवाह के सम्बन्ध में कोई विघ्न नहीं है। माघ के महीने में यह कार्य सम्पन्न हो जायेगा। चाचाजी को भी कोई ऐतरात न होगा। यह जिम्मेदारी मैं अपने ऊपर लेता हूँ।'

महिम बोले—'तो फलदान हो जाना चाहिए?'

विनय—'इस कार्य को आप गोरा की सम्मति लेकर करें।'

महिम—'तुमने फिर गोरा से सम्मति लेने को कहा?'

विनय—'बिना उसकी सलाह लिये तो कोई काम हो ही नहीं सकता।'

महिम—'काम न चलेगा, तब तो सलाह लेनी ही पड़ेगी, परन्तु···।'

इतना कहकर उन्होंने डिब्बे में से पान निकालकर अपने मुँह में रख लिया।

१९

उस दिन महिम ने गोरा से कुछ न कहा। दूसरे दिन जब वे उसके कमरे में गए तो उन्होंने समझा था कि गोरा को फिर से राजी करने में उन्हें बहुत कुछ कहना-सुनना होगा, परन्तु उन्होंने जैसे ही कल शाम की विनय की बात उसे सुनाई और उसकी राय माँगी, वैसे ही उसने अपनी सम्मति देते हुए कहा—'ठीक है, फलदान हो जाना चाहिये।'

महिम ने आश्चर्यान्वित होते हुए कहा—'अभी तो 'हाँ' कह रहे हो,

परन्तु फिर कहीं झगड़ा न कर बैठना ?'

गोरा बोला—'मैंने रोकने के अभिप्राय से कभी झगड़ा नहीं किया, मेरा झगड़ा तो केवल आग्रह करने से है।'

महिम—'इसीलिए मैं तुमसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि न तो तुम इसमें विघ्न डालो और न अनुरोध ही करो। हमें न तो कुरु-पक्ष के लिए नारायणी सेना की आवश्यकता है और न पाण्डव-पक्ष के लिए श्रीकृष्ण की ही। मैं जो अकेला करूँ, वह ठीक है। मैंने तुमसे अनुरोध करने के लिए कहा, यह मेरी भूल थी। मुझे यह पता न था कि तुम्हारी सहायता विपरीत भी पड़ सकती है। अब यह कार्य हो रहा है, परन्तु इसमें तुम्हारी स्वीकृति तो है न ?'

गोरा—'ज़ी हाँ, है।'

महिम—'बस, यही चाहिये भी। अब तुम इस सम्बन्ध में और कुछ न करना।'

गोरा ने अनुभव किया कि विनय को दूर से खींचे रहना कठिन है। जो स्थान आशंका का है वहीं पहरा देना चाहिये। उसने हृदय में विचार किया—'यदि मैं परेश बाबू के घर आता-जाता रहूँ तो विनय को सीमा से बाहर न जाने दूंगा।' उसी दिन तीसरे पहर गोरा विनय के घर जा पहुँचा। विनय को गोरा के आने की आशंका न थी, अतः उसे आनन्द के साथ आश्चर्य भी हुआ।

सबसे बढ़कर आश्चर्य की बात तो यह थी कि आज गोरा ने आते ही आते परेश बाबू की लड़कियों की चर्चा छेड़ दी। इससे भी बड़ा आश्चर्य यह था कि उन पर आक्षेप की कोई बात तक नहीं थी। विनय को उत्तेजित करने के लिए यह आलोचना काफी थी, परन्तु किसी विशेष चेष्टा की आवश्यकता न पड़ी।

उस दिन रात को दोनों मित्र घूमते-फिरते परेश बाबू की लड़कियों की बातचीत करते रहे।

घर को अकेले लौटते समय गोरा ने इन बातों पर मन-ही-मन बहुत विचार किया। बिछौने पर सोते समय तक वह परेश बाबू की लड़कियों का ध्यान अपने हृदय से न हटा सका। गोरा के जीवन में आज यह सर्वथा नई घटना थी। इससे पूर्व उसके हृदय में कभी स्त्रियों की किसी बात ने

स्थान नहीं पाया था। संसार के अनेक व्यवहारों में यह विषय भी चिन्ता करने का है, इसे इस बार विनय ने सिद्ध कर दिया था। इस बात को अब किसी प्रकार टाला नहीं जा सकता था। अब, या तो इसकी रक्षा करनी थी अथवा इसके विरुद्ध युद्ध करना था।

दूसरे दिन विनय ने गोरा से कहा—'परेश बाबू के घर तुम बहुत दिनों से नहीं गये। वे बराबर तुम्हारी बात पूछा करते हैं। एक बार चलो न।' यह सुनते ही गोरा बिना कोई ऐतराज किये चलने को तैयार हो गया। पहिले वह सुचरिता तथा परेश बाबू की कन्याओं के सम्बन्ध में पूर्णतः उदासीन रहता था, परन्तु अब उसके हृदय में एक नवीन कौतूहल का भाव उत्पन्न हो रहा था। वे विनय के हृदय को अपनी ओर किस प्रकार से आकर्षित कर रही हैं—यह जानने के लिए उसका हृदय उत्सुक हो उठा।

ये दोनों जिस समय परेश बाबू के घर पहुँचे, तब तक सन्ध्या हो चुकी थी। हारान बाबू छत के ऊपर वाले कमरे में दिया जलाकर परेश बाबू को अंग्रेजी का लेख सुना रहे थे। परेश बाबू तो केवल साधन मात्र थे, वास्तव में वह लेख वे सुचरिता को सुना रहे थे। सुचरिता आँखों पर रोशनी न पड़ने देने के लिए मुँह के सामने ताड़ के पंखे को तिरछा किये, मेज से कुछ दूर एक ओर चुपचाप बैठी हुई थी। वह सहज भाव से निबन्ध सुनने की विशेष चेष्टा कर रही थी, परन्तु उसका हृदय बरबस किसी दूसरी ओर खिचा जा रहा था।

इसी समय नौकर ने विनय तथा गोरा के आगमन की सूचना दी। उसे सुन सुचरिता एकाएक चौंककर उठ खड़ी हुई। उसे कुर्सी से उठते देख, परेश बाबू ने कहा—'कहाँ जा रही हो, सुचरिता? बैठो, कोई और नहीं हमारे विनय तथा गौर मोहन बाबू आ रहे हैं।'

सुचरिता लजाकर फिर बैठ गई। हारान बाबू के अंग्रेजी के लम्बे लेख का पाठ रुक जाने से उसका हृदय कुछ हल्का हुआ। गोरा के आने से उसे प्रसन्नता नहीं हुई ऐसी बात न थी, परन्तु हारान बाबू के सामने उसके आने से मन में एक प्रकार की बेचैनी तथा लज्जा-सी प्रतीत होने लगी। पता नहीं, कहीं दोनों का झगड़ा न हो जाए—इस कारण से अथवा किसी अन्य कारण से यह बात पैदा हुई थी।

गोरा का नाम सुनते ही हारान बाबू उदास हो गये। वे गोरा के

नमस्कार का किसी प्रकार उत्तर देकर चुपचाप बैठे रहे। परन्तु उन्हें देखते ही गोरा का हृदय उनसे वाद-विवाद करने के लिए मचल उठा। अपनी तीनों पुत्रियों को लेकर वरदासुन्दरी किसी निमन्त्रण में गई हुई थीं। परेश बाबू को उन्हें सायंकाल लिवाने के लिए जाना पहले ही निश्चित हो चुका था। इस समय उनके जाने का वक्त हो चुका था। गोरा और विनय के आ जाने से उनके जाने में विघ्न पड़ा। परन्तु विलम्ब करना उचित न जानकर वे सुचरिता तथा हारान बाबू के कान में चुपचाप यह कहते हुए उठ गये कि तुम इनके साथ कुछ देर बैठना। मैं शीघ्र ही लौटकर आ जाऊँगा।

कुछ ही देर में गोरा तथा हारान बाबू में भारी शास्त्रार्थ छिड़ गया। जिस विषय पर यह विवाद आरम्भ हुआ, वह यह था कि ढाका में कलकत्ते से किसी समीपवर्ती जिले के मजिस्ट्रेट ब्रैडला साहब से परेश बाबू की भेंट हुई थी। परेश बाबू की पत्नी और लड़कियाँ पर्दे का लिहाज न करके बाहर निकला करती थीं, इसलिए साहब तथा मैम उनका बहुत स्वागत करते थे। अपने जन्म-दिवस पर साहब प्रतिवर्ष कृषि-प्रदर्शनी का मेला करवाते थे। इस बार वरदासुन्दरी ने साहब की मैम से भेंट करके उसके समक्ष अंग्रेजी काव्य के सम्बन्ध में अपनी पुत्रियों की विशेष योग्यता का वर्णन किया था। उसे सुनकर मैम ने कहा था कि इस बार मेले में लाट साहब (गवर्नर) अपनी मैम के साथ आयेंगे। उनके सम्मुख आपकी लड़कियाँ यदि कोई अंग्रेजी नाटक खेल सकें तो बहुत अच्छा रहेगा। वरदासुन्दरी इस प्रस्ताव को सुनकर बहुत प्रसन्न हुई थीं। अतः आज वे अपनी पुत्रियों के अभ्यास का परीक्षण कराने के लिए किसी मित्र के घर गई हुई थीं। 'इस मेले में गोरा सम्मिलित होगा या नहीं?'—इस प्रश्न के पूछे जाने पर गोरा ने किंचित् अनावश्यक उत्तेजना के साथ कहा था 'नहीं!' बस इसी प्रसंग को लेकर इस देश के अंग्रेजों तथा बंगालियों के बीच कैसे सम्बन्ध हैं—इस विषय पर दोनों में भारी तर्क-वितर्क आरम्भ हो गये थे।

हारान बाबू बोले—'इसमें दोष बंगालियों का ही है। हमारे भीतर इतने कुसंस्कार तथा कुप्रथायें हैं कि हम अंग्रेजों से सम्पर्क स्थापित करने योग्य नहीं रहे।'

गोरा ने कहा—'यदि यह सत्य है तो उस अयोग्यता के लिए अंग्रेजों के

साथ मिलने के हेतु लार टपकाना भी हमारे लिए सबसे बड़ी लज्जा का विषय है।'

हारान बाबू—'परन्तु इन जैसे योग्य व्यक्ति अंग्रेजों से पूर्ण सम्मान प्राप्त कर रहे हैं।'

गोरा—'जहाँ एक व्यक्ति का आदर तथा व्यक्तियों का अनादर हो, वहाँ हम उस आदर को भी भारी अनादर मानते हैं।'

इस उत्तर से हारान बाबू बहुत क्रुद्ध हो उठे। उधर गोरा अपने वाक्य-वाणों से रह-रहकर उनका हृदय वेधने लगा।

इन दोनों में जब इस प्रकार वार्तालाप चल रहा था, उस समय सुचरिता मेज के पास बैठी हुई पंखे की आड़ करके, गोरा को टकटकी लगाये देख रही थी। वह बातों को सुन अवश्य रही थी, परन्तु उसका मन उनमें नहीं लग रहा था। इस समय वह गोरा को देखने में अपने को भूल-सी गई थी। गोरा मेज के ऊपर अपनी बलिष्ठ बाँहों को रखे हुए झुका बैठा था। दीपक के प्रकाश में उसका उन्नत ललाट दमक रहा था। उसके मुख पर कभी घृणा, तो कभी व्यंग्य, हँसी अथवा उत्साह के चिह्न दिखाई पड़ते थे। वह जो कुछ कह रहा था, वह केवल वितर्क अथवा आक्षेप की बात ही नहीं थी। उसकी प्रत्येक बात भली-भाँति विचार की हुई प्रतीत होती थी। उसके कण्ठ से निकली हुई प्रत्येक बात दृढ़ता से भरी हुई थी। सुचरिता ने मानो अपने जीवन में सर्वप्रथम एक पुरुष को एक विशेष व्यक्ति के रूप में भी देखा था। उस समय उसकी दृष्टि में अन्य कोई पुरुष उसके समक्ष नहीं ठहर सकता था। इस तर्क में खड़े होने के कारण सुचरिता की दृष्टि में हारान बाबू बहुत तुच्छ प्रतीत हुए। विनय द्वारा इतने दिनों तक गोरा के सम्बन्ध में निरन्तर आलोचना सुनने के पश्चात् उसने गोरा को एक विशेष मत वाला असाधारण व्यक्ति स्वीकार कर लिया था। उसने मन में यह कल्पना भी कर ली थी कि किसी समय उसके द्वारा देश का कोई कल्याण-साधन भी हो सकता है। आज वह गोरा को समस्त दल, मत तथा उद्देश्य से पृथक् केवल गौर मोहन अनुभव करने लगी। जिस प्रकार समुद्र चन्द्रमा को देखकर आनन्द से भर उठता है, उसी प्रकार वह आज गोरा को देखकर हर्ष से फूल उठी। मनुष्य के प्रति मनुष्य की आत्मा का क्या सम्बन्ध है, इस ओर उसका ध्यान पहली बार आकृष्ट हुआ। इस अपूर्व अनुभव से वह

अपने अस्तित्व को भी भूल बैठी।

हारान बाबू सुचरिता के मन के भाव को समझ चुके थे। यही कारण था कि तर्क में उनकी युक्तियाँ शक्तिशाली सिद्ध नहीं हो रही थीं। मन के अधीर हो जाने से बुद्धि भी मन्द हो उठती है। अन्त में वे अत्यन्त अधीर होकर अपने स्थान से उठ खड़े हुए तथा सुचरिता को अत्यन्त आत्मीय की तरह पुकारते हुए बोले, 'सुचरिता, तुम तनिक इस कमरे में तो आओ, मुझे तुमसे एक बात कहनी है।'

सुचरिता यह सुनते ही चौंक पड़ी। वह इस प्रकार किसी दूसरे समय उसे पुकारते तो उसे कोई ध्यान नहीं होता, परन्तु इस समय गोरा एवं विनय के समक्ष उनका इस प्रकार पुकारना सुचरिता को अपना अपमान प्रतीत हुआ। विशेषकर उस समय उसने गोरा के मुँह पर जो भाव देखे, उनसे वह हारान बाबू को ऐसी अशिष्टता के लिए क्षमा न कर सकी। वह उनकी बात को अनसुनी करके चुप बैठी रही। तभी हारान बाबू ने अपने स्वर में कुछ क्रोध भरकर कहा—'सुचरिता, क्या सुनती नहीं हो ? मुझे तुमसे कुछ कहना है। क्या इस कमरे के भीतर एक बार नहीं आओगी ?'

तब सुचरिता ने उसकी ओर देखे बिना उत्तर दिया, 'बाबूजी के आने पर सुन लूंगी, अभी ठहरिये।'

उसी समय विनय ने खड़े होकर कहा, 'अच्छा तो हम लोग अब जाते हैं।'

सुचरिता ने शीघ्रतापूर्वक कहा—'नहीं विनय बाबू, अभी आप मत जाइये। बाबूजी आप लोगों को ठहरने के लिए कह गये हैं, वे आ ही रहे होंगे।'

'तब मैं अब यहाँ क्षण भर भी नहीं ठहर सकूंगा।' यह कहते हुए हारान बाबू वहाँ से उठकर चल दिये। परन्तु जब वे क्रोध के आवेश से बाहर निकल आये तो उन्हें स्वयं पर पश्चाताप हुआ। फिर भी उन्हें लौटने का कोई बहाना बहुत ढूंढ़ने पर भी नहीं मिल सका।

हारान बाबू के चले जाने पर सुचरिता एक अपूर्व लज्जा से सिकुड़कर सिर झुकाये बैठी रही। वह मन में सोच रही थी—'क्या करूँ, क्या कहूँ ?' परन्तु कोई निश्चय ही नहीं कर पा रही थी। उसी बीच में गोरा ने उसके मुँह को भली प्रकार देख लिया। उसने शिक्षित स्त्रियों में जिस उद्धत

स्वभाव तथा निर्लज्जता की कल्पना कर रखी थी, सुचरिता के मुँह पर उसका कहीं आभास तक न था। उसका चेहरा बुद्धिमत्ता के कारण प्रकाशित हो रहा था, तथा लाज-लज्जा और नम्रता के सामंजस्य के कारण वह और भी अधिक सुन्दर तथा कोमल प्रतीत होने लगा था। उसके मुख पर लावण्य तथा कोमलता छाई हुई थी, धनुषाकार भौंहें अपनी निराली शोभा लिये हुई थीं। इससे पूर्व गोरा ने किसी नवयुवती के वेश-विन्यास तथा वस्त्राभूषण को कभी भली-भाँति नहीं देखा था। यों कहिये कि उसे न देखने की बीमारी थी। वह उससे स्वाभाविक घृणा करता था।

सुचरिता के शरीर पर साड़ी पहनने का नवीन ढंग उसे अत्यन्त सुन्दर लगा। शायद आज उसकी दृष्टि में कुछ विशेषता आ गई थी, जिसके कारण वह जो कुछ देख रहा था, सब अपूर्व लग रहा था! घर की कड़ी, छत तथा दीवार तक उसे नवीन-सी लगीं। सुचरिता के सिर से पैर तक सभी अंगों की शोभा देखकर वह चकित हो उठा।

कुछ देर तक सभी चुप रहे। फिर विनय ने सुचरिता की ओर देखते हुए बात छेड़ दी—'उस दिन आप क्या कह रही थीं?' फिर बोला—'मैं आपको बता चुका हूँ कि मेरे भी मन में पहले ऐसी ही धारणा थी। मुझे विश्वास था कि हमारे देश तथा समाज के लिए कोई आशापूर्ण बात नहीं है। हम लोगों को अभी बहुत दिनों तक अंग्रेजी के संरक्षण में नाबालिग की भाँति रहना पड़ेगा। इसीलिए मैंने यह चाहा था कि मैं गोरा के पिताजी से कहकर, अपने लिए किसी सरकारी नौकरी का प्रबन्ध कर लूँ। परन्तु उसी समय गोरा ने मुझसे यह कहा था, नहीं, तुम सरकारी नौकरी नहीं कर सकोगे।'

यह सुनकर सुचरिता के मुख पर जो आश्चर्य का भाव आया, उसे देखकर गोरा बोला—'आप यह न समझियेगा कि सरकार के ऊपर क्रोध करके मैंने ऐसी बात कही थी। जो लोग सरकारी कर्मचारी होते हैं वे सरकार की शक्ति को अपनी शक्ति समझकर स्वयं को देश के अन्य लोगों से भिन्न अनुभव करने लगते हैं। जितने दिन बीतते जाते हैं, उनका यह भाव उतना ही अधिक बढ़ता जाता है। पुराने समय में मेरे एक आत्मीय डिप्टी थे। अब वे उस काम को छोड़ बैठे हैं। एक बार जिला मजिस्ट्रेट ने उनसे पूछा—'बाबू, आपकी अदालत से इतने अधिक लोग रिहा क्यों कर

दिये जाते हैं ?' इसपर उन्होंने उत्तर दिया था—'साहब, उसका एक ही कारण है कि आप जिन लोगों को जेल भेजते हैं, उन्हें कुत्ते-बिल्ली से अधिक नहीं मानते, परन्तु मैं जिन्हें जेल भेजता हूँ, उन्हें अपना भाई समझा हूँ ।' इतनी कड़ी बात कहने वाला डिप्टी उस समय भी था और उसे सुन लेने वाले अंग्रेज हाकिम का भी अभाव नहीं था परन्तु अब समय जितना अधिक बीतता जा रहा है, यहाँ के लोग नौकरी को उतना ही महत्त्व देने लगे हैं। परिणामस्वरूप आज के भारतीय डिप्टी के आगे, उसी के देश का निवासी कुत्ता-बिल्ली बनता जा रहा है। इस व्यवहार से पद की उन्नति तो हो सकती है। परन्तु देश की नहीं, इसका उन्हें स्वप्न में भी ध्यान नहीं आता। जो लोग दूसरे के कन्धे पर बोझ रखकर स्वयं को हल्का अनुभव करेंगे अथवा दूसरे को तुच्छ समझकर अपने को ऊँचा मानेंगे, उनके देश का कोई कल्याण नहीं हो सकता।' यह कहकर गोरा ने मेज पर इस प्रकार हाथ पटका कि उसकी धमक से दीपक हिल गया। यदि कुछ और जोर से उसने हाथ पटका होता तो वह अवश्य ही लुढ़क जाता।

विनय बोला—'गोरा, यह मेज सरकारी नहीं है और यह दीपक भी परेश बाबू का है।'

यह सुनते ही गोरा ठठाकर हँस पड़ा और उसकी प्रबल हँसी से सारा मकान गूंज उठा। सुचरिता को देखकर आश्चर्य हुआ और साथ ही आह्लाद भी। 'जो बड़ी बातें कहते हैं, वे जी भरकर हँस भी सकते हैं'—यह बात उसे जैसे मालूम ही नहीं थी।

उस दिन गोरा ने बहुत बातें कीं। सुचरिता यद्यपि चुप रही परन्तु उसके मनोभावों को देखकर गोरा को ऐसी तृप्ति प्राप्त हुई कि उसका हृदय आनन्द से भर गया। अन्त में वह जैसे सुचरिता को लक्ष्य करता हुआ बोला—'एक बात स्मरण रखने की है। जिस प्रकार अंग्रेज लोग प्रबल हैं, उसी प्रकार यदि हम भी प्रबल न बन सके, तो सफलता न मिलेगी—यह सोचना भी भारी भूल है। उनका अनुकरण करने से तो हमारा और भी अधिक पतन हो जायेगा। उस समय न हम हिन्दू रहेंगे और न मुसलमान ही। तब प्रबलता क्या प्राप्त होगी ? मेरा अनुरोध है कि आप भारतवर्ष के भीतर आयें। इसके भले-बुरे व्यवहारों के बीच खड़े होकर, यदि कोई त्रुटि देखें, तो उसका भीतर से संशोधन करें। सबके साथ मिलकर एक हो

जायें। इस मत के विरुद्ध खड़े होकर तथा अपनी नस-नस में ईसाईयत भर लेने से आप हिन्दू-धर्म के तत्त्व को न समझ सकेंगी। तब आपके द्वारा देश का कोई उपकार भी न हो सकेगा।'

गोरा ने कहा तो था कि 'यह मेरा अनुरोध है'—परन्तु वह बात वास्तव में अनुरोध न होकर एक प्रकार की आज्ञा थी। वह बात इतनी प्रबल थी कि उस पर कोई अन्य टिप्पणी की ही नहीं जा सकती थी। सुचरिता नीचे सिर किए, सब चुपचाप सुनती रही। गोरा ने एक प्रबल आग्रह के साथ, विशेषकर उसी को सम्बोधित करके जो ये बातें कही थीं, उनसे उसके हृदय में एक आन्दोलन-सा मच उठा। उसने अपने संकोच को त्यागकर नम्रतापूर्वक कहा—'मैंने इस महत्त्व के भाव को लेकर देश के विषय पर कभी नहीं सोचा था, परन्तु मैं आपसे यह अवश्य पूछना चाहती हूँ कि धर्म और देश का परस्पर क्या सम्बन्ध है? क्या धर्म देश से भिन्न वस्तु नहीं है?'

सुचरिता के कोमल कण्ठ का यह प्रश्न गोरा के कानों को अत्यन्त मधुर लगा। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों के बीच यह प्रश्न और भी मीठा जान पड़ा। वह बोला—'जिस धर्म को आप भिन्न मानती हैं, वह देश की अपेक्षा कितना महत्त्वपूर्ण है, इस बात को आप देश के भीतर प्रविष्ट होकर ही जान सकेंगी। लोगों का कहना है—'सत्य एक है।' वे एक ही धर्म एवं उसके रूप को सत्य मानते हैं। परन्तु जो सत्य अनन्त रूपों में परिणित है, वे उसे स्वीकार नहीं करना चाहते हैं, उन्हें नहीं पता कि सत्य-धर्म अनेक रूपों में बँटा हुआ है। फिर वह किसी भी रूप में क्यों न हो, रहेगा सत्य ही। मैं आपसे सत्य कहता हूँ कि भारतवर्ष की खुली खिड़की के मार्ग से आप सूर्य को भली-भाँति देख सकती हैं, उसके लिए समुद्र पार किसी ईसाई गिरजाघर की खिड़की में बैठने की आवश्यकता नहीं है।'

सुचरिता बोली, 'तो आप यह कहना चाहते हैं कि भारतवर्ष का धर्म एक विशेष मार्ग से ईश्वर की ओर ले जाता है? यह विशेषता कौन-सी है?'

गोरा—'यही कि जो निर्विशेष ब्रह्म है, वह विशेष के भीतर ही व्यक्त होता है। जो निराकार है, उसके आकार का अन्त नहीं है। ह्रस्व, दीर्घ, स्थूल तथा सूक्ष्म का अनन्त प्रवाह वही है। छोटों से भी छोटा तथा बड़ों से भी बड़ा है। जो अनन्त विशेष है, उसी को निर्विशेष कहना चाहिये। जो

अनन्त रूप है, वही अरूप भी है। वह ब्रह्म व्यापक रूप से सर्वत्र विद्यमान है। अन्य देशों में ईश्वर को कम-अधिक परिमाण में एक सीमा में बद्ध करने की चेष्टा की गई है। भारतवर्ष में भी ईश्वर को विशेष के मध्य देखने की चर्चा चलती है, परन्तु यह देश उस विशेष को भी एकमात्र तथा सर्वोपरि नहीं मानता। वह इतना ही मानता है कि अनेक विशेषों में यह भी एक विशेष है। इस विशेष को भी अनन्त गुण से अतिक्रम करने वाले ईश्वर को, भारतवर्ष का कोई भक्त कभी अस्वीकार नहीं करता।'

सुचरिता बोली—'ज्ञानी चाहे अस्वीकार न करें, परन्तु अज्ञानी···?'

गोरा—'यह मैं पहले ही कह चुका हूँ कि सभी देशों में अज्ञानी जन सभी सत्य को विकृत ही मानेंगे।'

सुचरिता—'वह विकार हमारे देश में क्या बहुत दूर तक नहीं पहुँच सका है?'

गोरा—'सम्भव है, परन्तु उसका कारण एक है। धर्म का स्थूल तथा सूक्ष्म, भीतर तथा बाहर एवं शरीर और आत्मा इन्हीं दोनों अंगों को भारतवर्ष सम्पूर्ण भाव से स्वीकार करना चाहता है। अतः जो सूक्ष्म को ग्रहण नहीं कर सकते, वे स्थूल को पकड़ते हैं तथा अपने अज्ञान द्वारा उस स्थूल में अनेक अद्‌भुत विकारों की कल्पना कर बैठते हैं, परन्तु जो रूप-अरूप, स्थूल-सूक्ष्म, ध्यान तथा प्रत्यक्ष में भी सत्य है, उसे भारतवर्ष मन, वचन, कर्म सब प्रकार से प्राप्त करने की अद्‌भुत तथा गहन चेष्टा करता है। हम लोग उसे मूर्खों की भाँति अश्रद्धा योग्य समझकर यूरोप की अठारहवीं शताब्दी के नास्तिकता-आस्तिकता युक्त संकीर्ण, शुष्क तथा अंगहीन धर्म को एक मात्र धर्म करके ग्रहण करें, यह कभी सम्भव नहीं है।'

सुचरिता को बहुत देर तक चुप बैठे देखकर गोरा बोला—'आप मुझे प्रचारक न समझिये। कपटाचारी लोग, विशेषकर वे जो नये-नये धर्मध्वजाधारी हो उठे हैं, जिस भाव से वे बातें करते हैं, उस भाव से आप मेरी बातें ग्रहण न करें। भारतवर्ष के विविध प्रकाश तथा विचित्र व्यापार के बीच, मैंने एक गम्भीर तथा महान् एकता अनुभव की है। मैं उस ऐक्य भाव के आनन्द में पागल-सा हो गया हूँ। उस ऐक्य भाव के कारण ही, भारत के दस निपट मूर्ख लोगों के बीच पृथ्वी पर बैठने में भी मुझे संकोच नहीं होता। जिनकी दृष्टि दूरगामी नहीं है, वे भले ही संकोच करें। परन्तु

मैं अपने भारत के सभी लोगों के साथ एक-सा हूं, सभी मेरे आत्मीय हैं। हम सभी इस एक ही भारतवर्ष की सन्तान हैं, इसमें सन्देह नहीं है।'

गोरा के गम्भीर कण्ठ से निकले हुए शब्द बहुत देर तक घर के भीतर गूंजते रहे।

सुचरिता इन सब बातों को भली-भाँति न समझ सकी, परन्तु अनुभव की प्रथम अस्पष्ट गति का संचार अत्यन्त प्रबल होता है। मनुष्य का जीवन किसी सीमा में बँधा नहीं है, यह ज्ञान मानो उसके मन को दबाने लगा।

इसी समय सीढ़ियों पर आती हुई महिलाओं की खिलखिलाहट सुनाई दी। परेश बाबू वरदासुन्दरी तथा लड़कियों को लेकर लौट आये थे। सीढ़ी पर ऊपर चढ़ते समय सुधीर उनका मार्ग रोककर बीच में ही खड़ा हो गया था, इसी पर सबको उसकी नादानी पर हँसी आ गई थी।

कमरे के भीतर गोरा को देखते ही लावण्य, ललिता तथा सतीश ठिठककर खड़े हो गये थे। लावण्य उल्टे पैरों वापिस लौट आई। सतीश विनय की कुर्सी के पास अपना मुँह ले जाकर कुछ कहने लगा।

ललिता कुर्सी खींचकर सुचरिता के पीछे, आड़ किए हुए बैठ गई।

परेश बाबू आते ही बोले—'मुझे लौटने में बहुत देर हो गई। मालूम होता है हारान बाबू चले गये।'

सुचरिता चुप रही। विनय ने कहा—'हाँ, वे ठहर नहीं सके।'

गोरा खड़े होकर बोला—'अब हम भी जा रहे हैं।' और उसने परेश बाबू को नमस्कार किया।

परेश बाबू ने कहा—'आज तो तुमसे बातचीत करने का समय ही नहीं मिला, अब फिर कभी तुम्हें अवकाश मिले तो अवश्य आना।'

गोरा ने कहा—'जो आज्ञा।'

वरदासुन्दरी बोलीं—'विनय बाबू, अभी आप न जा सकेंगे। आप खाना खाकर जाइयेगा। आपसे आवश्यक बातें करनी हैं।'

सतीश ने बढ़कर विनय का हाथ पकड़ लिया। फिर बोला—'हाँ माँ, विनय बाबू को मत जाने दो। ये आज रात को मेरे साथ ही रहेंगे।'

विनय को कुछ उत्तर न दे पाने के कारण घबराया-सा देखकर वरदासुन्दरी गोरा से कहने लगीं—'क्या आप विनय बाबू को अपने साथ

ही ले जाना चाहते हैं ? आपको इनसे कोई कार्य है क्या ?'

गोरा ने उत्तर दिया—'जी, कुछ भी नहीं ।' फिर विनय से बोला—'विनय, तुम यहीं ठहरो, मैं जा रहा हूँ ।' इतना कहकर गोरा चला गया। विनय के बैठने पर ललिता बोली—'विनय बाबू, आज चला जाना ही शुभ था।'

विनय ने पूछा—'क्यों ?'

ललिता बोली—'माँ आज आपको एक नई मुसीबत में फँसाना चाहती हैं। मजिस्ट्रेट के जुलूस में जो अभिनय होने वाला है, उसमें एक आदमी की कमी पड़ गई है। उसके लिए माँ ने आपको ही चुना है।'

विनय घबराकर बोला—'अरे, यह उन्होंने क्या किया ? मैं तो इस काम को न कर सकूंगा।'

ललिता हँसकर कह उठी—'मैंने माँ से पहले ही कहा था कि आपके मित्र आपको इस नाटक में कभी सम्मिलित न होने देंगे।'

विनय को जैसे चोट लगी। बोला—'मित्र की बात न कहो। मैंने कभी अभिनय नहीं किया है। मुझे चुना ही क्यों ?'

इसी समय वरदासुन्दरी कमरे में आ पहुँचीं। ललिता बोली—'माँ, तुमने अभिनय के लिए विनय बाबू को व्यर्थ ही चुना, पहिले इनके मित्र से तो पूछ लिया होता...।'

विनय कातर स्वर में बोला—'मित्र से पूछने की बात नहीं है। मैंने आज तक कभी अभिनय नहीं किया है और न मुझमें इतनी योग्यता ही है।'

वरदासुन्दरी ने कहा—'आप उसकी चिन्ता न करें। मैं आपको सिखा कर सब ठीक कर दूंगी। छोटी-छोटी लड़कियां अभिनय कर सकेंगी, तब आप क्यों न कर सकेंगे ?'

अब कोई उपाय विनय के उद्धार का नहीं रह गया था।

२०

गोरा अपनी स्वाभाविक तेज चाल को छोड़कर, धीरे-धीरे घर को चल दिया। फिर वह घर जाने वाले सीधे मार्ग को छोड़कर गंगातट की

ओर मुड़ गया।

बहुत रात बीतने पर जब वह घर पहुँचा, तो आनन्दमयी ने उससे पूछा—'बेटा, इतनी रात कैसे कर दी? देखो, खाना रखे-रखे ठण्डा हो गया है।'

गोरा बोला—'माँ, न जाने आज क्या ध्यान आ गया कि मैं बहुत देर तक गंगा किनारे बैठा रहा।'

आनन्दमयी ने कहा—'मालूम होता है, विनय भी साथ था?'

गोरा—'नहीं, मैं अकेला ही था।'

आनन्दमयी को मन-ही-मन कुछ आश्चर्य हुआ। गोरा इतनी रात गये तक गंगातट पर बैठा हुआ अकेला कुछ सोचता रहे, ऐसी घटना पहिले कभी नहीं घटी थी। चुप बैठने का तो गोरा का स्वभाव ही नहीं था। जब गोरा अनमना होकर भोजन कर रहा था, उस समय आनन्दमयी ने उसके चेहरे की ओर ध्यान से देखा तो पता चला कि जैसे उस पर कोई चंचल भाव प्रदीप्त हो रहा है।

कुछ देर पश्चात् आनन्दमयी ने धीरे-से पूछा—'शायद आज तुम विनय के घर गये थे?'

गोरा—'नहीं, आज हम दोनों परेश बाबू के घर गये थे।'

आनन्दमयी कुछ देर चुप रहीं फिर बोलीं—'क्या उनके घर के लोगों से तुम्हारा मेल-जोल हो गया है?'

गोरा—'हाँ, हो गया है।'

आनन्दमयी—'उनके यहाँ की औरतें तो सबके सामने निकलती हैं।'

गोरा—'हाँ, उनके यहाँ इसका कोई विचार नहीं है।'

कोई और समय होता तो प्रत्येक उत्तर के साथ गोरा की उत्तेजना के भाव प्रकट होते, परन्तु आज वैसा कोई लक्षण दिखाई न दिया। आनन्दमयी यह देखकर, फिर चुप होकर सोचने लगीं।

दूसरे दिन सुबह गोरा अन्य दिनों की भाँति हाथ-मुँह धोकर अपना काम करने को तैयार हो गया। अपने सोने के कमरे के पूर्व का दरवाजा खोलकर वह बड़ी देर तक चुप खड़ा रहा। घर की गली पूर्व की ओर एक बड़ी सड़क में जा मिली थी। उस सड़क पर पूर्व की ओर एक विद्यालय था। स्कूल के पास ही जो एक जामुन का वृक्ष था, उस पर कुहरे की एक

उज्ज्वल चादर पड़ी हुई थी और उसी के ठीक पीछे सूर्योदय की लालिमा धुँधली-सी दिखाई दे रही थी। देखते-ही-देखते कलकत्ते की सड़कें आदमियों के शोर-गुल से भर गईं।

इसी समय गली के मोड़ पर अन्य छात्रों के साथ अविनाश को अपने घर की ओर आते देखकर गोरा बोला—'न, यह सबकुछ नहीं, ऐसा कब तक चलेगा ?'

इतना कहकर शीघ्रतापूर्वक कमरे से बाहर निकला। गोरा के घर में उसका सारा दल आया हो और वह पहले से ही तैयार न हुआ हो, यह बात आज बिलकुल नई थी। इस त्रुटि ने गोरा के मन को बार-बार धिक्कारा। उसने निश्चय किया कि अब वह फिर कभी परेश बाबू के घर नहीं जायेगा। तब इस आलोचना को बन्द करने के लिए कुछ दिन विनय से भी भेंट न करने का प्रयत्न करेगा।

उस दिन नीचे आकर यह निश्चय हुआ कि गोरा अपने दल के दो-तीन व्यक्तियों के साथ पैदल भ्रमण के लिए ग्राण्ड ट्रंक रोड पर निकलेगा। मार्ग में किसी भद्र पुरुष के घर आतिथ्य ग्रहण करेगा तथा उसके पास रुपया-पैसा कुछ न रहेगा।

इस संकल्प से गोरा का मन विशेष प्रफुल्लित हुआ। वह भ्रमण की सब तैयारियों को पूर्ण कर अपने नीचे वाले कमरे से बाहर निकला। उसी समय कृष्णदयाल बाबू रामनामी ओढ़े, कलशी में गंगाजल लिये तथा मन-ही-मन कुछ पाठ करते हुए घर आ रहे थे। मार्ग में गोरा से अचानक ही भेंट हो गई। गोरा ने लज्जित हो, उन्हें पैर छूकर प्रणाम किया। वे अच-कचाकर 'ठहरो-ठहरो' कहते हुए घर की ओर बढ़ चले। पूजा पर बैठने से पूर्व उनका किसी से स्पर्श हो जाने के कारण गंगा स्नान का फल समाप्त हो गया। गोरा को यह पता न था कि कृष्णदयाल बाबू उसका संसर्ग बनाये रहते हैं। वह समझता था कि छुआछूत मानने वाले होने के कारण सबसे सब प्रकार का सम्बन्ध बचाकर चलना ही उनकी सावधानी का कारण है। आनन्दमयी को तो 'म्लेच्छ' बताकर वे उससे दूर रहते ही थे। महिम को बहुत काम लगे रहते थे, अतः उसे उनसे भेंट करने का अवकाश ही कहाँ था ? घर के सब लोगों में केवल शशिमुखी को ही अपने पास बैठाते, उसे संस्कृत के श्लोकों का पाठ कराते तथा उससे पूजा की टहल भी

करा लेते थे।

जिस समय कृष्णदयाल बाबू गोरा से पैर छू जाने पर घबराकर भागे, उस समय गोरा को उनके संसर्ग-जन्य संकोच के सम्बन्ध में ज्ञान हुआ, तब वह मन-ही-मन हँस उठा। इस प्रकार धीरे-धीरे गोरा का सम्बन्ध अपने पिता से टूट गया था। माता के अनाचार की निन्दा करते हुए भी वह उनका निरन्तर भक्त बना रहा।

भोजन के पश्चात् गोरा कपड़ों की एक छोटी-सी पोटली को अंग्रेजी मुसाफिरों की भाँति पीठ पर बाँधकर माँ के पास जा पहुँचा तथा बोला—'माँ, मैं कुछ दिन के लिए बाहर घूमने जा रहा हूँ।'

आनन्दमयी ने पूछा—'कहाँ जाओगे ?'

गोरा—'यह तो मैं भी ठीक-ठीक नहीं कह सकता।'

आनन्दमयी—'क्यों, कोई काम है ?'

गोरा—'काम तो कुछ खास नहीं है, केवल घूमना ही समझो।'

आनन्दमयी को मन मारते हुए चुप देखकर गोरा बोला—'माँ, मैं प्रार्थना करता हूँ कि मुझे जाने से रोको मत। मैं संन्यासी नहीं हो जाऊँगा और न तुमसे अधिक दिनों तक अलग रह सकूँगा।'

माँ के सम्मुख गोरा ने अपना प्रेम इस प्रकार कभी प्रकट नहीं किया था, अतः आज इस बात को कहकर वह स्वयं ही लज्जित हो उठा।

आनन्दमयी ने उसकी बात से प्रसन्न होकर पूछा—'क्या विनय भी जायेगा ?'

गोरा बोला—'नहीं माँ, वह नहीं जायेगा। यह तो तुम्हारे मातृ-हृदय की आशंका है कि विनय के साथ न जाने पर मार्ग में मेरी रक्षा कौन करेगा, परन्तु यदि विनय को मेरा रक्षक समझती हो तो यह तुम्हारी बहुत बड़ी भूल है। इस प्रकार मेरे सुरक्षित लौट आने पर तुम्हारा यह भ्रम भी दूर हो जायेगा।'

आनन्दमयी—'पर बीच-बीच में तुम्हारा समाचार तो मिलता रहेगा न ?'

गोरा—'तुम यही समझ लो कि कोई समाचार न मिलेगा। ऐसा निश्चय कर लेने के बाद, जब तुम्हें मेरी कोई खबर मिलेगी तो तुम्हें विशेष आनन्द प्राप्त होगा। परन्तु भय की कोई बात नहीं है, तुम्हारे गोरा को

कोई छीन न सकेगा। माँ, तुम मुझे जितना चाहती हो, उतना और कोई नहीं चाहता। इस गठरी के लिए यदि किसी के मन में लालच आया, तो मैं उसे यह देकर तथा प्राण बचाकर भी तुम्हारे पास लौट आऊँगा।'

गोरा ने आनन्दमयी के चरण स्पर्श कर प्रणाम किया। उन्होंने भी मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। आनन्दमयी अपने कष्ट की बात सोचकर भी, किसी अनिष्ट की आशंका से कभी किसी को नहीं रोकती थीं। उनके मन में कोई भय न था और न गोरा के विपत्ति-ग्रस्त हो जाने की कोई आशंका ही थी, परन्तु गोरा के हृदय में जो एक नया परिवर्तन हो रहा था, यही चिन्ता उनके मन में भर रही थी। आज गोरा अकारण ही भ्रमण के लिए जा रहा है, यह सुनकर उनकी चिन्ता और भी बढ़ गई। पीठ पर पोटली बाँधे हुए गोरा ने जैसे ही सड़क पर पाँव रखा; वैसे ही विनय गुलाब का फूल हाथ में लिये उसके सामने आ उपस्थित हुआ। गोरा ने कहा—'तुम्हारे दर्शन से यात्रा शुभ होगी अथवा अशुभ ?'

विनय ने पूछा—कहीं जा रहे हो क्या ?'

गोरा ने कहा—'हाँ !'

विनय—'कहाँ ?'

गोरा—'देखो ? प्रतिध्वनि ने जो उत्तर दिया वहाँ।'

विनय—'क्या प्रतिध्वनि की अपेक्षा कोई अन्य ठीक उत्तर नहीं है ?'

गोरा—'तुम माँ के पास जाओ। उनसे सब मालूम हो जायेगा। मैं जाता हूँ।' इतना कहकर गोरा तेजी से चल दिया।

विनय ने घर में भीतर पहुँचकर आनन्दमयी के चरणों पर गुलाब के फूल रख दिये।

आनन्दमयी ने फूल उठाते हुए पूछा—'ये कहाँ से मिले ?'

विनय ने ठीक उत्तर न देते हुए कहा—'कोई श्रेष्ठ वस्तु मिलते ही इच्छा होती है कि पहिले उससे माँ की पूजा करूँ ?'

फिर वह आनन्दमयी की चौकी पर बैठते हुए बोला—'माँ, क्या आज-कल तुम्हारा चित्त चंचल है।'

आनन्दमयी—'यह तुम्हें कैसे प्रतीत हुआ ?'

विनय—'इसलिए कि आज तुम मुझे पान देना भूल गई हो।'

आनन्दमयी ने लज्जित हो विनय को पान लाकर दिया।

इसके पश्चात् दोपहर तक दोनों में बातचीत होती रही। 'गोरा इस प्रकार निरुद्देश्य क्यों घूम रहा है'—इस सम्बन्ध में विनय कोई बात न बता सका।

कुछ इधर-उधर की बातों के बाद आनन्दमयी बोलीं, 'तुम कल गोरा को साथ लेकर परेश बाबू के घर गए थे ?'

विनय ने रात की सारी घटना विस्तारपूर्वक सुना दी। आनन्दमयी ने प्रत्येक बात को बड़े ध्यान से सुना।

जाते समय विनय बोला—'माँ, पूजा तो ठीक हुई। अब तुम्हारे चरणों का प्रसाद स्वरूप फूल मस्तक पर रखने को मिल सकेगा क्या ?'

आनन्दमयी ने मुस्कराकर, विनय के हाथ में गुलाब का फूल देते हुए सोचा—'ये दोनों फूल केवल सौन्दर्य के कारण ही मान प्राप्त करते हों, ऐसा नहीं है। भीतर अवश्य ही कोई गम्भीर रहस्य छिपा हुआ है।'

दिन के पिछले पहर जब विनय चला गया तो आनन्दमयी न जाने कहाँ-कहाँ की बातें सोचने लगीं। वे बार-बार भगवान से यही प्रार्थना करने लगीं कि गोरा को किसी प्रकार का कष्ट न हो तथा विनय से उसके पृथक् होने का कोई कारण न बने।

२१

गुलाब के फूलों की भी एक कहानी है। कल रात को परेश बाबू के घर से गोरा तो चला आया था, परन्तु मजिस्ट्रेट के यहाँ अभिनय में सहयोग करने के प्रस्ताव को पाकर विनय बड़े संकट में पड़ गया था।

यद्यपि ललिता का इस अभिनय में कोई उत्साह नहीं था, परन्तु वह विनय को उसमें सम्मिलित करने की जैसी जिद पकड़ बैठी थी। जो काम गोरा के मत के विपरीत थे, उन्हें विनय द्वारा करना ही उसका अभीष्ट था। ललिता को यह बात असह्य थी कि विनय गोरा का अनुगामी रहे, यद्यपि इसके कारण को वह स्वयं भी नहीं जानती थी। वह केवल यही चाहती थी कि किसी प्रकार वह विनय को गोरा के हाथ से मुक्ति दिलवा दे।

अपनी चोटी हिलाते हुए ललिता ने विनय से पूछा था—'क्यों,

अभिनय करने में दोष ही क्या है ?'

विनय बोला—'अभिनय करने में दोष चाहे न हो। परन्तु मजिस्ट्रेट के घर जाकर अभिनय करना मुझे भला प्रतीत नहीं होता।'

ललिता—'यह आप अपने मन की बात कहते हैं अथवा किसी दूसरे के मन की ?'

विनय—'मैं दूसरे के मन की बात का ठेका नहीं लेता। आप चाहे विश्वास न करें, परन्तु मैं सदा अपने मन की बात ही कहता हूँ, कभी अपने मुँह से और कभी किसी अन्य के मुँह से।'

ललिता इसका कोई उत्तर न देकर मुँह टेढ़ा कर हँसने लगी। कुछ देर बाद बोली—'आपके मित्र गौर मोहन बाबू मजिस्ट्रेट का निमन्त्रण अस्वीकार करने में कोई बड़ी बहादुरी समझते हैं, मानो वे इसी प्रकार अंग्रेजों से लड़ाई करके अपने हृदय के फफोले फोड़ लेते हैं।'

विनय उत्तेजित होकर बोला—'मेरा मित्र तो ऐसा नहीं समझता, परन्तु मैं यह अनुभव करता हूँ कि जो लोग हमें आदमी नहीं समझते, जिनके इशारे पर हम बन्दर की तरह नाचते हैं उनकी यदि उपेक्षा न की जाय, तो फिर अपने सम्मान की रक्षा कैसे हो सकेगी ?'

ललिता भी स्वाभिमानी थी, अतः विनय के मुँह से आत्म-सम्मान की बात सुनकर मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुई परन्तु इससे अपने पक्ष को दुर्बल होता जानकर वह अकारण ही व्यंग्य वचन कह-कहकर विनय को चिढ़ाने लगी।

अन्त में विनय ने कहा—'आप इतनी बहस क्यों करती हैं ? साफ क्यों नहीं कहतीं कि आपकी इच्छा को पूर्ण करने के लिए अभिनय में साथ दूँ। इस स्थिति में, मैं अपनी मनोभावना को त्यागकर, आपको सुखी करने के लिए यह अनुरोध स्वीकार कर लूँगा।'

ललिता बोली—'यह मैं क्यों कहूँ ? आप जिस मत को मानते हैं, उसे मेरे अनुरोध से क्यों छोड़ देंगे ? परन्तु वह मत सत्य होना चाहिए।'

विनय—'यही सही। न तो मैं अपने मत को सत्य कर सकता हूँ और न उस सम्बन्ध में आपके अनुरोध की ही आवश्यकता है। फिर भी मैं आपके अनुरोध का पालन करने के लिए अभिनय में योग दे सकूँगा।'

इसी समय वहाँ वरदासुन्दरी को आते देख विनय उठकर बोला—

'कहिए, अभिनय में सम्मिलित होने के लिए मुझे क्या करना पड़ेगा ?'

वरदासुन्दरी गर्व से बोलीं—'उसके लिए आप चिन्ता न करें। मैं आपको तैयार कर लूंगी। आपको केवल अभ्यास के लिए प्रतिदिन निश्चित समय पर आना पड़ेगा।'

'तो मैं जाता हूं।'

'यह क्या कह रहे हो ? कुछ खाकर जाना।'

'नहीं, आज नहीं।'

'ऐसा न हो सकेगा।'

विनय को भोजन करना ही पड़ा, परन्तु उस दिन उसके चेहरे पर स्वाभाविक प्रसन्नता नहीं थी। सुचरिता भी चिन्तित-सी एक ओर चुप बैठी हुई थी। विनय जब ललिता से बहस कर रहा था, तब वह बरामदे में टहल रही थी। आज रात में बातें भी न जम सकीं।

विनय ने लौटते समय ललिता के उदास मुख को देखते हुए कहा, 'मैं हार मानकर भी आपको प्रसन्न न कर सका।'

ललिता बिना उत्तर दिए ही चली गई। वह रोना नहीं जानती थी, परन्तु आज आँखों से आँसू बह निकलना चाहते थे। वह सोच रही थी, निरपराध विनय बाबू को बार-बार चुटीली बातें कहकर वह स्वयं भी कष्ट क्यों पाती है ?

जब तक विनय अभिनय में सम्मिलित होने को तैयार न था तब तक ललिता की जिद भी जोर पकड़ रही थी, परन्तु जब वह तैयार हो गया, तो उसका सारा उत्साह धूल में मिल गया। उसका मन व्यथित होकर कहने लगा—'केवल मेरा अनुरोध रखने के लिए विनय बाबू का यों तैयार होना ठीक नहीं है। वे मेरा अनुरोध रखकर भद्रता कर रहे हैं, परन्तु उनकी भद्रता प्राप्त करके मेरे मस्तिष्क में तो पीड़ा हो उठी है।'

निस्सन्देह विनय को अभिनय में सम्मिलित होने के लिए वह इतने दिनों से आग्रह कर रही थी। आज जब उसने उसके इतने बड़े अनुरोध को मान लिया, तब उसके ऊपर क्रोध करना भी अनुचित ही है। इस घटना से ललिता को स्वयं पर बड़ी घृणा तथा लज्जा हुई। अन्य दिनों में वह मन खिन्न होने पर सुचरिता के पास चली जाती थी, परन्तु आज वह न जा सकी। उसकी आंखों से आँसू बरसने लगे, परन्तु उनका ठीक-ठीक कारण

वह स्वयं भी न समझ सकी।

दूसरे दिन सुधीर ने लावण्य को एक गुलदस्ता लाकर दिया। उसमें गुलाब की एक डाली में दो अधखिले गुलाब के फूल थे। ललिता ने उन्हें खोलकर रख लिया। लावण्य ने पूछा—'यह क्या किया ?' तो उसने उत्तर दिया—'अनेक फूल-पत्तियों के बीच एक अच्छे फूल को बँधा देखकर मुझे दुःख होता है। इस प्रकार सब भली-बुरी वस्तुओं को एक ही रस्सी से बाँधना मूर्खता ही है।'

यह कहकर ललिता ने सब फूलों को खालकर यथायोग्य स्थल पर रख दिया, केवल उन गुलाब के दोनों फूलों को लेकर वह चली गई।

सतीश ने उसके हाथ में फूल देखकर पूछा—'बहिन, ये फूल कहाँ से आये ?'

ललिता ने उसका उत्तर न देते हुए प्रश्न किया—'आज तू अपने मित्र के घर जाएगा न ?'

मित्र का नाम सुनते ही सतीश उछल कर बोला—'जाऊँगा क्यों नहीं ?'

ललिता उसका हाथ पकड़कर बोली—'तू वहाँ जाकर करता क्या है ?'

सतीश ने उत्तर दिया—'गपशप।'

ललिता ने कहा—'उन्होंने तुझे इतनी तस्वीरें दी हैं, पर तू उन्हें कुछ क्यों नहीं देता ?'

सतीश के लिए विनय अंग्रेजी पत्रों के विज्ञापनों में से अनेक तस्वीरें काट कर दिया करता था। सतीश उन्हें एक फाइल में चिपका कर रख लेता था। अपनी फाइल भरने के लिए वह इतना उतावला हुआ कि अच्छी किताबों के चित्र देखकर, उन्हें भी काट लेने के लिए उसका मन छटपटाया करता था। इस अपराध पर उसे अपनी बहिनों द्वारा दण्ड भी सहना पड़ता था।

संसार में, बदले में कुछ देना भी आवश्यक होता है, यह जानकर सतीश को आज बहुत चिन्ता हुई। टीन के टूटे बक्स में जो उसकी निजी सम्पत्ति है, उसमें कोई वस्तु नहीं थी, जिसे वह किसी को सहसा दे सकता। उसके घबराये हुए चेहरे को देखकर ललिता ने मुस्करा कर उसका गाल

दबाते हुए कहा—'ले, ये दोनों गुलाब के फूल उन्हें दे देना।'

इस प्रकार कठिन समस्या का समाधान होते देख, उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। वह दोनों फूल लेकर मित्र का ऋण चुकाने चल दिया।

विनय से उसकी भेंट मार्ग में ही हो गई। वह उसे दूर से ही 'विनय बाबू! विनय बाबू' पुकारता हुआ दौड़कर पास जा पहुँचा तथा फूलों को अपने कुरते की जेब में छिपाता हुआ बोला—'कहिए, मैं आपके लिए क्या लाया हूँ?'

विनय जब न बता सका, तो उसने दोनों फूल दिखा दिए। विनय ने कहा—'वाह! क्या ही सुन्दर हैं। परन्तु सतीश बाबू, यह तुम्हारी चीज तो है नहीं। इसे देकर कहीं मुझे पुलिस के हवाले तो नहीं करना चाहते?'

ये फूल सतीश के अपने थे या नहीं, इस ख्याल से सतीश के हृदय को बड़ी ठेस पहुँची। कुछ रुककर वह बोला—'वाह! ये फूल ललिता बहिन ने मुझे दिए हैं—आपके लिए।'

इतनी बात होने पर फैसला हो गया कि शाम को विनय उनके घर जाएगा। अतः आश्वस्त हो सतीश चल दिया।

कल रात को ललिता ने जो ताना कसा था उससे विनय को बड़ी वेदना हुई। विनय का किसी से विरोध नहीं होता इसलिए वह किसी से ऐसी चोट की आशा भी नहीं करता। इससे पूर्व विनय ने ललिता को सदैव सुचरिता की अनुगामिनी ही समझा था। किन्तु जैसे अंकुश से घायल हाथी अपने महावत को नहीं भूल पाता, वही हालत विनय की ललिता के विषय में थी। ललिता को प्रसन्न करने की उसे बड़ी चिन्ता थी। शाम को अपने घर आने पर ललिता की चुभती हुई व्यंग्य की बातें नींद हराम कर देती थीं। वह सोचता कि ललिता का यह कहना कि मैं गोरा की परछाईं की तरह हूँ, कितना गलत है। ललिता अपनी बात के पक्ष में तरह-तरह की युक्तियाँ देती थी, परन्तु उनका जवाब अपने मन में होने पर भी कुछ न कह पाने के कारण उसका मन और भी उद्विग्न हो उठा।

कल की रात स्वयं हार मानकर भी जब वह ललिता के मुख पर प्रसन्नता न देख सका तो घर आकर बहुत घबरा उठा था और सोच रहा था कि क्या वास्तव में उसकी ऐसी अवस्था होनी चाहिए।

इसी कारण जब उसने सतीश के मुख से यह सुना कि ललिता ने उसके

लिए फूल भेजे हैं तो वह प्रसन्नता से खिल उठा था। उसने समझा, अभिनय में सम्मिलित होने की स्वीकृति देने के कारण ही ललिता ने प्रसन्न होकर ये फूल भेजे हैं। पहले तो उसने विचार किया कि इन फूलों को घर में रख आना चाहिए, परन्तु बाद में निश्चय हुआ कि इन शान्ति-सूचक फूलों को मां के चरणों में चढ़ाकर पवित्र कर लेना चाहिए।

उस दिन सायंकाल जब वह परेश बाबू के घर पहुँचा, तब सतीश ललिता के पास बैठा हुआ स्कूल का पाठ याद कर रहा था। विनय ललिता की ओर देखकर बोला—'लाल रंग युद्ध का सूचक है, अतः सन्धि का फूल होना चाहिए।'

ललिता इसका अर्थ न समझकर, उसके मुँह की ओर देखने लगी, तभी विनय ने अपनी चादर के छोर से सफेद कनेर के फूलों का गुच्छा खोलकर उसके सामने रखते हुए कहा—'आपके दोनों फूल कितने सुन्दर क्यों न हों, परन्तु वे कोप के सूचक हैं, मेरे ये फूल सौन्दर्य में उनकी समानता नहीं कर सकते, फिर भी ये शान्ति एवं नम्रता के प्रतीक स्वरूप आपके समक्ष उपस्थित हैं।'

ललिता के कपोल गुलाबी हो गये। बोली—'मेरे फूल किन्हें कह रहे हैं!'

विनय ने ठिठकते हुए कहा—'मेरी भूल से मुझे धोखा हुआ। सतीश बाबू! तुम्हें फूल किसने दिये थे।'

सतीश जोर से बोला—'ललिता बहिन ने ही तो देने को कहा था।'

विनय—'किसे ?'

सतीश—'आपको।'

ललिता खिसियाकर सतीश की पीठ में एक थप्पड़ मारती हुई बोली, 'तुझ-सा मूर्ख मैंने नहीं देखा। तू ही तो विनय बाबू के लिए चित्रों के बदले उन्हें फूल देना चाहता था न ?'

सतीश ने हतबुद्धि होते हुए कहा—'हाँ, उन्हीं के बदले तो देने गया था, लेकिन कहा तो तुम्हीं ने था न ?'

अब ललिता और पकड़ी गई। विनय समझ गया कि ललिता ने ही फूल भेजे थे, परन्तु वह गुप्त रखना चाहती थी। विनय बोला—'मैं आपके फूलों के दावे को छोड़ देता हूँ, परन्तु इस सम्बन्ध में मेरी कोई भूल न

समझें। इस झगड़े का निबटारा करने के लिए मैं आपको ये फूल···।'

ललिता बीच में ही बोल पड़ी—'कैसा झगड़ा और कैसा निबटारा ?'

विनय—'यह खूब इन्द्रजाल रहा। विवाद भी झूठा, फूल भी झूठा और निबटारा भी झूठा। सीप में चाँदी का ही भ्रम नहीं बल्कि सीप भी भ्रमात्मक ? अच्छा, अब बताइये कि मजिस्ट्रेट साहब के यहाँ अभिनय की बात भी क्या···?'

ललिता बोली—'यह भ्रम नहीं, सत्य है। परन्तु उसके लिए विवाद कैसा ? कहीं आप यह न समझ बैठें कि उसके लिए ही मैंने आप से कलह करके स्वीकृति ली है और मैं उससे कृतार्थ हो गई हूँ। यदि आपको अभिनय अनुचित जान पड़े तो आप उसे स्वीकार ही क्यों करेंगे ?'

ललिता इतना कहकर चली गई। विनय क्या सोचकर आया था और क्या हो गया ! ललिता दृढ़ थी कि मैं विनय के सम्मुख हार स्वीकार नहीं करूँगी तथा इसी पर बल दूँगी कि वह अभिनय करना अस्वीकार कर दे। अब यह नई बात उठ जाने से परिणाम उल्टा हो गया। विनय ने समझा, 'मैंने अभिनय के लिए पहले जो असहमति प्रकट की थी, शायद उसी के कारण ललिता यह समझ रही है कि मेरी बाद की स्वीकृति ऊपरी मन की है। इसीलिए शायद उसका क्षोभ वह अभी तक दूर नहीं कर सका है। उसने निश्चय किया है कि अब मैं इस कार्य को विशेष निपुणता से सम्पन्न करूँगा।'

सुचरिता आज प्रातःकाल से ही अपने कमरे में बैठी ईसाई धर्म की एक पुस्तक को पढ़ने का प्रयत्न कर रही थी। परन्तु आज उसका मन न तो पुस्तक पढ़ने में लग रहा था और न किसी अन्य काम को करने में।

एक बार उसे दूर से आवाज सुनाई दी कि, 'विनय बाबू आए हैं।' तभी वह चौंक कर पुस्तक बन्द कर बैठी, परन्तु फिर अपने कान बन्द करके उसे पढ़ने लगी।

कई बार ऐसा हो चुका था कि विनय पहले आ गया था और पीछे-पीछे गोरा भी आ पहुँचा था। आज भी यह हो सकता है, यह विचार कर, बार-बार चकित हो उठी थी। उसे यही भय लग रहा था कि गोरा कहीं पीछे से न आ जाये। साथ ही उसके न आने की आशंका भी कष्ट पहुँचा रही थी।

ऊपरी मन से विनय से कुछ बातें करने के उपरान्त सुचरिता सतीश के चित्रों की फाइल को उलटने तथा उसकी आलोचना में लग गई। इधर मेज पर पड़े कनेर के फूलों को देखकर, विनय मन-ही-मन यह विचार कर रहा था कि ललिता को शिष्टता के नाते भी मेरे इन फूलों को स्वीकार कर लेना चाहिये था।

तभी किसी के पैरों की आहट सुनकर सुचरिता चौंककर बोल उठी, 'हारान बाबू आ रहे हैं।'

हारान बाबू ने कुर्सी पर बैठते हुए पूछा, 'कहिये विनय बाबू ! आपके गौर मोहन बाबू नहीं आए ?'

विनय ने कुछ रुष्ट होते हुए उत्तर दिया—'उनसे कोई काम है क्या ? आजकल कलकत्ते में नहीं हैं।'

हारान बाबू—'तो कहीं धर्म-प्रचार के लिए गए हैं क्या ?'

विनय का क्रोध और बढ़ा, उसने कोई उत्तर नहीं दिया। सुचरिता भी चुपचाप वहाँ से उठ गई।

हारान बाबू भी उसके पीछे-पीछे चले, परन्तु वह तेजी से आगे बढ़ गई। तब हारान बाबू ने उसे पुकारकर कहा—'सुचरिता ठहरो, तुमसे एक बात कहनी है।'

'आज मेरी तबियत ठीक नहीं है।' यह कहते हुए सुचरिता अपने शयनागार में जा पहुँची तथा भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया।

तभी ललिता उसके कमरे में जा पहुँची। उसके मुँह की ओर देखते हुए सुचरिता ने पूछा—'क्यों, क्या बात है आज ?'

'कुछ भी तो नहीं।' उसने उत्तर दिया।

'तू कहाँ थी ?'

'विनय बाबू आए हैं, वे तुमसे कुछ कहना चाहते हैं शायद !'

'क्या विनय के साथ कोई और भी आया है ?' इस प्रश्न को सुचरिता आज न पूछ सकी। फिर वह घर आये अतिथि का सत्कार करने के अभिप्राय से कमरे से बाहर निकलती हुई ललिता से बोली—'क्या तू नहीं चलेगी ?'

'मैं पीछे आ जाऊंगी, तुम जाओ।'

बाहर जाकर सचरिता ने देखा—विनय सतीश के साथ गपशप कर

रहा है। बोली—'बाबूजी घूमने चले गए हैं, आते ही होंगे। आप लोगों के अभिनय की कविता कण्ठस्थ करने के लिए माँ भी लावण्य तथा लीला के साथ मास्टर साहब के यहाँ गई हैं। ललिता जाने को राजी न हुई। वे कह गई हैं कि आपको आने पर बैठा लिया जाये, आज आपकी परीक्षा होगी।'

'क्या आप इसमें नहीं हैं?' विनय ने पूछा।

'सभी लोग अभिनय करने लगे तो फिर दर्शक कौन रहेगा?' सुचरिता ने उत्तर दिया।

वरदासुन्दरी इन सब कामों में सुचरिता को बचाकर चलती थीं, अतः इस बार भी उन्होंने उसे छोड़ दिया।

अन्य दिनों सुचरिता और विनय जब एक स्थान पर बैठते थे, तो बहुत बातें होती थीं, परन्तु आज वैसा नहीं हुआ। सुचरिता निश्चय करके आई थी कि वह गोरा की चर्चा नहीं छेड़ेगी। उधर ललिता की बात से चिढ़कर विनय भी चुप था। वह सोच रहा था कि इस घर के सभी लोग उसे गोरा का अनुयायी समझते हैं, अतः वह उनके सम्बन्ध में कोई बात नहीं करेगा।

इसी समय वरदासुन्दरी आ गईं। वे विनय को अभिनय की तालीम देने के लिए कमरे में ले गईं। तभी मेज पर रखे हुए फूल अदृश्य हो गये। उस रात वरदासुन्दरी के अभिनय-अखाड़े में ललिता दिखाई नहीं दी, तथा सुचरिता भी चिराग को घर के कोने में छिपाकर बड़ी रात तक गाल पर हाथ रखे कुछ सोचती रही। उसे कोई अपरिचित अपूर्व स्थान मृग-तृष्णा की भाँति दिखाई दिया था। उसके मन में आ रहा था—'यह जीवन तुच्छ है, जिसे अब तक सत्य माना, वह शंकाकीर्ण है तथा जिसे नित्य व्यवहार में लाया जाता है, वह अर्थहीन है। अब यहाँ पहुँचकर शायद मैं जीवन को ज्ञानपूर्ण, उच्च तथा सार्थक बना सकूँगी। परन्तु मेरा हृदय काँप क्यों रहा है, पाँव उस ओर आगे बढ़कर फिर स्तब्ध-से क्यों हो रहे हैं?'

२२

इधर कुछ दिनों से सुचरिता उपासना में विशेष मन लगा रही थी। परेश बाबू से भी वह जैसे पहिले से अधिक आश्रय लेती। एक दिन परेश बाबू बैठक में बैठे हुए कुछ पढ़ रहे थे, तभी सुचरिता चुपचाप उनके पास

जा बैठी। परेश बाबू ने पुस्तक को मेज के ऊपर रखते हुए कहा—'क्यों राधा ?'

'कुछ नहीं !' कहकर सुचरिता मेज के ऊपर ठीक से रखी हुई पुस्तकों तथा पत्रों को विना बात सजाने में लग गई।

फिर कुछ देर ठहर कर बोली, 'बाबूजी, आप मुझे जिस प्रकार पहिले पढ़ाते थे, अब उसी प्रकार क्यों नहीं पढ़ाते हैं ?'

परेश बाबू ने हँसकर कहा—'मेरी छात्रा ने मेरे विद्यालय की पढ़ाई समाप्त कर ली है, अब वह स्वयं ही आगे पढ़ सकती है।'

सुचरिता बोली—'परन्तु बाबूजी, मैं स्वयं कुछ नहीं समझ पाती। मैं तो पहिले की भाँति आपसे ही पढ़ूँगी।'

परेश बाबू—'तो तुम्हें कल से पढ़ाऊँगा।'

सुचरिता कुछ देर तक रुककर बोली—'बाबूजी, विनय बाबू ने उस दिन जादि-भेद के सम्बन्ध में कुछ बातें कही थीं, उस सम्बन्ध में आप मुझे कुछ क्यों नहीं बताते ?'

परेश बाबू—'तुम जानती ही हो कि मैंने तुम लोगों के साथ सदैव ऐसा व्यवहार रखा है कि तुम लोग प्रत्येक विषय को स्वयं समझने का प्रयत्न करो मेरी। अथवा अन्य किसी की कही हुई बात को रट लेना ही ठीक नहीं है। यदि तुम मुझसे पूछोगी ही तो मैं उसका अपने मत के अनुसार उत्तर अवश्य दे दूंगा।'

सुचरिता—'मैं आपसे यह पूछना चाहती हूँ कि हम लोग जाति-भेद की निन्दा क्यों करते हैं ?'

परेश बाबू—'यदि एक बिल्ली हमारे साथ में बैठकर खा ले तो उसे कुछ दोष नहीं दिया जाता, परन्तु यदि एक आदमी हमारे चौके में चला जाये तो उस अन्न को खराब हुआ कहकर फेंक दिया जाता है। मनुष्य द्वारा मनुष्य का यह अपमान अधर्म नहीं तो और क्या है ? जो लोग इस प्रकार मनुष्य की अवज्ञा करते हैं, वे संसार में कभी अपनी उन्नति नहीं कर सकते।'

सुचरिता ने गोरा के मुख से सुनी बातों का अनुसरण करते हुए कहा, 'समाज में जो विकार घुस गया है, क्या केवल उसी के कारण वास्तविकता को भी दोष दिया जाना चाहिए ?'

परेश बाबू ने अपने स्वाभाविक शान्त स्वर में उत्तर दिया—'वास्तविकता क्या है, मैं यदि इसे जानता तो कुछ कह सकता था। परन्तु जो प्रत्यक्ष दिखाई देता है, उसके समक्ष किसी काल्पनिक बात को सोचकर मन को किस प्रकार सन्तोष दिया जा सकता है ?'

सुचरिता—'परन्तु सबको समदृष्टि से देखना तो हमारे देश का ही परम सिद्धान्त था न ?'

परेश बाबू—'समदृष्टि से देखना ज्ञान की बात है—हृदय की नहीं। समदृष्टि के भीतर केवल प्रेम ही नहीं, वल्कि घृणा भी विद्यमान नहीं है। समदृष्टि राग एवं द्वेष से परे की वस्तु है। मनुष्य का हृदय ऐसी स्थिति में स्थिर नहीं रह सकता। यही कारण है कि समदृष्टि के सिद्धान्त के रहते हुए भी, नीच जातियों को देव-मन्दिर में प्रविष्ट नहीं होने दिया जाता। यदि देव-स्थानों पर भी समदृष्टि का सिद्धान्त लागू न हो, तब दर्शन-शास्त्र के भीतर उस तत्त्व के रहते हुए भी, न तो कोई लाभ होगा और न हानि ही।'

सुचरिता परेश बाबू की बातों को समझने की कुछ देर तक चेष्टा करती रही। फिर बोली—'तो बाबूजी, आप इन बातों को विनय बाबू आदि को क्यों नहीं समझाते ?'

परेश बाबू कुछ हँसकर बोले—'कम बुद्धि होने के कारण विनय बाबू आदि इन बातों को नहीं समझ पाते—यह वास्तविकता नहीं है, अपितु अधिक बुद्धिमान होने कारण ही वे इन बातों को समझना नहीं चाहते हैं, वे केवल औरों को समझाना ही जानते हैं। जब हृदय से इस बात को समझना चाहेंगे, तब तुम्हारे बाबूजी को उन्हें समझाने की कोई आवश्यकता न रह जायेगी। वे लोग इस समय किसी दूसरे पहलू की ओर ही देख रहे हैं, अतः उन्हें मेरा समझाना भी कोई काम न करेगा।'

गोरा आदि की बातों को श्रद्धापूर्वक सुनने के बावजूद भी, यह संस्कार अथवा धारणा सुचरिता के हृदय को पीड़ित किए रहती थी। आज परेश बाबू की बातें सुनकर उसे उस पीड़ा से क्षण भर को जैसे छुटकारा मिल गया। सुचरिता यह बात जानने के लिए कभी तैयार न थी कि गोरा अथवा विनय आदि कोई भी इस सम्बन्ध में परेश बाबू से अधिक जानकारी रखता

है। जो व्यक्ति परेश बाबू से विरुद्ध मत का होता, उसके ऊपर सुचरिता को क्रोध आये बिना नहीं रहता था। परन्तु हाल ही में उसकी गोरा से जो बातें हुई थीं, उन्हें वह क्रोध, अवज्ञा अथवा उपेक्षा के रूप में उड़ा देने में अपने को असमर्थ अनुभव कर रही थी। यही कारण था जो उसे एक प्रकार का मानसिक कष्ट हो रहा था और इसीलिए आज उसने बचपन की भाँति परेश बाबू का सहारा लेने का निर्णय किया था। चौकी से उठकर, दरवाजे तक जाने के बाद सुचरिता फिर लौट आई तथा परेश बाबू की कुर्सी के पीछे खड़ी होकर उस पर दोनों हाथ जमाते हुए बोली—'बाबूजी, आज उपासना के समय मुझे भी साथ ले चलियेगा।'

'बहुत अच्छा!' कहकर परेश बाबू चुप हो गए। तदुपरान्त सुचरिता अपने सोने के कमरे में जाकर, दरवाजा बन्द करके बैठ गई। आज उसने गोरा की बातों को अग्राह्य कर लेने का प्रयत्न किया, परन्तु बुद्धि एवं विश्वास से चमकता हुआ गोरा का मुख उसकी आँखों के सम्मुख निरन्तर छाया रहा। उसे अनुभव हुआ—गोरा की बातें केवल बातें ही नहीं हैं। वे तो मानो स्वयं गोरा ही हैं। उनमें आकार है, गति है और प्राण है। वह गोरा, विश्वास तथा स्वदेश-प्रेम की वेदना से परिपूर्ण है। वह कोई मत नहीं है, जिसे प्रतिवाद करके समाप्त कर दिया जाये। वह तो सम्पूर्ण मनुष्य है और मनुष्य भी कोई सामान्य नहीं। उसे अपने सामने से हटा देने के लिए हाथ नहीं उठ सकता।

इस द्वन्द्व में पड़कर सुचरिता को रुलाई आने लगी। उसका हृदय यह सोचकर विदीर्ण होने लगा कि कोई व्यक्ति उसे द्विविधा में डालकर, स्वयं उससे निर्लिप्त उदासीन की भाँति अनायास ही दूर चला जा रहा है। तब अपने इस कष्ट को देखकर वह स्वयं को धिक्कारने भी लगी।

२३

यह निश्चित किया गया कि अंग्रेज कवि ड्राइडन की संगीतविषयक एक कविता को विनय रंगमंच पर भावाभिव्यक्ति के साथ पढ़ेगा तथा लड़कियाँ उसके उपयुक्त साज-सज्जा से सज्जित हो मूक अभिनय करेंगी। इसके अतिरिक्त लड़कियाँ अंग्रेजी की अन्य कवितायें पढ़ेंगी तथा गाना गायेंगी।

वरदासुन्दरी ने विनय को यह विश्वास दिला दिया था कि वे उसे किसी प्रकार तैयार कर लेंगी। यद्यपि वरदासुन्दरी स्वयं मामूली अंग्रेजी पढ़ी थीं, परन्तु उन्हें अपने दो-एक अंग्रेजी के विद्वान् साथियों पर पूरा भरोसा था। परन्तु जब पहले दिन रिहर्सल हुआ तो विनय ने अपनी कविता-पाठ की निपुणता से वरदासुन्दरी को चकित करते हुए यह सिद्ध कर दिया कि उसे किसी अन्य अनाड़ी व्यक्ति द्वारा शिक्षा प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है। जो लोग विनय को पहले साधारण-सा व्यक्ति समझते थे, वे भी उसके कविता-पाठ की निपुणता को देखकर उसके प्रति श्रद्धालु हो गये। यहाँ तक कि स्वयं हारान बाबू भी विनय से अपने अंग्रेजी के अखबार में कुछ लिखने के लिए अनुरोध करने से बाज न आए। सुधीर ने भी अपने छात्रों की सभा में अंग्रेजी में व्याख्यान देने के लिए विनय से आग्रह करना आरम्भ कर दिया।

उधर ललिता की दशा विचित्र थी। एक ओर बिना किसी सहायता के विनय को इस प्रकार तैयार देखकर वह प्रसन्न हो रही थी, तो दूसरी ओर उसकी इस दक्षता पर वह मन-ही-मन ईर्ष्यालु भी हो उठी थी। उसे सबसे बड़ा दुःख तो इस बात का हुआ कि उसकी तुलना में विनय किसी प्रकार कम न होकर अधिक श्रेष्ठ ही है। वह स्वयं नहीं समझ रही थी कि विनय के सम्बन्ध में आखिर वह चाहती क्या है और क्या करने से उसके हृदय को शान्ति प्राप्त हो सकेगी। उसका यह रोष कभी-कभी किसी छोटी-छोटी बात पर प्रकट भी हो जाता था, परन्तु फिर उसे ज़ानकर वह स्वयं ही कष्ट भी पाती थी। जिस कार्य में सम्मिलित होने के लिए उसने विनय को बराबर उत्तेजित किया, उसी से वह विनय को पृथक् कर देने के लिए हृदय में बेचैनी-सी अनुभव कर रही थी। परन्तु अब उसे न तो इतना समय और न कोई ऐसा कारण मिल रहा था जिससे वह विनय को कुछ कह सकती।

अन्त में एक दिन ललिता ने अपनी माँ से कहा—'इस अभिनय में मैं सम्मिलित नहीं होऊंगी।'

वरदासुन्दरी उसके स्वभाव को भली-भाँति पहिचानती थीं, अतः सशंकित होकर बोलीं—'क्यों?'

ललिता ने कहा—'मुझसे यह कार्य हो नहीं सकेगा।'

बात असल में यह थी कि जब से विनय को अनाड़ी समझने का कोई कारण नहीं रहा, तब से ललिता का मन उसके सम्मुख रिहर्सल करने को नहीं होता था। बस यही कहती कि अपनी रिहर्सल अलग ही करूँगी। अन्त में भी जब वह किसी प्रकार तैयार नहीं हुई, तो रिहर्सल का काम उसके बिना ही चलाना पड़ा, परन्तु कुछ और दिन बाद ललिता ने अपने को अभिनय से बिलकुल अलग कर देने की घोषणा की तो वरदासुन्दरी के ऊपर तो जैसे वज्र ही गिर पड़ा। जब उन्होंने देखा कि उसके समझाने से काम नहीं चलेगा तो वे परेश बाबू की शरण में जा पहुँचीं।

परेश बाबू साधारणतः लड़कियों की इच्छा-अनिच्छा में कभी कोई हस्तक्षेप नहीं करते थे, परन्तु जब उन्होंने देखा कि मजिस्ट्रेट से वायदा किया जा चुका है और सब तैयारियाँ भी पूरी हो गई हैं तथा ऐन वक्त पर इस तरह का व्यवहार उचित नहीं है, तब उन्होंने ललिता को अपने पास बुलाया। उसके सिर पर हाथ फेरते हुए बोले—'अब तुम्हारा इस प्रकार अलग होना उचित नहीं है।'

ललिता ने रुंधे हुए कण्ठ से कहा—'बाबूजी, मैं अभिनय में अच्छी तरह काम नहीं कर पाऊँगी। वह मुझसे न हो सकेगा।'

परेश बाबू बोले—'पर मैं कहता हूँ कि तुम ठीक से कर सकोगी। हाँ, न करने से उन लोगों के प्रति तुम्हारा बहुत अन्याय होगा।'

ललिता सिर झुकाये खड़ी रही। परेश बाबू बोले—'बेटी, जब तुमने इस कार्य का भार अपने ऊपर लिया है, तो इसे पूरा भी करना ही चाहिये। इसे करने से अहंकार को चोट पहुँचेगी—यह विचार करने का समय नहीं है। उसे चोट पहुँचने दो, उसे ग्रहण करना तुम्हारा कर्तव्य ही होगा। क्या तुम इसे स्वीकार नहीं कर सकोगी?'

'कर सकूंगी!' ललिता ने मुँह की ओर देखते हुए उत्तर दिया।

उसी दिन सायंकाल ललिता विनय के सामने ही सब संकोच को दूर कर, मानो प्रतिस्पर्द्धा लिये नवीन बल लेकर अभिनय में प्रवृत्त हो गई। विनय ने अभी तक उसका कविता-पाठ नहीं सुना था, परन्तु आज उसके ऐसे सतेज, सुस्पष्ट तथा अबोध उच्चारण को सुनकर वह आश्चर्यचकित रह गया। विनय के कानों में उसका कण्ठ-स्वर बड़ी देर तक गूँजता रहा।

अच्छी प्रकार से कविता पढ़ना श्रोता के हृदय में एक विशेष प्रकार

के स्नेह को जन्म देता है, उसी प्रकार विनय की दृष्टि में ललिता भी उस कविता-पाठ के कारण विशेष स्थान प्राप्त कर गई।

पिछले दिनों ललिता के असन्तोष के रहस्य को समझने के लिए विनय को बहुत कुछ मानसिक परिश्रम करना पड़ा था, परन्तु अब ललिता के कविता-पाठ के माधुर्य को देखकर उसे उसके लिए प्रशंसा के शब्द ढूंढ़ना कठिन हो रहा था। परन्तु ललिता से कुछ भी कहने का उसे साहस नहीं हुआ। एक दिन उसने वरदासुन्दरी के पास जाकर ललिता की प्रशंसा की, जिसका परिणाम यह हुआ कि विनय की विद्या एवं बुद्धि के प्रति ललिता की श्रद्धा और भी अधिक बढ़ गई।

एक घटना और भी हुई। ललिता ने जब देखा कि उसका कविता-पाठ तथा अभिनय श्रेष्ठ है तो विनय के प्रति उसके हृदय में जो तीव्रता उत्पन्न हुई थी, वह भी स्वतः ही दूर हो गई। इस कार्य में उसका उत्साह अब और अधिक बढ़ गया। फलस्वरूप विनय के साथ उसकी घनिष्टता भी बढ़ने लगी। यहाँ तक कि कविता के सम्बन्ध में कभी-कभी विनय की राय लेने में भी उसे अब कोई आपत्ति न होती थी।

इस परिवर्तन से विनय के हृदय से जैसे एक बोझ उतर गया। इससे वह इतना आनन्दित हुआ कि वह कभी-कभी आनन्दमयी के पास जाकर लड़कपन जैसी बातें करने लगा। उसका मन सुचरिता के पास बैठकर बहुत-सी बातें करने को भी होने लगा था, परन्तु इस समय उसके दर्शन तो जैसे दुर्लभ ही हो गये थे। अवसर पाकर वह कभी-कभी ललिता से बातें करने बैठ जाता, परन्तु उससे बातें करते समय ललिता विशेष सावधानी से काम लेती। विनय यह अनुभव करता था कि ललिता उसकी बातों को किसी विशेष गहराई से सुनती और ध्यान देती है, तभी वह कभी-कभी स्वाभाविक ढंग से बोल नहीं पाता था। उस समय ललिता भी उससे अनायास यह कह बैठती थी—'आप तो जैसे किसी पुस्तक में से रटने के बाद ये बातें कर रहे हैं?'

विनय उत्तर देता—'हाँ, इतनी आयु तक मैंने पुस्तकें ही रटी हैं, इसीलिए मेरा मन छपी हुई किताब जैसा हो गया है।'

कभी ललिता कहती—'आप बात बनाकर बोलने का प्रयत्न न किया करें। जो मन से कहना हो, कहें। आपकी बातें सुनकर मुझे सन्देह

है कि कहीं आप किसी अन्य की बातों को सोच-समझकर तो नहीं कहते हैं।'

ललिता का हृदय जैसे एक व्यर्थ का मेघ हट जाने पर निर्मल तथा उज्ज्वल हो गया था। उसके परिवर्तन को देखकर वरदासुन्दरी भी चकित थीं। अब वह सब कार्यों में सोत्साह भाग लेती तथा अभिनय के सम्बन्ध में नई-नई कल्पनायें किया करती थी। उन नई कल्पनाओं के कारण उसने सबकी नाक में दम कर रखा था। वरदासुन्दरी इस उत्साह के बीच में खर्च का ध्यान रखती थीं। परन्तु ललिता की उत्तेजित कल्पनावृत्तियों को चोट पहुँचाने का साहस उन्हें नहीं होता था।

इसी बीच में ललिता अनेक बार सुचरिता से भेंट करने गई थी। सुचरिता उसके साथ हँसी भी और बोली भी, परन्तु ललिता ने हर बार उसके हृदय में किसी ऐसी बाधा का अनुभव किया था, जिसके कारण वह उत्तेजित होकर लौट आई थी।

एक दिन उसने परेश बाबू के पास जाकर कहा—'बाबूजी, सुचरिता दीदी बैठी-बैठी किताब पढ़ें और हम लोग अभिनय करने जायें, यह नहीं चलेगा। उन्हें भी हमारा साथ देना पड़ेगा।'

परेश बाबू भी कुछ दिनों से अनुभव कर रहे थे कि सुचरिता अपने साथियों से दूर होती जा रही है। यह अवस्था उसके लिए स्वास्थ्यकर नहीं। ऐसा विचार कर, वे उसके प्रति चिन्तित रहते थे। ललिता की बात सुनकर उन्होंने सोचा सम्भवतः आमोद-प्रमोद में पड़ने पर उसकी दशा में कुछ सुधार हो जाये, यह विचार कर उन्होंने उत्तर दिया—'अपनी माँ से कहो न?'

ललिता बोली—'माँ से तो कहूँगी, परन्तु दीदी को तैयार करने का भार आपको लेना होगा।'

परेश बाबू के कहने पर सुचरिता ने कोई विरोध नहीं किया, अब वह अभ्यास में सम्मिलित होने लगी।

सुचरिता के आने पर विनय ने उससे पहिले की भाँति वार्तालाप करने का प्रयत्न किया, परन्तु इतने दिनों में न जाने क्या परिवर्तन हो गया था कि वह उससे कभी भली-भाँति आँख भी न मिला सका। सुचरिता भी केवल उतने ही समय के लिए आती जितनी देर का उसका काम होता था।

इस प्रकार देखते-ही-देखते वह विनय से बहुत दूर जा पहुँची।

पिछले कई दिनों से गोरा के उपस्थित न होने के कारण विनय परेश बाबू के परिवार के साथ भली-भाँति घुल-मिल गया था। विनय के इस भाव को देखकर परेश बाबू के घर भी सब लोग एक विशेष तृप्ति का अनुभव कर रहे थे। अब, जबकि विनय परेश बाबू के पारिवारिक सदस्यों को अपने अधिक-से-अधिक निकट लाने का उपक्रम कर रहा था, तभी सुचरिता उससे अधिक दूर पहुँच गई। अन्य किसी समय ऐसा होता तो यह विनय को असह्य हो उठता परन्तु इस समय उसे कोई वैसा अनुभव नहीं हुआ। ललिता भी सुचरिता के इस भावान्तर को लक्ष्य कर रही थी, फिर भी उसने उसके प्रति कोई अभिमान प्रकट नहीं किया।

सुचरिता को अभिनय में सम्मिलित होते देखकर सबसे अधिक उत्साहित हारान बाबू थे। एक दिन उन्होंने स्वयं यह प्रस्ताव रखा कि 'पैराडाइज लास्ट' का एक अंश वे स्वयं पढ़ेंगे तथा ड्राइडन के काव्य का जो अभिनय होगा, उसकी भूमिका के रूप में 'संगीत की मोहिनी शक्ति' विषय पर एक छोटा-सा भाषण भी देंगे। उनके इस प्रस्ताव को सुनकर वरदासुन्दरी मन-ही-मन खीझ उठीं, ललिता भी असन्तुष्ट रही, परन्तु हारान बाबू मजिस्ट्रेट से स्वयं मुलाकात करके इस प्रस्ताव को पहिले ही पक्का कर आये थे, अतः कोई चारा नहीं था। क्योंकि ललिता ने इस सम्बन्ध में जब यह आपत्ति उठाई थी कि इन मामलों को इतना बढ़ाना मजिस्ट्रेट साहब को उचित नहीं लगेगा, उस समय हारान बाबू ने इस सम्बन्ध में मजिस्ट्रेट का कृतज्ञता-पत्र निकालकर ललिता के हाथ में रख, निरुत्तर कर दिया था।

गोरा बिना किसी काम के ही पर्यटन करने निकल पड़ा था। उसके लौटने की कोई निश्चित तिथि न थी, परन्तु न जाने क्यों सुचरिता के हृदय में प्रतिदिन ही यह आशा बँधी रहती थी कि आज गोरा लौटकर वहाँ आयेगा। इस आशा को वह किसी भी प्रकार अपने मन से नहीं निकाल पाती थी। ऐसी ही स्थिति में एक दिन हारान बाबू ने ईश्वर का नाम लेकर, परेश बाबू के समक्ष सुचरिता का विवाह अपने साथ कर देने के सम्बन्ध में निश्चित कर देने का प्रस्ताव फिर रख दिया। परेश बाबू ने उत्तर दिया— 'अभी विवाह में बहुत विलम्ब है। इतना शीघ्र सम्बन्ध का बन्धन होना उचित नहीं रहेगा।'

हारान बाबू ने कहा—'विवाह के पूर्व का कुछ समय इस बन्धन की अवस्था में बिताने को मैं वर-कन्या दोनों ही के लिए विशेष उपकारी सिद्ध कहूँगा।'

परेश बाबू—'मैं सुचरिता से पूछकर उत्तर दूँगा।'

हारान बाबू—'परन्तु उन्होंने तो पहले ही स्वीकृति दे दी थी ?'

हारान बाबू के प्रति सुचरिता के मनोभावों में परेश बाबू का अभी तक सन्देह विद्यमान था। इसीलिए उन्होंने सुचरिता को वहीं बुलाकर, उसके सामने हारान बाबू का प्रस्ताव फिर से रखा। सुचरिता चाहती थी कि अपने द्विविधायुक्त जीवन को किसी भी एक स्थान पर समर्पित करने से उसकी जान बचे तो ठीक है। यही विचार कर उसने तुरन्त अपनी स्वीकृति दे दी। यह देखकर परेश बाबू का सन्देह भी दूर हो गया। फिर भी उन्होंने सुचरिता से कहा कि ऐसे सम्बन्ध में इतनी शीघ्रता से कोई निर्णय करने की अपेक्षा, उस पर भली-भाँति विचार कर लेना ही उचित है। परन्तु तब भी सुचरिता ने इस सम्बन्ध में कोई आपत्ति तक नहीं की।

अन्त में, यह निश्चय हुआ कि ब्राउनली साहब के निमन्त्रण से निश्चिन्त होकर, एक दिन सब लोगों की उपस्थिति में इस सम्बन्ध को पक्का कर दिया जायेगा।

सुचरिता को लगा, जैसे उसका मन राहु के ग्राम से छूट गया है। उसने मन-ही-मन निश्चय किया कि हारान बाबू से विवाह होने के पश्चात् वह अत्यन्त लगन से ब्राह्म-समाज के काम को करेगी तथा उन्हीं से धर्मतत्त्व सम्बन्धी अंग्रेजी की पुस्तकें पढ़कर, उनकी आज्ञानुसार चलेगी। इस प्रकार उसके लिए जो दुरूह तथा अप्रिय था, उसे भी स्वीकार करके उसे एक प्रकार की नवीन स्फूर्ति का अनुभव होने लगा।

हारान बाबू जिस अंग्रेजी पत्र का सम्पादन करते थे सुचरिता ने उसे नहीं पढ़ा था। आज डाक से वह पत्र सुचरिता को मिला। प्रतीत होता था जैसे हारान बाबू ने उस अंक को विशेष रूप से सुचरिता के पास भिजवाया था। सुचरिता अपने कमरे में जाकर, अपने परम कर्तव्य की भाँति उस पत्र को श्रद्धापूर्वक पढ़ने लगी।

उस अंक में 'पुराने विचारों के पागल' शीर्षक एक लेख था। उसमें उन लोगों के ऊपर आक्रमण किया था, जो वर्तमान समय में भी पुराने

जमाने की ओर ही अपना मुँह किए हुए हैं। उस लेख की युक्तियाँ असंगत नहीं थीं—बल्कि यों कहिए कि सुचरिता ऐसी ही युक्तियों की खोज में थी—परन्तु उस लेख को पढ़ते ही यह स्पष्ट हो जाता था कि उस आक्रमण का लक्ष्य एकमात्र गोरा ही है। यद्यपि उस लेख में न तो कहीं गोरा का नाम था और न उसके किसी लेख का उद्धरण ही था, फिर भी जिस प्रकार सैनिक अपनी बन्दूक की गोली से एक-एक मनुष्य की हत्या करके प्रसन्न होता है, उसी प्रकार उस लेख से भी हिंसा जैसा आनन्द टपक रहा था।

सुचरिता को यह लेख असह्य हो उठा। उसकी इच्छा हुई कि वह उसकी प्रत्येक युक्ति को अपनी तीव्र युक्तियों के प्रतिवाद द्वारा नष्ट-भ्रष्ट कर दे। उसने मन-ही-मन कहा—'गौर मोहन बाबू चाहें तो इस लेख को मिट्टी में मिला सकते हैं।' तभी गोरा का उज्ज्वल, प्रदीप मुख-मण्डल सुचरिता की आँखों के सम्मुख प्रकाशित हो जगमगा उठा तथा उसकी गम्भीर कण्ठ-ध्वनि उसके हृदय-देश में ध्वनित हो उठी। उस मुख एवं स्वर की असाधारणता के सम्मुख, इस लेख के लेखक की क्षुद्रता ऐसी तुच्छ प्रतीत होने लगी कि सुचरिता ने उस पत्र को उठाकर धरती पर फेंक दिया।

आज बहुत दिनों के बाद सुचरिता स्वयं ही विनय के पास जा पहुँची तथा उससे कहने लगी—'जिन पत्रों में आप लोगों के लेख प्रकाशित हुए हैं, उन्हें देने के लिए आपने वादा किया था, परन्तु वे आपने अभी तक लाकर नहीं दिये।'

विनय ने उत्तर दिया—'अब मैं उन सब पत्रों का संग्रह कर चुका हूँ। कल ही आपको ला दूंगा।'

दूसरे दिन विनय ने पत्र-पत्रिकाओं की एक गठरी लाकर सुचरिता को दे दी। सुचरिता ने उन्हें पढ़ने के बजाय सन्दूक में बन्द करके रख दिया। पढ़ने की बहुत इच्छा होने के कारण भी उसने उन्हें नहीं पढ़ा, क्योंकि उसने निश्चय कर लिया था कि वह अपने हृदय को किसी प्रकार बहकने न देगी।

अपने विद्रोही हृदय को एक बार फिर हारान बाबू के शासन के अन्तर्गत समर्पित करके उसने जैसे फिर एक बार सान्त्वना का-सा अनुभव प्राप्त किया।

२४

रविवार को प्रातःकाल आनन्दमयी पान लगा रही थीं तथा शशिमुखी पास बैठी हुई उन्हें सुपारी काट-काटकर दे रही थी, उसी समय विनय वहाँ जा पहुँचा। उसे देखते ही शशिमुखी अपने आँचल से कटी हुई सुपारियाँ फेंककर झटपट भाग गई। आनन्दमयी यह देखकर कुछ मुस्करा गईं।

विनय का सबसे मेल-जोल था। शशिमुखी के साथ भी अब तक खूब मेल था। शशिमुखी ने विनय से कहानी कहलवाने का उपाय ढूँढ़ निकाला था कि वह उसके जूते छिपाकर रख देती थी। विनय ने शशिमुखी के जीवन की कुछेक साधारण घटनाओं को लेकर ऐसी कहानियाँ गढ़ रखी थीं कि उन्हें सुनाने पर वह खूब चिढ़ती थी। पहले तो वह उस पर झूठ बोलने का अभियोग लगाती, परन्तु फिर भी जब विनय उसे कहने से बाज नहीं आता, तब वह हारकर उस स्थान से भाग जाती थी। उसने विनय के जीवन की घटनाओं पर वैसी ही कहानी गढ़ने की कोशिश भी की थी, परन्तु कल्पना-शक्ति की कमी के कारण उसे कभी सफलता प्राप्त नहीं हो सकी थी। कहने का तात्पर्य यह है कि विनय जब-जब भी गोरा के घर आता, तभी शशिमुखी सब कार्यों को छोड़कर उसके साथ ऊधम तथा छेड़खानी करने के लिए तैयार हो जाती थी। कभी-कभी आनन्दमयी इसलिए उसे डांट भी देती थीं, परन्तु उसका कोई दोष नहीं होता था। विनय जब उसे बहुत उत्तेजित कर देता था तो उसे भी अपने को सँभालना असम्भव हो जाता था।

वही शशिमुखी आज विनय को देखते ही भाग खड़ी हुई। इसीलिए आनन्दमयी को हँसी आ गई थी। परन्तु उस हँसी में कोई आनन्द नहीं था।

इस छोटी-सी घटना ने विनय के मन पर भी ऐसा आघात किया कि वह कुछ देर तक चुप बैठा रहा। विनय ने उसके साथ विवाह करने की जब स्वीकृति दी थी, तब उसने केवल गोरा की मित्रता को ही ध्यान में रखा था, अन्य बातों का उसने कोई अनुभव नहीं किया था। वह विवाह को व्यक्तिगत मामला न मानकर, पारिवारिक मामला मानता था और इसी गौरव-रक्षा के उद्देश्य के निमित्त उसने पत्रों में कई लेख भी लिखे थे। आज शशिमुखी को अपने सामने से भागते देखकर उसे शशिमुखी के साथ अपने भावी सम्बन्ध का स्वरूप दिखलाई पड़ा। तब यह सोचकर कि गोरा उसे

उसकी प्रकृति के विरुद्ध कहाँ घसीटे लिये जा रहा है, उसे गोरा के ऊपर बहुत क्रोध आया। उसे यह विचार आने पर भी अत्यन्त ग्लानि हुई कि पहले आनन्दमयी ने भी तो इस विवाह को नापसन्द किया था।

विनय के मन का भाव आनन्दमयी समझ गईं। उन्होंने उसका मन दूसरी ओर फेरने के विचार से कहा—'विनय, कल गोरा का पत्र आया है।'

विनय अन्यमनस्क-सा बोला—'क्या लिखा है?'

आनन्दमयी—'कोई खास बात तो नहीं है। देश के छोटे लोगों की दुर्दशा देखकर, विशेषकर उन्हीं का हाल लिखा है। घोलपाड़ा नामक गाँव में मजिस्ट्रेट ने कैसे-कैसे अत्याचार किये हैं, उसका भी कुछ वर्णन है।'

तभी गोरा के प्रति असहिष्णु होते हुए विनय ने कहा—'गोरा को दूसरों का ही ध्यान रहता है। हम लोग जो समाज की छाती पर बैठकर स्वयं अत्याचार करते रहते हैं, उन्हें चाहे भले ही क्षमा करते हुए सत्कर्म बताते रहें?'

गोरा के ऊपर इस प्रकार दोषारोपण करके विनय गोरा के विरुद्ध खड़ा हो रहा है, यह देखकर आनन्दमयी को हँसी आ गई।

विनय बोला—'माँ, तुम हँस रही हो। मुझे जो क्रोध आया, उसका कारण सुनो। उस दिन सुधीर मुझे नैहारी स्टेशन पर अपने एक मित्र के बाग में ले गया। सियालदह स्टेशन से ही पानी बरसना आरम्भ हो गया। जब गाड़ी शोदपुर स्टेशन पर रुकी, तब मेरे सामने एक बंगाली महाशय साहिबी पोशाक पहिने हुए उतरे, उन्होंने अपनी पत्नी को भी उतारा। वे छाता लगाये हुए थे। उनकी पत्नी की गोद में एक बच्चा था। वह स्वयं मोटी चादर ओढ़े थी तथा उसी में बच्चे को छिपाये हुए थी। वह शीत तथा लज्जा से संकुचित हो पानी में खड़ी भीग रही थी तथा उसका बेहया पति छाता लगाये हुए, कुलियों का प्रबन्ध कर रहा था। जब मैंने यह देखा, तभी से प्रतिज्ञा की है कि मैं लक्ष्मी या देवी कहकर स्त्री की मिथ्या पूजा करने वाली काव्य-कल्पना को कभी स्वीकार नहीं करूँगा।'

कुछ देर ठहरकर, अपने आवेश से स्वयं ही लज्जित होकर विनय ने फिर कहना आरम्भ किया—'माँ, तुम सोचती होगी कि विनय कभी-कभी ऐसी बातें कहकर व्याख्यान क्यों देने लगता है, तथा आज भी व्याख्यान की

सनक क्यों सवार हो रही है, तो उस सम्बन्ध में मैं यही कहूँगा कि यह मेरे अभ्यास के कारण ही ऐसा जान पड़ता है। देश की स्त्रियाँ कितनी शक्ति-शालिनी हैं, इस विषय पर मैंने कभी ध्यान ही नहीं दिया, परन्तु इस स्थिति को मैं अब अधिक सहन न करूँगा।'

इतना कहकर विनय तुरन्त वहाँ से चल दिया। उस समय उसका हृदय किसी अपूर्व उत्साह से भर रहा था।

तभी आनन्दमयी ने महिम को बुलाकर कहा—'भैया, हमारी शशि-मुखी का विवाह विनय के साथ न हो सकेगा।'

महिम ने पूछा—'क्यों, क्या तुम्हारी सम्मति नहीं है?'

आनन्दमयी—'यह सम्बन्ध अन्त तक नहीं टिक सकेगा, इसीलिए मेरी राय नहीं है।'

महिम—'गोरा तैयार हो गया है और विनय भी तैयार है, फिर क्यों नहीं टिकेगा? परन्तु इतना मैं अवश्य जानता हूँ कि यदि तुमने सम्मति न दी तो विनय कभी विवाह न करेगा।'

आनन्दमयी—'मैं विनय को तुम्हारी अपेक्षा कहीं अच्छी तरह जानती हूँ।'

महिम—'गोरा से अधिक?'

आनन्दमयी—'हाँ, जितना मैं विनय को जानती हूँ, उतना गोरा भी नहीं जानता। इन्हीं सब बातों पर विचार करके ही मैं इस विवाह की सम्मति नहीं दे सकती।'

महिम—'ठीक है, देखा जायगा, गोरा को तो लौट आने दो।'

आनन्दमयी—'तुम मेरी बात सुनो। इस विवाह के लिए यदि तुमने अधिक हठ किया तो फिर अन्त में बहुत गड़बड़ी मचेगी। मेरी राय नहीं है कि इस सम्बन्ध में गोरा विनय से कुछ कहे।'

'देखा जायगा' कहकर महिम मुँह में पान का बीड़ा रखकर बिगड़ता हुआ वहाँ से चला गया।

२५

गोरा जब भ्रमण के लिए निकला था, उससमय उसके साथ अविनाश, मोतीलाल, वसन्त तथा रमापति थे। परन्तु वे सभी गोरा को पूरा साथ न दे सके। अविनाश तथा वसन्त तो अस्वस्थ होने का बहाना करके चार-पाँच दिन बाद ही कलकत्ता लौट आये, परन्तु मोतीलाल और रमापति, जो उसके ऊपर अगाध श्रद्धा रखते थे, उसे अकेला छोड़कर न लौट सके। परन्तु थे बहुत परेशान। कारण स्पष्ट था कि गोरा बहुत चलने पर भी थकता नहीं था। ये लोग कभी-कभी दो-चार दिन के लिए किसी गाँव में किसी के घर जा ठहरते। वहाँ के सब लोग गोरा की बातें सुनकर दिन-रात घेरे बैठे रहते थे। वे उसे छोड़ना ही नहीं चाहते थे।

कलकत्ता से बाहर, कुलीन-समाज तथा शिक्षित समाज से बाहर हमारा देश कैसा है, यह गोरा ने पहले-पहल देखा। भारत के असंख्य गाँवों में संकीर्ण भेद-भाव, अज्ञानता, उदासीनता, क्षेत्र-भेद आदि किस प्रकार व्याप्त है, यह सब उसे दिखाई पड़ा। सार्वजनिक कार्य-क्षेत्र में प्रविष्ट होने के लिए किन-किन बाधाओं का सामना करना पड़ता है यह भी उसे भली-भाँति ज्ञात हो गया। ग्रामवासियों के बीच निवास किये बिना, वह इन सब बातों को कभी जान ही नहीं सकता था।

एक समय की बात है। गोरा एक गाँव में ठहरा हुआ था, तभी दैवयोग से एक मुहल्ले में आग लग गई। उस भीषण विपत्ति के समय में भी लोगों को भिलकर बचाव का आश्रय लेते न देखकर गोरा को आश्चर्य हुआ। विपत्ति में यदि एक-दूसरे की सहायता न की जाये तो फिर एक स्थान पर घर बनाकर रहने का उद्देश्य ही क्या है? उसने देखा—गाँव के सब लोग इधर-उधर दौड़ रहे हैं। कोई चीख रहा है, कोई हाय-हाय कर रहा है, तो कोई चुपचाप खड़ा हुआ तमाशा ही देख रहा है, परन्तु आग बुझाने का प्रयत्न किसी ने नहीं किया और देखते-ही-देखते समूचा घर जलकर भस्म हो गया।

उस गाँव के पास कोई तालाब अथवा कुआँ नहीं था। स्त्रियों को बहुत दूर से पानी लाकर घर का काम-काज चलाना पड़ता था, परन्तु गाँव के पास ही थोड़े खर्च में कुआँ खोद लेने की ओर वहाँ के किसी धनी व्यक्ति

ने ध्यान ही नहीं दिया था।

इस बस्ती में कई बार आग लग चुकी थी। सब लोग उसे ब्रह्माग्नि तथा दैवदुर्विपाक कहकर आत्म-सन्तोष कर लिया करते थे। किन्तु पास ही पानी का प्रबन्ध करने की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता था।

गोरा को सबसे अधिक आश्चर्य तो यह देखकर हुआ कि उसके साथी मोतीलाल तथा रमापति भी इन सब दुःखों को देखकर बिल्कुल नहीं घबराये। यही नहीं, गोरा की चिन्ता को भी उन्होंने व्यर्थ ही समझा। वे यही सोच रहे थे कि छोटे लोगों में तो ऐसा होता ही आया है, उसके लिए चिन्ता करने की बात ही क्या है ? गोरा को उन दोनों की प्रवृत्ति से बहुत दुःख हुआ।

दूसरे दिन 'मेरे घर से बीमारी का पत्र आया है'—कहकर मोतीलाल भी गोरा का साथ छोड़कर चला गया। अब उसके साथ केवल रमापति रह गया।

इसके उपरान्त, वे दोनों लोग नदी के पास की रेतीली भूमि पर बसी एक मुसलमानी बस्ती में जा पहुँचे। ठहरने के लिए ढूँढ़ने पर सारी बस्ती में उन्हें केवल एक हिन्दू नाई का घर मिला। जब ये उसके घर गए तो उन्होंने देखा कि नाई की स्त्री एक मुसलमान के बालक को अपने घर में पाले हुए है। रमापति तथा गोरा को यह देखकर बहुत सदमा पहुँचा। गोरा ने इस अनाचार के लिए जब नाई को धिक्कारा, तो उसने सीधा-सा उत्तर दे दिया—'पण्डितजी, हम लोग जिसे 'हरि' कहते हैं, उसी को ये लोग 'अल्ला' कहते हैं। फिर भेद ही क्या रहा ?'

धूप कड़ी हो गई थी। नदी वहाँ से दूर थी। चारों ओर बालू ही बालू दिखाई पड़ रही थी। रमापति ने प्यास से व्याकुल होकर पूछा—'यहाँ जल कहाँ मिल सकेगा ?'

नाई के घर के पास एक कुआँ था, परन्तु वह उस कुएँ का पानी न पीकर मुँह बिगाड़े बैठा रहा।

गोरा ने नाई से पूछा—'क्या इस लड़के के माता-पिता नहीं हैं ?'

नाई बोला—'हैं तो सही, परन्तु वे न होने के बराबर ही हैं।'

'सो कैसे ?'

तब नाई ने जो कथा सुनाई उसका सारांश यह था—

'वे लोग जिस जमींदारी में रहते हैं, वह नाल के साहब की ठेके की है। यहाँ की सम्पूर्ण रेतीली भूमि पर नील की खेती करने के लिए, कोठी में अपना कब्जा कर लिया है। अन्य गाँवों के किसानों ने भी इसे स्वीकार कर लिया है, परन्तु अल्लापुर नामक गाँव, जिसमें रहने वाले मुसलमान लोग हैं, को कोठी का साहब अपने वश में नहीं कर सका। इन मुसलमानों का सरदार फेरू मियाँ बड़ा निडर व्यक्ति है। वह कई बार इस सम्बन्ध में तहकीकात के लिए आई पुलिस के साथ मारपीट करने के जुर्म में जेल काट आया है। उसकी हालत यह है कि यदा-कदा संयोग से ही उसके घर चूल्हा जलता है। फिर भी वह किसी से नहीं डरता। इस बार गाँव के लोगों ने नदी की रेतीली भूमि को जोतकर कुछ धान बोया था, परन्तु लगभग एक महीना हुआ, तब कोठी के मैनेजर साहब ने लठैतों को अपने साथ लाकर प्रजा का वह सारा धान लूट लिया था। इस अत्याचार को देखकर फेरू सरदार ने मैनेजर के हाथ में एक ऐसी लाठी मारी, जिससे उसका हाथ टूट गया। डाक्टरों ने इलाज करते समय उस हाथ को काट दिया, तब से लोग उसे हथकट्टा साहब कहते हैं। तब जैसा अन्धेर गाँव में कभी नहीं हुआ था। इस घटना के बाद से पुलिस का क्रोध गाँव के ऊपर आग की तरह बरस रहा है। किसी के घर में कुछ नहीं बचा। स्त्रियों का सतीत्व भी लूटा गया। फेरू सरदार तथा अन्य कितने ही व्यक्तियों को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया है। उनके घर के लोग भूखों मर रहे हैं। लोगों के शरीर के कपड़े तक उतार लिये गये, जिससे वे लज्जा के मारे बाहर भी नहीं निकलते हैं। फेरू का एकमात्र लड़का 'तमीजे' गाँव के रिश्ते से मेरी पत्नी को मौसी कहा करता था। उसे कई दिन से भूखा देखकर ही वह उसे अपने घर ले आई है। नील की कोठी यहाँ से डेढ़ कोस दूरी पर है। पुलिस का दरोगा अब भी अपना दल-बल लिये वहाँ ठहरा हुआ है। सवेरे नाजिम के घर पुलिस आई थी। नाजिम का युवक साला दूसरे गाँव से अपनी बहिन को देखने के लिए यहाँ आया था। दरोगा ने उसे देखते ही कहा—'साला देखने में कैसा तन्दुरुस्त है और छाती कैसी चौड़ी है?' इतना कहकर लाठी का सिरा उसके मुँह पर दे मारा जिससे उसके दाँत टूट गए तथा मुँह से खून निकलने लगा। अपने भाई पर यह अत्याचार होते देखकर जब बहिन चिल्लाती हुई बाहर आई, तो उसे सिपाहियों ने धक्का मारकर दूर धकेल

दिया। गाँव के युवक पुलिस के भय से फरार हो गए हैं और पुलिस उनका पता लगाने के नाम पर यहाँ डटी हुई हमारे ऊपर जुल्म कर रही है। पता नहीं इससे कब उद्धार होगा?'

गोरा उठना नहीं चाहता था, परन्तु रमापति का प्यास के मारे दम निकला जा रहा था। नाई की बात समाप्त होते ही उसने पूछा—'यहाँ से हिन्दुओं का गाँव कितनी दूर है?'

नाई ने कहा—'यहाँ से कोई तीन मील पर, जहाँ नील की कोठी है, वहीं एक मंगलाप्रसाद नामक हिन्दू कायस्थ तहसीलदार रहता है।'

गोरा ने कहा—'उसका स्वभाव कैसा है?'

नाई—'उसे साक्षात् यमदूत ही कहना चाहिये। इतना निर्दयी तथा चालाक व्यक्ति मैंने कोई नहीं देखा। वह दरोगा को अपने घर कई दिनों से ठहराये हुए है। हालाँकि उस सब खर्च को वह हम लोगों से ही वसूल कर लेगा और कुछ मुनाफा भी बचा लेगा।'

रमापति ने गोरा से कहा—'अब यहाँ से चलिये, मैं भूख-प्यास के कारण मरा जा रहा हूँ।'

उसी समय नाइन कुएँ से पानी भरकर उस मुसलमान लड़के को नहलाने लगी। रमापति यह देखकर क्षुब्ध हो उठा।

चलते समय गोरा ने नाई से कहा—'तुम लोग जो अभी तक इस गाँव में ठहरे हुए हो, सो क्या किसी स्थान पर तुम्हारे कुटुम्बी नहीं हैं, जहाँ चले जाओ?'

नाई बोला—'मैं यहाँ बहुत दिनों से रह रहा हूँ, अतः इन लोगों के साथ मुझे ममता हो गई है। मेरे पास खेती को जमीन नहीं है, अतः कोठी का कोई व्यक्ति मुझसे कुछ नहीं कहता। आजकल इस गाँव में कोई पुरुष नहीं है। यदि मैं भी यहाँ से चला जाऊँ तो यहाँ की स्त्रियाँ डर के मारे मर जायेंगी, क्योंकि मैं ही सबकी देख-रेख करता रहता हूँ।'

गोरा—'अच्छा, मैं खा-पीकर फिर यहाँ आऊँगा।'

भूख-प्यास से व्याकुल रमापति ने अपना क्रोध गाँव वालों पर यह दोषारोपण करते हुए उतारा कि वे लोग मूर्ख हैं जो शक्तिशाली कोठी वालों तथा शासन के विरुद्ध अपना सिर उठा रहे हैं।

दोपहर की कड़ी धूप में गरम बालू के ऊपर चलते हुए गोरा ने रमापति

की किसी बात का उत्तर नहीं दिया। गन्तव्य स्थान पर पहुँच कर जब कचहरी वाला मकान दिखाई देने लगा, तब उसने रमापति से कहा—'तुम वहाँ जाकर खाओ-पिओ, मैं उसी नाई के घर जा रहा हूँ।'

रमापति आश्चर्यचकित होकर बोला, 'क्या आप भोजन नहीं करेंगे ?'

'मैं अभी अपना काम करूँगा। हो सकता है, मुझे अल्लापुर में कुछ दिनों रुकना भी पड़े। हाँ, तुम्हें यहाँ ठहरना बर्दाश्त न होगा।'

गोरा के समान धार्मिक हिन्दू के मुँह से यह शब्द सुनकर रमापति के रोंगटे खड़े हो गये। वह सोचने लगा—'क्या गोरा उपवास ही करेगा ?' गोरा का साथ छोड़कर कलकत्ता लौट जाने के लिए अब उसे कुछ कहने-सुनने की आवश्यकता भी न रह गई थी। तभी उसने देखा, गोरा उसे छोड़कर कड़कड़ाती धूप में उष्ण बालुकामय मार्ग पर अकेला ही लौटा जा रहा है।

गोरा यद्यपि भूख-प्यास से व्याकुल हो रहा था, परन्तु अत्याचारी मंगलाप्रसाद के यहाँ भोजन करके जाति बचाना उसे असह्य हो उठा। उसने मन-ही-मन सोचा—'इस भारतवर्ष में पवित्रता का ढोंग करके वास्तव में हम भारी अधर्म कर रहे हैं। क्या मुसलमानों को सताने वाले के यहाँ भोजन करने से मेरी जाति बचेगी और जिसने अनेक कष्ट सहकर भी एक मुसलमान बालक की प्राण-रक्षा की है, उसके यहाँ भोजन करने से धर्म नष्ट हो जायेगा ? अवश्य ही यह अविचार है। मैं उस पापी मंगलाप्रसाद का अन्न कभी ग्रहण नहीं करूँगा।'

गोरा को अकेला लौटते देख नाई आश्चर्यचकित रह गया। गोरा ने आते ही नाई के लोटे को बालू से खूब माँजकर उसी कुएँ से पानी भरकर पिया, तदुपरान्त बोला, 'तुम्हारे घर में कुछ दाल-चावल हों तो हमें दो, हम बनाकर खा लेंगे।'

नाई ने प्रसन्न होकर सारा सामान ला दिया। भोजन करने के उपरान्त गोरा बोला—'मैं तुम्हारे घर दो-चार दिन ठहरूँगा।'

नाई ने हाथ जोड़कर डरते हुए कहा—'महाराज ! आप मुझ नीच के घर रहें, इससे अधिक मेरा सौभाग्य और क्या हो सकता है ? परन्तु हम लोगों के ऊपर पुलिस की कड़ी निगाह है, अतः आपके यहाँ रहने से कोई

नया बखेड़ा न उठ खड़ा हो।'

गोरा बोला—'मेरे यहाँ रहने से पुलिस कोई उत्पात नहीं करेगी और यदि करेगी तो मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।'

'दुहाई बाबूजी की'—नाई ने कहा—'यदि आप हम लोगों की रक्षा करने का प्रयत्न करेंगे, तब तो हम लोग और भी अधिक संकट में फँस जायेंगे। पुलिस वाले समझेंगे कि मैंने आपको पुलिस के विरुद्ध गवाह बना कर अपने यहाँ ठहरा लिया है। उस स्थिति में तो वे फिर मुझे यहाँ रहने भी नहीं देंगे। यदि मैं यहाँ से चला गया तो फिर यह बस्ती बरबाद हुए बिना न रहेगी।'

गोरा अब तक शहर में पलकर ही बड़ा हुआ था। नाई इतना क्यों डर रहा है, यह उसकी समझ में नहीं आया। विपत्तिग्रस्त गाँव को अकेला छोड़ जाना भी उसे स्वीकार नहीं था। तभी नाई ने उसके पैरों पर गिरते हुए कहा—'देखिए, आप ब्राह्मण हैं। किसी पूर्व-जन्म के पुण्य के कारण ही आप मेरे अतिथि हैं। परन्तु स्मरण रखिये कि यदि आप यहाँ रहकर पुलिस के अत्याचारों में कोई हस्तक्षेप करेंगे, तो हमें अधिक विपत्ति में डाल देंगे।'

नाई की इस कायरता से कुछ रुष्ट होकर गोरा दिन के तीसरे पहर ही उसके घर से वापिस लौट पड़ा। उस म्लेच्छाधारी के घर खाने-पीने से उसे कुछ अश्रद्धा भी हुई। शाम होते-होते वह नील की कोठी वाली कचहरी में जा पहुँचा। रमापति पहले ही भोजन करके कलकत्ते चला गया था, अतः उससे भेंट न हो सकी। गोरा के तेजपूर्ण मुख को देखकर मंगलाप्रसाद उसका आतिथ्य-सत्कार करने को ज्यों ही उद्यत हुआ त्यों ही गोरा ने उस पर बिगड़ते हुए कहा—'तुम्हारे यहाँ का पानी भी नहीं पीऊँगा।'

मंगलाप्रसाद ने चकित होकर जब इसका कारण पूछा, तब गोरा ने उसके प्रति अन्यायी, अत्याचारी आदि कटु-वाक्यों का प्रयोग किया तथा आसन पर बैठकर वहीं जमा रहा।

उस समय पुलिस का दरोगा मसनद के सहारे लेटा हुआ तम्बाकू पी रहा था। उसने बैठते हुए तनिक रूखे स्वर में गोरा से पूछा—'तुम कौन हो, कहाँ के रहने वाले हो?'

गोरा उसके प्रश्न का उत्तर न देते हुए बोला—'प्रतीत होता है, दरोगा तुम्हीं हो। अल्लापुर में तुमने जो उपद्रव किए हैं, मैं उन्हीं का समाचार

लेकर आ रहा हूँ। यदि अब भी सँभलकर न चले तो…।'

दरोगा बीच में ही बोल पड़ा—'तो क्या तुम फाँसी लगा दोगे ? मैं तो तुम्हें भिखमंगा समझ रहा था पर अब देखता हूँ कि तुम्हारी त्यौरियाँ चढ़ गई हैं और आँखें रंग बदल रही हैं। शायद तुम्हारी भेंट कभी दरोगा से नहीं हुई ?'

तभी मंगला दरोगा का हाथ पकड़ते हुए बोला—'जाने भी दीजिए, अपने घर आये सज्जन का अपमान नहीं करना चाहिए।'

दरोगा ने बिगड़ते हुए कहा—'यह सज्जन ? इसने आपको जो जी में आया कहा, क्या यह आपका अपमान नहीं था ?'

'आपका कहना भी ठीक है'—मंगला बोला—'परन्तु व्यर्थ क्रोध करने से कोई लाभ नहीं। मैं नील-कोठी के साहब की तहसीलदारी करके खाता हूँ। उसके अतिरिक्त अन्य किसी काम से कोई सम्बन्ध नहीं है। आप ठहरे पुलिस के दरोगा—साक्षात् यमदूत ही कहिए। लोग कहते हैं—बाघ आदमी को मारकर खाता है। वह खाता हो, चाहे न खाता हो परन्तु बदनाम अवश्य है। अतः आप इसके लिए क्या करेंगे ?'

मंगलाप्रसाद किसी पर बिना प्रयोजन के नाराज नहीं होता था। वह किसी का अनिष्ट अथवा अपमान खूब सोचने-विचारने के बाद ही करता था। उसे किसी पर सहसा क्रोध तो कभी आता ही नहीं था।

तब दरोगा ने गोरा से कहा—'बाबू, तुम निरे देहाती लगते हो। हम यहाँ सरकारी काम से आये हैं। यदि तुमने उसमें कोई रोड़ा अटकाया तो मुसीबत में पड़ जाओगे।'

गोरा कोई उत्तर न देकर चुपचाप बाहर निकल आया। मंगला भी उसके पीछे-पीछे बाहर चला आया और पास पहुँचकर बोला—'महाराज, आपका कहना ठीक है। हम लोगों का काम कसाई जैसा ही है। यद्यपि इस बेईमान दरोगा को अपने बिछौने पर बैठाने में भी पाप है और इसके पंजे में पड़कर मैंने जितने पाप किये हैं उनका वर्णन भी नहीं किया जा सकता। परन्तु अब यह पापवृत्ति अधिक दिनों तक नहीं चलेगी। मुझे लड़की का ब्याह करना है। दो-तीन वर्ष में जब उसके लिए धन एकत्रित कर लूंगा तब मैं स्वयं इस जगह को छोड़कर अपनी पत्नी सहित काशीवास करूंगा। अस्तु, आप रात में यहीं ठहरिये और भोजन कीजिये। मैं आपके खाने-

पीने का अलग प्रबन्ध कर दूंगा तथा उस पापी दरोगा की छाया तक आपके ऊपर न पड़ने दूंगा।'

गोरा का शरीर क्रोध से जल रहा था, अतः वह यह कहकर कि मुझे एक आवश्यक कार्य है, वहाँ से चलने लगा।

मंगला ने यह देखकर कहा—'अच्छा, कुछ देर ठहरिये। मैं आपके साथ एक लालटेन वाला किये देता हूँ।'

परन्तु गोरा वहाँ से तीर की भाँति निकल पड़ा। मंगलाप्रसाद ने दरोगा के पास लौटकर कहा—'मालूम होता है, वह आदमी सदर गया है, अतः आप एक आदमी को मजिस्ट्रेट के पास भेज दीजिये।'

दरोगा—'क्यों, किसलिए?'

मंगला—'इसलिए कि यह डिवीजनल अफसर को यह बता आये कि यहाँ पर एक आदमी कहीं से आकर गवाहों को बिगाड़ने के प्रयत्न में घूम रहा है।'

२६

सन्ध्या के समय मजिस्ट्रेट ब्रैडला साहब नदी किनारे वाली सड़क पर पैदल घूम रहे थे, साथ में हारान बाबू भी थे। उनसे कुछ दूरी पर परेश बाबू की लड़कियों के साथ बग्घी में बैठी हुई उनकी मेम साहिबा भी हवा खाने निकल पड़ी थीं।

कभी-कभी ब्रैडला साहब अच्छे बंगालियों को अपने यहाँ गार्डन पार्टी में न्यौता देकर बुलवा लिया करते थे। वे किसी स्कूल में पुरस्कार बाँटने के लिए सभापति का आसन ग्रहण करते अथवा किसी रईस द्वारा अपने पुत्र-पुत्री की शादी में निमन्त्रित किए जाने पर, उसमें सम्मिलित होते थे। गत दशहरे के यात्रा-उत्सव में सरकारी वकील के यहाँ जो पार्ट अदा किया था, ब्रैडला साहब को वह इतना पसन्द आया कि उनके अनुरोध पर उस अभिनय का कुछ अंश दुबारा दिखाया गया था।

साहब की पत्नी एक पादरी की लड़की थी, अतः पादरियों की लड़कियाँ उनके यहाँ प्रायः चाय पीने आया करती थीं। उसने शहर के भीतर एक कन्या पाठशाला की स्थापना की थी और उसमें आने के लिए लड़कियों को

प्रोत्साहित किया करती थी। परेश बाबू की लड़कियों में विद्या के प्रति प्रेम देखकर वह उन्हें उत्साहित करती, पत्र आदि भेजती तथा बड़े दिन की खुशी में धर्म-ग्रन्थ भेंट किया करती थी।

प्रदर्शनी के दिन मेले का सब प्रबन्ध ठीक कर दिया गया था। दूर-दूर से सौदागर आये थे। उसी उपलक्ष्य में हारान बाबू, सुधीर, विनय, वरदासुन्दरी तथा उनकी लड़कियाँ यहाँ आकर एक बँगले में ठहरे हुए थे। परेश बाबू इनके साथ न आकर, कलकत्ते में ही रह गये थे। सुचरिता भी उन्हीं के पास रह जाना चाहती थी, परन्तु परेश बाबू ने उसे कर्तव्य-पालन के निमित्त यहाँ भेज दिया था। परसों सन्ध्या के समय कमिश्नर तथा गवर्नर के मध्य परेश बाबू की लड़कियों के अभिनय की बात निश्चित हुई थी। उसे देखने के लिए चुने हुए अनेक हिन्दू वकील, बैरिस्टर, जमींदार आदि को आमन्त्रित किया गया था। यह भी सुना जाता था कि उनके जलपान आदि के लिए बाग में एक तम्बू के भीतर ब्राह्मण रसोइये की व्यवस्था की गई है।

हारान बाबू ने अपनी सार-गर्भित बातचीत से मजिस्ट्रेट को विशेष रूप से प्रसन्न कर लिया था। वे ईसा मसीह की धर्म सम्बन्धी पुस्तकों में हारान बाबू के पाण्डित्य को देखकर आश्चर्य में डूब गये थे। उन्होंने हारान बाबू से यह भी पूछा था कि उन्होंने ईसाई धर्म को ग्रहण करने में अब तक विलम्ब क्यों लगा रखा है।

आज शाम को नदी के किनारे जब हारान बाबू मजिस्ट्रेट के साथ ब्राह्म-समाज की कार्य-पद्धति तथा हिन्दू समाज के कुसंस्कारों के सम्बन्ध में गम्भीर आलोचना कर रहे थे, तभी 'गुड ईवनिंग' करता हुआ गोरा उनके सामने आ उपस्थित हुआ।

कल जब वह मजिस्ट्रेट साहब से मिलने उनकी कोठी पर गया था, तब वहाँ से वह यह देखकर लौट आया था कि साहब से भेंट करने के लिए भी चपरासियों को कुछ दक्षिणा देनी पड़ती है। गोरा उसे अपना अपमान समझकर उनसे यहाँ भेंट करने चला आया था। उस समय हारान बाबू ने उसे देखकर ऐसा भाव प्रकट किया, जैसे वे उसे जानते ही नहीं हैं।

गोरा को देखकर मजिस्ट्रेट चकित-सा रह गया। ऐसा लम्बा हृष्ट-पुष्ट शरीर वाला युवक बंगाल में उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था। उस

समय वह खाकी रंग का एक कुरता पहने हुए था। उसकी धोती मोटी तथा कुछ मैली थी और सिर पर चादर की पगड़ी बंधी थी तथा हाथ में बाँस का एक लट्ठ लिये हुए था।

गोरा ने कहा—'मैं घोषपुर से आ रहा हूँ।'

मजिस्ट्रेट ने उसे विस्मय से देखा। घोषपुर की वर्तमान कार्यवाही में बाहर का कोई आदमी हस्तक्षेप कर रहा है, यह समाचार उन्हें कल ही मिल चुका था। वे गोरा को सिर से पैर तक देखकर सोचने लगे 'यह वही आदमी तो नहीं है।' फिर पूछा—'तुम्हारी क्या जाति है?'

'मैं बंगाली ब्राह्मण हूँ'—गोरा ने उत्तर दिया।

'क्या किसी समाचार-पत्र के साथ तुम्हारा कोई सम्बन्ध है?'

'नहीं!'

'तब तुम घोषपुर क्यों गये थे?'

'मैं यों ही घूमते-फिरते वहाँ जा पहुँचा। वहाँ पुलिस के अत्याचार तथा गाँव की दुर्दशा का चित्र देखकर, उसके प्रतिकार के लिए आपके पास आया हूँ।'

'क्या तुम नहीं जानते कि घोषपुर के लोग बहुत बदमाश हैं?'

'बदमाश तो नहीं, हाँ निडर एवं स्वतन्त्र स्वभाव के अवश्य हैं। वे अन्याय और अत्याचार को चुपचाप नहीं सह सकते।'

मजिस्ट्रेट को क्रोध आया। उन्होंने समझा—'नये बंगाली इतिहास की किताबें पढ़कर नई बोली बोलने लगे हैं।' गोरा को घुड़की देते हुए उन्होंने कहा—'तुम्हें वहाँ की स्थिति का पता नहीं है?'

'वहाँ की स्थिति मेरी अपेक्षा आप कहीं कम जानते हैं!' गोरा ने कड़ककर उत्तर दिया।

'परन्तु मैं तुम्हें चेतावनी दिये देता हूँ कि यदि तुम वहाँ के मामले में कुछ हस्तक्षेप करोगे, तो तुम्हें विद्रोही करार दिया जायेगा और उसका दण्ड भी भोगना पड़ेगा।'

'यदि आपका यही निश्चय है कि आप वहाँ अत्याचार जारी रखेंगे, तब मैं क्या कहूँ? परन्तु ऐसी स्थिति में मैं उस गाँव के लोगों को पुलिस के विरुद्ध खड़ा होने के लिए अवश्य उत्साहित करूँगा।'

मजिस्ट्रेट साहब ने गोरा को डाँटते हुए कहा—'इतनी धृष्टता!'

गोरा ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह धीरे-धीरे वहाँ से चला गया। तब मजिस्ट्रेट साहब हारान बाबू से बोले—'आपके देशवासियों में यह कैसे लक्षण प्रकट हो रहे हैं ?'

हारान बाबू ने कहा—'हुजूर ! आध्यात्मिक, नैतिक तथा चरित्र में सुधार सम्बन्धी शिक्षा की कमी के कारण ही ऐसी घटनायें हो रही हैं। वे लोग अंग्रेजी विद्या के श्रेष्ठ अंश को ग्रहण नहीं कर पाते। ईश्वर की कृपा से भारत में जो अंग्रेजी शासन कायम हुआ है, ये अकृतज्ञ लोग अभी तक उसे स्वीकार नहीं करना चाहते। ये तोते की भाँति धर्म का पाठ तो कण्ठस्थ किए हुए हैं, इन्हें वास्तविक ज्ञान बिल्कुल नहीं है।'

'जब तक ये लोग ईसाई मत स्वीकार नहीं करते, तब तक भारतवर्ष में धर्म का ज्ञान कभी प्रस्फुटित न हो सकेगा'—मजिस्ट्रेट महोदय ने कहा।

हारान बाबू बोले—'आपका कहना एक प्रकार से सत्य ही है।'

यह कहकर हारान बाबू ने ईसाई मत के सम्बन्ध में अपनी सम्मति एवं मतभेद की सूक्ष्म भाव से चर्चा करनी आरम्भ कर दी। मजिस्ट्रेट का ध्यान उसमें ऐसा लगा कि जब मेम साहिबा परेश बाबू की लड़कियों को डाक बंगले में पहुँचाकर, लौटते समय उनके पास आकर बोलीं—'चलिए !' तभी वे चौंके। घड़ी पर दृष्टि डालते हुए वे बोले—'अरे, आठ बजकर बीस मिनट हो गए ?' फिर उन्होंने गाड़ी पर चढ़ते समय हारान बाबू से हाथ मिलाते हुए कहा—'आपके साथ मेरी आज की सन्ध्या बड़े आनन्द से कटी।'

डाक बंगले पर पहुँचकर हारान बाबू ने सब लोगों को वे सब बातें सुनाईं, जो मजिस्ट्रेट के साथ हुई थीं, परन्तु गोरा के आगमन का उन्होंने उल्लेख तक नहीं किया।

२७

गाँव का दमन करने के लिए किसी अपराध का विचार किए बिना सैंतालीस आदमियों को गिरफ्तार कर हवालात में बन्द कर दिया गया था।

मजिस्ट्रेट से मिलने के बाद गोरा वकील की खोज में निकला। उसे समाचार मिला कि सातकौड़ी हवलदार अच्छे वकीलों में हैं। जब वह

सातकौड़ी के घर पहुँचा, तो उसने देखते ही कहा—'अरे गोरा ! तुम यहाँ कहाँ ?'

गोरा का अनुमान सत्य निकला। सातकौड़ी उसके सहपाठियों में से थे। वह बोला—'घोषपुर के आसामियों को जमानत पर छुड़ाकर तुम्हें उनके मुकद्दमे की पैरवी करनी पड़ेगी।'

'जमानत कौन करेगा ?' उसने पूछा।

'मैं !'

'तुम अकेले सैंतालीस आदमियों की जमानत कैसे कर सकोगे ? तुम्हारे पास इतनी जायदाद भी तो नहीं है !'

'यदि मुख्तार लोग मिलकर जमानत करें, तो उनकी फीस मैं दे दूंगा।'

'परन्तु फीस में थोड़े रुपये नहीं लगेंगे।'

दूसरे दिन आसामियों को जमानत पर छोड़ने की दरख्वास्त दी गई। मजिस्ट्रेट ने कल रात वाले मलिन वस्त्रधारी गोरा की वीर मूर्ति की ओर दृष्टिपात कर, दरख्वास्त को अस्वीकार कर दिया। चौदह वर्ष के बालक से लेकर अस्सी वर्ष के बूढ़े तक सभी हवालात में सड़ने लगे।

गोरा ने सातकौड़ी से इनका मुकद्दमा लड़ने को कहा। उसने उत्तर दिया—'गवाह नहीं मिलेंगे। जो लोग गवाह हो सकते थे, वे सब आसामी बना लिए गए हैं। इधर मजिस्ट्रेट की यह पक्की धारणा बन गई है कि इस मामले के भीतर भले आदमियों का षड्यन्त्र है। हो सकता है, वह मुझ पर भी सन्देह करे। अंग्रेजी अखबार बराबर यही लिख रहे हैं कि देशी आदमियों के हौसले यदि इसी प्रकार बढ़े तो अंग्रेजों का जीवन ही दूभर हो जाएगा। इन सब बातों को देखते हुए कोई उपाय नहीं दीखता है।'

गोरा ने गरजते हुए कहा—'है क्यों नहीं !'

सातकौड़ी ने हँसकर उत्तर दिया—'तुम जैसे स्कूल में थे, वैसे ही अभी तक बने हुए हो। पराई मुसीबत अपने सिर लेकर मरने वाले तुम्हारे जैसे व्यक्ति संसार में अधिक नहीं हैं।'

'तो तुम इन लोगों के लिए कुछ नहीं करोगे ? यदि हाईकोर्ट अपील की जाए तो···?'

'उससे भी कुछ न होगा।' सातकौड़ी ने अधीर होकर कहा—'छोटे-

से-छोटे अंग्रेज को मारना भी राजद्रोह माना जाता है। मैं व्यर्थ ही मजिस्ट्रेट की क्रोधाग्नि में नहीं पड़ना चाहता।'

दूसरे दिन सुबह साढ़े दस बजे की ट्रेन से गोरा ने यह सोचकर कलकत्ते की यात्रा करनी चाही कि शायद वहाँ के किसी वकील द्वारा काम बने, परन्तु उसमें बाधा पड़ गई।

यहाँ मेले के उपलक्ष्य में कलकत्ते के छात्रों की एक टीम का स्थानीय छात्रों की टीम के साथ क्रिकेट का मैच होने वाला था। अभ्यास के लिए कलकत्ते के छात्र परस्पर क्रिकेट खेल रहे थे, तभी क्रिकेट की गेंद से एक लड़के के पैर में चोट आ गई। अन्य लड़के उसे लेकर पास के एक तालाब पर गए और चादर फाड़कर, पानी में भिगोकर उसके पैर में पट्टी बाँधने लगे। उसी समय एक सिपाही ने वहाँ आकर एक लड़के की गर्दन पकड़कर, उसे गन्दी गालियाँ देते कहा—'मूर्ख, यह तालाब का पानी पीने के लिए है, गन्दा करने के लिए नहीं।'

कलकत्ते के छात्रों को यह बात मालूम न थी। एक सिपाही द्वारा इस प्रकार अपमान सहना भी उन्हें स्वीकार न था, अतः उन्होंने उस सिपाही को पीटना आरम्भ कर दिया। यह देखकर चार-पाँच सिपाही और दौड़े आए। गोरा ठीक इसी समय उधर से जा रहा था। उसने जब देखा कि कई सिपाई लड़कों को मारते-पीटते ले जा रहे हैं, तो उससे सहन न हुआ। वह उन लड़कों के साथ कई बार क्रिकेट खेला था। अतः आगे बढ़कर उसने सिपाहियों से कहा—'खबरदार, आगे मत बढ़ना।' सिपाहियों ने यह सुनते ही गोरा को गाली दी, वैसे ही गोरा उन पर टूट पड़ा और लात-घूंसा द्वारा उन्हें मारने लगा। इस झगड़े को देखकर भीड़ इकट्ठी हो गई। और भी छात्र आ गए। गोरा की आज्ञा से वे पुलिस वालों पर टूट पड़े। पुलिस वाले यह देखकर भाग खड़े हुए। देखने वालों को मजा आया। परन्तु यह घटना गोरा के लिए केवल तमाशा बनकर ही नहीं रही।

तीन-चार बजे के लगभग, दो छात्रों ने डाक बँगले में पहुंचकर, रिहर्सल में लगे हुए विनय, हारान बाबू तथा परेश बाबू की लड़कियों को यह सूचना दी कि गोरा तथा अन्य कई छात्रों को पुलिस गिरफ्तार करके ले गई है। कल प्रातःकाल मजिस्ट्रेट के न्यायालय में उन पर विचार होगा।

गोरा के गिरफ्तार होने की सूचना पाकर हारान बाबू के अतिरिक्त

अन्य सब लोग चौंक पड़े। विनय उसी क्षण सातकौड़ी हवलदार के पास गया तथा उसे सब समाचार सुनाकर, साथ ले हवालात पर जा पहुँचा।

सातकौड़ी ने गोरा को जमानत पर छुड़ाने का प्रस्ताव रखा तो उसने उत्तर दिया—'मैं वकील नहीं करूँगा, मुझे जमानत पर छुड़ाने का प्रयत्न भी नहीं होना चाहिए।'

सातकौड़ी ने विनय से कहा—'देखो, इतना बड़ा हो जाने पर भी गोरा की अक्ल अभी स्कूल जैसी बनी हुई है।'

गोरा बोला—'मैं जानता हूँ कि अपने इष्ट-मित्रों एवं रुपयों के बल पर मैं हवालात तथा हथकड़ी से छुटकारा पा सकता हूँ, परन्तु इस राज्य में वकील की फीस का प्रबन्ध न होने के कारण, जब सारी प्रजा हवालात में पड़ी सड़ती है, तब मैं ऐसे अन्यायी राज्य में रुपये खर्च कर स्वयं को मुक्त कराने का प्रयत्न कभी नहीं करूँगा।'

सातकौड़ी बोला—'काजियों के राज्य में घूस देने से सिर तक बिक जाता था।'

गोरा ने कहा—'जो काजी बुरा होता था, वही घूस लेता था। इस राज्य में भी वही बात है। मेरे पास वकील को फीस देने के लिए यदि रुपये न होते, उस समय मेरी जो स्थिति होती, उसी का ध्यान कर मैं इस समय भी किसी वकील का आश्रय नहीं लेना चाहता हूँ। यदि वकील का होना आवश्यक ही है तो मेरी ओर भी गवर्नमेंट को ही अपना वकील खड़ा करना चाहिए।'

विनय तथा सातकौड़ी ने गोरा को बहुत समझाया, परन्तु वह किसी भी प्रकार अपने हठ से नहीं डिगा। तदुपरान्त गोरा ने विनय से पूछा—'तुम यहाँ कैसे आए?'

और कोई समय होता तो विनय कुछ विद्रोही बातें करता, परन्तु आज उसने केवल इतना ही कहा—'मेरी बात फिर पूछना, इस समय तुम्हारी ही बात होनी चाहिए।'

गोरा बोला—'मैं तो राजा का अतिथि हूँ। उसी को मेरे लिए चिन्ता करनी चाहिए। तुम्हें कुछ न सोचना होगा।'

विनय जानता था कि गोरा अपने निश्चय से डिगने वाला नहीं है, अतः बोला—'कहो तो तुम्हारे खाने के लिए बाहर से कुछ प्रबन्ध कर दूँ?'

गोरा ने अधीर होकर कहा—'विनय, हवालात में जो सबको मिलता है, मैं उससे अधिक कुछ नहीं चाहता। तुम बाहर से कुछ लाने की फिक्र मत करो।'

विनय दुःखी होकर डाक बँगले को लौट गया। सुचरिता उस समय कमरे की खिड़की खोले, किताब हाथ में लिये, उदास हो, विनय के लौटने की राह देख रही थी। जब उसने देखा कि विनय उदास एवं चिन्तित मुख डाक बँगले की ओर आ रहा है तो उसका हृदय सशंकित हो उठा। वह किताब हाथ में लिये हुए, सबके पास आकर बैठ गई। ललिता उस समय कोने में चुपचाप बैठी हुई कुछ सीं रही थी। लावण्य सुधीर के साथ कोई खेल खेल रही थी तथा लीला सबको देख रही थी। उधर हारान बाबू वरदासुन्दरी के साथ दूसरे दिन के उत्सव की चर्चा एवं आलोचना कर रहे थे।

विनय ने आकर गोरा के झगड़े का सब हाल ब्यौरेवार कह सुनाया। सुचरिता उसे सुनकर स्तब्ध रह गई। ललिता के हाथ से भी सुई गिर गई तथा चेहरा लाल हो उठा।

वरदासुन्दरी बोलीं—'विनय बाबू, आप चिन्ता न करें। मैं आज शाम को मजिस्ट्रेट की मेम-साहिबा से गोरा के लिए अनुरोध करूँगी।'

विनय बोला—'न, आप यह कभी न कीजिएगा। गोरा यदि कभी इसे सुन पाएगा तो जीवनभर मुझे क्षमा नहीं करेगा।'

सुधीर बोला—'उनके बचाने के लिए कुछ-न-कुछ प्रबन्ध तो करना ही होगा?'

तब विनय ने वह सब चर्चा कह सुनाई, जो गोरा ने जमानत देने तथा वकील करने के सम्बन्ध में अपना मत प्रकट किया था।

हारान बाबू सब बातों को सुनकर असहिष्णु होते हुए बोले—'यह सब ज्यादती है।'

ललिता के मन में हारान बाबू के प्रति अब तक चाहे जो सम्मान का भाव रहा हो, परन्तु आज उनके ये शब्द सुनकर वह चुप न रह सकी, बोली—'ज्यादती कुछ भी नहीं है। गोरा बाबू का कहना बिल्कुल ठीक है। मजिस्ट्रेट हम पर अत्याचार करें और हम स्वयं अपनी रक्षा न करें? उसकी लम्बी तनख्वाह देने के लिए स्वयं टैक्स दें तथा उसके दमन से बच पाने के

लिए स्वयं ही वकील भी करें, ऐसे न्याय पाने की अपेक्षा तो जेल जाना ही उचित है।'

हारान बाबू ने कभी यह कल्पना भी नहीं की थी कि ललिता भी उनके सामने इस प्रकार से बोल सकेगी। वे आश्चर्य में आकर पहले तो अवाक् रह गए। फिर भर्त्सना के स्वर में ललिता से बोले—'तुम इन बातों के सम्बन्ध में क्या समझो? जो लोग कॉलिज से पढ़कर अभी निकले हैं, जिनका कोई धर्म और धारणा नहीं, उनके मुँह से अनुत्तरदायित्वपूर्ण उन्मत्त प्रलाप सुनकर तुम लोगों का मस्तिष्क भी न जाने कैसे फिर जाता है!'

यह कहते हुए हारान बाबू ने कल रात मजिस्ट्रेट के साथ गोरा की मुलाकात तथा अपनी बातचीत का वर्णन कह सुनाया। घोषपुर का हाल विनय को नहीं मालूम था, उसे सुनकर सशंकित हो उठा। उसे निश्चय हो गया कि अब मजिस्ट्रेट गोरा को सहज में नहीं छोड़ेगा।

हारान ने जिस उद्देश्य से यह बात कही, वह व्यर्थ हो गया। अब तक उन्होंने गोरा से मुलाकात होने की बात को छुपाकर अपनी क्षुद्रता का जो परिचय दिया था, उससे सुचरिता का मन आहत हो उठा। इस बात से हारान बाबू की गोरा के प्रति जो व्यक्तिगत ईर्ष्या टपकती थी, उसने सभी लोगों के हृदय में उनके प्रति अश्रद्धा का भाव उत्पन्न कर दिया। सुचरिता अभी तक चुप थी। वह कांपते हुए हाथ से पुस्तक के पन्ने उलटने लगी। तभी ललिता उद्धत भाव से बोली—'हारान बाबू का मत मजिस्ट्रेट से चाहे जितना मिलता हो, परन्तु घोषपुर के मामले में गौर बाबू का महत्त्व निश्चय ही प्रकट हुआ है।'

२८

आज छोटे लाट के आगमन के कारण, मजिस्ट्रेट साहब ठीक साढ़े दस बजे इजलास में आकर कचहरी का काम शीघ्रतापूर्वक समाप्त कर डालने का प्रयत्न करने लगे।

सातकोड़ी बाबू ने स्कूल के छात्रों का पक्ष लेकर, उसी बहाने अपने मित्र गोरा को बचाने का प्रयत्न किया। उन्होंने रंग-ढंग देखकर अनुभव

कर लिया कि इस स्थान पर अपराध स्वीकार कर लेना ही उचित होगा। अत: 'लड़के तो उपद्रवी हुआ ही करते हैं, वे असभ्य और नासमझ हैं' आदि कहकर वे उनके लिए क्षमा प्रार्थना करने लगे। मजिस्ट्रेट ने लड़कों को जेल भेजकर, उन्हें अवस्थानुसार पाँच से पच्चीस बेंत तक लगाने के बाद छोड़ देने का हुक्म दे दिया। गोरा का कोई वकील न था। उसने स्वयं बहस की तथा पुलिस के अत्याचार के बारे में भी कुछ कहना चाहा, परन्तु मजिस्ट्रेट ने बीच में ही तिरस्कार करके उसे बोलने से रोक दिया तथा पुलिस के कार्य में बाधा डालने के अपराध में उसे एक महीने की सख्त कैद की सजा सुना दी। वे दण्ड को विशेष दयापूर्ण हल्की सजा कहने में भी नहीं चूके।

सुधीर तथा विनय भी अदालत में उपस्थित थे। विनय गोरा के मुँह की ओर न देख सका। वह अदालत के कमरे से बाहर निकल आया। सुधीर ने उससे डाक बँगले चलकर नहाने-खाने का अनुरोध किया, परन्तु उसने उस पर कोई ध्यान न दिया। मैदानी मार्ग से चलकर वह एक पेड़ के नीचे जा बैठा और सुधीर से बोला—'तुम डाक बँगले में चले जाओ। मैं कुछ देर बाद आऊँगा।'

सुधीर चला गया। विनय को वहाँ बैठे हुए शाम हो गई। तभी एक गाड़ी ठीक उसके सामने आकर रुकी। विनय ने मुँह उठाकर देखा, सुधीर तथा सुचरिता गाड़ी से उतरकर उसकी ओर चले आ रहे थे। विनय तुरन्त उठ खड़ा हुआ। सुचरिता ने स्नेहपूर्ण स्वर में कहा—'आइए विनय बाबू!'

विनय को जैसे ही होश आया वह गाड़ी पर सवार हो गया। मार्ग में किसी के मुँह से बात नहीं निकली।

डाक बँगले पहुँचकर विनय ने देखा कि यहाँ कोहराम मचा हुआ है। ललिता कह रही थी कि वह मजिस्ट्रेट के उत्सव में किसी प्रकार सम्मिलित न होगी। वरदासुन्दरी यह देखकर बड़े संकट में पड़ गई थीं। हारान बाबू क्रोध से अस्थिर होकर बार-बार कह रहे थे, 'आजकल के लड़के-लड़की अदब-कायदा तो जानते ही नहीं। चाहे जिस ऐरे-गैरे व्यक्ति के विषय में आलोचना करने का यही फल निकलता है।'

विनय के आते ही ललिता बोली—'विनय बाबू! आप मुझे क्षमा

कीजिएगा। आप उस समय जो कुछ कहते थे, मैं तब उसे समझती ही न थी। हमें बाहर की बातों का कुछ पता न था, तभी ऐसी भूल हो गई। हारान बाबू कहते हैं कि भारत में मजिस्ट्रेट का शासन-विधान विधाता का विधान है। परन्तु मैं कहती हूँ कि यदि यह बात सच है तो इस शासन को मन, वाणी तथा काया से अभिशाप देने की इच्छा होना भी विधाता का ही विधान है।'

हारान बाबू ने क्रोधित होकर कहा—'ललिता ! तुम···।'

ललिता हारान बाबू की ओर घूमकर खड़ी हो गई। बोली—'जनाब, चुप रहिए, मैं आपसे कुछ नहीं कह रही हूँ।' फिर विनय से कहने लगी—'विनय बाबू ! आप किसी के अनुरोध का ख्याल न करें। आज अभिनय किसी प्रकार न हो सकेगा।'

तभी वरदासुन्दरी ने ललिता की बात काटते हुए कहा—'तू अच्छी लड़की ठहरी ! क्या विनय बाबू को आज नहाने-खाने भी नहीं देगी ? देख तो उनका चेहरा कैसा सूख रहा है।'

विनय बोला—'यहाँ हम उसी मजिस्ट्रेट के मेहमान हैं, अतः अब इस घर में मैं स्नान-भोजन न कर सकूँगा।'

वरदासुन्दरी ने विनय को समझाने का बहुत प्रयत्न किया, फिर सब लड़कियों को चुप बैठे देखकर बोलीं—'तुम सबको हो क्या गया है ? सुचरिता तुम्हीं विनय बाबू को समझा दो न, हम आज के लिए जबान दे चुके हैं, सब लोगों को निमन्त्रण भी दिया जा चुका है। मैं उन लोगों के सामने किस प्रकार मुँह दिखा सकूँगी ?'

सुचरिता मुँह नीचा किये चुप बैठी रही।

विनय पास ही नदी पर स्टीमर में चला गया। दो-तीन घण्टे बाद ही वह स्टीमर यात्रियों को लेकर कलकत्ता रवाना होने वाला था। कल आठ बजे के लगभग वह कलकत्ता जा पहुँचेगा।

हारान बाबू क्रुद्ध होकर गोरा तथा विनय की निन्दा करने लगे। सुचरिता उठकर पास के कमरे में चली गई। कुछ देर बाद ललिता भी उसके पास जा पहुँची। उसने देखा, सुचरिता दोनों हाथों से मुँह ढके हुए विस्तर पर पड़ी है।

ललिता ने अन्दर से दरवाजा बन्द कर दिया। तत्पश्चात् सुचरिता के

पास बैठकर उसके बालों में उँगलियाँ फिराने लगी। कुछ देर बाद जब सुचरिता व्यवस्थित हुई, तब धीरे से उसके कान में बोली—'दीदी चलो, हम लोग कलकत्ते लौट चलें। आज मजिस्ट्रेट के यहाँ तो जा नहीं सकेंगे ?'

सुचरिता ने बड़ी देर तक कोई उत्तर न दिया। फिर बोली—'बहिन ! जिस काम के लिए हम लोग आये हैं, उसे किये बिना कैसे जा सकेंगे ?'

ललिता ने कहा—'बाबूजी को इन बातों का पता नहीं है। उन्हें पता होता तो वे हमें यहाँ कभी नहीं ठहरने देते।'

'यह मैं कैसे कहूँ, बहिन ?'

'दीदी ! तो क्या तुम स्टेज पर जा सकोगी ? वहाँ खड़े होकर कविता-पाठ करना क्या तुम्हारे लिए सम्भव हो सकेगा ? मेरी तो जीभ कटकर खून गिरने लगे तो भी एक शब्द मुँह से नहीं निकल सकता।'

'बहिन ! यह तो मैं भी जानती हूँ। परन्तु समय पड़ने पर नरक की यातना भी सहनी पड़ती है। अब कोई उपाय भी तो नहीं है। आज का दिन जीवन में कभी भूल न सकूँगी।'

ललिता सुचरिता की बात से नाराज हो, वहाँ से उठकर माँ के पास जा पहुँची और कहने लगी—'माँ, तुम लोग तो जाओगे न !'

वरदासुन्दरी ने कहा—'तू पागल हो गई है क्या ? वहाँ तो रात को नौ बजे बाद चलना है।'

'मैं कलकत्ता जाने की बात कह रही हूँ।'

'इस लड़की की बात तो सुनो !'

'सुधीर दादा ! क्या तुम भी यहाँ रहोगे ?'

सुधीर का हृदय गोरा की सजा से यद्यपि तिलमिला रहा था, परन्तु बड़े-बड़े साहबों के सामने अपनी विद्या का प्रदर्शन करने के लोभ को त्यागने की शक्ति उसमें न थी।

तभी वरदासुन्दरी बोलीं—'इस झंझट में बहुत देर हो गई। अब सब लोग विश्राम करो, अन्यथा रात को नींद सतायेगी।'

इतना कहकर वे सब लोगों को जबर्दस्ती सोने की कोठरी में ले जाकर सुला आईं। सब सो गये, परन्तु सुचरिता को नींद नहीं आई। दूसरी कोठरी में ललिता भी अपने बिस्तर पर चुप बैठी हुई थी।

उधर स्टीमर का भोंपू बार-बार बोल रहा था।

जिस समय स्टीमर छूटने वाला था तथा जहाज के खलासी सीढ़ी को ऊपर उठाने की तैयारी कर रहे थे, उसी समय विनय ने डेक के ऊपर से देखा कि एक भले घर की स्त्री तेजी से जहाज की ओर चली आ रही है। पहिनावे से वह ललिता जान पड़ी। जब वह बिल्कुल पास आ गई तो विनय को कोई सन्देह न रहा, उसने सोचा—'शायद उसे लौटाने आई है।' परन्तु तभी ध्यान आया—'उसी ने तो मजिस्ट्रेट के यहाँ न जाने के लिए सबसे पहले कहा था।' ललिता के स्टीमर पर चढ़ते ही खलासी ने सीढ़ी ऊपर उठा ली। विनय शंका में डेक से नीचे उतरकर, ललिता के सामने आ खड़ा हुआ।

ललिता बोली—'मुझे ऊपर ले चलिए।'

विनय ने चकित होकर कहा—'जहाज छूटने ही वाला है।'

'मैं जानती हूँ'—कहकर वह विनय के उत्तर की अपेक्षा किये बिना ही सामने वाली सीढ़ी से जहाज के ऊपरी भाग पर चढ़ गई।

सीटी देकर स्टीमर भी चल दिया।

ललिता को फर्स्ट क्लास डेक में कुर्सी पर बैठाकर विनय चुपचाप उसके मुँह की ओर देखने लगा।

ललिता बोली—'मुझसे वहाँ ठहरा नहीं गया। अब कलकत्ते चल रही हूँ।'

'और वे लोग ?'

'उन्हें किसी को पता नहीं है। मैं चिट्ठी लिखकर रख आई हूँ। पढ़कर जान जायेंगे।'

ललिता के इस दुस्साहस पर विनय स्तम्भित रह गया, बोला—'परन्तु…।'

ललिता ने बीच में ही टोक दिया—'जहाज छूट चुका है। अब परन्तु-वरन्तु से कोई लाभ न होगा। मैं स्त्री हूँ तो क्या ? न्याय-अन्याय, सम्भव-असम्भव सभी समझते हैं। आज के निमन्त्रण में अभिनय करने की अपेक्षा आत्म-हत्या कर लेना मेरे लिए सरल होता।'

'जो होना था, सो हो गया' सोचकर विनय भी चुप रह गया।

कुछ देर ठहरकर ललिता बोली—'आपके मित्र गोरा बाबू के प्रति मेरा विचार अच्छा न था। न जाने क्यों, उनकी बातें सुनकर मेरा मन

उनसे विद्रोह करने लगा था। वे जोर देकर बात करते थे, इसीलिए मुझे उन पर क्रोध ग्राता था। परन्तु उनका जोर किसी और पर ही नहीं है, वे स्वयं पर भी जोर देते हैं यह आज मालूम पड़ा। यह जोर सच्चा है। ऐसा व्यक्ति मैंने दूसरा नहीं देखा।'

इसी प्रकार ललिता बहुत कुछ कहती रही। असल में उसने एक धुन में आकर जो काम कर डाला था, उसका संकोच ही मन के भीतर से बार-बार सिर उठाने का प्रयत्न कर रहा था। विनय के साथ स्टीमर में बैठे रहना लज्जा का विषय भी हो सकता है—इस ओर उसने पहिले ध्यान ही नहीं दिया था। परन्तु इस समय वह लज्जा को दबाने का प्रयत्न कर रही थी।

विनय को बोलना भारी महसूस हो रहा था। गोरा के कष्ट, अपमान तथा मजिस्ट्रेट के निमन्त्रण में सम्मिलित न होने की लज्जा ने उसे गूंगा बना दिया था। उस पर भी ललिता का यह दुस्साहस उसे घोर संकट की अवस्था में डाले हुए था।

और कोई समय होता तो ललिता का यह दुस्साहस विनय के हृदय में तिरस्कार को जन्म देता, परन्तु इस समय उसे ललिता के प्रति विस्मय के साथ-साथ श्रद्धा भी हो रही थी। उसे आनन्द था कि गोरा के अपमान का प्रतिकार करने की चेष्टा केवल उसने तथा ललिता ने ही की है। वह सोचने लगा—उसे तो इससे कोई विशेष कष्ट न होगा, परन्तु ललिता को इस दुस्साहस के लिए बहुत दुःख उठाना पड़ेगा। वह जितना ही अधिक सोचता, ललिता के प्रति उसके हृदय में उतनी ही अधिक श्रद्धा बढ़ती जाती थी। वह अपनी भक्ति को क्या कहकर प्रकट करे, इसका उसे कोई उपाय ही न सूझ पड़ा। उससे पहले कई बार ललिता की जो मन-ही-मन निन्दा की थी, उस पर उसे लज्जा आने लगी। वह स्थिर न कर सका कि किस प्रकार वह ललिता से उसके लिए क्षमा माँगे। अपने आन्तरिक तेज से जगमगाती हुई ललिता की कमनीय नारी-मूर्ति विनय की आँखों को एक अपूर्व महिमा से जगमगाती हुई प्रतीत होने लगी। नारी के इस अपूर्व परिचय को पाकर वह धन्य हो उठा।

२६

ललिता को साथ ले विनय परेश बाबू के घर जा पहुँचा।

स्टीमर पर चढ़ने से पूर्व विनय को निश्चित रूप से पता न था, कि ललिता के सम्बन्ध में, उसके मन का क्या भाव है। इस दुर्जय लड़की से किस प्रकार सन्धि की जा सकती है। विनय को सदैव यही चिन्ता रहती थी। नारी-जीवन की निर्मल दीप्ति को लेकर सुचरिता ही उसके जीवन में पहले-पहल सन्ध्यातारा की भाँति दिखाई दी थी। परन्तु इसी बीच में एक और भी तारा उदय हो गया है, तथा पहला तारा धीरे-धीरे क्षितिज की ओर उतरता चला जा रहा है—इसका स्पष्ट आभास विनय को नहीं मिल सका था।

विद्रोहिणी ललिता जब स्टीमर पर चढ़ आई, उस समय विनय को लगा, जैसे वह तथा ललिता एक पक्ष में होकर समस्त संसार के विरुद्ध खड़े हो गए हैं। चाहे जिस कारण से भी क्यों न हो, आज उसके तथा ललिता के बीच में अन्य कोई व्यक्ति नहीं है। वही उसके सबसे अधिक निकट है। इस निकटता का पुलकपूर्ण स्पन्दन उसके हृदय में एक प्रकाश-सा भरने लगा।

फर्स्ट क्लास के केबिल में जब ललिता सोने गई, तब विनय से अपनी जगह जाकर सोया नहीं गया। वह जूते उतारकर उसी केबिन के बाहर डेक पर चुपचाप टहलने लगा। स्टीमर पर ललिता के सम्बन्ध में कोई उत्पात होने की सम्भावना नहीं थी, फिर भी विनय को आज उसकी सुरक्षा का जो एकमात्र अधिकार मिला था, उसका उपयोग किये बिना उससे रहा नहीं गया।

रात घनी अँधेरी थी। आकाश में तारे जगमगा रहे थे, नीचे नदी की चौड़ी धारा चुपचाप बह रही थी। महान मूल्यवान रत्न के समान इस निद्रा की सुरक्षा का भार ही आज विनय ने लिया था। माता, पिता, भाई, बहिन, सबसे दूर, ललिता आज एक अपरिचित शैया के ऊपर अपने सुन्दर शरीर को डाले हुए निश्चिन्त सो रही थी। कारीगरी के साथ बाँधी गई उसकी वेणी का एक भी केश अपने स्थान से पृथक् न हुआ था। दोनों सुकुमार चरण उत्सवावसान संगीत की भाँति स्तब्ध बिछौने पर फैले हुए

थे। सीप में मोती के समान, तारा-मण्डित एवं अन्धकारवेष्टित निःशब्द आकाश के मध्यस्थल में ललिता का यह विश्राम, विनय को संसार के एकमात्र ऐश्वर्य के रूप में दिखाई देने लगा।

इस कृष्णपक्ष की रात्रि में एक और विचार विनय के हृदय को रह-रहकर व्यथित किये दे रहा था—'गोरा आज रात को जेलखाने में पड़ा हुआ है।' आज तक विनय गोरा के सभी सुख-दुःख के समय बराबर का हिस्सेदार बना आया था, परन्तु आज वह उससे सर्वथा दूर है। यद्यपि विनय यह जानता था कि गोरा के लिए जेल का शासन कुछ भी नहीं है, परन्तु इस घटना में आदि से अन्त तक गोरा के साथ विनय का कोई संसर्ग नहीं था, दोनों मित्रों की जीवन-धारायें इस स्थान पर आकर विच्छिन्न हो गई थीं, यही विचार था, जो उसे व्याकुल कर रहा था। वह एक ही रात में अपनी ओर शून्यता तथा दूसरी ओर की पूर्णता का एक साथ अनुभव कर स्रजन प्रलय के सन्धिकाल में निश्चल निस्तब्ध भाव से बैठा हुआ, अन्धकार की ओर देखता रहा।

किराये की गाड़ी जब परेश बाबू के घर के सामीप आकर रुकी तो उतरते हुए ललिता के पाँव काँप उठे। ललिता ने धुन में आकर जो काम कर डाला था, उसका अपराध कितना गुरुतर है और उसका वजन कितना अधिक होगा—इसका अनुभव वह स्वयं भी नहीं कर पा रही थी। ललिता को यद्यपि विश्वास था कि परेश बाबू उसके प्रति भर्त्संना जैसी कोई बात नहीं कहेंगे, परन्तु वह उनके चुप रहने को सबसे अधिक भय मानती थी।

ललिता के इस संकोच-भाव को विनय किंकर्तव्यविमूढ़ की भाँति लक्ष्य करता हुआ स्थिर न रह सका। उसके साथ रहने से ललिता के लिए संकोच का कारण अधिक होगा या नहीं, यह जानने के लिए उसने तनिक द्विविधापूर्ण स्वर में ललिता से कहा—'तो मैं अब जाऊँ?'

ललिता झटपट बोल उठी—'नहीं, बाबूजी के पास भी तो चलिए!'

ललिता के इस व्यग्र अनुरोध से विनय को मन-ही-मन अत्यन्त आनन्द हुआ। 'घर पहुंचा देने से ही उसका कर्तव्य पूर्ण नहीं हो गया' यह विचार आते ही उसके जीवन की एक विशेष गाँठ ललिता के साथ बँध गई। वह ललिता के पास जैसे सगर्व आ खड़ा हुआ। तभी उसे जान पड़ा, मानो ललिता ने उसका दाहिना हाथ जोर से पकड़ रखा है। उसका हृदय जैसे

जोश से भर गया। उसने निश्चय किया—घर पहुँचने पर, यदि परेश बाबू ललिता को डाँटेंगे, उसके हठ पर क्रोध करेंगे, तो वह सब जिम्मेदारी अपने ऊपर लेकर ललिता को उन आघातों से बचाने का प्रयत्न करेगा। परन्तु ललिता के मन की यथार्थ भावना को विनय न समझ सका।

वस्तुस्थिति यह थी कि ललिता कुछ भी छिपाना नहीं चाहती थी। वह चाहती थी कि उसने जो कुछ किया है, उसे परेश बाबू अपनी आँखों से देखें, तदुपरान्त जो निर्णय दें, उसका फल ललिता स्वयं स्वीकार करे।

जब तक ललिता स्टीमर में रही, उसके मन का भाव कुछ और प्रकार का था। बचपन से ही वह अपनी हठ में कुछ-न-कुछ अशोभनीय काण्ड करती आई है, परन्तु आज की घटना कुछ गम्भीर थी। इस निषिद्ध कार्य में विनय को अपना साथी पाकर, उसे एक निगूढ़ हर्ष का अनुभव हो रहा था। आज उसने एक बाहरी व्यक्ति का इस प्रकार आश्रय लिया था कि उन दोनों के बीच आत्मीय-जनों की कोई आड़ नहीं रह गई थी, परन्तु विनय की स्वाभाविक नम्रता ने एक ऐसे वातावरण की सृष्टि कर रखी थी जिसकी कोमल शीतलता का परिचय ललिता को एक अभूतपूर्व आनन्द दे रहा था। जो विनय उसके घर आकर सदैव कौतुक किया करता था, जिसका वार्तालाप कभी बन्द ही न होता था, वह विनय मानो आज था ही नहीं। सतर्कता की दुहाई देकर जहाँ वह अनायास ही ललिता के अधिक-से-अधिक निकट आ सकता था, वहाँ आज उसने और अधिक दूर रहने की चेष्टा की थी। यही कारण ललिता के हृदय में उसे अपने अधिकतम निकट लाने में सहायक सिद्ध हो रहा था।

रात को स्टीमर के केबिन में अनेक चिन्ताओं के कारण ललिता को भली-भाँति नींद नहीं आई थी। एक बार उसे जान पड़ा, जैसे रात बीत गई और सवेरा होने को है। धीरे-धीरे केबिन का दरवाजा खोलकर वह बाहर आई। देखा तो रात्रि का शेष ठण्डा अन्धकार, उस समय भी नदी के ऊपर मुक्त आकाश तथा किनारे के जंगल से लिपटा हुआ था। उसने यह भी देखा कि केबिन से थोड़ी ही दूर पर विनय एक गरम कपड़ा ओढ़े, बेंत की कुर्सी पर बैठा हुआ सो रहा है। उसे देखते ही ललिता का कलेजा धक से रह गया। 'विनय रातभर इसी स्थान पर बैठा हुआ उसका पहरा देता रहा, वह इतना पास होते हुए भी उससे इतना दूर है।' ललिता काँपते पैरों

से डेक से हटकर केबिन में आ गई। उसे अनुभव हुआ, जैसे सामने की दिशा-प्रान्त के तारागण विनय की निद्रा को घेरे हुए हैं। तब एक अनिर्वचनीय गाम्भीर्य एवं माधुर्य से उसका हृदय लबालब भर आया। इसका कारण वह स्वयं भी नहीं जान सकी। उसने अपने पिता से जिस देवता की उपासना करना सीखा था, उसी ने जैसे आज अपने दाहिने हाथ का स्पर्श किया हो। नदी के ऊपर रात्रि अन्धकार के साथ, जिस नवीन प्रकाश का निगूढ़ सम्मिलन हो रहा था, उस पवित्र सन्धिकाल में जैसे नक्षत्र-सभा के बीच एक मूक संगीत आनन्द की दुस्सह वेदना की भाँति बज उठा।

उसी समय नींद के झोंके में विनय का हाथ हिला। ललिता उसे देख झटपट केबिन का दरवाजा बन्द कर बिछौने पर जा लेटी। उसके हाथ-पाँव के तलवे ठण्डे पड़ गये थे, बड़ी देर तक अपनी छाती की तेज धड़कन को वह बन्द न कर सकी।

अन्धकार दूर हो गया। स्टीमर चल रहा था।

ललिता मुँह-हाथ धोकर बाहर आई और रेलिंग पकड़कर खड़ी हो गई। विनय जहाज के भोंपू की आवाज से जागकर, प्रभात का प्रथम अभ्युदय देखने के लिए लालायित बैठा था। ललिता के बाहर निकलते ही वह अपने स्थान से उठ जाने की चेष्टा करने लगा। तभी ललिता ने आकर कहा—'विनय बाबू!'

और निकट जाकर वह बोली—'जान पड़ता है, रात को आप भली-भाँति सो नहीं पाये?'

'सोया तो खूब हूँ।' विनय ने उत्तर दिया।

इसके बाद फिर कोई बात नहीं हुई। दूसरे सिरे पर सूर्योदय की सुनहरी आभा प्रस्फुटित हो उठी। ऐसा सुन्दर प्रभात दोनों ने अपने जीवन में पहले कभी नहीं देखा था। दोनों के हृदय में चेतना इस भाँति जाग्रत हो उठी, जैसे सम्पूर्ण जगत् के अन्तर्निहित चैतन्य के साथ उनका प्रत्यक्ष मिलन हो गया हो।

स्टीमर के कलकत्ता आने पर, विनय ने एक किराये की गाड़ी करके ललिता को भीतर बैठाया और आप गाड़ीवान के पास कोचबक्स पर बैठ गया। उस समय कलकत्ते की सड़क पर गाड़ी चलने के समय ललिता के हृदय में कौन-सी वायु बह रही थी इसे कौन जान सकता है! जो विनय

संकट के समय स्टीमर पर था, वही अब उसे अभिभावक की भाँति गाड़ी पर बैठाकर लिये जा रहा है, यह सब उसे पीड़ित करने लगा। रात्रि का वह संगीत दिन के कर्म-क्षेत्र में सामने आकर ऐसे बिना स्वर के क्यों थम गया। कौन वताये ?

इसीलिए जब द्वार पर आकर विनय ने संकोचपूर्वक कहा—'तो मैं जाऊँ ?' तव ललिता और अधिक खीज उठी। उसने सोचा, विनय बाबू समझते होंगे कि मुझे उन्हें साथ लेकर पिताजी के सामने जाते हुए लज्जा लगेगी। 'वह इस सम्बन्ध में कोई संकोच नहीं रखती' यही बताने तथा पिता के समक्ष सम्पूर्ण घटना को सहज भाव से देखने के लिए उसने विनय को अपराधी की भाँति द्वार से ही विदा कर देना नहीं चाहा।

वह विनय के साथ अपने सम्बन्ध को पूर्व की भाँति ही स्पष्ट रखना चाहती है। वह किसी कुण्ठा अथवा मोह की जड़ता के कारण विनय के समक्ष अपने को छोटा अथवा हीन नहीं दिखाना चाहती थी।

३०

विनय ओर ललिता को देखते ही, सतीश न जाने कहाँ से दौड़कर उनके पास आ गया। वह दोनों के बीच खड़ा हो, दोनों के हाथ पकड़कर बोला—'बड़ी बहिन कहाँ हैं ? क्या वह नहीं आईं ?'

विनय ने जेव में हाथ डालते हुए चारों ओर अचरज-भरी दृष्टि फेंकने के बाद कहा—'बड़ी बहिन ! आई तो साथ ही थीं, पर न जाने कहाँ चली गईं ?'

सतीश उसे धक्का देते हुए बोला—'नहीं, यह बात नहीं है। ललिता बहिन तुम बताओ।'

'बड़ी बहिन कल आवेंगी'—कहती हुई ललिता परेश बाबू के कमरे की ओर चल दी।

सतीश ने ललिता तथा विनय का हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचते हुए कहा—'चलो देखो हमारे घर कौन आया है ?'

तिमंजिले की छत पर, कोने में जो एक छोटी-सी कोठरी है, उसके दक्षिण की ओर टीन पड़ी हुई थी। दोनों ने सतीश के पीछे-पीछे जाकर

देखा कि उसी के नीचे एक सेंतालीस वर्षीया अधेड़ स्त्री, आसन बिछाये बैठी है और चश्मा लगाये हुए रामायण पढ़ रही है। उसके सिर के सामने के कुछ बाल उड़ गये थे तथा कुछ श्वेत हो चले थे, परन्तु पके फल की भाँति गोरा चेहरा अभी ज्यों का त्यों दिखाई दे रहा था। दोनों भौंहों के बीच एक काला दाग था। हाथों तथा शरीर पर कोई गहना न था। विधवा स्त्री जान पड़ती थी। ललिता पर दृष्टि पड़ते ही वह चश्मा खोल, पुस्तक को एक ओर रख उत्सुकतापूर्वक उसके मुँह की ओर देखने लगी। वह पीछे विनय को देखकर उठ खड़ी हुई तथा घूँघट निकालकर भीतर जाने का उपक्रम करने लगी। उसी समय सतीश दौड़कर उससे लिपट गया और बोला—'मौसी, तुम भागती क्यों हो? ये मेरी बहिन ललिता है और ये विनय बाबू हैं। बड़ी वहिन कल आयेगी।' विनय बाबू का इतना परिचय ही बहुत था। इसमें सन्देह नहीं कि उसके विषय में पहिले ही पूरी आलोचना हो चुकी थी।

सतीश किसे मौसी कह रहा है, यह जानने के लिए ललिता चुप खड़ी रही। विनय ने उसे पैर छूकर प्रणाम किया, तब उसने उसका अनुसरण किया।

वह स्त्री भीतर से एक चटाई ले आई और उसे बिछाकर बोली—'बैठो बेटा! बेटी, तुम भी बैठो।'

विनय और ललिता के बैठ जाने पर वह अपने आसन पर बैठ गई। सतीश उससे सटकर बैठ गया। तब वह सतीश को दाहिने हाथ से अपनी गोद में खींचती हुई बोलीं—'आप मुझे नहीं जानते। मैं सतीश की मौसी हूँ। सतीश की माँ मेरी सगी बहिन थी।'

उस सामान्य परिचय में कोई विशेष बात तो न थी, परन्तु कण्ठ-स्वर में ऐसा भाव था, जिससे उसके जीवन का गम्भीर शोक भरा पवित्र भाव प्रकट होता था। 'मैं सतीश की मौसी हूँ,' कहकर जब उसने सतीश को अपने हृदय से लगाया, तो विनय का हृदय करुणा से भर गया। उसने स्नेह-भरे स्वर में कहा—'अकेले सतीश की मौसी बने रहने से काम कैसे चलेगा? यदि आपने मुझे भी सतीश के बराबर न समझा, तो मैं सतीश से लड़ूँगा। एक तो वह मुझे 'भाई' कहने की अपेक्षा 'विनय बाबू' कहकर पुकारता है, उस पर भी यदि आपसे मौसी का नाता न जोड़ने देगा, तब कैसे काम

चलेगा ?'

किसी के मन को वश में कर लेने में विनय को देर नहीं लगती। अतः इस प्रियभाषी युवक की बात सुनकर उस स्त्री के हृदय में भी उसके प्रति स्नेह उत्पन्न हो आया।

वह बोली—'बेटा, तुम्हारी माँ कहाँ हैं ?'

विनय ने कहा—'अपनी माँ को खोये तो मुझे बहुत दिन हो गये, परन्तु 'मेरी माँ नहीं है' ऐसा मैं नहीं कह सकता।'

इतना कहते-कहते आनन्दमयी का स्मरण कर उसकी आँखें सजल हो उठीं।

बहुत देर तक इनी प्रकार बातें चलती रहीं। उसे देखकर यह प्रतीत नहीं होता था कि यह बातचीत का प्रथम अवसर है। सतीश बीच-बीच में बोलकर अपने लड़कपन को प्रकट करता रहा। ललिता चुपचाप बातें सुनती रही।

परेश बाबू को बाहर गये बहुत देर हो गई। वे अभी लौटे या नहीं यह देखने के लिए ललिता का जी छटपटा उठा। उसे किसी प्रकार रोके रखने के लिए विनय मौसी से मन लगाकर बातें कर रहा था। अन्त में ललिता का क्रोध न रुक सका। बीच में ही टोकती हुई विनय से बोली—'बाबूजी के आने का कोई ठिकाना नहीं, आप इतनी देर क्यों लगा रहे हैं ? क्या गोरा बाबू की माँ के पास आप एक बार भी नहीं जायेंगे ?'

ललिता का क्रुद्ध स्वर सुनकर विनय चौंक पड़ा। वह तुरन्त उठ खड़ा हुआ। उसके यहाँ आने का कोई प्रयोजन भी तो न था, केवल ललिता के ही लिए तो वह यहाँ आया था, अन्यथा वह द्वार से ही विदा ले रहा था। फिर ललिता के मुँह से ही ऐसा प्रश्न सुनकर, वह आश्चर्य में पड़ गया।

विनय को इस प्रकार एकाएक उठते देख, ललिता को भी अचम्भा हुआ। उसने देखा, विनय के मुख की स्वाभाविक प्रसन्नता एकदम नष्ट हो गई है। उसका ऐसा म्लान मुख देखकर उसका हृदय अनुताप की ज्वाला में जलने लगा। वह अपनी जल्दबाजी पर रह-रहकर पछताने लगी।

सतीश उठकर खड़ा हो गया तथा अनुनय भरे स्वर में बोला—'विनय बाबू, अभी मत जाइए।' फिर मौसी की ओर देखकर बोला—'विनय बाबू से जल-पान के लिए कहो न।' तदुपरान्त ललिता से कहा—'ललिता बहिन,

विनय बाबू को क्यों जाने देती हो ?'

विनय ने उत्तर दिया—'सतीश भाई, आज तो क्षमा करो। मौसी यदि चाहेंगी तो फिर किसी दिन आकर प्रसाद ले लूंगा। आज तो बहुत देर हो गई।'

बात कोई खास नहीं थी, परन्तु विनय का स्वर ममता से पूर्ण था। उसके मन के भाव को सतीश की मौसी समझ गईं। उन्होंने चकित होकर एक बार विनय के मुंह की ओर तथा दूसरी बार ललिता की ओर देखा।

ललिता किसी बहाने वहाँ से उठकर अपने कमरे में चली गई। वहाँ पहुँचकर वह अपनी करनी पर स्वयं ही कुढ़ती हुई चुपचाप रोने लगी।

३१

विनय आनन्दमयी के घर को चल दिया।

आनन्दमयी उस समय स्नान कर, दालान के फर्श पर आसन बिछाये स्थिर भाव से बैठी हुई थीं। विनय ने पहुँचकर उनके पांवों पर लोटते हुए कहा—'माँ !'

आनन्दमयी उसके मस्तक पर दोनों हाथ फेरती हुई बोलीं, 'विनय !'

माँ के इस स्निग्ध स्वर को सुनकर विनय के हृदय में करुण स्पर्श का अनुभव हुआ। उसने बलपूर्वक आँसुओं को रोकते हुए कहा—'माँ, मुझे आने में देर हुई।'

'मैं सबकुछ सुन चुकी हूँ विनय !' आनन्दमयी बोलीं।

विनय ने चौंककर कहा—'सबकुछ सुन चुकीं ?'

गोरा ने अपने मित्र वकील के द्वारा हवालात से जो पत्र लिखकर उन्हें भेजा था, उससे उन्हें निश्चित अनुमान हो गया था कि वह जेल जाये बिना न मानेगा।

पत्र के अन्त में उसने लिखा था—'कारावास तुम्हारे गोरा की तिल-भर भी हानि न कर सकेगा, परन्तु यदि तुम कष्ट पाओगी तो यही मेरे लिए दण्ड होगा। मजिस्ट्रेट में मुझे दण्ड देने की शक्ति नहीं है। माँ, तुम केवल अपने पुत्र की बात ही मत सोचना, क्योंकि अनेक माताओं के बेटे अकारण ही जेल में पड़े हुए हैं। मेरी इच्छा एक बार उनके साथ रहने की हुई है।

यदि इस बार मेरी इच्छा पूर्ण हो तो तुम कुछ भी दुःख न करना।

'तुम्हें याद होगा माँ कि उस बार अकाल के वर्ष मैं सड़क के किनारे वाली अपनी बैठक में, मेज पर रुपयों की थैली रखकर पाँच मिनट के लिए बाहर चला आया था। लौटकर पहुँचा, तब तक उसे कोई चुरा ले गया था। उस थैली में मेरी 'स्कॉलरशिप' के अट्ठावन रुपये रखे थे। मेरा विचार था कि मैं कुछ रुपये और इकट्ठा कर, उनसे तुम्हारे चरण धोने के लिए जल भरने को चाँदी का लोटा बनवा लूंगा। परन्तु रुपये चोरी जाने से मुझे चोर के ऊपर बड़ा क्रोध आया। तभी मुझे ईश्वर ने एक ज्ञान दिया। मैंने मन में कहा—'जो व्यक्ति मेरे रुपये चुरा ले गया है, उसे मैंने उन रुपयों को इस दुर्भिक्ष के समय में दान कर दिया।' इतना कहते ही मेरा सारा शोक दूर हो गया। आज भी मैं स्वेच्छा से जेल जा रहा हूँ। न मुझे कोई कष्ट है और न किसी के ऊपर क्रोध। अब की बार की यात्रा में मैं कई घरों में अतिथि रहा था। उसी प्रकार जेल में भी मैं अतिथि बनकर जा रहा हूँ। मेरी इच्छा के बिना वहाँ मुझे कोई बरबस नहीं रोकेगा, यह तुम निश्चय समझना।

'जब हम अपने घर में बैठकर आहार-विहार करते थे, तब हमें यह ज्ञान ही नहीं था कि इस पृथ्वी पर, घर के बाहर बिना किसी बाधा के घूमने-फिरने का अधिकार कितना बड़ा होता है। उस समय पृथ्वी के बहुत से मनुष्य अपराध अथवा बिना अपराध के भी कारागार की यन्त्रणा भोग रहे थे। उस समय मैंने उनके सम्बन्ध में कुछ नहीं सोचा। परन्तु अब मैं उन सबके साथ ही कलंकित होकर कारागार से बाहर निकलना चाहता हूँ। पृथ्वी पर जो लोग बनावटी शरीफ बने बैठे हैं, मैं उनके दल में रहकर सम्मान प्राप्त करना नहीं चाहता।

'माँ! इस पृथ्वी के साथ परिचय होने पर मुझे बहुत शिक्षा मिली है। जिन्होंने पृथ्वी पर विचार का भार अपने ऊपर ले रखा है उनमें अधिकांश दया के पात्र ही हैं। जो दण्ड स्वयं ग्रहण न करके दूसरों को देते हैं, उन्हीं के पाप की सजा ये वन्दी-जन भोग रहे हैं। अपराध को अनेक लोग मिलकर खड़ा करते हैं। परन्तु प्रायश्चित इन्हीं बेचारों को करना पड़ता है। जो लोग जेल से बाहर आराम तथा सम्मान से रहते हैं, पता नहीं उनके पापों का नाश किस प्रकार हो सकेगा? मैं उस आराम तथा सम्मान को लात

मारकर तथा मनुष्य के कलंक का चिह्न हृदय में धारण करके ही जेल से बाहर निकलूँगा। माँ, मुझे आशीर्वाद दो। तुम मेरे लिए आँसू मत बहाना...।'

आनन्दमयी ने गोरा का यह पत्र पाकर, महिम को उसके पास भेजना चाहा था, परन्तु महिम ऑफिस से छुट्टी न मिलने तथा अनेक कार्यों में व्यस्त रहने का बहाना करके उसके पास नहीं गया था। इतना ही नहीं, उसने गोरा को अविवेकी, उद्दण्ड आदि बताकर काफी भला-बुरा भी कहा था। उसने यह भी कहा था कि किसी दिन गोरा के कारण उसकी नौकरी भी चली जायेगी।

कृष्णदयाल बाबू से इस सम्बन्ध में कोई बात कहना आनन्दमयी ने व्यर्थ समझा था। गोरा के प्रति पति की उदासीनता उन्हें बहुत खटकती थी। उन्होंने गोरा को कभी भी पुत्र के रूप में अपने हृदय में स्थान नहीं दिया। आनन्दमयी और उसके बीच गोरा एक विन्ध्याचल की भाँति खड़ा हुआ था। एक ओर शुद्धाचार को ग्रहण कर कृष्णदयाल अकेले थे, दूसरी ओर अपने 'म्लेच्छ' गोरा के लिए अकेली आनन्दमयी थीं। गोरा के जीवन-इतिहास को पृथ्वी पर यही दो आदमी जानते थे और इसीलिए जैसे उन दोनों के बीच आने-जाने का मार्ग बन्द हो गया था। गोरा के प्रति आनन्दमयी का स्नेह एकमात्र उन्हीं की सम्पत्ति थी। वे सदैव यही चिन्ता किया करती थीं कि कभी कोई व्यक्ति गोरा के कारण यह न कह बैठे कि तुम्हारे गोरा के कारण हमें यह सुनना पड़ा अथवा उसने हमें अमुक क्षति पहुँचाई है। उसी हठी बालक को उन्होंने अपने विरुद्ध परिवार के बीच आज तक सँभालकर रखा है। उसके लिए उन्होंने अनेक अप्रिय बातें सुनी हैं। अनेक कष्ट उठाये हैं, परन्तु इसके लिए उन्होंने किसी को अपना भागीदार नहीं बनाया है।

आनन्दमयी चुपचाप खिड़की के पास बैठी थीं। उस समय कृष्णदयाल बाबू ने प्रातःस्नान करके, तिलक लगाये और मन्त्रोच्चारण करते हुए घर में प्रवेश किया। आनन्दमयी उसके पास न आ सकीं। वे महिम के कमरे में गईं। उस समय महिम फर्श पर बैठा समाचार-पत्र पढ़ रहा था तथा नौकर उसके शरीर में तेल की मालिश कर रहा था।

आनन्दमयी बोलीं—'महिम, तुम मेरे साथ एक आदमी कर दो, ताकि

मैं गोरा से मिल आऊँ। वह तो जेल जाने का निश्चय किए बैठा है। वह जेल जाए, इसके पूर्व क्या मैं उसे एक बार देख भी न सकूँगी ?'

महिम का ऊपरी व्यवहार कैसा भी क्यों न हो, परन्तु गोरा के प्रति उसके हृदय में भ्रातृ-प्रेम का एक अंश अवश्य था। मुँह से तो उसने यही कहा—'अभागा चला जाये तो ठीक है। अभी तक नहीं गया, यही आश्चर्य है,' परन्तु इसके बाद ही उसने अपने साथी हारान घोष को बुलाकर, उसे वकील की फीस के लिए कुछ रुपये देकर उसी समय गोरा के पास भेज दिया तथा स्वयं भी मन में यह निश्चय कर लिया कि आज वह साहब से छुट्टी माँगेगा और यदि साहब ने छुट्टी दे दी तथा पत्नी ने भी स्वीकृति दे दी तो वह उससे मिलने अवश्य जायेगा।

आनन्दमयी जानती थीं कि महिम गोरा के लिए कुछ-न-कुछ अवश्य करेगा। अतः महिम के इस प्रबन्ध को देखकर, वे चुपचाप अपने कमरे में लौट आईं। जब लछमियाँ हाय-हाय करके रोने लगी तो उसे भी उन्होंने डाँटकर दूसरे कमरे में भेज दिया। वे दुःख और सुख को सामान्य शान्त भाव से ग्रहण करती थीं। उनके मन की स्थिति को तो केवल अन्तर्यामी ही जानते थे।

विनय निश्चय न कर सका कि वह आनन्दमयी से क्या कहे। उन्हें सान्त्वना देने की आवश्यकता नहीं थी। तब तक वे विनय को और कोई बात कहने का अवसर न देकर बोल उठीं—'विनय, दीखता है अभी तुम नहाये भी नहीं हो। चलो स्नान कर लो, बहुत देर हो गई है।'

विनय स्नान करके जब भोजन के लिए बैठा तो उसके समीप गोरा का स्थान शून्य देखकर, आनन्दमयी का हृदय हाहाकार कर उठा। वे सोचने लगीं—'गोरा आज जेल का अन्न खा रहा होगा।' फिर यह स्मरण करके कि वह अन्न अन्यायी शासन का होने से कटु होगा, माता के स्नेह से मिश्रित मधुर नहीं, वे दुःखी होकर कोई बहाना करके वहाँ से उठ गईं।

३२

घर आकर ललिता को देखते ही परेश बाबू समझ गए कि यह उद्दण्ड लड़की अवश्य ही कोई विशेष बात कर वहाँ से चली आई है। उनकी

जिज्ञासा-भरी दृष्टि देखते ही ललिता बोल उठी—'बाबूजी ! मैं वहाँ से चली आई, किसी प्रकार ठहर न सकी।'

'क्यों, क्या हुआ ?' परेश बाबू ने पूछा।

'मजिस्ट्रेट ने गोरा को कारावास का दण्ड दे दिया।'

इस बीच गोरा कहाँ से आ टपका, मजिस्ट्रेट ने उसे कारावास का दण्ड क्यों दिया ? इन बातों को परेश बाबू समझ ही न सके। फिर ललिता के मुँह से सब समाचार सुनकर, कुछ देर को व्याकुल हो उठे। गोरा की बात सोचकर उन्हें और अधिक दुःख हुआ। वे सोचने लगे—'जो दण्ड चोर को देना चाहिए, वही दण्ड गोरा को देकर मजिस्ट्रेट ने वास्तव में धर्म-विरुद्ध कार्य किया है। मनुष्य के प्रति मनुष्य का यह अनिष्ट व्यवहार समस्त हिंसाओं की अपेक्षा कितना अधिक है। उनकी आँखों के सामने गोरा के कारावास का दृश्य प्रत्यक्ष नाच उठा।

परेश बाबू को मौन देखकर ललिता का उत्साह बढ़ गया और बोली—'बाबूजी, अब आप ही बताइए, यह घोर अन्याय नहीं तो और क्या है ?'

परेश बाबू ने अपने स्वाभाविक शान्त स्वर में कहा—'गोरा ने किस समय क्या किया, यह मुझे ठीक पता नहीं। यह सम्भव है कि गोरा अपनी कर्तव्य-बुद्धि के आवेश में अधिकार की सीमा का अतिक्रमण कर गया हो। परन्तु, अंग्रेजी भाषा में जिसे 'क्राइम' (जुर्म) कहते हैं, वह गोरा के द्वारा नहीं हो सकता। परन्तु अब हम कर भी क्या सकते हैं ? वह समय अब नहीं रहा। आजकल जुर्म चाहे जान-बूझकर किया जाए अथवा भूल से, दोनों का दण्ड एक ही है।' तभी परेश बाबू बीच में ही इस प्रसंग को रोककर पूछ बैठे—'तुम किसके साथ आई हो ?'

'विनय बाबू के साथ !' ललिता ने साहस करके कहा किन्तु उसके भीतर दुर्बलता भरी हुई थी। लाख चेष्टा करने पर भी उसका स्वर स्वाभाविक न रहा, उसमें विकार आ गया।

अन्य लड़कियों की अपेक्षा परेश बाबू अपनी इस उद्धत स्वभाव की लड़की को अधिक प्यार करते थे। उसके आचरण में जो सत्यनिष्ठा थी, उसे वे अत्यन्त श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। परेश बाबू उसके दोषों की ओर ध्यान न देकर, आज तक उसके गुणों को ही अपने हृदय में स्थान देते आये

हैं। उनकी दोनों पुत्रियों की अपेक्षा ललिता का रंग यद्यपि कुछ साँवला था, इसीलिए वरदासुन्दरी उसके योग्य उपयुक्त वर ढूँढ़ने की उनसे बराबर हठ करती थीं, परन्तु परेश बाबू उसके शारीरिक सौन्दर्य की ओर ध्यान न देकर, उसके अन्त:करण की गम्भीर शोभा पर ही सदैव दृष्टिपात करते थे। संसार में अन्य व्यक्ति ललिता के स्वभाव को पसन्द नहीं करेंगे, यह विचार कर ही वे उसे दया की पात्री समझते थे।

परेश बाबू ने जब सुना कि ललिता विनय के साथ अकेली चली आई है, तभी उन्होंने अनुमान लगा लिया कि इस अपराध के कारण उसे बहुत दिनों तक दु:ख उठाना पड़ेगा। वे मन-ही-मन यह बात सोचते हुए चुप रहे। तभी ललिता ने कहा—'मैंने जो अपराध किया है, उसे मैं भली-भाँति जानती हूँ, परन्तु क्या मजिस्ट्रेट के ऐसे अनुग्रह को सहकर भी मेरे लिए वहाँ ठहरना उचित होता ?'

परेश बाबू ने कोई उत्तर न दिया। केवल मुस्कराते हुए बोले—'तू पागल है, ललिता !'

सन्ध्या समय परेश बाबू इस घटना पर मन-ही-मन चिन्ता करते हुए बाग में घूम रहे थे, उसी समय विनय ने आकर उन्हें प्रणाम किया। परेश बाबू ने गोरा के कारावास के सम्बन्ध में उससे बहुत देर तक बातें कीं, परन्तु ललिता के साथ स्टीमर पर आने के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा। अँधेरा हो जाने पर वे बोले—'विनय, चलो भीतर चलें।'

'मुझे अभी अपने घर जाना है !' विनय ने उत्तर दिया।

परेश बाबू ने फिर उससे ठहरने का आग्रह न किया। विनय एक बार संकुचित दृष्टि से दूसरी मंजिल की ओर देखकर चुपचाप चल दिया। दुमंजिले पर ललिता बैठी थी, उसने विनय को देख लिया था। वह समझ रही थी कुछ देर बाद विनय भी घर जाएगा। परन्तु जब वह न आया तो ललिता किताबों को उलट-पुलटकर कमरे में चली, उसी समय परेश बाबू ने उसे पुकारा। उसके उदास मुँह को स्नेह-भरी दृष्टि से देखते हुए वे बोले—'बेटी ! मुझे एक ब्राह्म-संगीत सुनाओ।' इतना कहकर उन्होंने बत्ती की रोशनी में एक कागज की आड़ कर दी।

३३

दूसरे दिन वरदासुन्दरी सब लोगों को साथ ले कलकत्ते आ पहुँचीं। हारान बाबू ललिता के सम्बन्ध में अपना क्रोध नहीं रोक पा रहे थे, अतः वे सीधे अपने घर न जा, परेश बाबू के पास जा पहुँचे। वरदासुन्दरी ने क्रोध के मारे ललिता की ओर न तो देखा और न कोई बात ही की। वे सीधी अपने कमरे में जा पहुँचीं। लावण्य और लीला भी ललिता से नाराज थीं, क्योंकि विनय और ललिता के बिना उसका अभिनय पंगु हो गया था। सुचरिता किसी को कुछ योग न देकर चुप थी। लज्जा और पश्चात्ताप के कारण सुधीर परेश बाबू के घर के द्वार से ही चुपचाप अपने घर लौट गया था। लावण्य के बार-बार अनुरोध करने पर भी, जब वह न रुका तो लावण्य ने बिगड़कर उससे कहा—'आज से मैं तुमसे कभी कुछ न कहूँगी।'

परेश बाबू के घर में प्रवेश करते ही हारान बाबू कह उठे—'बहुत बड़ा अन्याय हुआ है।'

ललिता पास ही के कमरे में थी। बस आवाज को सुनते ही वह अपने पिता की कुर्सी के पीछे आ खड़ी हुई तथा उस पर दोनों हाथ टिकाकर हारान बाबू के मुँह की ओर देखने लगी।

परेश बाबू बोले—'ललिता के मुँह से मैंने सब बातें सुन ली हैं। जो बीत गया, उसकी आलोचना करने से कोई लाभ नहीं है।'

हारान बाबू शान्त-स्वभावी परेश बाबू को दुर्बल हृदय वाला व्यक्ति समझते थे। इन शब्दों को सुनकर वे आदरपूर्वक बोले—'घटना भले ही घट जाए, परन्तु उसका कलंक कभी नहीं मिटता। यदि ललिता आप से उत्साह न पाती, तो आज जैसा कार्य वह कभी न करती। उसे आपने ही इतना उद्दण्ड बनाकर उसका अनिष्ट किया है। आज का हाल सुनकर आप इस बात को भली-भाँति समझ जायेंगे।'

परेश बाबू पीछे खड़ी ललिता को हाथ पकड़कर अपने सामने खींचते हुए, हारान बाबू से हँसकर बोले—'हारान बाबू, समय आने पर ही आप जान सकेंगे कि सन्तान को सुशिक्षित बनाने के लिए स्नेह की भी आवश्यकता होती है।'

ललिता कुछ झुककर पिता के कान के पास मुंह ले जाते हुए बोली—

'बाबूजी ! आपके नहाने का पानी ठण्डा हो रहा है।'

हारान बाबू की ओर देखते हुए परेश बाबू कोमल स्वर में बोले—'हाँ, अभी आता हूँ। कोई विशेष देर नहीं हुई है।'

ललिता स्नेह-सिक्त स्वर में बोली—'आप स्नान कर आइए, हम हारान बाबू के पास बैठे हैं।'

परेश बाबू के चले जाने पर ललिता एक कुर्सी पर जा जमी। उसने हारान बाबू के मुँह की ओर देखते हुए कहा—'आप जानते ही होंगे कि सबको अपनी बात कहने का अधिकार होता है।'

सुचरिता ललिता को खूब अच्छी तरह जानती थी। और दिन होता तो वह ललिता के ऐसे भाव देखकर क्षुब्ध हो उठती, परन्तु आज कुर्सी पर सिर झुकाए खिड़की के सहारे चुपचाप बैठी रही।

ललिता बोली—'हमारे पिताजी को क्या करना उचित है, इसे वे आपकी अपेक्षा अधिक अच्छी तरह जानते हैं। आप समस्त ब्राह्म-समाज के आचार्य हैं न, अतः आपको यह बात भली-भाँति जान लेनी चाहिये।'

ललिता की इन उद्दण्डतापूर्ण बातों को सुनकर हारान बाबू पहले हत्-बुद्धि-से हो गए। फिर ज्यों ही कुछ कड़ा उत्तर देने को हुए, तभी ललिता ने बीच ही में टोकते हुए कहा—'हम लोग अभी तक आपकी श्रेष्ठता का लिहाज करते आ रहे हैं, परन्तु यदि आपने अपने को हमारे पिताजी की अपेक्षा अधिक सम्मान्य समझा तो इस घर में आपका कोई भी आदर न करेगा। हमारे नौकर तक आपकी बात न पूछेंगे।'

हारान बाबू के नेत्र लाल हो उठे और बोले—'ललिता, तुम बहुत बढ़-बढ़कर बातें···।'

ललिता बीच ही में बात काटती हुई गरज पड़ी—'शान्त रहिए। हमने आपकी बातें बहुत सुनी हैं, आज आप मेरी बात सुनिए, विश्वास न हो तो सुचरिता बहिन से पूछ लीजिए। आप अपने को जितना बड़ा समझते हैं, हमारे पिताजी उससे कहीं अधिक बड़े हैं। आपको जो उपदेश देना हो दीजिए।'

हारान बाबू का मुँह उतर गया। वे कुर्सी से उठते हुए बोले—'सुचरिता!'

सुचरिता ने किताब से दृष्टि हटाकर उनकी ओर देखा। वे बोले—

'ललिता मेरे साथ अभद्रता का व्यवहार कर रही है। क्या तुम्हें मेरा इस प्रकार का अपमान करना चाहिए ?'

सुचरिता गम्भीर स्वर में बोली—'वह आपका अपमान नहीं करना चाहती। वह चाहती है कि आप पिताजी को सम्मान की दृष्टि से देखें। उनसे अधिक सम्मान योग्य हमारे लिए और कोई नहीं है।'

हारान बाबू के भावों से लगा कि वे कुर्सी छोड़कर जाने ही वाले हैं, परन्तु वे गए नहीं। मुँह लटकाए वहीं बैठे रहे। वे अनुभव कर रहे थे कि इस घर में उनकी प्रतिष्ठा निरन्तर गिर रही है, तो भी वे अपने आसन को वहाँ और दृढ़ जमाकर बैठना चाहते थे।

हारान बाबू का लटका हुआ मुँह देखकर ललिता उठकर सुचरिता के पास जा बैठी। इसी समय सतीश ने कमरे में प्रवेश करते हुए सुचरिता का हाथ पकड़कर कहा—'बड़ी बहिन, यहाँ आओ।'

'कहाँ चलना है ?' सुचरिता ने पूछा।

'चलो, तुम्हें एक चीज दिखाऊँ। ललिता बहिन ! तुमने बता तो नहीं दिया ?'

ललिता बोली—'नहीं।'

यह पहले ही निश्चित हो चुका था कि मौसी के आने की बात ललिता सुचरिता से न कहेगी। इसलिए ललिता ने इस सम्बन्ध में अभी तक कुछ नहीं कहा था।

परेश बाबू को स्नान करके लौटते देखकर, सतीश दोनों बहिनों को अपने साथ खींच ले गया।

हारान बाबू परेश बाबू से बोले—'सुचरिता के विवाह-सम्बन्ध में जो निश्चय हुआ था, उस विषय में अब ढील डालना उचित नहीं। मैं चाहता हूँ कि यह कार्य अगले रविवार को ही हो जाए।'

'मुझे कोई एतराज नहीं है'—परेश बाबू बोले—'यह सुचरिता की इच्छा पर निर्भर करता है।'

'उसकी इच्छा तो पहले ही ज्ञात की जा चुकी है।'

'तो आपकी बात ही रही।'

३४

ललिता के पास से लौटकर उस दिन विनय को अपने सूने घर में बैठना कठिन हो उठा। दूसरे दिन सवेरे ही वह आनन्दमयी के पास जा पहुँचा और बोला—'मैं कुछ दिन तुम्हारे ही पास रहूँगा।'

विनय चाहता था कि गोरा के वियोग से जो शोक आनन्दमयी को हुआ है, उसे वह उनके पास रहकर कुछ दूर कर सके। यह जानकर आनन्दमयी का हृदय स्नेह से भर गया। वे प्रेमपूर्वक विनय की पीठ पर हाथ फेरने लगीं।

विनय ने वहाँ रहकर अपने खाने-पीने का झमेला खड़ा कर दिया। वह इधर-उधर की बातों में लगाए रहकर आनन्दमयी के मन की चिन्ताओं को दूर करना चाहता था। कभी वह आनन्दमयी से उनके लड़कपन तथा माता-पिता की कहानी कहलवाता, तो कभी कुछ। आनन्दमयी बतातीं कि जब वे अपने अध्यापक दादा की पाठशाला में पढ़ती थीं, तब लड़के उन्हें पितृहीना समझकर उनका पक्ष लेते और आदर-स्नेह करते थे। इन घटनाओं से उनकी माता के चित्त को बहुत उद्वेग होता था, आदि।

विनय कहता—'माँ, मुझे कभी-कभी यह सोचकर बड़ा आश्चर्य होता है कि तुम मेरी माँ नहीं थीं। मैं तो समझता हूँ कि मुहल्ले के सभी लड़के तुम्हें मेरी माँ ही समझते हैं।'

एक दिन शाम को विनय और आनन्दमयी चटाई पर बैठे थे। विनय ने उनके पैरों पर सिर रखते हुए कहा—'माँ, जी चाहता है कि मैं सब मिथ्या-बुद्धि को भुलाकर, छोटा-सा बालक बन तुम्हारी गोद में ही बैठा रहूँ। इस संसार में तुम्हें छोड़कर मैं और कुछ नहीं चाहता।'

कुछ देर चुप रहकर आनन्दमयी ने विनय से पूछा—'बेटा, परेश बाबू के घर का क्या हाल है?'

इस प्रश्न से विनय लज्जित-सा हो उठा। उसने सोचा—माँ सब-कुछ जानती हैं, इनसे कुछ छिपा रखना उचित नहीं है। फिर कुछ ठिठककर बोला—'वहाँ सब लोग सकुशल हैं।'

विनय उत्साहित होकर बोला—'मेरी कई बार यह इच्छा हुई कि मैं उनसे तुम्हारी भेंट करा दूँ, परन्तु गोरा की नाराजगी के भय से मैंने

तुमसे कभी यह जिक्र नहीं किया।'

'बड़ी लड़की का क्या नाम है?' आनन्दमयी ने पूछा।

'सुचरिता!' विनय ने उत्तर दिया।

इसी प्रकार बातचीत में जब ललिता का प्रसंग आया तो विनय ने उसे संक्षेप में ही समाप्त कर देना चाहा, परन्तु आनन्दमयी बराबर उसी के विषय में पूछती रहीं। बोलीं—'सुना है, उसकी बुद्धि बहुत तीव्र है।'

'तुमने किससे सुना, माँ?'

'तुम्हीं से तो।'

पहिले ललिता के सम्बन्ध में जब विनय को कोई संकोच न था तब विनय ने उसकी तीक्ष्ण बुद्धि की प्रशंसा आनन्दमयी से कई बार की थी, इस समय उसे याद नहीं रहा था।

आनन्दमयी ने चतुरतापूर्वक ललिता के सम्बन्ध में इस प्रकार बातें कीं कि विनय कुछ छिपा न सका। उसके स्टीमर पर साथ आने की बात भी वह कह बैठा। इस प्रकार जिस दुःख के बोझ से वह दबा जा रहा था, वह दूर हो गया। उत्साहपूर्वक उसके सम्बन्ध में न जाने वह क्या-क्या कहता रहा।

रात्रि को जब भोजन के लिए बुलाहट हुई, तब उसे अनुभव हुआ, जैसे वह ललिता के सम्बन्ध में सब बातें कह चुका है। आज आनन्दमयी से इन बातों को कहकर उसका हृदय एक विशेष प्रकार के उत्साह से भर गया। आज से पहले उसने कोई छोटी-से-छोटी बात भी आनन्दमयी से नहीं छिपाई थी। अकेली यही एक बात थी जो उसके हृदय में निरन्तर खटकती रहती थी, उससे भी वह हल्का हो गया।

रात्रि के समय अकेली बैठी हुई आनन्दमयी इन बातों पर बहुत देर तक सोचती रहीं, उन्होंने सोचा—'गोरा के जीवन की समस्या निरन्तर जटिल होती जा रही है। उसकी मीमांसा परेश बाबू के घर में ही हो सकती है'—वे निश्चय कर बैठीं—'जो भी हो, एक बार परेश बाबू की लड़कियों से अवश्य मिलना होगा।'

३५

विनय के साथ शशिमुखी का विवाह एक प्रकार से पक्का ही हो गया है, यही विचार कर विनय तथा उसके घर के लोग व्यवहार कर रहे थे। शशिमुखी की माँ लक्ष्मीमणि से विनय का कोई परिचय न था। वे स्वाभाविक रूप से पर्दा पसन्द करती थीं। उन्हें यह निश्चय हो गया था कि उनकी कन्या का विवाह विनय के साथ ही होगा। उन्होंने अपने पति के हृदय में बात भी बैठा दी थी कि विनय उन लोगों से भारी दहेज की माँग न करेगा।

आज रविवार के दिन विनय को घर में अकेले बैठे देखकर महिम ने कहा—'विनय, तुम्हारे बंश में अगहन में विवाह न होने की जो बात है, उसमें कोई सार नहीं है। एक तो पोथी-पत्रे ही निषेध से भरे रहते हैं, फिर यदि घर के शास्त्र को भी मानोगे तो कैसे काम चलेगा ?'

विनय के संकट को दूर करने के लिए आनन्दमयी ने उत्तर दिया—'विनय शशिमुखी को बचपन से देखता आ रहा है। उससे ब्याह करने की बात उसे पसन्द नहीं है। अगहन का तो वह बहाना मात्र कर रहा है।'

'तो फिर आरम्भ में ही यह बात कह देनी चाहिए थी।'

'मन को जाँचने में भी कुछ समय तो लगता ही है। वैसे भी लड़कों की क्या कमी ? गौरा लौटकर आ जाए, तो वह अपने परिचित अनेक अच्छे लड़कों में से किसी को ठीक कर देगा।'

'माँ ! यदि तुम विनय को न बहकातीं तो वह इस प्रस्ताव को कभी अस्वीकार न करता।'

'सच कहती हूँ, महिम !' आनन्दमयी ने उत्तर दिया—'मैं इस कार्य के लिए विनय को उत्साहित नहीं कर सकती। वह अभी लड़का ही है। किसी काम को बिना सोचे-समझे कर डालने से उसका परिणाम अच्छा नहीं होगा।'

विनय के ऊपर महिम का क्रोध आनन्दमयी ने अपने ऊपर ले लिया। विनय यह देख, अपनी दुर्बलता पर लज्जित हो उठा। उधर महिम मन-ही-मन यह कहते हुए चले गए कि सौतेली माँ कभी अपनी नहीं होती है।

महिम इस विचार को अपने मन में ला सकता है, यह आनन्दमयी भी

जानती थीं, परन्तु उन्हें किसी की आलोचना के अनुरूप कार्य करने का अभ्यास न था। जब लोग उन्हें क्रिस्तानी कहते थे, तब भी वे गोरा को अपनी छाती से लगाकर, यही कहती थीं कि भगवान जानते हैं, क्रिस्तानी कहने से मेरी कोई निन्दा नहीं होती। महिम परोक्ष अथवा प्रकट में उन्हें सौतेली माँ कहकर कभी लांछित करता था, तो भी वे अपने निश्चित मार्ग से विचलित नहीं होती थीं।

महिम के जाने पर आनन्दमयी बोलीं—'विनय, बहुत दिनों से तुम परेश बाबू के घर नहीं गये?'

'अभी बहुत दिन कहाँ हुए, माँ?'

'स्टीमर पर जाने के दूसरे दिन से तो तुम एक बार भी नहीं गये हो।'

विनय जानता था कि वास्तव में वह बहुत दिनों से नहीं गया है, जबकि बीच में उसका आना-जाना इतना बढ़ गया था जिससे आनन्दमयी को भी उसके दर्शन दुर्लभ हो गये थे।

वह चुपचाप धोती के एक सिरे का धागा तोड़ने में लग गया।

इसी समय नौकर ने ऊपर आकर सूचना दी—'माँ जी! कहीं से कुछ स्त्रियाँ आई हैं।'

विनय झटपट उठ खड़ा हुआ। इसके पूर्व ही कि 'वह कौन हैं, कहाँ से आई हैं' की सूचना लेने जाये, सुचरिता और ललिता ने वहाँ प्रवेश किया। विनय सन्नाटे में आकर, जहाँ का तहाँ खड़ा रह गया।

उन दोनों ने आनन्दमयी के पैर छूकर प्रणाम किया। ललिता ने विनय की ओर विशेष ध्यान न दिया, परन्तु सुचरिता उसे नमस्कार करती हुई बोली, 'आप अच्छे हैं?' तदुपरान्त आनन्दमयी की ओर देखकर कहने लगी, 'हम परेश बाबू के घर से आई हैं।'

आनन्दमयी उन्हें आदरपूर्वक बैठाते हुए बोलीं—'मुझे अधिक परिचय देने की आवश्यता नहीं है, बेटी! यद्यपि मैंने तुम लोगों को कभी देखा नहीं, परन्तु मैं तुम्हें अपने घर के आदमी की तरह ही समझती हूँ।'

वार्तालाप आरम्भ हो गया। विनय को चुप देखकर ललिता ने उसे वार्तालाप में सम्मिलित करने के लिए कहा—'आप हमारे घर कई दिन से क्यों नहीं आये?'

विनय एक बार ललिता की ओर दृष्टिपात करता हुआ बोला, 'बार-

बार तकलीफ देने से कहीं आप लोगों का स्नेह न खो बैठूं, यही भय बना रहता है।'

सुचरिता हँसकर बोली—'पर आप शायद यह नहीं जानते हैं कि स्नेह बार-बार कष्ट देने की ही अपेक्षा रखता है।'

आनन्दमयी ने बीच में कहा—'सो तो यह तंग करना खूब जानता है, बेटी ! तुमसे क्या कहूँ, यहाँ दिन भर इसकी फरमाइशें पूरी करते-करते तो मेरी नाक में दम हो जाता है।'

इतना कहकर वे विनय की ओर स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखने लगीं।

विनय हँसकर बोला—'माँ, ईश्वर ने तुम्हें जो धैर्य दिया है, उसकी वे मेरे द्वारा परीक्षा ले रहे हैं।'

सुचरिता ललिता को तनिक धकेलती हुई बोली—'बहिन ललिता ! हम लोगों की परीक्षा शायद समाप्त हो गई और हम सम्भवतः उसमें सफल नहीं हो सकी हैं।'

ललिता को इस वार्तालाप में सम्मिलित न होते देखकर, आनन्दमयी ने हँसकर कहा—'अब हमारा विनय अपने धैर्य की परीक्षा दे रहा है। वह तुम्हें किस दृष्टि से देखता है, इसे तुम नहीं जानतीं। शाम को तुम लोगों की चर्चा के अतिरिक्त वह कुछ नहीं कहता। परेश बाबू का प्रसंग आते ही तो वह गल-सा जाता है।'

आनन्दमयी ने ललिता के मुँह की ओर देखा, वह अकारण ही लाल हो उठी थी।

आनन्दमयी फिर बोलीं, 'तुम्हारे बाबूजी के लिए वह कितने ही लोगों से झगड़ बैठा है। उसके साथी तो उसे ब्राह्म-समाजी कहकर जाति-च्युत कर देना चाहते हैं।'

अब की बार जब उन्होंने ललिता की ओर देखा तो उसकी आँखें नीचे झुकी हुई थीं। सुचरिता बोली, 'विनय बाबू भी हमें अपना आदमी समझते हैं, यह हम लोगों का गुण नहीं अपितु उनकी महानता है।'

आनन्दमयी बोलीं—'यह तो मैं नहीं कह सकती, बेटी ! मैं इसे तब से जानती हूँ, जब यह छोटा-सा था। यह अपने दल के लोगों से भी उतना नहीं हिल-मिल सका, जितना तुम लोगों के साथ घुल-मिल गया है। तुम लोगों के समीप जाने के बाद से, हमें तो इसका पता भी नहीं मिल पाया।

मैं सोच रही थी, इसके लिए तुम लोगों से झगड़ा करूँगी, परन्तु अब दीखता है, मुझे भी इसी के दल में सम्मिलित होना पड़ेगा।'

सुचरिता ने विनय की यह दुर्दशा देख सहृदय होते हुए कहा, 'विनय बाबू ! बाबूजी भी हमारे साथ आये हैं, वे बाहर कृष्णदयाल बाबू से वार्तालाप कर रहे हैं।'

यह सुन, विनय तुरन्त बाहर चल दिया। इधर गोरा और विनय की आसाधारण मित्रता का प्रसंग लेकर आनन्दमयी बातें करने लगीं। सुचरिता और ललिता उस वर्णन को अतृप्त हृदय से सुनने लगीं। आनन्दमयी जैसी माता के गहरे स्नेह को देखकर उन्हें और भी अधिक विशेष आनन्द का अनुभव होने लगा।

आज आनन्दमयी से परिचय होने के बाद ललिता का मजिस्ट्रेट के ऊपर क्रोध जैसे और अधिक बढ़ गया। उसके मुँह से मजिस्ट्रेट के प्रति तीव्र भर्त्सना के शब्द सुनकर आनन्दमयी को हँसी आ गई। वे बोलीं—'बेटी ! आज गोरा के कारागार में रहने से जो दुःख मुझ हो रहा है, उसे अन्तर्यामी ही जानते हैं। फिर भी मैं मजिस्ट्रेट पर क्रोध नहीं करती। गोरा जिस काम को अच्छा समझता है, उसके समक्ष कानून-वानून को कुछ नहीं समझता। वह अपना काम स्वयं कर रहा है तथा अन्य लोग भी अपना कर्तव्यपालन कर रहे हैं। इसमें जिसे भी दुःख मिले, मिलेगा ही। मेरे गोरा की चिट्ठी यदि तुम पढ़कर देखो तो समझ सकोगी कि वह कभी दुःख से नहीं डरा। किसी के ऊपर उसने व्यर्थ क्रोध नहीं किया। जिस कार्य का जो परिणाम होता है, उसे भली-भाँति जानकर ही वह उसे करता है।'

इतना कहकर वे गोरा की चिट्ठी बक्स से निकाल लाईं और उसे सुचरिता के हाथ में देती हुई बोलीं, 'बेटी, तुम इसे तनिक जोर से पढ़ो, ताकि मैं भी एक बार और सुन लूँ।'

गोरा के उस अद्भुत पत्र को पढ़े जाने के बाद, तीनों कुछ देर चुप बैठी रहीं। आनन्दमयी ने आँचल से अपने आँसू पोंछ लिये। उन आँसुओं में केवल माता के हृदय की व्यथा ही नहीं थी, अपितु उनमें आनन्द तथा गौरव भी मिश्रित था।

ललिता आश्चर्यचकित-सी आनन्दमयी का मुँह देख रही थी। उसके हृदय में ब्राह्म-परिवार का संस्कार खूब जड़ जमाये हुए था। कभी-कभी

वरदासुन्दरी जब उसे किसी अपराध पर डाँटती हुई यह कहती थीं कि ऐसा व्यवहार तो हिन्दुओं की स्त्रियाँ भी नहीं करतीं, तब उसे यह बोध होता था, जैसे हिन्दुओं की स्त्रियाँ बहुत ही असभ्य तथा पुरानी चाल की होती हैं। इसलिए उसके हृदय में हिन्दू स्त्रियों के प्रति श्रद्धा नहीं थी, परन्तु आज जब उसने आनन्दमयी को देखा, तो वह अपने हृदय को बार-बार धिक्कारने लगी। उसके हृदय में आज एक भारी विद्रोह मचा हुआ था, उसी कारण उसने विनय की ओर भी नहीं देखा था, परन्तु आनन्दमयी की स्नेहार्द्र वाणी सुनकर तथा उनके शान्त मुखमण्डल को देखकर उसके हृदय का ताप नष्ट हो गया। उसने आनन्दमयी से कहा—'गौर मोहन बाबू ने इतनी शक्ति कहाँ से प्राप्त की है, यह आज मैं आपको देखकर जान सकी हूँ।'

आनन्दमयी बोलीं—'यह बात नहीं है बेटी! गोरा यदि साधारण बालकों की भाँति होता, तो मैं इतना बल कहाँ से पाती? तब उसके दुःख को भी मैं कैसे सह सकती थी?'

ललिता का मन आज जो इतना व्याकुल हो उठा था, उसका कारण बताने की भी आवश्यकता है।

पिछले कई दिनों से, बिस्तर से उठने के बाद ललिता के मन में पहिला विचार यह आया था कि विनय बाबू आज नहीं आयेंगे, फिर भी वह दिन भर उनके आने की प्रतीक्षा किया करती थी। प्रतिपल वह यही सोचती कि कहीं वे परेश बाबू के साथ नीचे बैठक में बैठकर बातें न कर रहे हों। इसीलिए वह दिन भर इधर से उधर घूमती रहती और अन्त में सन्ध्या होने पर अपने बिस्तर पर जा लेटती थी। उसका हृदय जैसे फटने लगता, रुलाई आती, क्रोध आता, परन्तु यह सब किसलिए हो रहा है, इसे वह समझ नहीं पाती। वह बार-बार यही सोचती, 'मैं अपने मन को कैसे समझा सकूँगी? यह इसी प्रकार कब तक चलता रहेगा?'

ललिता जानती थी कि विनय के हिन्दू होने के कारण उसका विवाह उसके साथ कभी नहीं हो सकता। फिर भी वह अपने हृदय को किसी प्रकार समझा नहीं पाती थी। आज प्रातःकाल से ही उसका हृदय अशान्त हो रहा था, तब उसने विचार किया कि विनय के साथ एक बार भेंट हो जाने से यह अस्थिरता दूर हो जायेगी।

आज सवेरे ही वह सतीश को अपने कमरे में खींच ले गई थी। मौसी

को पाकर सतीश आजकल विनय की याद ही जैसे भूल गया था। ललिता ने उससे कहा—'मालूम होता है, अब विनय बाबू के साथ तेरा झगड़ा हो गया है।'

सतीश ने इस अपेक्षा का खूब जोर से प्रतिवाद किया। तब ललिता बोली—'फिर तो विनय बाबू ही तुझे भूल गये हैं। अब वे तेरे मित्र नहीं रहे।'

'हिश्! ' सतीश ने कहा—'यह बात कभी नहीं हो सकती।'

समाज में अपना महत्त्व प्रदर्शित करने के लिए छोटे सतीश को जोर से बोलना पड़ता है। आज वह अपने कथन को दृढ़ प्रभाव देने के लिए, उसी समय विनय के घर दौड़ा आया। जब लौटकर आया तो बोला—'वे घर नहीं हैं, इसीलिए यहाँ नहीं आये हैं।'

ललिता ने पूछा—'कई दिनों से क्यों नहीं आये हैं?'

'वे कई दिनों से घर नहीं हैं।' सतीश ने उत्तर दिया।

तब ललिता ने सुचरिता के पास जाकर कहा—'दीदी, हमें गोर मोहन बाबू की माँ के पास एक बार अवश्य हो आना चाहिये।'

सुचरिता बोली, 'परन्तु, हमारी उनसे कोई जान-पहचान तो है नहीं।'

ललिता—'उनके पिता तो हमारे बाबूजी के बचपन के मित्र हैं।'

सुचरिता को स्मरण हो आया। बोली—'हाँ, हैं तो सही।' फिर कहा—'ललिता बहिन! तुम्हीं बाबूजी से चलने के लिए कहो।'

'न, मैं नहीं जाऊँगी, तुम्हीं कहो न।'

अन्त में सुचरिता को ही परेश बाबू के पास जाना पड़ा। इस प्रसंग के छिड़ते ही वे बोल उठे—'अवश्य, हमें उनके पास अब तक कभी का हो आना चाहिये था।'

भोजन के बाद चलने की बात जब ठीक हो गई, तब ललिता का मन फिर एकाएक विद्रोह कर उठा। उसने सुचरिता के पास जाकर कहा—'दीदी, तुम वहाँ हो आना, मैं नहीं जाऊँगी।'

सुचरिता बोली—'तू न जायेगी तो मैं भी नहीं जाऊँगी। तू न जाये, यह कैसे हो सकता है?'

अनेक आग्रह के उपरान्त ललिता साथ गई। परन्तु आज वह विनय के सम्मुख जैसे परास्त हो गई, क्योंकि विनय इतने दिनों से उसके घर नहीं

आया था, बल्कि वही स्वयं वहाँ जा पहुँची थी। यद्यपि विनय को देखने की आशा से ही वह आनन्दमयी के घर आई थी, परन्तु उसने अपनी हठ बनाये रखने के लिए यहाँ आकार विनय की ओर एक बार भी न तो देखा और न नमस्कार ही किया था।

उसी समय विनय ने दरवाजे के पास आकर संकोचपूर्वक कहा, 'परेश बाबू घर जाना चाहते हैं, इन्हें खबर देने को कहा है।' विनय इस प्रकार खड़ा हुआ था कि ललिता उसे देख न पाये।

आनन्दमयी बोलीं—'मुँह मीठा किये बिना कैसे जा सकेंगे? अब अधिक विलम्ब न होगा। विनय! तुम यहाँ बैठो, मैं जाकर देख आऊँ। बाहर क्यों खड़े हो, यहाँ भीतर आओ न।'

ललिता की आड़ कर विनय कुछ दूरी पर बैठ गया। तभी सहज-भाव से ललिता ने कहा—'विनय बाबू, आपने अपने मित्र सतीश को बिल्कुल भुला दिया है अथवा नहीं, यह जानने के लिए वह आज सुबह आपके घर गया था।'

आकाशवाणी सुनकर जैसे मनुष्य अचम्भे में आ जाता है, उसी प्रकार विनय चौंक पड़ा। वह अपनी स्वभाव-सिद्ध चतुरतापूर्वक उत्तर न देकर, मुख तथा कानों को लाल करता हुआ बोला—'सतीश घर गया था? मैं तो वहाँ था ही नहीं!'

ललिता द्वारा इस साधारण बात के कहने से ही विनय को असीम आनन्द प्राप्त हुआ था। उसे मालूम हो गया कि ललिता उससे नाराज नहीं है।

देखते-देखते सब संकोच दूर हो गया! सुचरिता हँसकर बोली, 'विनय बाबू तो हम लोगों को खूँख्वार जानवर समझकर बिल्कुल दूर हट गये हैं।'

विनय ने कहा—'जो लोग मुँह खोलकर बात नहीं कर पाते, पृथ्वी पर उन्हीं को दोषी ठहराया जाता है। दीदी! आपके मुख से यह कथन शोभा नहीं देता। आप ही दूर चली गई हैं, इसलिए औरों को भी दूर समझ रही हैं।'

सुचरिता को विनय ने आज पहली बार 'दीदी' कहा। सुचरिता को भी यह सम्बोधन बहुत प्रिय एवं मधुर लगा। इस सम्बोधन ने शीघ्र ही एक विशेष स्नेहपूर्ण आकार धारण कर लिया।

अपनी लड़कियों के साथ जब परेश बाबू गये, उस समय शाम हो चुकी थी। विनय ने आनन्दमयी से कहा—'माँ, मैं आज तुम्हें कोई काम न करने दूंगा। ऊपर वाले कमरे में चलो।'

विनय आज अपने मन की उमंग दबा नहीं पा रहा था। आनन्दमयी को ऊपर ले जाकर उसने स्वयं चटाई बिछाकर उन्हें बैठाया। आनन्दमयी बोलीं—'विनय, बोल तू क्या कहता है ?'

'मुझे तो कुछ नहीं कहना है, माँ ! तुम्हीं अपने मन की बात कहो।' विनय ने उत्तर दिया।

विनय का मन यह जानने के लिए व्याकुल हो रहा था कि उन्हें परेश बाबू की लड़कियाँ कैसी लगी हैं।

आनन्दमयी बोलीं—'अच्छा, इसीलिए तू मुझे बुलाकर लाया था। मैं समझती थी, तुझे कोई बात कहनी होगी।'

'बुलाकर न लाता तो ऐसे सुन्दर सूर्यास्त की शोभा कहाँ देखने को मिलती ?'

उस दिन कलकत्ते के सूर्यास्त में कोई विशेषता नहीं थी। सन्ध्या के धुंधले कुहरे में सूर्य छिप रहा था, परन्तु विनय के मन को आज उसने जैसे रंगीन बना दिया था।

आनन्दमयी बोलीं—'दोनों लड़कियाँ साक्षात् लक्ष्मी जैसी लगती हैं।'

विनय के लिए केवल इतनी प्रशंसा ही पर्याप्त न थी। उसने अनेक बातों द्वारा इस प्रसंग को आगे बढ़ाये रखा।

परेश बाबू की लड़कियों के सम्बन्ध में साधारण-सी घटनायें कह-कह कर भी वह अपने उत्साह का प्रदर्शन करता रहा।

तभी आनन्दमयी ने एकाएक गहरी साँस छोड़ते हुए कहा—'सुचरिता के साथ यदि गोरा का विवाह हो सके तो मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होगी।'

विनय जैसे उछल पड़ा। बोला—'यह बात तो मैंने भी अनेक बार अपने मन में सोची है। गोरा के योग्य जीवन-संगिनी सुचरिता दीदी ही है।'

'परन्तु क्या यह सम्भव हो सकेगा ?'

'क्यों नहीं माँ ! मैं समझता हूँ, गोरा भी सुचरिता को पसन्द करता है।'

आनन्दमयी यह जानती थीं कि गोरा का हृदय किसी एक स्थान पर अवश्य उलझ रहा है। विनय की बातों से उन्होंने यह भी अनुमान कर लिया था कि वह लड़की सुचरिता ही है। कुछ देर चुप रहकर वे बोलीं—'परन्तु, क्या सुचरिता किसी हिन्दू के घर विवाह करना स्वीकार करेगी ?'

विनय—'माँ, क्या गोरा ब्राह्म परिवार में विवाह नहीं कर सकता ? इस सम्बन्ध में तुम्हारी क्या राय है ?'

आनन्दमयी—'मैं तो प्रसन्नतापूर्वक स्वीकृति दे दूंगी।'

विनय ने फिर कहा—'अच्छा !'

आनन्दमयी—'क्यों नहीं। विवाह की सार्थकता मनुष्य के साथ मनुष्य का मन मिलने में ही है। मन्त्र पढ़ने से कोई लाभ-हानि नहीं होती।'

विनय के मन से जैसे एक बोझ हट गया। वह उत्साहित होकर बोला, 'माँ, तुम्हारे मुँह से ऐसी बातें सुनकर मैं सोचता हूँ कि तुमने ऐसी उदारता कहाँ से प्राप्त की है ?'

आनन्दमयी—'गोरा से !'

विनय—'परन्तु, वह तो इसके प्रतिकूल कहता है।'

आनन्दमयी—'उसके कहने न कहने से क्या ? मुझे बस शिक्षा गोरा ने ही दी है। मनुष्य कितना सत्य और कितना मिथ्या है—यह बात ईश्वर ने मुझे उसी दिन बता दी थी, जिस दिन उन्होंने गोरा को मेरी गोद में भेजा। बेटा ! ब्राह्म और हिन्दू कौन है ? मनुष्य की आत्मा की कोई जाति नहीं होती। भगवान सब को समान रूप से मिलते हैं, केवल मन्त्र अथवा मत के द्वारा ही कोई काम नहीं चल सकता।'

विनय ने आनन्दमयी के चरण छूते हुए कहा—'माँ, मेरा आज का दिन सार्थक हुआ। तुम्हारी बातें बड़ी प्रिय हैं।'

३६

सुचरिता की मौसी हरिमोहिनी के कारण परेश बाबू के घर में अशान्ति फैल गई। इससे पूर्व हरिमोहिनी ने सुचरिता को जो अपना परिचय दिया था, वह संक्षेप में इस प्रकार है।

उन्होंने बताया—'मैं तुम्हारी माँ से दो वर्ष बड़ी थी। पिता के घर में

हम दोनों का आदर होता था। घर में और कोई बालक न था, अतः चाचा हम दोनों बहिनों को हर समय गोद में ही लिये रहते थे।

'जब मेरी उम्र आठ वर्ष की हुई तब कृष्णनगर के प्रसिद्ध चौधरी परिवार में मेरा विवाह हुआ। वे कुलीन होने के साथ ही धनी भी थे, परन्तु विवाह में लेने-देने के कारण मेरे ससुर का पिताजी के साथ विरोध हो गया। उस झगड़े को देखकर पिताजी ने प्रतिज्ञा की कि अब मैं अपनी किसी लड़की का विवाह धनवान के घर न करूँगा। अपने तरह के नियमानुसार उन्होंने तुम्हारी माँ का विवाह एक दरिद्र घराने में ही कर दिया।

'मेरे ससुर का परिवार बहुत बड़ा था अतः मुझे नौ-दस वर्ष की आयु में ही नित्य पचास-साठ आदमियों का भोजन बनाना पड़ता था। सबको खिलाने-पिलाने के बाद मुझे भोजन मिलता था, सो मैं कभी केवल रूखा भात और कभी दाल-भात खाकर ही रह जाती थी। सुबह की रसोई शाम तक समाप्त होती और उसके तुरन्त बाद ही शाम की रसोई में जुट जाना पड़ता था, जिससे रात के बारह बजे से पहले कभी फुर्सत नहीं मिल पाती थी। रात को जहाँ स्थान मिल जाता, वहीं पर मैं चटाई बिछाकर अकेली सो जाती थी।

'घर के सब लोग तो मेरा अनादर करते ही थे, पति ने भी कभी आदर की दृष्टि से न देखा।

'सत्रह वर्ष की आयु हो जाने पर मैंने एक कन्या 'मनोरमा' को जन्म दिया। कन्या के जन्म से घर में मेरा अनादर और अधिक बढ़ गया। घर के लोग, यहाँ तक कि मेरे पति भी उस लड़की को प्यार नहीं करते थे। परन्तु इन सब तिरस्कारों के बीच मेरे लिए वह लड़की एकमात्र अवलम्बन थी।

'तीन वर्ष पश्चात् जब मैंने एक लड़के को जन्म दिया, तब लोग मुझे कुछ आदर की दृष्टि से देखने लगे। मनोरमा के जन्म के दो वर्ष बाद ही मेरे ससुर स्वर्गवासी हो चुके थे, जबकि सास पहिले से ही नहीं रही थीं। ससुर की मृत्यु के बाद देवरों ने उनकी सम्पत्ति के विभाजन के लिए मुकद्दमेबाजी आरम्भ कर दी। अन्त में पृथक्करण के पश्चात् हम सब अलग हुए।

'मनोरमा का ब्याह मैंने अधिक दूर न करने के विचार से, कृष्णनगर से पाँच-छह कोस की दूरी पर बसे राधानगर में कर दिया। दूल्हा देखने में

सुन्दर, स्वस्थ्य एवं ऐश्वर्यमान था।

'इतने दिन कष्ट में बिताने के बाद मेरा भाग्य फिरा। अब मेरे स्वामी मुझे आदर की दृष्टि से देखने लगे, तथा प्रत्येक कार्य में मेरी सम्मति लेने लगे, परन्तु मेरा यह सुख विधाता से अधिक दिनों तक न देखा गया। एक दिन हैजे की बीमारी से वे भी चल बसे। साथ ही मेरे लड़के की मृत्यु हो गई।

'धीरे-धीरे मुझे अपने जमाई की प्रकृति का परिचय मिला। वह बुरे लोगों के साथ पड़कर मद्यपान करने लगा था, परन्तु मेरी लड़की ने उसके सम्बन्ध में मुझसे कभी कोई बुराई नहीं की। वह चाहे जब मेरे पास आकर घर की आवश्यकतायें बतलाता और मुझसे कुछ न कुछ रुपया-पैसा ले जाता था। मेरी लड़की ने इसके लिए मुझे कई बार टोका भी, परन्तु मैंने उसकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। अन्त में बहुत कहा-सुनी होने पर मैं उसे अपनी लड़की से छिपाकर रुपया देने लगी। आखिर मनोरमा को जब इसका भी पता चल गया, तो एक दिन उसने मेरे पास आकर अपने पति के दुराचार की सब बातें कह सुनाईं। मैंने उन बातों को सुनकर सिर पीट लिया। पता लगाने पर मुझे मालूम हुआ कि मेरे ही एक देवर ने उसे मद्यपान की आदत डालकर खराब कर दिया था।

'जब मैंने उसे रुपया देना बन्द कर दिया, तब उसे अपनी स्त्री पर सन्देह हो गया कि यही मुझे रुपया नहीं देने देती है। यह देखकर उसने मनोरमा पर अत्याचार करना आरम्भ कर दिया। तब मैं उसे इससे रोकने के लिए, फिर से छिपा-छिपाकर रुपया देने लगी।

'एक दिन मैंने देखा कि मनोरमा दिन के पिछले पहर मेरे द्वार पर पालकी से उतरी। उसने मेरे पास आकर हँसते-हँसते प्रणाम किया।

'मैंने उसे देखकर कहा—'क्या हाल है बेटी ?'

'अच्छी ही हूँ !'—वह बोली—'हाल अच्छा न होने पर कोई बेटी अपनी माँ के घर हँसी-खुशी कैसे आ सकती है ?'

'मेरे समधी होशियार थे। उन्होंने मुझे कहला भेजा कि बहू का पाँव भारी है, अतः सन्तान होने तक यदि वह अपनी माँ के पास ही रहे तो अच्छा होगा। मैं समझ गई कि उन्होंने इस भय से कि कहीं उनका लड़का अपनी गर्भवती पत्नी के साथ मार-पीट न करे, उसे मेरे पास भेज दिया है।

मैं कभी-कभी मनोरमा के शरीर पर तेल लगाने की चेष्टा करती तो मनोरमा वैसा करने को मना कर दिया करती थी, क्योंकि उसके शरीर पर चोट के निशान थे, उन्हें वह दिखाना नहीं चाहती थी।

'कभी-कभी मेरा जमाई घर आकर मनोरमा को अपने घर लौटा ले जाने की जिद किया करता था, तब मैं उसे चुपचाप कुछ रुपये देकर लौटा दिया करती थी।

'एक दिन मनोरमा बोली—'माँ, मैं तुम्हारे रुपये-पैसे को अपने कब्जे में रखूँगी।' यह कहकर उसने मेरे हाथ से तालियों का गुच्छा ले लिया, तथा बक्स आदि को अपने अधिकार में कर लिया। वह नहीं चाहती थी कि इस प्रकार मैं उसके पति को रुपया-पैसा देती रहूँ।

'तब अन्त में एक दिन जमाई ने घर आकर मुझसे लाल आँखें करते हुए कहा—'मैं कल पालकी भेज दूंगा। यदि तुमने अपनी लड़की को न भेजा तो ठीक न रहेगा।'

मैंने यह बात मनोरमा से कही तो उसने उत्तर दिया—'माँ, मेरे ससुर कलकत्ता गये हैं, वे आधे फागुन तक लौटेंगे, तभी मैं घर जाऊँगी।'

'परन्तु मैंने उसे समझाया—'तुम्हारे न जाने से वह और अधिक नाराज होंगे, अतः तुम चली ही आओ।

'लाचार मनोरमा जाने को तैयार हो गई। उस दिन मैं उसके पास अधिक देर बैठ न सकी। उसकी ससुराल से आये हुए नौकर तथा कहारों को खिलाने-पिलाने में ही व्यस्त रही। पालकी में सवार होते समय मनोरमा ने कहा—'माँ, अब मैं अब जा रही हूँ।'

'मुझे क्या पता था कि मनोरमा अब कभी इस घर में लौटकर न आयेगी, वह सदा के लिए ही जा रही है। मैंने उसे जैसे-तैसे विदा किया।

'जिस रात वह ससुराल पहुँची, उसी दिन उसका गर्भपात हो गया। साथ ही वह सदा के लिए चिर-निद्रा में सो गई। जब तक मुझे यह समाचार मिला, उसके पूर्व ही उसकी लाश जलाई जा चुकी थी, अतः अन्त समय में मैं उसका मुँह भी न देख पाई।

'इस प्रकार एक-एक करके मेरे सभी स्वजन चले गये, फिर भी मेरी विपत्ति का अन्त न हुआ। मेरे पति एवं पुत्र की मृत्यु के पश्चात् मेरे देवरों ने मेरी सम्पत्ति के ऊपर अपने दाँत गढ़ाने आरम्भ कर दिये। यद्यपि

वे भली-भाँति जानते थे कि मेरी मृत्यु के पश्चात् सब सम्पत्ति पर उनका अधिकार होगा, परन्तु वे उस समय तक के लिए ठहरने को तैयार न थे।

'जब तक मनोरमा जीवित रही, मैं अपने देवरों के भुलावे में न आई। मैंने अपनी सम्पत्ति को सुरक्षित रख छोड़ा था और मेरा यह विचार था कि मरने से पूर्व सब सम्पत्ति मैं मनोरमा को ही दे जाऊँगी। मेरे इस निश्चय को जानकर मेरे देवर और भी जल उठे।

'मेरे पति का नीलकान्त नामक एक पुराना विश्वस्त नौकर था। उस संकटकाल में वही मेरा सच्चा सहायक था। वह मेरे काम की देखभाल करता रहता तथा देवरों की कोई दाल न गलने देता था। मैं जब कभी अपनी सम्पत्ति का कुछ हिस्सा देकर देवरों को सन्तुष्ट करने की बात कहती, तभी वह मुझे रोकता हुआ उनकी ओर से निश्चिन्त रहने का आश्वासन दिया करता था। अन्त में मेरा हक हड़पने के लिए झगड़ा होने लगा। उसी समय एक दिन मेरी लड़की का देहान्त हो गया। इस घटना के दूसरे ही दिन मेरे मँझले देवर ने आकर मुझे वैराग्य ले लेने का उपदेश दिया। उसने समझाया—'अभी ईश्वर ने तुम्हारे साथ जो किया है, उसे देखते हुए अब तुम्हें घर रहना उचित नहीं है। अब तो तुम किसी तीर्थ-स्थान में जाकर अपना शेष जीवन व्यतीत कर दो, हम लोग तुम्हारे खाने-पहनने का प्रबन्ध करते रहेंगे।'

'मैंने उसी समय अपने गुरु महाराज को बुलाकर उनसे इस असह्य मन्त्रणा से उद्धार पाने का उपाय पूछा।

'उन्होंने मुझे हरि-मन्दिर के भीतर ले जाकर उत्तर दिया—'ये पोपीरमण ही अब तुम्हारे सब-कुछ हैं, ये ही तुम्हारा कल्याण करेंगे।'

उस समय से मैं दिन-रात ठाकुर-पूजा में संलग्न रहने लगी। एक दिन मैंने नीलकान्त को बुलाकर कहा—नील बाबू! अब मैं अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति देवरों को लिख देना चाहती हूँ। वे मुझे वृत्ति के रूप में प्रतिमास कुछ रुपया दे दिया करेंगे।

'नीलकान्त ने उत्तर दिया—'आप स्त्री हैं, इन बातों को नहीं समझतीं। ऐसा पागलपन मत कीजियेगा।'

'नीलकान्त मेरा हक किसी को नहीं देना चाहता था। अब मैं बहुत संकट में पड़ी। जमींदारी का काम मुझे विष-तुल्य दिखाई पड़ता था परन्तु

नीलकान्त को भी मैं कष्ट नहीं पहुँचाना चाहती थी।

'अन्त में, एक दिन मेरे मन में न जाने क्या आया कि मैंने नीलकान्त की गैर-जानकारी में, देवरों के कहने से एक कागज पर हस्ताक्षर कर दिये। उस कागज में क्या लिखा था, यह मैं भली-भाँति नहीं जान सकी। फिर मुझे उसकी कोई चिन्ता भी न थी। ससुर की सम्पत्ति को यदि उनके पुत्र पायें तो इसमें मेरा क्या विगड़ता था ?

'जब लिखा-पढ़ी, रजिस्ट्री आदि सब हो गई, तब मैंने नीलकान्त को बुलाकर कहा—'मेरे पास जो कुछ था, उस सबकी लिखा-पढ़ी मैंने देवरों को कर दी है। आप बुरा न मानियेगा।'

'नीलकान्त चौंककर बोला —'अरे आपने यह क्या कर डाला ?'

'जब उसने दस्तावेज की नकल पढ़ी, तब उसे पूर्ण विश्वास हुआ कि वास्तव में मैंने अपना सब-कुछ त्याग दिया है। उसे जानकर नीलकान्त के क्रोध की सीमा न रही। अपने मालिक की मृत्यु के पश्चात् अपनी सारी शक्ति एवं बुद्धि से मेरी तथा मेरी जमींदारी की सुरक्षा करना ही उसके जीवन का मुख्य ध्येय बन गया था। इसके लिए उसने अनेक मुकद्दमे लड़े थे तथा अनेकों ही कष्ट उठाये थे। वह इसके लिए अपने घर का काम-काज भी नहीं देख पाता था। उसी हक को जब एक स्त्री की कलम ने एक ही घसीट से उड़ा दिया तो उसका हृदय अशान्ति से भर उठा। वह हताश होकर बोला—'मेरा आपका सम्बन्ध भी अब आज से समाप्त हो गया। मैं भी जाता हूँ।'

'मैंने उसे अपने को छोड़कर जाते हुए देखा। मैं अपनी भूल पर बार-बार पछताने लगी। मैंने उससे कहा—आप रुष्ट न हों। मेरे पास कुछ रुपया है। मैं उसमें से आपको पाँच सौ रुपये दे रही हूँ। जब आपकी पुत्र-वधू आवे, तब मेरी ओर से आशीर्वाद स्वरूप उसके लिए इन रुपयों से कोई गहना गढ़ा दीजियेगा।'

'मुझे अब इनकी आवश्यकता नहीं है।' उसने कहा—'मेरे स्वामी का जब सब-कुछ चला गया, तो फिर इन पाँच सौ रुपयों को लेकर मैं क्या सुख पाऊँगा ? इन्हें आप अपने पास ही रखिये।' इतना कहकर वह चला गया।

'अब मैं पूजाघर में रहने लगी। एक दिन मेरे देवरों ने मुझसे कहा—

'तुम्हें किसी तीर्थ में जाकर रहना चाहिये।'

'मैं बोली—मेरे लिए ससुर का घर ही सबसे बड़ा तीर्थ है। जहाँ मेरे ठाकुरजी हैं, वहीं मैं रहूँगी।

'अभी दो-एक कमरे मेरे अधिकार में थे, यह उन्हें सहन नहीं था। अतः वे एक दिन फिर बोले—'तुम्हारा जहाँ जी चाहे, अपने ठाकुरजी को लेकर चली जाओ। हम उसमें कोई हस्तक्षेप न करेंगे।'

'मैंने जब आनाकानी की तो वे बोले—'यहाँ रहने से तुम्हें खाना-कपड़ा कौन देगा ?'

'तुमने जो मासिक वृत्ति निश्चित कर दी है, वही मेरे लिए बहुत होगी'—मैंने उत्तर दिया।

'परन्तु दस्तावेज में उसका कोई जिक्र नहीं है।'

'मेरे ऊपर जैसे वज्र गिर पड़ा। लाचार मैं असहाय होकर विवाह के ठीक ३४ वर्ष बाद, ठाकुरजी को लेकर अपने ससुर के घर से निकल पड़ी। नीलकान्त को ढूंढ़ने पर पता चला कि वह मुझसे पहिले ही वृन्दावन चला गया था।

'गाँव के तीर्थ-यात्रियों के साथ मैं काशी गई, परन्तु वहाँ भी मुझे शान्ति न मिली। मैं दिन-रात बैठी-बैठी रोया करती थी और हर समय यही मनाती थी कि हे भगवान् ! जिस प्रकार मेरे बाल्यकाल में आप मेरे साथ सत्य-भाव धारण किए हुए थे, उसी भाव से अब भी मुझे दर्शन दीजिए। परन्तु मेरे हृदय का ताप दूर नहीं हुआ।

'अपनी आठ वर्ष की उम्र में जब से मैं ससुराल गई, तब से फिर कभी लौटकर अपने पिता के घर भी नहीं जा सकी। सुचरिता ! तुम्हारी माँ के विवाह में जाने के लिए भी मैंने बहुत प्रयत्न किया था, परन्तु उसमें कोई सफलता न मिली। केवल पिताजी के पत्र से ही मुझे तुम लोगों के जन्म का हाल मालूम हुआ था। अपनी बहिन की मृत्यु का समाचार जानकर मुझे जो दुःख हुआ, उसे मैं कैसे कहूँ ? तुम्हारे मातृहीन हो जाने पर भी, ईश्वर ने तुम्हें गोद में खिलाने का मुझे कभी कोई अवसर नहीं दिया।

'तीर्थों में भ्रमण करने के पश्चात् भी जब मैंने यह देखा कि माया मेरा पीछा नहीं छोड़ती है, तब मैं तुम लोगों को ढूंढ़ने का प्रयत्न करने लगी। यद्यपि मैंने यह सुन रखा था कि तुम्हारे पिता ने सनातन धर्म को त्यागकर

ब्राह्म-समाजियों से अपना सम्पर्क स्थापित कर लिया है, फिर भी मेरे हृदय से तुम लोगों की ममता नहीं गई। तुम्हारी माँ मेरी सगी बहिन थी। हम दोनों ने एक ही माँ के पेट से जन्म लिया था। अतः ममता जाती भी तो कैसे ?

'काशी में एक सज्जन व्यक्ति से तुम्हारा पता पाकर ही मैं यहाँ आ पहुँची हूँ।'

३७

वरदासुन्दरी के न होने पर परेश बाबू ने हरिमोहनी को अपने घर ठहरा लिया था और छत के ऊपर वाली कोठरी में उनके लिए ऐसा प्रबन्ध कर दिया था, जिससे उनके पूजा-पाठ में कोई विघ्न न पड़े।

वरदासुन्दरी जब लौटकर आईं तो वे अपने घर में एक परम वैष्णवी को ठहरी हुई देखकर जल उठीं। उन्होंने परेश बाबू से कहा—'आपने यह क्या किया ? मैं किसी भी परदेशी स्त्री को अपने यहाँ ठहरने देना पसन्द नहीं करती।'

परेश बाबू बोले—'जब हमारा रहना पसन्द करती हो तो एक अनाथ विधवा का रहना पसन्द क्यों नहीं करतीं ?'

सुचरिता आयु में मनोरमा के बराबर थी। उसे देखकर हरिमोहिनी का स्वभाव उससे मिल गया। सुचरिता का स्वभाव अत्यन्त शान्त था। कभी-कभी उसे पीछे से चुपचाप आते देखकर हरिमोहिनी चौंककर हँसती हुई कह उठतीं—'आओ, बेटी ? आओ, तुम्हीं तो मेरे हृदय की मणि हो।' इतना कहकर वे सुचरिता के मस्तक पर प्यार से हाथ फेरतीं और मुँह चूमतीं, आँसू बहाने लगती थीं। सुचरिता की आँखों में भी उस समय आँसू भर आते थे। वह उसके गले से लिपटकर कहती—'मौसी, मुझे तो जैसे खोई हुई माँ ही मिल गई है। मैं समझती हूँ, तुम्हारे रूप में वही फिर से लौट आई।'

कुछ ही दिन में मौसी के साथ सुचरिता का ऐसा स्नेह-सम्बन्ध देखकर सभी दंग रह गये थे।

वरदासुन्दरी यह देखकर बहुत क्रुद्ध हो उठती थीं। वे कहतीं—'इस

लड़की को तो देखो, जिसे जीवन-भर अपनी पुत्री की तरह पाल-पोसकर बड़ा किया, वही अब जैसे हमें बिल्कुल ही भूल बैठी है। इतने दिनों तक मौसी कहाँ थी? मैं पहले ही जानती थी कि ये (परेश बाबू) जो सुचरिता की दिन-रात प्रशंसा करते हैं, सो वह बाहर से चाहे भली दिखे परन्तु भीतर से उसका मन साफ नहीं है। हम लोगों ने इतने दिनों तक जो कुछ किया, वह जैसे व्यर्थ ही रहा।'

वरदासुन्दरी जानती थीं कि यदि वे परेश बाबू के सामने हरिमोहिनी के ऊपर क्रोध प्रकट करेंगी तो उन्हें अवश्य अपमानित होना पड़ेगा। यह विचार कर वे हरिमोहिनी के विरुद्ध अपना दल बढ़ाने में जुट पड़ीं। अपने समाज के सभी प्रधान-अप्रधान लोगों से वे हरिमोहिनी के सम्बन्ध में आलोचना करतीं। वे कहतीं—'वह हिन्दू है, देवता पूजती है, उसके कुसंस्कारों को देखकर मेरी लड़कियाँ भी बिगड़ जायेंगी, आदि।'

लोगों के सामने आलोचना करने से ही वरदासुन्दरी को सन्तोष न हुआ, वे हरिमोहिनी को कष्ट भी देने लगीं। हरिमोहिनी का चौका-बर्तन करने के लिए एक ग्वाला नियुक्त था, उसे वे हरिमोहिनी के काम के समय कहीं अन्यत्र भेज देतीं। तब उसकी खोज की जाती, तो वे चिल्लाकर कहतीं —'रामदीन है तो सही, उससे काम क्यों नहीं करा लेतीं? इतने नेम से रहना है, तो फिर ब्राह्म के घर में क्यों आई हो? हमारे यहाँ जाति-पाँति का विचार नहीं होता। रामदीन दुसाध है तो क्या हुआ? जब हम छुआ-छात नहीं मानतीं तो तुम्हारा हिन्दू धर्म यहाँ कैसे निभ सकेगा?' आदि।

अनेक कष्ट देकर भी वरदासुन्दरी हरिमोहिनी को न भगा सकीं। उसने सब कष्ट सहकर भी वहीं रहने का प्रण ठान रखा था। हरिमोहिनी ने जब देखा कि पानी लाने वाला कोई नहीं है तो उसने रसोई बनाना ही बन्द कर दिया। वह दूध और फूलों से ठाकुरजी का भोग लगाकर उसी प्रसाद के सहारे दिन काटने लगी। सुचरिता को यह देखकर दुःख होता तो वह समझाकर कहती—'बेटी! चिन्ता न करो। मेरे लिए यह भी आनन्द-दायक ही है।'

सुचरिता ने पूछा—'यदि मैं दूसरी जाति के हाथ का स्पर्श किया हुआ खाना छोड़ दूं तो क्या तुम मुझे अपना काम करने दोगी?'

हरिमोहिनी बोलीं—'बेटी, मेरे लिए तुम अपना धर्म क्यों छोड़ो? मैं

तो तुम्हें अपने पास पाकर ही अपनी छाती ठण्डी कर लेती हूँ। परेश वाबू तुम्हारे पिता के समान पूज्य एवं गुरु हैं। उन्होंने तुम्हें जो शिक्षा दी है, उसे मानकर चलने से ही ईश्वर तुम्हारा कल्याण करेंगे।'

वरदासुन्दरी के उपद्रवों को हरिमोहिनी इस प्रकार सहन करने लगी, जैसे वह उन्हें कुछ समझती ही नहीं थी। प्रतिदिन प्रातःकाल परेश बाबू उसके पास आकर जब पूछते—'कोई कष्ट तो नहीं है ?' तो वह यही उत्तर देती—'आपकी दया से बड़े आनन्द में हूँ।'

परन्तु वरदासुन्दरी का यह व्यवहार सुचरिता को असह्य हो उठा। वह अपना दुःख किसी को सुनाना नहीं चाहती थी। परेश वाबू से शिकायत करना तो उसके लिए सर्वथा असम्भव ही था। वह भी चुपचाप सब सहने लगी।

परन्तु इसका परिणाम और ही निकला। सुचरिता वरदासुन्दरी के हाथ से निकलकर हरिमोहिनी की भक्त बन गई। वह दिन-भर उसी के पास बैठी रहती तथा उसी के हाथ का दिया प्रसाद खाकर रह जाती थी। यह देखकर अन्त में हरिमोहिनी को फिर से रसोई बनाने का प्रवन्ध करना पड़ा। तब एक दिन सुचरिता वोली—'मौसी, तुम जैसे कहोगी, अब मैं वैसे ही रहूँगी। परन्तु मैं तुम्हारे लिए स्वयं पानी भरकर लाया करूँगी।'

हरिमोहिनी ने उत्तर दिया—'बेटी, मैं अपने लिए कुछ नहीं कहती, परन्तु उस जल से ठाकुरजी की पूजा हो सकेगी ?'

सुचरिता ने पूछा—'मौसी, तो क्या तुम्हारे ठाकुरजी भी जाति-पाँति मानते हैं ? क्या वे भी किसी समाज के सदस्य हैं ? क्या उन्हें भी प्रायश्चित करना पड़ेगा ?'

लाचार, सुचरिता की भक्ति के सम्मुख एक दिन हरिमोहिनी को झुकना पड़ा। सुचरिता की सेवा को उसने स्वीकार कर लिया। बहिन की देखा-देखी सतीश भी मौसी की रसोई में खाना खाने लगा। इस प्रकार परेश वाबू के घर में तीनों ने मिलकर अपना एक अलग ही आश्रम स्थापित कर लिया। केवल ललिता ही इन दोनों आश्रमों के बीच में सेतु की भाँति बनी रहती थी। अपनी अन्य पुत्रियों की भाँति, ललिता को भी हरिमोहिनी के पास न जाने देने की सामर्थ्य वरदासुन्दरी में न थी।

३८

वरदासुन्दरी ने सभा के लिए, अपनी ब्राह्म-साथियों को प्राय: अपने घर पर बुलाना आरम्भ कर दिया। उनकी सभा छत के ऊपर ही होती थी। अपनी स्वाभाविक सरलता के अनुसार हरिमोहिनी उन स्त्रियों का स्वागत-सत्कार करती थीं, परन्तु बदले में वे उनके प्रति जो अनादर प्रकट करती थीं, यह उनसे छिपा न रहा। उनमें से अनेक स्त्रियाँ तो हरिमोहिनी के सामने ही, उनकी आलोचना करने पर उतर आती थीं।

सुचरिता अपनी मौसी के इस अनादर को चुपचाप सहन कर लेती थी, परन्तु अपने मनोभावों द्वारा यह अवश्य प्रकट कर देती थी कि मैं अपनी मौसी के साथ हूँ। किसी दिन जब भोजन का विशेष आयोजन होता था, उस समय वरदासुन्दरी द्वारा सुचरिता को खाने के लिए बुलाये जाने पर, वह उनसे स्पष्ट मना कर देती थी, कि मैं नहीं जाऊँगी।

वरदासुन्दरी पूछतीं—'क्या तुम हम लोगों के साथ बैठकर खा भी नहीं सकतीं?'

सुचरिता कहती—'नहीं!'

तब वरदासुन्दरी अपनी सहेलियों से कहतीं—'सुचरिता भी आजकल हिन्दू हो गई है, इसी से अब हमारे हाथ का छुआ नहीं खाती है।'

कभी-कभी हरिमोहिनी परेशान होकर कह उठतीं—'तुम जाकर खा आओ न!'

हरिमोहिनी के कारण अपने को इस प्रकार अनादृत होते देखकर सुचरिता को कभी-कभी बड़ा कष्ट होता, परन्तु वह उस कष्ट को कुछ गिनती नहीं थी। एक दिन एक ब्राह्म-स्त्री जब कौतूहलवश जूता पहिने हरिमोहिनी के कमरे में जाने लगी, उस समय सुचरिता ने बीच में खड़ी होकर उसे रोकते हुए कहा—

'इस कमरे में मत जाना!'

'क्यों?'

'वहाँ ठाकुरजी हैं।'

'तो क्या तुम लोग नित्य ठाकुरजी की पूजा करते हो?'

'हाँ, नित्य पूजा करती हूँ!'—हरिमोहिनी ने उत्तर दिया।

'ठाकुरजी पर तुम्हारी भक्ति है ?'

'मेरे ऐसे भाग्य कहाँ जो उन पर कुछ भक्ति हो सके। भक्ति होने पर तो अपने जन्म को ही सफल न समझ लेती ?'

ललिता उस दिन वहाँ उपस्थित थी। उसने मुँह लाल करके आने वाली स्त्री से पूछा—'तुम जिसकी उपासना करती हो क्या उसकी भक्ति नहीं करतीं ?'

'क्यों नहीं करती ?'—उसने उत्तर दिया।

'तुम क्या भक्ति करोगी ?'—ललिता ने सिर हिलाते हुए कहा—'तुम्हें यह भी तो नहीं मालूम है कि भक्ति करती भी हो अथवा नहीं।'

इस पर वह स्त्री चुपचाप वहाँ से चली गई।

हरिमोहिनी ने सुचरिता को अपना आचार-विचार न बदलने के लिए अनेक प्रयत्न किए, परन्तु उन्हें सफलता न मिली।

इस घटना के पूर्व वरदासुन्दरी तथा हारान बाबू में बहुत मनमुटाव रहा करता था, परन्तु अब दोनों में खूब मेल हो गया। वरदासुन्दरी कहतीं—'कोई कुछ भी क्यों न कहे, परन्तु ब्राह्म-समाज के आदर्श को पवित्र रखने का इच्छुक, हारान बाबू से अधिक कोई नहीं है।' उधर हारान बाबू भी ब्राह्म-समाजी परिवार को निष्कलंक रखने का सम्पूर्ण श्रेय वरदासुन्दरी को ही देते, जबकि उनकी इस प्रशंसा के भीतर परेश बाबू के प्रति एक विशेष प्रकार का आक्षेप भी विद्यमान रहता था।

एक दिन परेश बाबू के ही सामने हारान बाबू ने सुचरिता से कहा—'सुना है, तुम ठाकुरजी का प्रसाद खाने लगी हो।'

सुचरिता का मुँह क्रोध से लाल हो गया, परन्तु वह ऐसा भाव प्रदर्शित किए हुए, जैसे उसने कुछ सुना ही नहीं है, मेज पर रखी कलम-दवात तथा पुस्तकों को ठीक करती रही। तभी परेश बाबू ने उसकी ओर स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखते हुए हारान बाबू को उत्तर दिया—'हम लोग जो भी खाते हैं, वह सब ठाकुरजी का प्रसाद है।'

हारान बाबू बोले—'परन्तु, अब सुचरिता हम लोगों के ठाकुरजी को छोड़ देना चाहती है।'

परेश—'यदि यही बात है तो इसके विरुद्ध कुछ कहने से क्या लाभ होगा ?'

हारान—'जो आदमी धारा में वहा जा रहा हो, उसे वाहर निकालने का प्रयत्न तो करना ही चाहिए।'

परन्तु—'बहते हुए व्यक्ति के सिर पर ढेला मारने को वाहर निकालने की चेष्टा नहीं कहा जा सकता। हारान बावू! आप निश्चिन्त रहें, मैं सुचरिता को इतने दिनों से देख रहा हूँ। यदि वह गलत मार्ग पर जा रही होती तो मैं आप लोगों से पहले ही समझ जाता और यों निश्चिन्त न बैठा रहता।'

हारान—'सुचरिता यहीं उपस्थित है, क्यों न उससे पूछ लिया जाए? सुना है, अब यह सबके हाथ का छुआ हुआ खाना भी नहीं खाती। यह असत्य है क्या?'

सुचरिता ने हारान वावू की ओर मुँह करके कहा—'इस बात को तो वावूजी भी जानते हैं कि अब मैं सब के हाथ का छुआ नहीं खाती। यदि वे मेरे व्यवहार को बुरा नहीं मानते, तो औरों के मानने से क्या होता है? यदि आपको मेरा व्यवहार अच्छा न लगता हो तो आप मेरी जी चाहे जहाँ बुराई कीजिए। बावूजी को परेशान क्यों करते हैं? वे आपकी कड़ी बातों को भी शान्तिपूर्वक सहन कर लेते हैं, वह शायद उसी का परिणाम है जो आप इतना सब कुछ कह सके हैं।'

हारान वावू चकित होकर विचारने लगे कि सुचरिता ने भी आज बोलना सीख लिया है क्या।

हारान वावू की धारणा बन गई थी कि उनके समाज में लोगों ने अपने चरित्र में जो कुछ श्रेष्ठ परिवर्तन किया है, वह सब उन्हीं के कारण से हुआ है। इसी धारणा के अनुसार अब तक ज़िस किसी ने उनके समक्ष सुचरिता की प्रशंसा की, तो वह प्रशंसा भी वे अपनी स्वयं की प्रशंसा ही समझ बैठे थे। उन्हें आशा थी कि वे अपने उपदेश एवं संसर्ग द्वारा सुचरिता के चरित्र को इतना ऊंचा उठा देंगे कि कभी वह समाज के सम्मुख एक प्रमाण के रूप में उपस्थित किया जाया करेगा।

परन्तु आज उसी सुचरिता द्वारा ऐसी बातें किए जाने पर भी हारान बावू को अपनी योग्यता के सम्बन्ध में कुछ कमी अनुभव नहीं हुई। उन्होंने सारा दोष परेश वावू के मत्थे मढ़ दिया। यद्यपि सब लोग परेश बाबू की प्रशंसा करते थे, परन्तु वे उनसे सहमत न हुए।

हारान बाबू की बातों से सुचरिता को बहुत पीड़ा होने लगी। उधर ब्राह्म-समाज में भी परेश बाबू की जहाँ-तहाँ आलोचना होने लगी थी। सुचरिता की मौसी घर में सब लोगों के लिए भारस्वरूप हो उठी थी, इन सब कारणों से वह रात-दिन सोच में पड़ी रहती। इस संकट से उद्धार पाने का उसे कोई रास्ता ही नहीं सूझ रहा था।

इधर वरदासुन्दरी सुचरिता का विवाह शीघ्र कर देने के लिए परेशान करने लगीं। एक दिन वे बोलीं—'अब सुचरिता की जिम्मेदारी हम अधिक नहीं सह सकते। यदि आपने शीघ्र ही इसका विवाह न किया तो इसकी देखा-देखी मेरी और लड़कियाँ भी बिगड़ जायेंगी। ललिता पहले ऐसी न थी, परन्तु अब वह भी जो जी में आए कर बैठती है। उस दिन वह विनय के साथ ही अकेली चली आई, जिसके कारण मैं लज्जा से मरी जा रही हूँ। आप निश्चय मानिए कि इस कार्य में सुचरिता का हाथ भी अवश्य था। आप अपनी लड़कियों से भी अधिक सुचरिता पर प्यार करते हैं, परन्तु अब यह सब अधिक दिनों तक न चल सकेगा।'

घर के लोगों की इस अशान्ति के कारण परेश बाबू भी चिन्तित हो उठे। हरिमोहिनी का रहना ही अशान्ति का कारण था। वे जानते थे कि वरदासुन्दरी अपनी गड़बड़ मचाने में जितनी ही अधिक असफल होंगी, बात उतनी अधिक जोर पकड़ती जाएगी। सुचरिता के विवाह का प्रस्ताव भी वरदासुन्दरी ने इसी कारण रखा था, यह भी उनसे छिपा न था। कुछ देर विचार करके उन्होंने उत्तर दिया—'यदि हारान बाब सुचरिता को तैयार कर सकें तो मुझे कोई आपत्ति न होगी।'

वरदासुन्दरी बोलीं—'यह कई बार तो अपनी स्वीकृति दे चुकी है, फिर आप निरन्तर टालमटूल क्यों कर रहे हैं?'

परेश—'सुचरिता के हृदय में हारान बाबू के प्रति क्या भाव है, मैं इसे अभी तक ठीक-ठीक नहीं जान सका हूँ। अतः जब तक वे दोनों पक्का निश्चय न कर लें, तब तक मैं इस सम्बन्ध में कुछ न करूँगा।'

वरदासुन्दरी—'उस लड़की के मन की बात समझना तो असम्भव ही है। वह बाहर से कुछ और भीतर से कुछ और।'

दूसरे दिन वरदासुन्दरी ने हारान बाबू को बुलावा लिया। हारान बाबू कमरे में आकर सुचरिता के पास ही एक कुर्सी खींचकर बैठ गए,

परन्तु सुचरिता ने उनकी ओर आंख उठाकर भी न देखा।

हारान बाबू ने सुचरिता से कहा—'मैं तुमसे एक खास बात कहना चाहता हूँ, उस पर ध्यान देना।'

सुचरिता ने कुछ उत्तर न दिया। उसी समय ललिता भी वहाँ आ गई।

हारान बाबू उसे देखकर बोले—'ललिता, मैं आज सुचरिता से कुछ बातें करना चाहता हूँ।'

यह सुनकर ललिता जब जाने लगी तो सुचरिता ने उसका आँचल पकड़कर रोक लिया। ललिता बोली—'हारान बाबू तुमसे कुछ खास बात करना चाहते हैं।' परन्तु सुचरिता इसका कोई उत्तर न देकर, उसका आँचल जोर से पकड़े बैठी रही। तब ललिता पास की ही एक कुर्सी पर बैठ गई।

हारान बाबू ने यह देखकर, बिना कोई भूमिका बाँधे एक साथ कहना आरम्भ किया—'सुचरिता, अब मैं विवाह में विलम्ब होना उचित नहीं समझता। परेश बाबू ने कहा है कि तुम्हारी सम्मति पाने पर सब निश्चय हो जाएगा। मैंने विचार किया है कि इस रविवार के बाद अगले रविवार को ही…।'

सुचरिता बीच में ही बोल पड़ी—'नहीं!'

सुचरिता के मुँह से 'नहीं' सुनकर हारान बाबू एक साथ ठिठक गए। उन्होंने रुष्ट होकर कहा—'नहीं क्यों? क्या तुम और अधिक विलम्ब करना चाहती हो?'

'नहीं!'

'तो फिर?'

'मेरी सम्मति विवाह के लिए नहीं है।'

'इसके मानी?'

तभी ललिता ने हँसते हुए कहा—'हारान बाबू, आज आप 'मानी' और 'अर्थ' कैसे भूल गए?'

हारान बाबू ने ललिता की ओर कड़ी दृष्टि से देखते हुए कहा—'मातृभाषा भूल जाने की भूल स्वीकार करना सरल हो सकता है, परन्तु जिस व्यक्ति पर मेरी निरन्तर श्रद्धा रही हो, मैं उसे भी ठीक से नहीं समझ

सका, यह स्वीकार कर लेना सरल नहीं है।'

ललिता बोली—'दूसरे के मन का भाव समझने में समय लगता है, परन्तु कभी-कभी यह बात अपने बारे में भी लागू हो जाती है। बहुत-से लोग अपने मन का भार भी नहीं समझ पाते।'

'परन्तु मेरी बात, विचार अथवा व्यवहार में अभी तक कोई अन्तर नहीं आया है'—हारान बाबू ने कहा—'मैं अपने को परखने का किसी को अवसर नहीं देता। न हो तो सुचरिता ही कह दे कि मैं ठीक कह रहा हूँ, अथवा नहीं ?'

ललिता कुछ कहने जा रही थी, परन्तु सुचरिता उसे बीच में ही रोकती हुई बोली—'आप ठीक कहते हैं, मैं आपको कोई दोष नहीं देती।'

'यदि दोष नहीं देतीं तो फिर मेरे साथ यह अन्याय क्यों कर रही हो ?'

'आप इसे अन्याय भले ही कहें, परन्तु···।'

इसी समय बाहर से किसी ने पुकारा—'बहिन, घर में ही हो ?'

सुचरिता प्रसन्न होकर बोल उठी—'आइए, विनय बाबू, चले आइए।'

विनय ने कमरे में प्रवेश करते हुए कहा—'बहिन, तुम मुझे विनय बाबू कहकर, ऊपर के शिखर पर चढ़ाकर क्यों लज्जित कर रही हो ? मैं तो केवल विनय ही हूँ।' तभी हारान बाबू के उदास चेहरे की ओर लक्ष्य करते हुए, वह फिर बोल उठा—'मेरे बहुत दिनों से न आने के कारण, कहीं आप नाराज तो नहीं हो गए हैं ?'

'नाराज होने की तो कोई बात नहीं है।'—हारान बाबू ने इस परि-हास में बरबस योग देते हुए कहा—'परन्तु आप आज बड़े बेमौके आए हैं। मैं सुचरिता के साथ कुछ विशेष बातें कर रहा था।'

'अरे, यह तो मैं आज तक नहीं जान सका कि मेरा आना कब ठीक रहेगा ?' कहकर विनय ने बाहर जाने का उपक्रम किया।

परन्तु तभी सुचरिता बोली—'आप कहाँ चल दिए ? इनके साथ तो जो बात होनी थी, वह समाप्त हो गई। आप ठीक अवसर पर आ गए।'

विनय ने समझ लिया कि मेरे आ जाने से सुचरिता किसी संकट से उद्धार पा गई है। अतः वह प्रसन्नतापूर्वक कुर्सी पर फिर बैठते हुए बोला—'मैं किसी का मन दुखाना नहीं चाहता। जब कोई बैठने को कह रहा है तो

अवश्य बैठूंगा।'

हारान बाबू कुछ न कहकर चुप बैठे रहे। वे मन-ही-मन सोचने लगे —'मैं भी जब तक सुचरिता से अपने मन की सब बातें न कर लूंगा, यहीं बैठा रहूँगा।'

बहुत देर तक वार्तालाप चलने के बाद, जब यह बात स्पष्ट रूप से सब की समझ में आ गई कि हारान बाबू नहीं उठेंगे, तब सुचरिता विनय से बोली—'आप बहुत दिनों से मौसी से नहीं मिले। वे नित्य ही आपकी याद करती हैं। क्या उनसे मिलने के लिए आप एक बार चलेंगे?'

विनय कुर्सी से उठता हुआ बोला—'यहाँ आया हूँ तो उनके दर्शन किये बिना कैसे चला जाऊँगा।'

सुचरिता विनय को साथ लेकर अपनी मौसी के पास चली गई। तब ललिता ने हारान बाबू से कहा—'मुझसे तो आपको कोई विशेष काम नहीं है।'

'नहीं'—हारान बाबू ने कहा—'प्रतीत होता है, तुम्हें कहीं अन्यत्र आवश्यक कार्य है, तुम जा सकती हो।'

ललिता उनकी बात का भेद समझ गई। अतः उद्धत स्वभाव से सिर हिलाती हुई बोली—'आज विनय बाबू बहुत दिनों के बाद आये हैं, अतः मुझे उनसे बातचीत करने जाना है।'

इसके बाद वह भी वहाँ से उठ गई।

हरिमोहिनी विनय को देखकर बहुत प्रसन्न हुईं। यहाँ आने वाले सभी लोग जबकि उन्हें एक विचित्र-सा जीव समझते थे, तब विनय ही उन्हें एकमात्र सहारा दीखता था। विनय उन्हें अपने घर के लोगों की भाँति देखता था, इसलिए उनके हृदय में बहुत सन्तोष होता था। कुछ दिन के परिचय में ही विनय को उन्होंने आत्मीय के समान अपने हृदय में स्थान दे दिया था।

विनय के हरिमोहिनी के पास पहुंचने के कुछ दिन बाद ही ललिता कभी वहाँ नहीं जाती थी। परन्तु आज हारान बाबू द्वारा किये गये गुप्त प्रहार की चोट खाकर, वह सब संकोच त्यागकर निर्भयता से ऊपर जा पहुँची। विनय भी उससे निस्संकोच बातें करने लगा, यहाँ तक कि इन लोगों के जोर-जोर से बातचीत करने का स्वर कभी-कभी बैठक में अकेले

बैठे हुए हारान बाबू के हृदय को भी बेध देता था।

वरदासुन्दरी ने जब यह सुना कि सुचरिता ने हारान बाबू के साथ विवाह करने से मना कर दिया है तो वे एकदम अधीर होकर हारान बाबू के पास जाकर बोलीं—'हारान बाबू, आपका काम सीधेपन से न होगा। जब वह कई बार अपनी सम्मति दे चुकी है और ब्राह्म-समाज के अन्य लोगों के कानों में यह बात पड़ चुकी है, तब उसके सिर हिला देने से ही सब काम ठप्प नहीं हो जायेगा, आप अपना दावा किसी प्रकार न छोड़ें। देखें, वह क्या करती है?'

हारान बाबू को इस प्रकार उत्साहित करना, अग्नि में घी डालने के समान था। अभिमान से सिर उठाकर मन-ही-मन बोले—'सुचरिता को मेरी बात माननी ही पड़ेगी। मैं सुचरिता को आसानी से त्याग सकता हूँ, परन्तु इस प्रकार ब्राह्म-समाज का मस्तक नीचा होते हुए नहीं देख सकता।'

विनय ने आत्मीयता प्रकट करने के लिए हरिमोहिनी से कुछ प्रसाद पाने की इच्छा व्यक्त की। हरिमोहिनी तुरन्त एक कटोरे में कुछ मक्खन, मेवा, मिश्री, केला तथा एक कटोरी में थोड़ा-सा दूध ले आईं। विनय हँसकर बोला—'मैं तो असमय में भूख की बात कहकर मौसी को कष्ट देना चाहता था, परन्तु देखता हूँ कि मैं ही ठगा गया।' इतना कहकर वह बड़े आडम्बर से भोजन करने बैठ गया। उसी समय वरदासुन्दरी भी वहाँ पहुँचीं। विनय ने उन्हें नमस्कार करते हुए आसन पर बैठे-बैठे ही कहा—'बहुत देर तक मैं नीचे बैठा रहा, परन्तु आपके दर्शन ही नहीं हुए।'

वरदासुन्दरी इसका कोई उत्तर न देकर, सुचरिता की ओर देखती हुई बोलीं—'और यह तो यहाँ बैठी है। सब लोग इधर आनन्द मना रहे हैं, उधर बेचारे हारान बाबू इसके लिए सवेरे से बैठक में बैठे हैं, मानो वे इसके बाग के माली हों। विनय बाबू, आज तक कभी मैंने सुचरिता को ऐसा व्यवहार करते नहीं देखा था, परन्तु न जाने आजकल यह कहाँ-कहाँ से क्या सीख रही है? हम तो समाज के लोगों को अपने मुँह दिखाने योग्य भी नहीं रहे। इतने दिनों तक जो शिक्षा दी थी, वह न जाने कहाँ विलीन हो गई? क्या कारण है, कुछ समझ में नहीं आता?'

हरिमोहिनी डरती हुई सुचरिता से कह उठीं—'नीचे कोई बैठा है,

यह तो मुझे मालूम भी नहीं था। बड़ा बुरा हुआ बेटी, तुम तुरन्त जाओ। मुझसे बड़ी भूल हुई।'

'इसमें हरिमोहिनी की कोई भूल नहीं है'—ललिता यह कहना चाहती थी, परन्तु तभी सुचरिता ने उसका हाथ जोर से दबाकर रोक दिया। फिर वरदासुन्दरी की बात का कोई उत्तर न देकर वह नीचे चली गई।

यह पहले बताया जा चुका है कि विनय ने वरदासुन्दरी का स्नेह अपनी ओर आकर्षित कर लिया था। उन्हें यह भी आशा थी कि विनय हम लोगों में हिल-मिलकर एक न एक दिन अवश्य ब्राह्म-समाजी हो जायेगा। परन्तु आज विनय को अपने विपक्षी के घर बैठा देखकर उन्हें जलन हो उठी। उस भ्रष्टाचार में अपनी पुत्री ललिता को भी उसकी सहयोगिनी देखकर, वे और भी भभक उठीं। उन्होंने ललिता से रूखे स्वर में पूछा—'यहाँ तेरा क्या काम है ?'

'विनय बाबू आए हैं, यही !'—ललिता ने उत्तर दिया।

'विनय बाबू जिसके पास आये हैं, उसी को उनका आतिथ्य करने देना चाहिए। तुम नीचे चलकर काम करो।'

ललिता ने सोचा—'सम्भवतः हारान बाबू ने विनय बाबू के साथ सुचरिता तथा मेरे विषय में माँ से कोई ऐसी बात कही है, जिसे कहने का उन्हें कोई अधिकार न था।' यह विचार कर ही वह प्रगल्भपूर्वक बोली—'विनय बाबू बहुत दिनों बाद आये हैं। उनसे कुछ बातें करने के बाद आऊँगी।'

ललिता की बोली से वरदासुन्दरी समझ गईं कि अब उनका कोई जोर न चलेगा। अतः हरिमोहिनी के सम्मुख अपने पराभव की दृष्टि से वे फिर कुछ न कहकर चुपचाप नीचे चली गईं।

अपनी माँ के समक्ष तो ललिता ने विनय के साथ बातें करने का उत्साह प्रकट किया था, परन्तु उनके चले जाने पर वह उत्साह तिरोहित हो गया। तीनों व्यक्ति एक विचित्र भाव लिये चुप बैठे रहे। कुछ देर बाद ललिता वहाँ से उठकर अपने कमरे में चली गई और भीतर से द्वार बन्द कर लिया।

विनय समझ गया कि इस घर में हरिमोहिनी की क्या स्थिति है। बातचीत के दौरान में उसने सब बातें मालूम कर लीं। अन्त में हरिमोहिनी

बोलीं—'भैया, मुझ जैसे अनाथों को किसी के घर रहना ठीक नहीं है। मैं किसी तीर्थ में जाकर देव-सेवा में लगती तो ठीक रहता। मेरे पास जो रुपया है, उससे कुछ दिन तो काम चल ही जाता। रुपया समाप्त होने पर किसी के यहाँ रसोई-पानी का काम करके भी जीवन बिताया जा सकता था। परन्तु जैसे किसी डूबते हुए को तिनके का सहारा मिल जाये, फिर वह उसे छोड़ना नहीं चाहता, यही स्थिति मेरी भी हो गई है। राधारानी और सतीश मेरे लिए सहारा बन गये हैं। इन्हें छोड़कर कहीं चले जाने की बात सोचते ही मेरे प्राण सूखने लगते हैं। इसी चिन्ता में रात को नींद भी नहीं आती। तुमसे सच कहती हूँ कि जब से मैंने इन दोनों को पाया है, तब से ठाकुरजी की पूजा-सेवा में भी उतना ध्यान नहीं लगता है। इन दोनों से अलग हो जाने पर तो ठाकुरजी की पूजा कभी कर ही नहीं सकूँगी।'

इतना कहते हुए उन्होंने आँचल से अपनी दोनों आँखें पोंछ डालीं।

३८

नीचे बैठक में आकर सुचरिता ने हारान बाबू से कहा—'आपको जो कहना-सुनना हो, कह लीजिये!'

हारन बाबू बोले—'बैठ तो जाओ।'

सुचरिता जहाँ की तहाँ मौन खड़ी रही।

हारान बाबू ने कहा—'तुम मेरे साथ अन्याय कर रही हो, सुचरिता!'

'आपने भी मेरे साथ अन्याय किया है।'

'सो कैसे? मैंने तुम्हें जो वचन दिया था, उस पर मैं तो अब भी···।'

सुचरिता बीच में ही बोल पड़ी—'केवल मुँह की बात से ही न्याय नहीं होता। उस बात पर बल देकर, क्या आप मेरे ऊपर अत्याचार करना चाहते हैं? सहस्र मिथ्या की अपेक्षा एक सत्य क्या बड़ा नहीं होता? यदि मैंने कोई भूल सौ बार की, तो क्या आप उसी भूल को सबसे पहले ग्रहण करेंगे? आज जब मुझे अपनी भूल ज्ञात हो गई है, तो मैं अपनी पिछली किसी भी भूल को ग्रहण नहीं करूँगी। उसे ग्रहण करना ही मेरा अन्याय होगा।'

हारान बाबू ने अनुमान भी नहीं किया था कि सुचरिता में कभी इतना बड़ा परिवर्तन हो सकता है। वे मन-ही मन सुचरिता के नये साथियों पर दोषारोपण करते हुए बोले—'तुमने कौन-सी भूल की थी ?'

'उसे आप मुझसे क्यों पूछ रहे हैं ? पहिले मेरा मन था अब नहीं है—क्या इतना ही पर्याप्त नहीं है ?'

'परन्तु हम लोग ब्राह्म-समाज के सम्मुख उत्तरदायी हैं। समाज के लोगों के आगे तुम क्या उत्तर दोगी और मैं भी क्या कहूँगा ?'

'मैं कुछ भी नहीं कहूँगी। आप कहना चाहें तो कह दीजियेगा कि सुचरिता की आयु छोटी है, उसकी बुद्धि स्थिर नहीं है अथवा और भी चाहे जो कुछ कहो, परन्तु इस सम्बन्ध में मेरा अन्तिम निश्चय यही है।'

'यह अन्तिम निश्चय नहीं हो सकता। यदि परेश बाबू चाहें तो···।'

इतने में ही परेश बाबू आ पहुँचे। वे बोले—'कहिए हारान बाबू, मेरी क्या बात कह रहे थे···?'

सुचरिता इस समय बैठक से बाहर जा रही थी। हारान बाबू उसे पुकारते हुए बोले—'सुचरिता, जाओ नहीं। आज परेश बाबू के सामने ही सब बातें हो जायें।'

सुचरिता मुड़कर खड़ी हो गई। हारान बोले —'परेश बाबू ! अब इतने दिनों बाद सुचरिता विवाह न करने के लिए कहती है। क्या अब तक ऐसा लड़कपन करना उचित था। क्या इसके लिए आपको भी जवाब न देना पड़ेगा।'

परेश बाबू ने स्नेहपूर्वक सुचरिता के मस्तक पर हाथ फेरते हुए कहा—'बेटी, तुम्हारे यहाँ ठहरने की आवश्यकता नहीं है, तुम जा सकती हो।'

सुचरिता की दोनों आँखें भर आईं। वह शीघ्रतापूर्वक वहाँ से चली गई।

परेश बाबू बोले—'सुचरिता ने भली-भाँति विचार किये बिना विवाह की स्वीकृति दे दी थी। मेरे मन में यह सन्देह बहुत दिनों से था, इसीलिए मैं अभी तक सम्बन्ध पक्का करने में हिचकिचा रहा था।'

हारान—'उस समय तो सुचरिता ने भली-भाँति विचार करके ही स्वीकृति दी थी। इस समय उसकी बिना समझे अस्वीकृति के विषय में क्या आपके हृदय में कोई संदेह नहीं हो रहा है ?'

'दोनों ही बातें हो सकती हैं, परन्तु ऐसी किसी भी स्थिति में विवाह नहीं हो सकता।'

'तो क्या आप सुचरिता को अच्छी सलाह भी न देंगे ?'

'आप खूब जानते हैं कि मैं सुचरिता को कभी गलत सलाह नहीं देता।'

'यही बात होती तो ऐसा परिणाम न निकलता। आपके परिवार में आज-कल जो नई बातें हो उठी हैं, वे सब आपके अविचार का ही परिणाम हैं। यह बात कहने का दुस्साहस मैं आपके ही मुँह पर कर रहा हूँ।'

परेश बाबू हँसकर बोले—'आप ठीक कह रहे हैं अपने परिवार के अच्छे-बुरे परिणामों का भार मैं न उठाऊँगा, तो और कौन उठायेगा ?'

'इसके लिए आपको पछताना भी पड़ेगा।'

'वह तो ईश्वर की दया है। हारान बाबू, मैं अपराध से डरता हूँ, पश्चात्ताप से नहीं।'

इस समय सुचरिता ने बैठक में प्रवेश कर, परेश बाबू का हाथ पकड़ते हुए कहा—'बाबूजी ! चलिये, आपकी उपासना का समय हो गया है।'

परेश बाबू ने बाहर निकलते हुए पूछा—'हारान बाबू, तो अभी आप कुछ देर और भी ठहरेंगे ?'

'नहीं !' कहते हुए हारान बाबू शीघ्रतापूर्वक बाहर चले गये।

४०

द्विविधा में पड़कर सुचरिता को बहुत कष्ट होने लगा। उसे कहीं चैन न था, उसके मन का भाव गोरा के प्रति घनिष्ट होता जा रहा था। गोरा के जेल जाने से उसके मन में जो दुःख बैठ गया था वह किसी प्रकार निकलता ही न था। वह अपने मन का दुःख किसी से कह नहीं सकती थी। उधर हारान बाबू उसका निश्चय बदलने के लिए अपने सम्पूर्ण समाज को उसके पास भेजकर, उसे अपने साथ विवाह करने के लिए बाध्य करने का उपाय सोच रहे थे। वे इस सम्बन्ध का समाचार-पत्र में भी उल्लेख करना चाहते थे। सुचरिता की मौसी उसे बहका रही है तथा परेश बाबू के घर

में रहकर ठाकुरजी की पूजा कर रही है, इसका भी विवरण पत्र में देना चाहते थे। इन सब बातों को सुनकर वह बहुत बेचैन रहती थी। सुचरिता अभी कोई निर्णय नहीं कर पा रही थी कि अब उसे क्या करना चाहिए।

इस संकट के समय एकमात्र परेश बाबू ही उसके सहारे थे। परन्तु, वह उनसे अनेक बातों को संकोचवश कह नहीं सकती थीं। जबकि वह यह भी भली-भाँति जानती थी कि वे उसके मन का भाव अच्छी तरह जानते हैं।

आजकल शीत के कारण परेश बाबू बाग में उपासना करने नहीं जाते थे। घर के पश्चिम की ओर जो एक छोठी-सी कोठरी थी, उसी के खुले दरवाजे के सामने एक आसन बिछाकर वे उपासना कर लिया करते थे। सुचरिता उनके पास चुपचाप जा बैठती थी। परेश बाबू उसे नित्य मौन बैठे देखते और मन-ही-मन अनेक आशीर्वाद देते थे।

सुचरिता अटल धैर्यपूर्वक सब बातों को चुपचाप सह लेने में ही अपने कल्याण का अनुभव करती थी। उसका विचार था कि कुछ दिन बाद सब झगड़े स्वयं ही समाप्त हो जायेंगे, परन्तु ऐसा हो नहीं रहा था, तब उसने किसी अन्य उपाय का आश्रय लेने का निश्चय किया।

वरदासुन्दरी ने जब यह देखा कि क्रोध अथवा धिक्कार द्वारा भी सुचरिता को विवाह के लिए राजी करना सम्भव नहीं है, तथा परेश बाबू भी इस सम्बन्ध में उसकी कोई सहायता न करेंगे तो वह हरिमोहिनी के प्रति सिंहनी की भाँति खूँख्वार हो उठी। उन्होंने उठना-बैठना भी दूभर कर दिया।

उस दिन वरदासुन्दरी के पिता के मृत्यु के दिन की उपासना थी। विनय को भी उसमें आमन्त्रित किया गया था। उपासना सायंकाल को होनी थी। अतः वरदासुन्दरी उपासना-गृह को सजाने में लगी हुई थीं। सुचरिता तथा उनकी लड़कियाँ इस कार्य में सहयोग दे रही थीं। तभी वरदासुन्दरी की दृष्टि अचानक विनय पर पड़ी। वह समीप के जीने से हरिमोहिनी के पास ऊपर जा रहा था। वरदासुन्दरी को यह असह्य हो उठा। वे सजावट का काम छोड़कर, उसके पीछे-पीछे हरिमोहिनी के पास जा पहुँचीं। उस समय हरिमोहिनी बैठी हुई, विनय के पास आत्मीय भाव से बातचीत कर रही थीं।

वरदासुन्दरी ने पहुँचते ही कहा—'तुम्हारा मन आये, तब तक तुम यहाँ आनन्द से रहो, परन्तु मैं तुम्हारे ठाकुरजी को यहाँ नहीं रहने दूँगी।'

ब्राह्म-धर्म के सम्बन्ध में हरिमोहिनी की धारणा थी कि वह भी क्रिश्चियन धर्म की एक शाखा है। वे पिछले कई दिनों से भविष्य की चिन्ता कर रही थीं, उसी बीच में आज वरदासुन्दरी के मुख से यह शब्द सुनकर, वे स्पष्ट समझ गईं कि अब उन्हें शीघ्र ही कोई-न-कोई निश्चय करना पड़ेगा। पहले उन्होंने यह विचार किया था कि कलकत्ते में ही कोई मकान किराये पर लेकर अलग रह लूंगी तथा जो थोड़ी-सी पूंजी पास में बची है, उससे गुजर करूंगी। परन्तु फिर बाद में उन्हें ध्यान आया कि इतनी थोड़ी-सी पूँजी से वहाँ का खर्च कैसे चल सकेगा।

वरदासुन्दरी तूफान की भाँति आईं और चली गईं। विनय सिर झुकाए चुप बैठा रहा।

कुछ देर मौन रहने के पश्चात् हरिमोहिनी बोलीं—'मैं तीर्थ जाना चाहती हूँ। तुममें से कोई मुझे पहुँचा सकेगा क्या?'

विनय बोला—'मैं पहुँचा जाऊँगा। परन्तु इस तैयारी में जितने दिन का विलम्ब हो, उतने दिन आप मेरी माँ के पास चलकर रहें।'

हरिमोहिनी—'मेरा भार साधारण नहीं है, बेटा! विपत्ति आने पर जब मुझे ससुराल में ही कोई नहीं रख सका तो फिर और दूसरा कैसे रख सकेगा? अब मुझे किसी के घर जाने का साहस नहीं है। मैं यहाँ नहीं रहूँगी'—इतना कहकर वे अपनी दोनों आँखों को आँचल से बार-बार पोंछने लगीं।

विनय बोला—'मेरी माँ की तुलना सब लोगों के साथ नहीं की जा सकती। वे सम्पूर्ण भार जगदीश्वर के अर्पण कर चुकी हैं, अतः किसी भी दूसरे का भार उठाने का संकोच नहीं करतीं। मेरी माँ परेश बाबू जैसी ही हैं। मैं आपको एक बार उनके पास अवश्य ले चलूंगा। फिर आप जहाँ कहेंगी मैं पहुँचा आऊँगा।'

'तो उन्हें इसकी खबर तो···।'

'उसके लिए आप चिन्ता न करें। मेरे पहुँचने से ही उन्हें खबर मिल जायेगी।'

'तो कल सुबह···?'

'कल ही क्यों, आज रात को ही चलिए।'

सन्ध्या के समय सुचरिता ने आकर सूचना दी—'विनय बाबू, उपासना का समय हो गया। आपको माँ बुला रही हैं।'

'मैं मौसी के साथ बातें कर रहा हूँ'—विनय ने उत्तर दिया—'अभी न चल सकूँगा।'

विनय को वरदासुन्दरी का निमन्त्रण अब स्वीकार न था। वह मन-ही-मन बोला—'यह सब ढोंग मात्र है।'

तभी हरिमोहिनी घबराकर बोलीं—'भैया, तुम अवश्य जाओ। काम पूरा होने पर जब यहाँ लौटोगे, तब मेरी-तुम्हारी बातें हो लेंगी।'

सुचरिता ने भी कहा—'आपका जाना ही ठीक रहेगा।'

विनय ने भी सोचा—'न जाने से उपद्रव और बढ़ जायेगा।' अतः वह चला तो गया, परन्तु उससे कोई लाभ न हुआ।

उपासना के पश्चात् भोजन का प्रबन्ध था। विनय ने उसके लिए कहा—'मुझे तो अभी भूख ही नहीं है।'

वरदासुन्दरी बोलीं—'भूख को क्यों दोष दे रहे हो? यह तो ऊपरी मन की बात है।'

'आपका कहना सत्य है'—विनय ने हँसकर कहा—'लोभी की दशा ऐसी ही होती है। वह वर्तमान की अल्प-प्राप्ति के लिए, भविष्य के बड़े लाभ को खो बैठता है।'

इतना कहकर वह जब जाने को उद्यत हुआ तो वरदासुन्दरी ने पूछा—'शायद आप फिर ऊपर जा रहे हैं?'

'हाँ!' कहकर विनय वहाँ से चला आया। सुचरिता दरवाजे के पास ही खड़ी थी। विनय ने उससे मीठे स्वर में कहा—'बहिन! एक बार तुम मौसी के यहाँ हो आओ। सम्भवतः वे तुमसे कोई काम की बात पूछना चाहती हैं।'

ललिता के ऊपर अतिथियों के सत्कार का भार था। हारान बाबू ने उसे अपने पास आते देखकर कहा—'विनय बाबू ऊपर गए हैं। यहाँ नहीं हैं।'

उनका व्यंग्य समझकर, ललिता ने उनकी ओर देखते हुए निस्संकोच भाव से कहा—'पता है, मुझसे भेंट किए विना नहीं जायेंगे। मैं भी यहाँ

काम समाप्त करके ऊपर जा रही हूँ।'

ललिता किसी प्रकार चुप न हो सकी, यह देख हारान बाबू के हृदय की आग और बढ़ गई। हारान बाबू से यह भी छिपा न रहा कि विनय सुचरिता से कुछ कह गया है और सुचरिता उसके पीछे-पीछे चली गई है। आज उन्होंने सुचरिता से कई बार बात करनी चाही परन्तु किसी बार उन्हें सफलता नहीं मिली। कई बार स्पष्ट बुलाने पर भी सुचरिता ने उनकी बात अनसुनी कर दी थी, जिससे हारान बाबू ने सब लोगों के समक्ष अपने को विशेष रूप से अपमानित अनुभव किया था।

ऊपर जाकर सुचरिता ने देखा कि हरिमोहिनी अपनी सब चीजों की गठरी बाँधे कहीं जाने को तैयार बैठी हैं। पूछा—'मौसी, यह क्या हो रहा है।'

हरिमोहिनी इसका उत्तर न दे, रोती हुई बोलीं—'बेटी! सतीश कहाँ है? एक बार उसे भी बुला दो न!'

सुचरिता विनय की ओर देख उठी। विनय बोला—'मौसी का इस घर में रहना बोझ हो गया है, अतः मैं इन्हें अपनी माँ के पास लिये जा रहा हूँ।'

हरिमोहिनी ने बताया—'मैंने तीर्थ-यात्रा का निश्चय किया है। मुझ जैसी अनाथ का किसी के घर रहना ठीक नहीं। फिर कोई अधिक दिन तक रख भी कैसे सकेगा?'

इस बात पर सुचरिता स्वयं भी कई दिनों से विचार कर रही थी। वह चुपचाप मौसी के पास बैठ गई। अँधेरा चारों ओर छा गया। परन्तु चिराग नहीं जलाया गया। उस अन्धकार में किसके नेत्रों से आँसू गिर रहे हैं, यह पता न चला।

जीने से जैसे ही सतीश ने 'मौसी' कहकर आवाज दी वैसे ही हरिमोहिनी, 'आओ, बेटा!' कहती हुई उठ खड़ी हुईं। 'कल सुबह चलना ठीक रहेगा। फिर बाबूजी को सूचित किए बिना तुम कैसे जा सकती हो? क्या यह अन्याय न होगा?' सुचरिता ने कहा।

वरदासुन्दरी द्वारा हरिमोहिनी के अपमान से उत्तेजित होकर विनय ने इस बात को सोचा तक नहीं था। वह चाहता था कि मौसी को अब एक रात भी यहाँ नहीं ठहरना चाहिए। परन्तु सुचरिता की बात सुनकर उसे

भी ध्यान आया कि जिस व्यक्ति ने उदारतापूर्वक आश्रय दिया, उसे इस प्रकार भूलकर चले जाना भी उचित नहीं है। बोला—'हाँ परेश बाबू से मिले बिना नहीं जाना चाहिए।'

सुचरिता को मालूम था कि परेश बाबू सोने से पूर्व, उपासना सम्बन्धी कोई पुस्तक पढ़ा करते हैं। सुचरिता कई बार उस समय उनके पास पहुँच जाती थी और वे उसे पढ़कर कुछ सुनाया करते थे।

आज रात को भी परेश बाबू अपने सोने के कमरे में दीपक जलाए एमर्सन का ग्रन्थ पढ़ रहे थे। सुचरिता चुपचाप उनके पास, एक कुर्सी पर जा बैठी। परेश बाबू ने पुस्तक रखकर एक बार उसके मुँह की ओर देखा। सुचरिता जो कहने आई थी, वह न कह सकी। बोली—'बाबू, मुझे भी पढ़कर सुनाइए।'

परेश बाबू पुस्तक का गम्भीर आशय सुचरिता को समझाने लगे। रात के दस बजे पढ़ना समाप्त हुआ तो सुचरिता धीरे-से उठ खड़ी हुई और चल दी। तभी परेश बाबू ने उसे पुकारा—'राधा!'

सुचरिता लौट आई। परेश बाबू ने फिर कहा—'तुम अपनी मौसी की बात कहने के लिए मेरे पास आई थीं न।'

'हाँ बाबूजी!' सुचरिता ने देखा, परेश बाबू उसके मन की बात समझ गए हैं, अतः आश्चर्यचकित-सी बोली—'अब कल सवेरे कहूँगी।'

उसके बैठ जाने पर परेश बाबू ने कहा—'तुम्हारी मौसी को यहाँ कष्ट है, यह मैं जानता हूँ। पहिले मुझे यह पता नहीं था कि लावण्य की माँ के ब्राह्म-संस्कार में उनका धर्म-विश्वास तथा आचरण इतना बाधक सिद्ध होगा। अब वह उन्हें बहुत कष्ट दे रही है। फिर तुम्हारी मौसी यहाँ कैसे रह सकेंगी?'

'वे यहाँ से जाने को तैयार हैं।'

'मैं यह जानता हूँ, परन्तु क्या तुम उन्हें भिखारिन की भाँति विदा कर सकोगी? तुम दोनों तो उनके एकमात्र अपने हो। मैं इस बात को कई दिनों से सोच रहा हूँ।'

सुचरिता को यह अनुमान न था कि परेश बाबू उसकी मौसी के संकट से परिचित हैं और उसके लिए चिन्तित भी रहते हैं। आज उनकी यह बात सुनकर वह आश्चर्य में आ गई। नेत्रों में आँसू भर आए।

'तुम्हारी मौसी के लिए मैंने एक मकान ठीक कर दिया है !' वे फिर बोले।

'परन्तु वे तो...।'

'भाड़ा नहीं दे सकेंगी, यही न ? परन्तु उन्हें भाड़ा देने की आवश्यकता भी क्या है, तुम दे दिया करना।'

सुचरिता उनकी बात का तात्पर्य न समझ पाई, अतः चुपचाप उनके मुँह की ओर देखती रही।

परेश बाबू हँसकर बोले—'तुम उन्हें अपने ही मकान में रहने देना। तब भाड़ा नहीं देना पड़ेगा।'

सुचरिता और अधिक चकित हो उठी।

वे बोले—'तुम्हें पता नहीं है कि कलकत्ते में तुम्हारे भी दो मकान हैं। एक तुम्हारा, दूसरा सतीश का। तुम्हारे पिता मृत्यु के समय मुझे कुछ रुपया दे गए थे। उस रुपये को किसी प्रकार बढ़ाकर, मैंने तुम लोगों के लिए दो मकान खरीद दिए हैं। अब तक वे भाड़े पर उठ रहे थे। भाड़े का रुपया जमा हो रहा है। तुम्हारा घर कुछ दिनों से खाली पड़ा है, अतः उसका भाड़ा भी बन्द है। वहाँ रहने से तुम्हारी मौसी को कोई कष्ट न होगा।'

'क्या वे वहाँ अकेली रह सकेंगी ?' सुचरिता ने पूछा।

'तुम्हारे रहते अकेली क्यों रहेंगी ?'

'मैं यही बात आपसे कहने आई थी। सोच रही थी कि उन्हें अकेली कैसे जाने दूं। अब आप जो कहेंगे, वही करूँगी।'

'इस मकान के बराबर जो गली है, उसमें तीन मकान के बाद ही चौथा मकान तुम्हारा है। इस घर के बरामदे में खड़े होकर देखने से वह दिखाई पड़ता है। अतः तुम्हारे वहाँ रहने से असुरक्षा का भी कोई भय न होगा। मैं तुम्हारी खोज-खबर लेता रहूँगा।'

सुचरिता का हृदय मानो एकदम हल्का हो गया। ग्यारह बज चुके थे। परेश बाबू सोने के लिए चल दिए। सुचरिता भी मौसी के पास लौट आई।

४१

दूसरे दिन प्रातःकाल हरिमोहिनी ने परेश बाबू के समीप जाकर उन्हें प्रणाम किया। वे हड़बड़ाकर बोल उठे—'यह क्या कर रही हैं आप ?'

हरिमोहिनी आँखों में आँसू भरकर बोलीं—'आपका ऋण मैं कभी न चुका सकूँगी। आपने मुझ अभागिन पर जो कृपा की, यह आपके ऊपर भगवान की बहुत बड़ी कृपा का फल है।'

परेश बाबू सकुचा उठे, बोले—'मैंने आपका क्या उपकार किया है ? जो किया है, वह तो राधारानी (सुचरिता) ने भले ही किया हो।'

'मैं जानती हूँ !'—हरिमोहिनी रोती हुई बोलीं—'परन्तु वह भी तो आप ही की है। उसके माँ-बाप जब चल बसे, तब मैंने उसको अभागिन समझा था, परन्तु तब क्या पता था कि उसके भाग्य बड़े अच्छे हैं, जो उसने आपको पा लिया है। स्थान-स्थान पर घूमने के बाद जब मैंने यहाँ आकर आपके दर्शन किए, तब मुझे पता चला कि निश्चय ही ईश्वर ने मुझ पर भी अपनी दया की है।'

तभी विनय ने घर के भीतर पैर रखते हुए कहा—'मौसी, माँ आपको लिवाने के लिए आई हैं।'

सुचरिता प्रफुल्लित होकर बोल उठी—'कहाँ हैं वे ?'

'नीचे आपकी माँ के पास बैठी हैं !' सुनकर सुचरिता तुरन्त नीचे जा पहुँची।

इधर परेश बाबू ने हरिमोहिनी से कहा—'मैं आपके घर में आपका सब सामान रख आता हूँ।'

परेश बाबू के चले जाने के बाद, विनय ने आश्चर्य से कहा—'आपके घर की बात मैं नहीं समझा।'

'मैं भी नहीं जानती'—हरिमोहिनी ने उत्तर दिया—'परेश बाबू ही जानते हैं। वह घर हमारी राधारानी का ही है।'

विनय ने कहा—'मैंने सोचा था कि मैं संसार में किसी के काम आऊँगा। अब तक मैं माँ की कोई सेवा न कर सका। आज जब मौसी की ही सेवा करके कुछ मन प्रसन्न करना चाहा, तो देखता हूँ कि यह भी मेरे भाग्य में नहीं लिखा है।'

कुछ देर पश्चात् ललिता एवं सुचरिता के साथ आनन्दमयी भी वहाँ आ पहुँचीं। हरिमोहिनी ने आगे बढ़कर कहा—'ईश्वर जब कृपा करते हैं, तो किसी बात की कमी नहीं रहती। आज आप भी मिल ही गईं, बहिन!' इतना कहकर उन्हें हाथ पकड़, चटाई पर ले जाकर बैठाया।

फिर बोलीं—'बहिन, आपकी चर्चा को छोड़कर विनय के मुँह पर तो और कोई बात ही नहीं रहती।'

आनन्दमयी हँसकर बोलीं—'उसे बचपन से यही बीमारी है कि जिस बात को पकड़ता है, उसे शीघ्र छोड़ता ही नहीं। अब मौसी का नाम लेना भी आरम्भ होने वाला है।'

विनय बोला—'अवश्य होगा। मैं पहले ही कहे देता हूँ।'

आनन्दमयी ललिता की ओर देखकर मुस्कराती हुई बोलीं—'विनय के पास जो वस्तु नहीं, उसका संग्रह करना इसे खूब आता है और वह उसका आदर भी बहुत करता है। तुम लोगों को वह किस दृष्टि से देखता है, यह भी मुझे पता है। तुम्हारे साथ उसके परिचय की घनिष्ठता से मुझे जितना आनन्द हुआ है, उसे कैसे कहूँ? तुम्हारे घर में मन रम जाने से, उसका जो उपकार हुआ है, उसे वह खूब समझता है और हृदय से स्वीकार भी करता है।'

ललिता कुछ उत्तर देना चाहकर भी न दे सकी। लज्जा से मुँह लाल हो गया। उसके संकट को देखकर सुचरिता बोली—'विनय बाबू सबके लिए सद्भाव रखते हैं, इसीलिए सब लोगों का सद्भाव इनके पास आकर इकट्ठा हो जाता है। इनमें यही विशेषता है।'

विनय ने कहा—'तुम लोग विनय को जितना बड़ा समझती हो, संसार में उसकी उतनी प्रतिष्ठा नहीं है। हाँ, मेरे मन में इतना अभिमान अवश्य है कि इस बात को समझकर भी मैं तुम्हें समझा नहीं सकता। अब इसके आगे कुछ न कहूँगा।'

उसी समय वरदासुन्दरी ने ऊपर आकर हरिमोहिनी की ओर दृष्टि डालते हुए, आनन्दमयी से पूछा—'क्या आप हमारे घर की बनी कोई वस्तु खा सकेंगी?'

'क्यों नहीं?' आनन्दमयी ने कहा—'आपके घर खा लेने से कोई जाति-च्युत थोड़े ही हो जाऊँगी। परन्तु पहले गोरा लौट आवे, तब खाऊँगी,

आज नहीं।'

फिर वरदासुन्दरी विनय की ओर देखकर कह उठीं—'अरे विनय बाबू तो यहीं हैं। मैं समझती थी कि अभी तक आए नहीं हैं।'

विनय बोला, 'मैं आया हूँ, तो क्या आप यह समझ बैठी थीं कि आपसे बिना मिले ही चला जाता।'

'कल तो आप निमन्त्रित होने पर भी, भोजन किए बिना चले गये थे।' वरदासुन्दरी बोलीं—'परन्तु आज मालूम होता है कि बिना निमन्त्रण के ही भोजन अवश्य करेंगे।'

'क्यों नहीं ?' विनय ने कहा, 'मैं तो मासिक वेतन के अतिरिक्त ऊपरी आमदनी पर विशेष ध्यान देता हूँ।'

विनय इस घर में खाता-पीता है, यह जानकर हरिमोहिनी को आश्चर्य हुआ। आनन्दमयी भी विचार नहीं रखतीं, यह समझकर वे कुछ उदास हो गईं।

वरदासुन्दरी के चले जाने पर उन्होंने आनन्दमयी से संकोच के साथ पूछा—'बहिन तुम्हारे पति क्या···!'

'कट्टर हिन्दू हैं !' आनन्दमयी ने तुरन्त उत्तर दिया।

हरिमोहिनी को आश्चर्य हुआ है, यह जानकर आनन्दमयी कहने लगीं, 'बहिन ! जब मैं समाज में श्रेष्ठ समझी जाती थी, तब उसे मानकर चलती थी, परन्तु ईश्वरी लीला के कारण जब एक घटनाचक्र से मुझे समाज छोड़ देना पड़ा, तो अब मैं डरूँ भी किससे ?'

हरिमोहिनी ने उसका आशय न समझते हुए हुए फिर पूछा—

'तुम्हारे पति···!'

'इसीलिए मुझसे नाराज रहते हैं।'

'और लड़के···?'

'वे भी प्रसन्न नहीं हैं। परन्तु बहिन ! उन्हें प्रसन्न करने से ही क्या होगा ? जो ईश्वर सर्वज्ञ हैं, वे सब जानते हैं, मैं अपनी बात क्या कहूँ ?' इतना कहकर आनन्दमयी ने उस दैवी शक्ति को हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

हरिमोहिनी ने समझा—सम्भवतः कोई पादरी-स्त्री आनन्दमयी को क्रिश्चियन बना गई है। यह जानकर उसके मन में बहुत संकोच भी हुआ।

४२

सुचरिता के साथ ही लावण्य तथा लीलावती उसका नया घर सजाने को गईं, परन्तु उस उत्साह के भीतर गुप्त वेदना के आँसू भरे हुए थे।

इतने दिनों तक सुचरिता परेश बाबू के अनेक छोटे-बड़े कामों को करती रही थी। कभी फूल-दान सजाती तो कभी टेबिल पर पुस्तकें ही सँवार देती। स्नान के समय प्रतिदिन उन्हें समय का ध्यान भी दिला दिया करती थी। अब वह जब कभी परेश बाबू के कमरे का कोई साधारण-सा कार्य करने को भी आती, तो परेश बाबू की दृष्टि में वह कार्य बहुत महत्त्व-पूर्ण हो उठता था।

जिस दिन सुचरिता दोपहर को भोजन करके नये घर में जाने वाली थी, उस दिन परेश बाबू ने अपने उपासना वाले सूने कमरे में जाकर देखा कि सुचरिता उनके आसन के सामने वाली भूमि को फूलों से सजाकर एक कोने में बैठी उनके आने की प्रतीक्षा कर रही है।

उपासना की समाप्ति पर, जब उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे तो परेश बाबू बोले—'बेटी, रोओ नहीं। पीछे की ओर घूमकर देखती हुई, आगे का मार्ग निश्चित करती चलो। सुख या दुःख को समयानुसार चुपचाप सहन करने की आदत डाल लो। अपने को सम्पूर्ण रूप से ईश्वर को समर्पित कर, उन्हीं को अपना एकमात्र सहायक जानो। ईश्वर करे, उन्हें कभी हमारे साधारण आश्रय की आवश्यकता ही न पड़े।'

उपासना के पश्चात् दोनों ने बाहर आकर देखा, हारान बाबू प्रतीक्षा करते हुए बैठक में बैठे हैं। आज सुचरिता ने किसी के प्रति अपने मन में विद्रोह का भाव न लाने का निश्चय कर, उन्हें सरलतापूर्वक नमस्कार किया। हारान बाबू अत्यन्त दृढ़तापूर्वक गम्भीर स्वर में बोले—'सुचरिता, तुमने अब तक जिस सत्य का सहारा लिया था, उसी से अब पीछे हट रही हो। हम लोगों के लिए वह बड़े खेद का अवसर है।'

सुचरिता के हृदय में जो शान्ति और दया की रागिनी बज रही थी, उसमें ये शब्द कुछ बेसुरे-से जान पड़े। उसने कोई उत्तर न दिया।

परेश बाबू बोले—'आगे कौन बढ़ रहा है और पीछे कौन हट रहा है, इसे अन्तर्यामी जानते हैं, हम लोग बाहरी बातों का विचार कर व्यर्थ ही

दुःखी होते हैं।'

हारान—'तो क्या आप यह कह रहे हैं कि आपके मन में न कोई आशंका है और न पश्चात्ताप का कोई कारण ही ?'

'हारान बाबू !' उन्होंने उत्तर दिया—'मैं कल्पना को या आशंका को हृदय में स्थान नहीं देता। साथ ही मन में कोई अनुताप उत्पन्न हो, पश्चात्ताप का कारण भी तभी मानता हूँ।'

'आपकी पुत्री ललिता, जो स्टीमर पर विनय बाबू के साथ अकेली चली आई, क्या इसे भी काल्पनिक कहा जायेगा ?'

क्रोध के कारण सुचरिता का मुँह लाल हो गया।

परेश बाबू बोले, 'आपका मन किसी कारण उत्तेजित हो उठा है, अतः इस समय इस सम्बन्ध में आपसे कोई वार्तालाप करने का अर्थ आपके प्रति अन्याय करना रहेगा।'

हारान बाबू मस्तक ऊँचा उठाते हुए बोले—'मैं जोश में आकर कोई बात नहीं कहता। मुझे जिस सम्बन्ध में बोलने का पूर्ण अधिकार है, उसी बात को कहता हूँ। मैं व्यक्तिगत तौर पर नहीं, अपितु ब्राह्म-समाज की ओर से कह रहा हूँ। आपकी ललिता विनय बाबू के साथ स्टीमर पर अकेली चली आई, यही एक बात आपके परिवार को ब्राह्म-समाजी लंगर से हटाकर अलग बाहर ले जाने का उपक्रम कर रही है। इस बात से केवल आपको ही अनुताप न होगा बल्कि सम्पूर्ण ब्राह्म-समाज के लिए यह अप्रतिष्ठा की बात है।'

'बाहरी व्यवहार को देखकर निन्दा करने की अपेक्षा भीतरी बात को देखना चाहिए। केवल किसी घटना से ही आप मनुष्य को दोष मत दीजिए।' परेश बाबू बोले।

'यह घटना साधारण नहीं है। आप ऐसे व्यक्तियों को ही आत्मीय बना रहे हैं, जो आपके पारिवारिक जनों को समाज से दूर ले जाना चाहते हैं। क्या आप उसे नहीं देखते ?'

'आपकी सूझ ही विलक्षण है।' परेश बाबू ने कुछ रुष्ट होते हुए कहा, 'आपके साथ मेरा मन कैसे मिल सकता है ?'

'नहीं मिल सकता, यह सत्य है, परन्तु मैं सुचरिता को ही साक्षी बनाता हूँ। वही कह दे कि कई दिनों से विनय के साथ ललिता का जो सम्बन्ध

हुआ है, क्या वह केवल बाहरी है? सुचरिता तुम्हें इस बात का उत्तर देकर ही जाना होगा। बताओ तो ?'

सुचरिता झिड़कते हुए बोली—'बात कैसी भी हो, आपको क्या ? इस सम्बन्ध में आप कुछ कहने का अधिकार नहीं रखते।'

हारान—'अधिकार न होने पर मैं अवश्य ही चुप बैठा रहता। जब तक तुम लोग समाज में हो, तब तक समाज को तुम्हारा विचार करना ही पड़ेगा। तुम समाज के विरुद्ध नहीं जा सकते।'

तभी ललिता ने तूफान की भाँति बैठक में प्रवेश करते हुए कहा—'यदि समाज ने आपको विचारक बना दिया हो, तो हमारे लिए इस समाज से बाहर रहना ही अच्छा होगा।'

हारान बाबू कुर्सी से उठते हुए बोले—'आप खूब आईं, आपके विरुद्ध जो मामला चल रहा है, उसका विचार भी आपके सामने ही होना चाहिए था।'

सुचरिता ने क्रोध से भरकर कहा—'हारान बाबू, अपनी अदालत अपने घर जाकर लगाइये। किसी गृहस्थ के घर आकर आप इस तरह बढ़-बढ़ कर बातें करें, यह हमें बर्दाश्त नहीं है। आओ, बहिन ललिता ! बैठो।'

ललिता वहीं खड़ी रही। बोली—'सुनो बहिन, हारान बाबू को जो कुछ कहना है, कह लें, मैं सब सुनना चाहती हूँ।' फिर हारान बाबू की ओर मुड़कर कहने लगी—'कहिये, आप क्या कहना चाहते हैं ?'

हारान बाबू चुप रहे।

परेश बाबू बोले—'बेटी, आज सुचरिता मेरे घर से जा रही है अतः आज मैं किसी प्रकार की अशान्ति उत्पन्न नहीं होने देना चाहता।' फिर हारान बाबू से कहा, 'हमने कितने भी अपराध किये हों, आज आपको क्षमा करने पड़ेंगे।'

हारान बाभू गम्भीर मुद्रा में चुप बैठे रहे। सुचरिता उनसे जितनी दूर रहना चाहती थी, वे उसे उतना ही अधिक पकड़ कर अपने पास रखना चाहते थे। इस समय उनके मन में यह विचार उठ रहा था कि सुचरिता के मौसी के साथ चले जाने पर, उस घर में उनका कोई जोर नहीं चल सकेगा। इसलिए वे क्षुब्ध हो रहे थे। आज सब संकोच त्यागकर खूब तेज हो यहाँ आये थे, परन्तु सुचरिता और ललिता उनके समक्ष इस प्रकार तीर

तान कर खड़ी होंगी, यह उन्हें ध्यान भी नहीं आया था। अन्त में उन्होंने निश्चय किया, 'यह काम ऐसे न चलेगा, इस विजय को प्राप्त करने के लिए युद्ध करना ही पड़ेगा।'

सुचरिता ने हरिमोहिनी के पास जाकर कहा—'मौसी, तुम बुरा मत मानना, आज मैं इन सब लोगों के साथ सम्मिलित भोजन करूँगी।'

हरिमोहिनी चुप रहीं। उन्हें यह विश्वास हो गया था कि सुचरिता मेरे कहे अनुसार ही चलेगी, परन्तु आज उसका यह प्रस्ताव उन्हें अच्छा न लगा, अतः वे मौन ही रहीं।

सुचरिता ने उनके मन के भाव को समझते हुए कहा—'मैं सच कहती हूँ कि इससे ठाकुरजी भी प्रसन्न होंगे, क्योंकि उन्हीं ने मुझे सबके साथ भोजन करने की अन्तःप्रेरणा दी है। मैं तुम्हारे क्रोध की अपेक्षा उनकी नाराजगी से अधिक डरती हूँ।'

वरदासुन्दरी द्वारा अपमानित किये जाने पर हरिमोहिनी का आचार सुचरिता ने अपने ऊपर ले लिया था, परन्तु आज उससे अलग होते समय, वह उसी आचार को क्यों भंग कर रही है, यह हरिमोहिनी की समझ में न आया। सुचरिता उसके लिए एक कठिन समस्या जैसी बनी रहती थी।

कुछ देर ठहर कर उन्होंने कहा—'बेटी, तुम्हारे मन में आये वह करो, परन्तु इस दुसाध नौकर के हाथ का पानी मत पीना।'

'लेकिन यह रामदीन दुसाध ही तो तुम्हें गाय का दूध दुहकर दे जाता रहा है।'—सुचरिता बोली।

हरिमोहिनी के नेत्र फैल गए, वे बोलीं—'दूध और पानी एक कैसे हो जायेगा?'

'अच्छा मौसी!'—सुचरिता ने कहा—'मैं आज रामदीन का जल नहीं पीऊँगी, परन्तु तुमने सतीश से यदि यह बात कही तो वह उसका उलटा ही करेगा।'

'उसकी बात अलग है।'—कहकर हरिमोहिनी चुप हो रहीं। वे समझती थीं कि पुरुषों के लिए तो आचार-विचार के बन्धन में कुछ ढील देनी ही पड़ती है।

४३

हारान बाबू उग्र स्वरूप धारण कर मैदान में उतर आये।

विनय के साथ स्टीमर पर आये हुए ललिता को पन्द्रह दिन हो चुके थे। इस बात को दस-पाँच व्यक्ति जान भी चुके थे तथा अन्य लोगों में भी यह बात धीरे-धीरे फैल रही थी। ब्राह्म-समाज के कुछ हितैषी लोग सवारियाँ कर-करके एक दूसरे के घर कह आये थे कि आजकल ब्राह्म-समाज में भी ऐसी घटनाएँ घटने लगी हैं, जिनसे उनका भविष्य अन्धकारमय होता जा रहा है। यह समाचार भी घर-घर में फैलने लगा कि अब सुचरिता अपनी हिन्दू मौसी के घर में रहकर, नियमपूर्वक ठाकुरजी की पूजा करने लगी है।

ललिता के मन में एक द्वन्द्व बहुत दिनों से चल रहा था। वह नित्य रात को सोने के पहले निश्चय करती कि मैं किसी के सम्मुख हार नहीं मानूँगी तथा सुबह उठने पर भी इसे दुहराती थी। उसकी यह मानसिक अशान्ति केवल विनय के साथ थी। कभी-कभी विनय को नीचे कमरे में बैठे बातचीत करता हुआ जानकर उसका हृदय उछलने लगता था, तो कभी यदि वह न आता तो उसकी चिन्ता में घुटने लगती थी। कभी-कभी वह सतीश को किसी-न-किसी बहाने विनय के घर भेजकर, उसकी खोज-खबर मँगा लिया करती थी।

एक दिन वह परेश बाबू के पास जाकर बोली—'पिताजी! क्या मैं किसी कन्या पाठशाला की अध्यापिका नहीं बन सकती हूँ?'

परेश बाबू ने उसके मुख की ओर देखते हुए स्नेहार्द्र स्वर में कहा—'क्यों नहीं? परन्तु वैसी पाठशाला है कहाँ?'

जिस समय की यह कहानी है, उस समय कन्या पाठशालाएँ अधिक नहीं थीं। जो कहीं-कहीं थीं भी, उनमें भले घर की स्त्रियाँ अध्यापन का कार्य करने को तैयार नहीं होती थीं। अतः परेश बाबू की बात सुनकर ललिता ने व्याकुल होते हुए पूछा, 'क्या पाठशालाएँ सचमुच ही नहीं हैं?'

परेश बाबू—'कहीं भी तो नहीं दिखतीं।'

'तो एक कन्या पाठशाला खोली भी नहीं जा सकती?'

'खोली तो जा सकती है, परन्तु इसके लिए बहुत पैसा चाहिए तथा

अन्य लोगों की सहायता भी।'

ललिता समझती थी कि अच्छे कार्य की ओर झुकाव होना ही कठिन है। फिर उसमें इतनी बाधायें भी पड़ सकती हैं, इसकी तो उसने कल्पना भी नहीं की थी। कुछ देर वहाँ बैठी रहकर, वह चुपचाप उठ गई। उसके जाने के पश्चात्, परेश बाबू ने अपनी लड़की (ललिता) के मानसिक दुःख का कारण ढूंढ़ना आरम्भ कर दिया। उस दिन हारान बाबू विनय के सम्बन्ध में कुछ कह गये थे, वह भी उन्हें स्मरण हो आया। उन्होंने लम्बी साँस लेते हुए, मानो अपने हृदय से पूछा, 'क्या मैंने सचमुच ही भूल की?' ललिता के अतिरिक्त कोई लड़की होती, तो उन्हें विशेष चिन्ता भी न होती। वे ललिता के चरित्र को श्रेष्ठ मानते थे। वे जानते थे कि उसमें छल-कपट लेशमात्र भी नहीं है।

उसी दिन ललिता दोपहर को सुचरिता के घर में जा पहुँची। घर में सजावट की कोई वस्तु न थी। भीतर दो चटाइयाँ बिछी हुई थीं जिनमें एक ओर सुचरिता तथा दूसरी ओर हरिमोहिनी का बिस्तर था। हरिमोहिनी चारपाई पर नहीं सोती थीं, इसलिए सुचरिता भी धरती पर बिछौना करके सोती थी। कमरे में एक दीवार पर परेश बाबू का चित्र टंगा था। उसके बराबर वाली कोठरी में सतीश की चारपाई बिछ रही थी। वहीं कोने में एक छोटी-सी टेबिल रखी थी, जिस पर दवात-कलम, कापी, स्लेट तथा पुस्तकें जहाँ-तहाँ बिछी पड़ी थीं। एकाध कापी नीचे भी पड़ी थी। सतीश स्कूल गया हुआ था, अब उस समय कमरे में सन्नाटा था।

भोजनोपरान्त हरिमोहिनी चटाई पर लेटी हुई, सोने का उपक्रम कर रही थीं। सुचरिता अपने खुले हुए केशों को पीठ की ओर किए चटाई पर बैठी हुई, गर्दन झुकाए ध्यान से एक किताब पढ़ रही थी। उसके सामने और भी कई पुस्तकें रखी हुई थीं।

घर में एकाएक ललिता के प्रवेश करते ही सुचरिता ने मानो लज्जित-सी हो, हाथ की पुस्तक को झट से नीचे रख दिया। वह पुस्तक गोरा के लेखों का संग्रह थी।

हरिमोहिनी भी उठकर बैठ गईं, बोलीं—'आओ बेटा। यहाँ बैठो। तुम्हारा घर छोड़ने के बाद सुचरिता पर जो बीत रही है, मैं उसे जानती हूँ। यहाँ उसका मन जरा भी नहीं लगता। बैठी-बैठी पुस्तकें पढ़ती रहती

है। मैं सोच ही रही थी कि तुममें से कोई आ जाती तो ठीक रहता, सो तुम आ ही गईं। तुम्हारी उम्र बहुत बड़ी है।'

ललिता सुचरिता के पास जा बैठी। बोल—'बहिन, इस मुहल्ले में यदि हम एक कन्या पाठशाला खोल दें, तो कैसा रहेगा?'

हरिमोहिनी चकित होकर बोल उठीं—'यह क्या कहती हो, तुम स्कूल खोलोगी?'

सुचरिता ने कहा—'स्कूल चलेगा कैसे? कौन सहायता करेगा? क्या बाबूजी से भी इस सम्बन्ध में कुछ कहा था?'

'हम और तुम दोनों मिलकर पढ़ाया करेंगी'—ललिता बोली—'कहने पर शायद बड़ी बहिन भी तैयार हो जाएगी।'

'केवल पढ़ाने की ही बात तो नहीं है। स्कूल के काम के लिए सब प्रबन्ध करने होंगे। मकान का, छात्राओं का तथा खर्चे के लिए रुपयों का भी। ये सब काम क्या यों ही हो जायेंगे? हम दोनों क्या-क्या कर लेंगी?'

'यह कहने से काम न चलेगा, बहिन! यत्न द्वारा क्या काम नहीं हो सकता? स्त्री होने का अर्थ यह थोड़े ही है कि मुँह छिपाकर घर में ही पड़ी रहें?'

ललिता के आन्तरिक दुःख का तार सुचरिता के हृदय में बज उठा। कोई उत्तर न देकर वह मन-ही-मन विचार करने लगी।

ललिता बोली—'अपने मुहल्ले में ही कितनी बे-पढ़ी लड़कियाँ हैं उन्हें हम यों ही पढ़ाना चाहें तो वे सभी प्रसन्न होंगी। उन्हें तुम्हारे इस घर में लाकर हम दोनों पढ़ा दिया करेंगी। इसमें खर्च की भी क्या आवश्यकता है?'

अपने घर में मुहल्ले की लड़कियों को पढ़ाने की बात सुनकर हरिमोहिनी चिन्तित हो उठीं, क्योंकि वे एकान्त में, शुद्ध आचार-विचार से रहना चाहती थीं। इसीलिए आपत्ति कर उठीं।

सुचरिता बोली—'तुम डरो मत, मौसी! यदि लड़कियाँ आईं तो हम उन्हें नीचे वाले कमरे में पढ़ा लिया करेंगे।' फिर ललिता से कहा—'ललिता बहिन! यदि लड़कियाँ पढ़ाने को मिल जायें तो मैं इस कार्य में सहयोग देने को तैयार हूँ।'

ललिता बोली—'प्रयत्न करके देखूँगी।'

हरिमोहिनी वार-बार कहे जा रही थीं—'तुम लोगों ने ऐसी बातों में क्रिस्तानी की होड़ की तो कैसे काम चलेगा ? गृहस्थों की कन्याओं को स्कूल में पढ़ाते मैंने कहीं नहीं देखा है।'

परेश बाबू के घर के समीप जो मकान थे, उनकी स्त्रियाँ अपनी-अपनी छत पर आकर, अन्य बातों के साथ-साथ कभी-कभी परेश बाबू की लड़कियों के इतनी वड़ी आयु में भी अभी तक अविवाहित रहने के सम्बन्ध में आश्चर्यपूर्ण चर्चायें किया करती थीं। ललिता इन बातों से दूर रहती थी, परन्तु लावण्य लता को उन्हें सुनने का मानो एक रोग-सा हो गया था। वह छत पर जाकर, उन स्त्रियों से हिल-मिलकर बातें किया करती थी।

कन्या पाठशाला के लिए लड़कियाँ इकट्ठा करने का भार ललिता ने लावण्य लता पर डाल दिया। लावण्य ने यह चर्चा एक छत वाली स्त्री से कही। उसे सुनकर वहुत-सी लड़कियाँ पढ़ने को उल्लासित हो उठीं। तब ललिता ने प्रसन्न हो, सुचरिता के मकान वाले निचले हिस्सों को पुतवाकर साफ करा दिया तथा लिखने-पढ़ने के लिए आवश्यक वस्तुओं का संग्रह कर दिया।

परन्तु, वह सामान सजा का सजा हुआ ही रह गया। पड़ोसियों ने जब यह सुना कि उनके घर की लड़कियों को फुसलाकर उन्हें ब्राह्म-समाजी बनाने का प्रयत्न किया जाने वाला है, तो वे क्रोध से भर गये। उन्होंने अपने घर की स्त्रियों को छत पर जाने से भी मना कर दिया तथा ललिता आदि के विरुद्ध असभ्य भाषा का प्रयोग करने से भी वे न चूके।

परन्तु ललिता का उत्साह इतने से ही मन्द न पड़ा। उसने कहा—'ब्राह्म-समाज के गरीब घरों की बहुत-सी लड़कियाँ फीस देकर स्कूल में नहीं पढ़ पातीं, अतः हम उन्हें मुफ्त में पढ़ाकर ही उपकार करेंगे।' यह निश्चय कर उसने छात्राओं की खोज स्वयं आरम्भ कर दी, तथा सुधीर को भी इस कार्य में जुटा दिया।

परेश बाबू की लड़कियों की विद्या-बुद्धि का यश दूर-दूर तक फैला हुआ था, अतः गरीब लड़कियों के माता-पिता इस योजना को सुनकर बेहद प्रसन्न हुए।

पाँच-छः लड़कियों को लेकर ललिता ने विद्यालय आरम्भ कर दिया। स्कूल के नियम आदि भी उसने स्वयं ही बना लिये, परेश बाबू से सलाह लेने तक का समय भी उसे न मिला। परीक्षा के अन्त में छात्राओं को पुरस्कार

में कौन-सी पुस्तकें देनी चाहिए, इस विषय पर ललिता और लावण्य में बहुत तर्क-वितर्क हुआ। छात्राओं की परीक्षा कौन ले—जब यह प्रश्न सामने आया तो लावण्य ने यह सोचकर कि हारान बाबू हमारे समाज के सबसे बड़े विद्वान् हैं, उन्हीं के नाम का सुझाव किया, यद्यपि वह उनको हृदय से बिल्कुल पसन्द नहीं करती थी। परन्तु ललिता को यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं हुआ। वह नहीं चाहती थी कि इस पाठशाला से हारान बाबू का किसी प्रकार से सम्बन्ध बने।

दो-तीन दिन में ही छात्राओं की संख्या घटते-घटते शून्य पर जा पहुँची। ललिता सूने विद्यालय में बैठी प्रतीक्षा करती रही, परन्तु जब कोई लड़की न आई, तो वह समझ गई कि कोई-न-कोई गड़बड़ अवश्य है।

जो लड़की समीप ही रहती थी, ललिता जब उसके घर पता लगाने के लिए गई तो उसने आँखों में आँसू भरकर कहा—'माँ मुझे नहीं जाने देती हैं।' ललिता ने जब उसकी माँ से पूछा तो उसे उत्तर मिला—'वहाँ जाने में अनेक बाधायें हैं।' बाधाओं को उसने स्पष्ट नहीं किया। ललिता भी और अधिक कुछ पूछे बिना लौट आई। किसी की खुशामद करना उसे पसन्द न था।

उस घर के बाद ललिता जहाँ भी गई, वहीं उसे यह सुनने को मिला कि 'सुचरिता अब हिन्दू हो गई है। वह जाति-पाँति मानती है तथा मूर्ति-पूजा करती है। उसके घर जाने से लड़कियों पर भी इस कुसंस्कार का प्रभाव पड़ सकता है।'

ललिता को इस उत्तर से भी पूरा सन्तोष न हुआ। उसने सुधीर से पूछा—'सच बताओ, मामला क्या है? लड़कियों का आना अचानक कैसे रुक गया?'

सुधीर ने उत्तर दिया—'हारान बाबू नहीं चाहते कि तुम्हारा यह स्कूल चले।'

'सुचरिता बहिन के घर ठाकुर-पूजा होती है, इसीलिए?'

'केवल इतना ही नहीं है।'

'तो और क्या है, कहो न?'

'बहुत से कारण हैं।'

'मुझे शायद अपराधिनी समझा गया है, यही?'

सुधीर चुप रहा। ललिता क्रोधावेश में बोली—'यह शायद मेरी उस

स्टीमर-यात्रा का दण्ड है, परन्तु यदि मैंने कोई अविचारपूर्ण कार्य किया भी तो किसी अच्छे कार्य द्वारा उसके प्रायश्चित की व्यवस्था हमारे समाज में शायद विल्कुल नहीं है। क्या तुम लोगों ने मेरे समाज की आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग चुना है ?'

सुधीर बोला—'इस विद्यालय में कहीं विनय बाबू सम्मिलित न हों, सब लोगों को यही भय बना हुआ है।'

ललिता क्रुद्ध होकर बोली—'यह भय नहीं, बल्कि समाज का दुर्भाग्य ही मानना चाहिये। कितने ब्राह्म-समाजियों में विनय बाबू जितनी योग्यता है ?'

सुधीर सहमत हुआ, बोला—'यह सत्य तो है, परन्तु विनय बाबू···।'

'यही न कि वे ब्राह्म-समाजी नहीं हैं, इसीलिए समाज उन्हें दण्ड दे रहा है ? मैं ऐसे समाज को भला नहीं समझती।'

छात्राओं के न आने पर सुचरिता समझ गई कि षड्यन्त्र किसका रचाया हुआ है।

सुधीर से वार्तालाप समाप्त करने के पश्चात् ललिता सुचरिता के पास पहुँचकर बोली—'बहिन, तुमने कुछ सुना है ?'

'सुना तो कुछ नहीं, पर जानती सब हूँ !' सुचरिता ने मुस्कराते हुए कहा।

'तो क्या यह सब सहने योग्य है ?'

'सहने से क्या मान घट जाएगा ?' सुचरिता ने ललिता का हाथ पकड़कर कहा—'पिताजी की सहिष्णुता क्या देखी नहीं है ?'

'मैं तुम्हारी बात नहीं काटती, बहिन ! लेकिन मेरा मन कहता है कि किसी अनुचित बात को सह लेना अन्याय को सह लेना है। उसका तो प्रतिकार ही करना चाहिये।'—ललिता बोली।

'तुम क्या करना चाहती हो, कहो ?'

'मैंने अभी अपना कर्तव्य निश्चित तो नहीं किया है, परन्तु कुछ-न-कुछ करूंगी अवश्य। जो लोग हम जैसे कर्तव्यपरायण नारियों के पीछे ओछे भाव से पड़े हैं, वास्तव में वे सबसे बड़े नीच हैं। मैं उनके उत्पातों से डरने वाली नहीं हूँ। उनके जो जी में आए, क्यों न करते रहें।' कहते हुए ललिता ने अपना दाहिना पैर जोर से पृथ्वी पर पटक दिया।

सुचरिता ने कुछ देर चुप रहकर हाथ पर अपना हाथ रखते हुए कहा

—'बहिन, इस सम्बन्ध में एक बार बाबूजी से और पूछ लो। देखें वे क्या कहते हैं।'

'मैं अभी उनके पास जाती हूँ!' कहकर ललिता अपने घर चली आई। द्वार पर आते ही उसने देखा, विनय सिर झुकाए हुए घर से निकल कर बाहर जा रहा था, ललिता को देखकर वह कुछ देर ठिठका, परन्तु फिर बिना कुछ बोले, मुँह की ओर देखे बिना, केवल नमस्कार करके उसी प्रकार चला गया।

ललिता के हृदय में जैसे किसी ने गरम बर्छी चुभा दी हो। वह तेजी से अपनी माँ के कमरे में गई। उस समय वे एक टेबिल के ऊपर बही खोले हुए कोई हिसाब लगा रही थीं।

ललिता वहीं एक कुर्सी खींचकर बैठ गई, परन्तु वरदासुन्दरी ने उसकी ओर मुँह नहीं उठाया। तब ललिता ने ही कहा—'माँ!'

'बैठो बेटी, मैं बहुत देर से...।' कहती हुई वरदासुन्दरी बही के ऊपर और अधिक झुक गईं।'

'मैं अधिक कष्ट नहीं दूंगी।'—ललिता ने कहा—'केवल इतना बता दो कि क्या विनय बाबू तुम्हारे पास आए थे?'

'हाँ!' वरदासुन्दरी ने अपनी दृष्टि बही पर जमाए हुए ही उत्तर दिया।

'उनके साथ तुम्हारी क्या-क्या बातें हुईं?'

'बहुत-सी!'

'मेरे सम्बन्ध में कोई चर्चा हुई क्या?'

वरदासुन्दरी ने अब बचने का कोई मार्ग न देखकर, कलम फेंकते हुए, सिर उठाकर कहा—'हाँ, हुई थीं। जब देखा कि बात दिनों-दिन बढ़ रही है, समाज में निन्दा होने लगी है, तब मजबूर होकर, मुझे उन्हें सावधान कर देना पड़ा।'

ललिता का मस्तक लज्जा से झुक गया। धड़कते हुए कलेजे से उसने पूछा—'क्या विनय बाबू को यहाँ न आने के लिए पिताजी ने कह दिया है?'

'वे तो इन बातों को सोचते ही नहीं। सोचते तो ऐसा होता ही क्यों?'

'तो क्या हारान बाबू यहाँ आते रहेंगे?'

'हारान बाबू क्यों न आयेंगे?' वरदासुन्दरी ने भौंहें तानते हुए कहा।

'तो विनय बाबू क्यों न आ सकेंगे?' ललिता ने फिर पूछा।

स्टीमर-यात्रा का दण्ड है, परन्तु यदि मैंने कोई अविचारपूर्ण कार्य किया भी तो किसी अच्छे कार्य द्वारा उसके प्रायश्चित की व्यवस्था हमारे समाज में शायद बिल्कुल नहीं है। क्या तुम लोगों ने मेरे समाज की आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग चुना है ?'

सुधीर बोला—'इस विद्यालय में कहीं विनय बाबू सम्मिलित न हों, सब लोगों को यही भय बना हुआ है।'

ललिता क्रुद्ध होकर बोली—'यह भय नहीं, बल्कि समाज का दुर्भाग्य ही मानना चाहिये। कितने ब्राह्म-समाजियों में विनय बाबू जितनी योग्यता है ?'

सुधीर सहमत हुआ, बोला—'यह सत्य तो है, परन्तु विनय बाबू…।'

'यही न कि वे ब्राह्म-समाजी नहीं हैं, इसीलिए समाज उन्हें दण्ड दे रहा है ? मैं ऐसे समाज को भला नहीं समझती।'

छात्राओं के न आने पर सुचरिता समझ गई कि षड्यन्त्र किसका रचाया हुआ है।

सुधीर से वार्तालाप समाप्त करने के पश्चात् ललिता सुचरिता के पास पहुँचकर बोली—'बहिन, तुमने कुछ सुना है ?'

'सुना तो कुछ नहीं, पर जानती सब हूँ !' सुचरिता ने मुस्कराते हुए कहा।

'तो क्या यह सब सहने योग्य है ?'

'सहने से क्या मान घट जाएगा ?' सुचरिता ने ललिता का हाथ पकड़कर कहा—'पिताजी की सहिष्णुता क्या देखी नहीं है ?'

'मैं तुम्हारी बात नहीं काटती, बहिन ! लेकिन मेरा मन कहता है कि किसी अनुचित बात को सह लेना अन्याय को सह लेना है। उसका तो प्रतिकार ही करना चाहिये।'—ललिता बोली।

'तुम क्या करना चाहती हो, कहो ?'

'मैंने अभी अपना कर्तव्य निश्चित तो नहीं किया है, परन्तु कुछ-न-कुछ करूँगी अवश्य। जो लोग हम जैसे कर्तव्यपरायण नारियों के पीछे ओछे भाव से पड़े हैं, वास्तव में वे सबसे बड़े नीच हैं। मैं उनके उत्पातों से डरने वाली नहीं हूँ। उनके जो जी में आए, क्यों न करते रहें।' कहते हुए ललिता ने अपना दाहिना पैर जोर से पृथ्वी पर पटक दिया।

सुचरिता ने कुछ देर चुप रहकर हाथ पर अपना हाथ रखते हुए कहा

—'बहिन, इस सम्बन्ध में एक बार बाबूजी से और पूछ लो। देखें वे क्या कहते हैं।'

'मैं अभी उनके पास जाती हूँ !' कहकर ललिता अपने घर चली आई। द्वार पर आते ही उसने देखा, विनय सिर झुकाए हुए घर से निकल कर बाहर जा रहा था, ललिता को देखकर वह कुछ देर ठिठका, परन्तु फिर बिना कुछ बोले, मुँह की ओर देखे बिना, केवल नमस्कार करके उसी प्रकार चला गया।

ललिता के हृदय में जैसे किसी ने गरम बर्छी चुभा दी हो। वह तेजी से अपनी माँ के कमरे में गई। उस समय वे एक टेबिल के ऊपर बही खोले हुए कोई हिसाब लगा रही थीं।

ललिता वहीं एक कुर्सी खींचकर बैठ गई, परन्तु वरदासुन्दरी ने उसकी ओर मुँह नहीं उठाया। तब ललिता ने ही कहा—'माँ !'

'बैठो बेटी, मैं बहुत देर से···।' कहती हुई वरदासुन्दरी बही के ऊपर और अधिक झुक गईं।'

'मैं अधिक कष्ट नहीं दूँगी।'—ललिता ने कहा—'केवल इतना बता दो कि क्या विनय बाबू तुम्हारे पास आए थे ?'

'हाँ !' वरदासुन्दरी ने अपनी दृष्टि बही पर जमाए हुए ही उत्तर दिया।

'उनके साथ तुम्हारी क्या-क्या बातें हुईं ?'

'बहुत-सी !'

'मेरे सम्बन्ध में कोई चर्चा हुई क्या ?'

वरदासुन्दरी ने अब बचने का कोई मार्ग न देखकर, कलम फेंकते हुए, सिर उठाकर कहा—'हाँ, हुई थीं। जब देखा कि बात दिनों-दिन बढ़ रही है, समाज में निन्दा होने लगी है, तब मजबूर होकर, मुझे उन्हें सावधान कर देना पड़ा।'

ललिता का मस्तक लज्जा से झुक गया। धड़कते हुए कलेजे से उसने पूछा—'क्या विनय बाबू को यहाँ न आने के लिए पिताजी ने कह दिया है ?'

'वे तो इन बातों को सोचते ही नहीं। सोचते तो ऐसा होता ही क्यों ?'

'तो क्या हारान बाबू यहाँ आते रहेंगे ?'

'हारान बाबू क्यों न आयेंगे ?' वरदासुन्दरी ने भौंहें तानते हुए कहा।

'तो विनय बाबू क्यों न आ सकेंगे ?' ललिता ने फिर पूछा।

वरदासुन्दरी फिर वही को हाथ में लेती हुई बोलीं—'ललिता ! मैं तुमसे बहस नहीं कर सकती, तुम जाओ, मुझे अनेक काम हैं।'

दोपहर के समय जब ललिता अपने स्कूल चली गई थी, उस समय उपयुक्त अवसर देख वरदासुन्दरी ने विनय को बुलाकर अपना वक्तव्य सुना डाला था। उन्होंने सोचा था, ललिता को इसकी खबर न मिलेगी। परन्तु जब उनकी कलई खुल गई तो अब नई विपत्ति की आशंका से उनका हृदय धड़कने लगा। अपने अव्यावहारिक पति के प्रति क्रोध से भर उठीं।

ललिता शीघ्रतापूर्वक नीचे वाले कमरे में परेश बाबू के पास जा पहुँची। वे कोई पत्र लिख रहे थे। उसने पहुँचते ही पूछा—'बाबूजी, क्या विनय बाबू हमारे घर में आने योग्य नहीं हैं?'

परेश बाबू इतना सुनते ही सम्पूर्ण स्थिति को समझ गए। उनके घर के सम्बन्ध में ब्राह्म-समाज में जो चर्चायें चल रही थीं, उनसे वे अनभिज्ञ न थे। 'यदि ललिता का मन वास्तव में विनय की ओर आकर्षित हो गया है तो उस स्थिति में क्या करना योग्य है?' यह चिन्तापूर्ण प्रश्न उनके हृदय में बार-बार उठ चुका था। ब्राह्म-समाज की दीक्षा लेने के समय से अब तक यही एक पहला संकट उनके घर में आकर उपस्थित हुआ था। अतः एक ओर तो उन्हें समाज का भय भीतर-ही-भीतर चिन्तित कर रहा था, दूसरी ओर सत्य की परीक्षा के समय निश्छल एवं निश्शंक भाव से केवल सत्य का आश्रय ही ग्रहण किए रहने का भाव उन्हें बरबस अपनी ओर खींच रहा था।

ललिता के प्रश्न के उत्तर में वे बोले—'विनय को मैं बहुत श्रेष्ठ लड़का समझता हूँ। जैसी उसने विद्या तथा बुद्धि प्राप्त की है, वैसा ही श्रेष्ठ उसका चरित्र भी है।'

ललिता यह सुनकर कुछ देर चुप रहने के पश्चात् कहने लगी—'पिछले दिनों गौर मोहन की माँ हमारे घर दो बार आ चुकी हैं। आज मैं सुचरिता बहिन के साथ उनके घर जाना चाहती हूँ।'

परेश बाबू तुरन्त इसका उत्तर न दे सके। भली-भाँति जानते थे कि गोरा के घर आने-जाने से ब्राह्म-समाज में घर की जो निन्दा हो रही है; वह और भी बढ़ जाएगी, परन्तु उनकी अन्तरात्मा ने कहा कि जब तक यह वास्तव में अनुचित न हो, तब तक रोकना नहीं चाहिए। बोले—'जाओ, मुझे कुछ कार्य करना है, अन्यथा मैं भी तुम्हारे साथ चला चलता।'

४४

विनय को यह स्वप्न में भी आशंका न थी कि मैं जिस घर में इष्ट-मित्र की भाँति निस्संकोच जाता हूँ, वहाँ कोई ऐसा ज्वालामुखी धधक रहा है जिसका विस्फोट किसी समय अत्यन्त भयानक होगा। आरम्भ में जब वह परेश बाबू के घर जाता था, तब वह प्रत्येक बात में फूंक-फूंककर पैर रखता था। अपने अधिकार की सीमा का अतिक्रमण न करने का ध्यान उसे बराबर बना रहता। परन्तु क्रमशः जब उसका संकोच दूर होता गया तब आज वहाँ यह सुनकर कि उसके व्यवहार से समाज में ललिता की निन्दा हो रही है, उसका माथा ठनक गया।

एक दिन दोपहर के समय, वरदासुन्दरी ने एक पत्र लिखकर विनय को अपने घर बुलाकर पूछा—'विनय बाबू, आप तो हिन्दू हैं न ?'

'हाँ'—विनय ने उत्तर दिया।

'हिन्दू समाज को आप छोड़ तो सकेंगे नहीं ?'

'नहीं !' कहने पर वरदासुन्दरी ने कहा—'तो क्यों आपने···?'

इस 'क्यों ?' शब्द के सुनते ही विनय अवाक् रह गया। अपराधी की भाँति उसने सिर झुका लिया, मानो उसकी कोई चोरी पकड़ी गई हो। वह मन-ही-मन यही सोच रहा था—'जिस बात को मैंने सूर्य, चन्द्र तथा वायु से भी छिपा रखा था, वही आज सब लोगों पर प्रकट हो गई। परेश बाबू न जाने क्या सोचते होंगे ? ललिता न जाने क्या समझती होगी ? सम्भवतः आज इस अनधिकार चेष्टा के कारण, उसे लज्जित होकर इस घर से सदा के लिए निष्कासित होना पड़ेगा।'

इसके उपरान्त जब वह परेश बाबू के कमरे के सामने से होता हुआ मकान के बाहर निकला, तभी उसे ललिता दीख पड़ी। एक बार उसकी इच्छा हुई कि वह ललिता से अन्तिम बार मिले और आज इस परिचय के सम्बन्ध-सूत्र को बिलकुल ही तोड़ देने के बाद जाए, परन्तु उसे इसमें सफलता न मिली। वह ललिता के मुँह की ओर देखे बिना ही हाथ जोड़कर चुपचाप नमस्कार करता हुआ चला गया।

घर से बाहर आकर, जल-विहीन मछली की भाँति उसका हृदय छटपटाने लगा, मानो किसी ने उसके जीवन का सहारा ही छीन लिया हो। 'ऐसा क्यों हुआ' यह प्रश्न वह बार-बार अपने हृदय से पूछने लगा।

स्वप्नावस्थित की भाँति विनय सीधा आनन्दमयी के घर गया; परन्तु वे वहाँ नहीं थीं। तब वह छत के ऊपर वाले उस सूने कमरे में गया, जहाँ गोरा सोता था।

छत के ऊपर कपड़े सूख रहे थे। दिन के तीसरे पहर आनन्दमयी जब उन्हें उठाने के लिए आईं तो गोरा के कमरे में विनय को बैठे देखकर अचम्भे में रह गईं। उन्होंने पास पहुँचकर उसकी पीठ पर स्नेह से हाथ फेरते हुए कहा—'विनय, तुम्हारा मुँह क्यों सूख रहा है? ऐसे उदास क्यों हो, बेटा!'

विनय उठकर बोला—'माँ, मैं पहले जब परेश बाबू के घर आता-जाता था तो गोरा को अच्छा नहीं लगता था, परन्तु उसका वह क्रोध वास्तव में अनुचित न था, यह मुझे अब मालूम हुआ है। सचमुच, वह मेरी मूर्खता ही थी।'

आनन्दमयी हँसकर बोलीं—'तू मेरा होशियार लड़का है, इसी से मैं कुछ नहीं कहती। परन्तु अब तूने अपने भीतर मूर्खता का कौन-सा लक्षण अनुभव किया है?'

विनय बोला—'माँ, हमारा समाज दूसरों से बिलकुल भिन्न है, यह मैंने कभी सोचा ही नहीं था। उन लोगों से मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होती थी, परन्तु तब मैंने कभी एक बार भी यह न सोचा कि यह घनिष्टता मेरे लिए विशेष चिन्ता का कारण हो उठेगी।'

'पर तेरी बातें सुनकर तो मुझे अब भी किसी चिन्ता का अनुभव नहीं होता।'

'तुम नहीं जानतीं माँ! मैं उन लोगों के प्रति, उनके समाज में अशान्ति फैलाने का जिम्मेदार माना गया हूँ। लोग इस प्रकार निन्दा कर उठे हैं कि मैं वहाँ जाने योग्य भी न रहा।'

'गोरा मुझसे प्रायः एक बात कहा करता था। वह यह कि जहाँ अन्तर में कोई अन्याय छिपा हो, वहाँ बाहर शान्ति होने पर भी अमंगल की आग सुलगती रहती है। यदि उनके समाज में ऐसी ही कोई अशान्ति फैल रही है तो उसके लिए तुम्हें दुःख करने की कोई आवश्यकता नहीं है। हाँ, इसका परिणाम अच्छा ही रहेगा। तुम्हें तो अपना व्यवहार शुद्ध ही रखना चाहिये।' आनन्दमयी ने कहा।

विनय के मन में भी यही खटका था। 'उसका व्यवहार शुद्ध है अथवा

नहीं'—इसे वह समझ ही नहीं पाता था। ललिता जब अन्य समाज की है तब उसके साथ विवाह होना तो सम्भव ही न था, उस स्थिति में उसके ऊपर अनुराग होना ही विनय को सन्ताप दे रहा था। इसी पाप के कारण यह प्रायश्चित्त का समय आ उपस्थित हुआ है—यह सोचकर वह और अधिक व्याकुल हो रहा था।

तभी वह सहसा बोल उठा—'माँ, शशिमुखी के साथ मेरे विवाह का जो प्रस्ताव था, उसका हो जाना ही ठीक रहता। मुझे अपने अधिकार की सीमा में ही बँधना चाहिये। अब मैं इस प्रकार बँधना चाहता हूँ कि फिर किसी प्रकार हिल ही न सकूँ।'

आनन्दमयी हँसकर बोलीं—'अब समझी, तुम शशिमुखी को अपनी पत्नी न बनाकर घर की साँकल बनाना चाहते हो। परन्तु उसका ऐसा भाग्य कहाँ है?'

उसी समय दरबान ने आकर सूचना दी—'परेश बाबू के घर की दो स्त्रियाँ आई हैं।'

विनय का हृदय धड़क उठा। उसने सोचा—'कहीं वे मुझे सावधान करने के हेतु माँ से कुछ कहने-सुनने न आई हों।' अतः वह खड़ा होता हुआ बोला—'माँ, अब मैं जा रहा हूँ।'

'विनय!'—आनन्दमयी ने उसका हाथ पकड़ते हुए कहा—'अभी जाना नहीं। नीचे के कमरे में जा बैठो।'

विनय नीचे जाते समय सोच रहा था—'अब तो उनके आने की कोई आवश्यकता न थी। मैं तो मर जाने पर भी उनके यहाँ कभी नहीं जाता।'

जिस समय विनय गोरा की बैठक की ओर जा रहा था, उसी समय अपने पेट को अचकन के बटन से मुक्त करते हुए महिम अपने आफिस से लौटकर आ रहे थे। उन्होंने विनय को हाथ पकड़ते हुए कहा—'वाह! भाई खूब मिल गए। मैं तो तुम्हें कई दिन से ढूँढ़ रहा था।' इतना कहकर वे बड़े आदरपूर्वक विनय को बैठक में ले गए। एक कुर्सी पर विनय को बैठाया, दूसरी पर स्वयं बैठते हुए उन्होंने अपनी अचकन की जेब से पान का डिब्बा निकालकर एक बीड़ा विनय की ओर बढ़ा दिया।

'अरे, कोई है? जरा तम्बाकू भर लाना।'—कहकर उन्होंने नौकर को आज्ञा दी। फिर विनय से बोले—'विनय बाबू, उस सम्बन्ध में तुमने क्या निश्चय किया?'

विनय का भाव आज उन्हें बहुत कोमल दिखाई दिया। उन्हें उसमें बात टाल देने का कोई लक्षण दिखाई नहीं दिया। तब उन्होंने विवाह का दिन पक्का कर देने की बात चलाई।

विनय बोला—'गोरा को आने दीजिए।'

महिम निश्चिन्त होकर बोले—'उसके आने में तो अभी कई दिन की देर है। खैर, कुछ जलपान करो तो मँगवाऊँ? आज तुम बड़े उदास से दीख रहे हो, स्वास्थ्य में तो कोई गड़बड़ नहीं है न?'

विनय से जलपान का आग्रह करने के पश्चात्, महिम अपनी क्षुधा के निवारणार्थ भीतर चला गया। गोरा की मेज पर कोई किताब रखी थी, बिनय उसे देखने लगा। कुछ देर बाद किताब रखकर उसने कमरे में टहलना आरम्भ कर दिया।

उसी समय नौकर ने उसके पास आकर कहा—'माँ बुला रही हैं।'

'किसे?'

'आपको!'

'वहाँ कोई और भी लोग हैं?'

'जी हाँ!'

छत पर ऊपर पहुँचते ही सुचरिता सदैव की भाँति स्वाभाविक स्निग्ध स्वर में बोली—'विनय बाबू, आइए!'

विनय को यह स्नेह-सिंचित स्वर सुनकर अपार आनन्द हुआ, परन्तु जब वह कमरे में भीतर पहुँचा तो सुचरिता और ललिता उसके चेहरे को देखकर आश्चर्यचकित रह गईं। वे सोचने लगीं—ऐसी कौन-सी व्यथा है जो विनय के मुख को इस प्रकार फीका किए हुए है, जैसे किसी हरे-भरे खेत पर टिड्डी दल ने उतरकर उसका सर्वनाश कर दिया हो? इससे ललिता के हृदय में कुछ वेदना, करुणा, साथ-ही-साथ कुछ आनन्द का आभास भी प्रस्फुटित हो उठा।

किसी और दिन चाहे ललिता विनय से बात न करती, परन्तु आज उसके आते ही बोल उठी—'विनय बाबू, आपसे एक विषय पर बातचीत करनी है।'

विनय आनन्द के मारे भौंचक्का हो गया। उसकी मुरझाई हुई आशा-लता जैसे फिर लहलहा उठी। प्रसन्नता की झलक चेहरे पर स्पष्ट दीखने लगी।

ललिता बोली—'हम कई बहिनें मिलकर एक छोटी-सी कन्या पाठशाला खोलना चाहती हैं।'

विनय उत्साहित होता हुआ बोला—'यह तो बहुत दिनों से मेरे जीवन का एक संकल्प है।'

'तो आपको इस कार्य में हमारी सहायता करनी होगी!' ललिता ने कहा।

'मैं जहाँ तक कर सकूँगा, अवश्य करूँगा। क्या करना होगा, वह आप बतायें?'

'हमें ब्राह्म समझ कर, हिन्दू हम पर विश्वास नहीं करते हैं। अतः आपको कुछ भार अपने ऊपर लेना पड़ेगा।'

'उसके लिए चिन्ता न करें। मैं उस भार को उठाने के लिए प्रस्तुत हूँ।'

तभी आनन्दमयी बोल उठीं—'हाँ, यह भार अवश्य उठायेगा। लोगों को भ्रम में डालकर, वश में करना इसे खूब आता है।'

ललिता बोली—'पाठशाला का काम किस प्रकार होगा, उसके लिए क्या-क्या सामान चाहिये, किस क्लास में कौन-सी पुस्तक पढ़ाई जायेगी, यह सब काम आप कर डालिये।'

विनय के लिए यह काम कुछ कठिन नहीं था, परन्तु तभी एक बात का ध्यान आ जाने से वह ठिठक गया, उसने सोचा, 'वरदासुन्दरी ने उसे अपनी पुत्रियों से मिलने को मना कर दिया है तथा समाज में उनके विरुद्ध आन्दोलन हो रहा है। क्या इन सब बातों की खबर ललिता को नहीं है?' परन्तु ललिता के अनुरोध को टाल देने की शक्ति भी तो उसमें नहीं थी।

ललिता की बातों से सुचरिता को भी कुछ कम आश्चर्य नहीं हुआ। उसे स्वप्न में भी यह आशा नहीं थी कि कभी ललिता इस प्रकार अचानक ही विनय से कन्या पाठशाला के लिए अनुरोध कर बैठेगी। विनय को लेकर एक तो समाज में वैसे ही घोर आन्दोलन चल रहा है, दूसरी ओर यह प्रस्ताव! ललिता जान-बूझकर ही यह कार्य करना चाहती है, यह समझ कर सुचरिता को भय हो आया। परन्तु ललिता के मन में जो विद्रोह उठा है, उसमें विनय को भी सम्मिलित कर लेना कहाँ तक उचित है? अतः वह अपने मन के आवेश को न दबाती हुई बोल पड़ी—'इस सम्बन्ध में अभी पिताजी से पूछ लेना भी आवश्यक है। विनय बाबू को भी अभी से कन्या

पाठशाला की इन्स्पैक्टरी के पद की आशा नहीं कर लेनी चाहिए।'

सुचरिता ने जिस चतुराई से इस प्रस्ताव का विरोध किया, उससे विनय की आशंका और अधिक बढ़ गई। वह समझ गया कि जो संकट उपस्थित है, उससे सुचरिता भली-भाँति परिचित है तथा ललिता से भी वह छिपा नहीं है। तब ललिता ऐसी बातें क्यों करती है ? इसे वह नहीं समझ सका।

ललिता ने कहा—'पिताजी से तो पूछना ही है, परन्तु पहिले विनय बाबू तैयार हो जायें, तभी तो उनसे पूछूँगी। पिताजी कभी आपत्ति न करेंगे, बल्कि सहयोग भी देंगे।' फिर आनन्दमयी की ओर देखकर कहने लगी—'हम लोग आपको भी नहीं छोड़ेंगी !'

आनन्दमयी मुस्कराती हुई बोलीं—'हाँ, मैं तुम्हारे स्कूल में झाड़ू दे आया करूँगी, इससे अधिक मैं और कर भी क्या सकती हूँ ?'

विनय बोला—'यही बहुत है। स्कूल साफ तो हो जाया करेगा।'

सुचरिता और ललिता के चले जाने के बाद विनय अचानक ही ईडन गार्डन की ओर पैदल चल दिया। इधर महिम ने आनन्दमयी के पास आकर कहा—'विनय मेरे प्रस्ताव पर तैयार हो गया है, अतः काम शीघ्र कर देना चाहिये। क्या पता, फिर कभी उसकी मति पलट जाये।'

आनन्दमयी चकित होकर बोलीं—'क्या कह रहे हो ? विनय कब तैयार हुआ ? मुझसे तो उसने कुछ भी नहीं कहा।'

'मेरी बातचीत आज ही हुई है। कहता है—गोरा के आने पर मुहूर्त निश्चित किया जायेगा।'

आनन्दमयी सिर हिलाती हुई बोलीं—'महिम, तुम ठीक नहीं समझे हो।'

'मेरी बुद्धि चाहे मोटी ही क्यों न हो, परन्तु मेरी उम्र सीधी बात समझने योग्य अवश्य हो गई है, यह सत्य समझो।'

'मैं जानती हूँ कि तुम मुझ पर नाराज होओगे, परन्तु तुम्हारी इस बात में विघ्न अवश्य पड़ेगा।'

'विघ्न डालने से ही विघ्न पड़ सकता है !' महिम ने मुंह लटकाते हुए कह डाला।

आनन्दमयी—'तुम जो भी कहो, मैं सब सह लूंगी, महिम ! परन्तु जिस बात में विघ्न हो, उसमें सम्मिलित होना मेरे वश की बात नहीं है।

यह मैं तुम्हारी भलाई के लिए ही कह रही हूँ।'

महिम ने नाराजी प्रकट करते हुए कहा—'अपनी भलाई मुझे स्वयं ही सोचने दो। जिस कार्य में तुम्हारे सोचने-समझने की आवश्यकता न पड़े, वही मेरे लिए होगा। मेरी भलाई की चिन्ता तुम शशिमुखी के विवाह के बाद खूब कर लेना। इस सम्बन्ध में क्या कहती हो?'

आनन्दमयी ने इसका कोई उत्तर न देकर एक लम्बी साँस खींची, तब जेब से पान का डिब्बा निकालकर तथा उसमें से एक बीड़ा अपने मुँह में रखते हुए महिम चले गये।

४५

ललिता ने परेश बाबू के पास आकर कहा, 'बाबूजी! हम लोग ब्राह्म हैं, इसलिए हिन्दू लड़कियाँ हमारे पास पढ़ने को नहीं आतीं। अतः सोचती हूँ कि यदि हिन्दू समाज के किसी व्यक्ति को इस कार्य में साथ ले लिया जाए, तो आसानी रहेगी। आपकी क्या राय है।'

'परन्तु, हिन्दू समाज का आदमी मिलेगा कहाँ से?' परेश बाबू ने पूछा।

'मिलेगा क्यों नहीं? विनय बाबू ही हैं न?'

'वे क्या तैयार हो सकेंगे?'

'तैयार तो हो सकते हैं।'

परेश बाबू कुछ देर मौन रहे। फिर बोले—'सब बातों पर विचार करने के पश्चात् वे कभी तैयार न होंगे।'

'तो क्या हमारा स्कूल किसी प्रकार न चल सकेगा, बाबूजी?'

'इस समय तो उसे चलाने में बहुत बाधाएँ दीख पड़ती हैं। प्रयत्न करने से अनेक अप्रिय बातें बल पकड़ने लगेंगी।'

ललिता फिर अधिक देर वहाँ न ठहरी। अपने कमरे में पहुँचने पर उसने देखा—उसके नाम डाक द्वारा एक पत्र आया था। हस्ताक्षर देखने पर पता चला, वह पत्र उसकी बचपन की सहेली शैलबाला का था। उसका विवाह हो चुका था और इस समय वह अपने पति के साथ बाँकीपुर में रह रही थी।

पत्र में लिखा था—

'तुम लोगों के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की बातें सुनकर चित्त बहुत व्यग्र हो उठा, अतः सोचा कि तुम्हें एक पत्र लिखकर समाचार पूछ लूँ—परन्तु अभी तक फुरसत ही नहीं मिली। परसों एक सज्जन से (जिनका नाम नहीं बताऊँगी) जो समाचार मिला, उससे तो मेरे ऊपर जैसे वज्र ही गिर पड़ा। मैंने वैसा होने की कल्पना भी नहीं की थी। परन्तु उन्होंने जो लिखा है, उस पर विश्वास भी नहीं किया जा सकता। उन्होंने लिखा है—'तुम्हारा विवाह किसी हिन्दू युवक के साथ होने की सम्भावना है यदि यह समाचार सत्य हो तो···।' आदि।'

ललिता का शरीर क्रोध के मारे काँपने लगा। उसी समय उसने उत्तर लिखा—'यह समाचार सत्य है अथवा नहीं, इस सम्बन्ध में तुम्हारा प्रश्न करना ही आश्चर्यजनक है। ब्राह्म-समाज के जिस व्यक्ति ने तुम्हें समाचार दिया है, क्या उसकी सत्यता की जाँच करने की भी आवश्यकता है? किसी हिन्दू युवक के साथ मेरा विवाह होने जा रहा है—यह सुनकर तुम्हारे सिर पर तो वज्र गिर ही पड़ा, परन्तु मैं तुमसे यह विश्वासपूर्वक कहती हूँ कि ब्राह्म-समाज में कुछ ऐसे प्रसिद्धि-प्राप्त साधु-युवक मौजूद हैं जिनके साथ विवाह होने की आशंका ही वज्रपात से अधिक भयानक सिद्ध हो सकती है। हाँ, मैं एक-दो हिन्दू युवकों को अवश्य जानती हूँ, जिनके साथ विवाह होना प्रत्येक ब्राह्म-कुमारी के लिए परम सौभाग्य एवं गौरव की बात होगी। इससे अधिक कुछ लिखना व्यर्थ है।'

उस दिन परेश बाबू का काम-काज दिनभर को बन्द हो गया। वे बड़ी देर तक चुप बैठे हुए कुछ सोचते रहे। फिर सुचरिता के घर जा पहुँचे। उनके उदास मुख को देखकर सुचरिता का हृदय हाहाकार कर उठा। उन्हें जो चिन्ता थी, उसे वह भली प्रकार जानती थी।

एकान्त में बैठकर, परेश बाबू ने सुचरिता से कहा—'बेटी, इस समय ललिता के सम्बन्ध में चिन्ता का विषय आ उपस्थित हुआ है।'

'मैं जानती हूँ बाबूजी!' सुचरिता ने उनके मुख की ओर करुणापूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा।

'मैं समाज-निन्दा की चिन्ता नहीं करता।' परेश बाबू बोले—'पर सोचता हूँ, अच्छा तो क्या ललिता···।'

सुचरिता ने सब मामले को समझते हुए कहा—'ललिता मुझसे अपने हृदय की सब बातों को स्पष्ट कह दिया करती थी, परन्तु पिछले कुछ दिनों

से वह अपने मन की थाह नहीं देती। मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि···।'

'ललिता के मन में कोई ऐसा भाव उत्पन्न हुआ है, जिसे वह स्वयं भी स्वीकार करना नहीं चाहती'—परेश बाबू ने बीच में बात काटते हुए कहा, 'मैं भी उसे ठीक नहीं सोच पाता हूँ कि उसकी क्या मीमांसा की जाय। अच्छा, तुम्हीं बताओ, विनय को अपने परिवार में आने देकर मैंने ललिता का कोई अनिष्ट किया है ?'

'विनय बाबू में तो कोई भी दोष नहीं है बाबूजी, यह आप मानते हैं,' सुचरिता बोली—'उनका स्वभाव एवं चरित्र निर्मल है। उन जैसे भद्र-पुरुष तो कम ही दीख पड़ते हैं।'

परेश बाबू ने जैसे किसी नवीन तत्त्व को पा लिया। वे बोले—'राधे, तुमने ठीक कहा! वे अच्छे आदमी हैं, या नहीं, यह देखने की बात है। अन्तर्यामी परमात्मा भी यही देखते हैं। विनय को सज्जन व्यक्ति समझने में भूल नहीं की, इसके लिए मैं उस जगदीश्वर को बार-बार प्रणाम करता हूँ।'

परेश बाबू में जैसे जान आ गई—एक गोरखधन्धा जो सुलझ गया था! वे अपने प्रभु के निकट अपराधी नहीं रहे, यह जानकर उनके मन की ग्लानि दूर हो गई। उन्हें आश्चर्य हुआ कि अभी तक वे इस अत्यन्त सरल बात को ठीक-ठीक न समझकर पीड़ा का अनुभव क्यों कर रहे थे। वे सुचरिता के मस्तक पर हाथ रखते हुए बोले—'बेटी, तुम्हारे पास आज मुझे एक नई शिक्षा मिली है।'

सुचरिता ने उसी समय उनके पैर छूते हुए कहा—'न बाबूजी! यह आप क्या कह रहे हैं ?'

'सम्प्रदाय ऐसी चीज है, जो यह भुला देता है कि सब मनुष्य, मनुष्य ही हैं। सत्य की उपेक्षा कर, मनुष्य स्वयं ही हिन्दू, ब्राह्म, मुसलमान आदि गढ़े हुए नामों का समाज बनाकर अपने लिए एक भूल-भुलैया तैयार कर लेता है। मैं अभी तक उसी में भटक रहा था।'—परेश बाबू ने सहज भाव से कहा। फिर कुछ देर मौन रहकर बोले—'कन्या पाठशाला का विचार छोड़ने के लिए ललिता किसी प्रकार तैयार नहीं है। वह विनय से सहायता लेने के लिए मेरी सम्मति माँगती है।'

सुचरिता ने कहा, 'न, बाबूजी! अभी कुछ दिन यों ही रहने दीजिये।'

'क्या, रहने क्यों दिया जाये ?'

'अभी माँ बहुत नाराज हो जायेंगी।'

परेश बाबू ने विचार किया—'सुचरिता ठीक ही तो कहती है।'

४६

चार दिन पश्चात् एक चिट्ठी लिये, हारान बाबू वरदासुन्दरी के पास जा पहुँचे। परेश बाबू से अब उन्हें कोई आशा न रही थी।

वरदासुन्दरी के हाथ में वह चिट्ठी देते हुए हारान बाबू ने कहा—'मैंने आप लोगों को पहले ही सावधान करने का प्रयत्न किया था। अब इस पत्र को देखकर आप समझ जायेंगी कि मामला कहाँ से कहाँ जा पहुँचा है।'

ललिता ने शैलबाला को उत्तर लिखा था, यह वही पत्र था। वरदासुन्दरी उसे पढ़कर बोलीं—'आप ही कहिये, मैं यह कैसे जान सकती हूँ? जिसकी मैंने कल्पना भी नहीं की, वह हो रहा है, परन्तु इसके लिए आप लोग मुझे दोष न दें। सुचरिता को आप सबने ही इतना सिर पर चढ़ा रखा था। अब उस आदर्श ब्राह्म-कुमारी की कीर्ति को आप ही सँभालें। विनय और गोरा को वही इस घर में लाई। विनय को तो मैं बहुत कुछ अपने मार्ग पर ही ले आई थी, परन्तु न जाने कहाँ से वह अपनी एक मौसी को ले आई, जिसने हमारे घर में आकर मूर्ति-पूजा को ही आरम्भ कर दिया। विनय को भी उसने ऐसा बिगाड़ दिया कि अब मुझे देखते ही भाग जाता है। इस सब घटनाक्रम की जड़ में आपकी वह सुचरिता ही है। मैंने जो उसे अपनी बेटी से भी अधिक पाला-पोसा, उसी का यह फल अब देखने को मिला है। अब मुझे यह चिट्ठी दिखाना बेकार है, आप लोगों को जो उचित जान पड़े, वह करो, मैं कुछ नहीं जानती।'

हारान बाबू ने आज स्पष्टतया यह स्वीकार करके कि अब तक उन्होंने वरदासुन्दरी को पहिचाना नहीं था, उदार-भाव से पश्चात्ताप प्रकट किया। अन्त में, परेश बाबू को बुलाकर, उनके हाथ में वह पत्र दे दिया। परेश बाबू ने उसे दो-तीन बार बढ़ने के उपरान्त कहा—'फिर क्या हुआ?'

वरदासुन्दरी तेज होकर बोलीं—'और क्या होना चाहिये? अब रह ही क्या गया? ठाकुर-पूजा, जाति-पाँति सभी तो हो गया, अब केवल किसी हिन्दू के घर में तुम्हारी लड़की का विवाह होना ही शेष रह गया है। वह भी हो जाये—बस! उसके पश्चात् तुम भी प्रायश्चित करके हिन्दू समाज में प्रविष्ट हो जाना, परन्तु मैं कहे देती हूँ...।'

परेश बाबू हँसते हुए बीच में बोल उठे, 'तुम्हें कुछ भी न कहना होगा। तुम क्यों यह निश्चिय किए बैठी हो कि ललिता का विवाह किसी हिन्दू के घर में हो गया है। इस पत्र में तो वैसी कोई बात भी नहीं दीख पड़ती।'

वरदासुन्दरी—'तुम कैसे देख पाओगे, यह तो मैं आज तक नहीं समझ सकी। परन्तु यदि तुम देख पाते तो ऐसी बड़ी घटना कभी नहीं घट पाती। किसी पत्र में इससे अधिक और लिखा भी क्या जा सकता है?'

हारान बाबू बोले—'यदि ललिता को ही यह चिट्ठी दिखाकर, उसका अभिप्राय जाना जाये तो कहीं अधिक उचित रहेगा। आप लोग आज्ञा दें तो मैं ही उससे पूछ भी सकता हूँ।'

उस समय वहाँ बवण्डर की भाँति प्रवेश करते हुए ललिता ने कहा—'बाबू जी, देखिए। आजकल ब्राह्म-समाज से इस प्रकार की गुमनाम चिट्ठियाँ आ रही हैं।' परेश बाबू ने चिट्ठी लेकर पढ़ी।

विनय के साथ ललिता का विवाह गुप्त रूप से निश्चित हो गया है—यह मानकर, पत्र-लेखक ने भाँति-भाँति की भर्त्संना, धमकी तथा उपदेशों के साथ यह लिखा था कि विनय की नीयत अच्छी नहीं है। वह ब्राह्म-समाज की स्त्री को दो दिन बाद ही त्यागकर फिर किसी हिन्दू घर में विवाह कर लेगा—आदि।

परेश बाबू के पढ़ चुकने पर वह पत्र हारान बाबू ने पढ़ा। तत्पश्चात् ललिता से कहा—'इस पत्र को पढ़कर तुम्हें क्रोध आता है, परन्तु क्या इस पत्र के लिखने का कारण तुम्हीं ने उपस्थित नहीं कर दिया है? कहो, तुमने यह पत्र अपने हाथ से किस प्रकार लिखा है?'

क्षण-भर को दूसरी चिट्ठी देखकर ललिता स्तब्ध खड़ी रही, फिर बोली—'सम्भवत: इस सम्बन्ध में आपका पत्र-व्यवहार शैलबाला के साथ चल रहा है?'

हारान बाबू ने कोई स्पष्ट उत्तर न देते हुए कहा—'ब्राह्म-समाज के प्रति अपने कर्तव्य को ध्यान में रखकर ही शैल तुम्हारे इस पत्र को भेज देने के लिए बाध्य हुई है।'

ललिता तनकर खड़ी हो गई, बोली—'अब ब्राह्म-समाज जो कहना चाहता हो, कह डाले।'

हारान बाबू ने कहा—'तुम्हारे और विनय बाबू के सम्बन्ध में जो

अफवाह फैल रही है, यद्यपि उस पर मुझे कोई विश्वास नहीं है, परन्तु मैं उसका स्पष्ट प्रतिवाद तुम्हारे ही मुख से सुनना चाहता हूँ।'

ललिता की आँखें अंगारे की भाँति जलने लगीं। उसने अपने काँपते हुए हाथों से कुर्सी को जोर से पकड़ते हुए कहा—'वैसे, किसी भी तरह विश्वास नहीं कर सकते क्या ?'

तभी परेश बाबू ने ललिता की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—'ललिता, तुम्हारा मन इस समय स्थिर नहीं है। यह बातचीत फिर मेरे साथ होगी—अभी रहने दो।'

हारान बोले—'परेश बाबू, आप बात को दबाने का प्रयत्न मत कीजिये।'

ललिता ने फिर क्रोध से काँपते हुए कहा—'बाबूजी दबा देने का प्रयत्न करेंगे ? वे तुम लोगों की तरह समय के प्रकाश से नहीं डरते। वे सत्य को ब्राह्म-समाज से भी बड़ा मानते हैं। मैं स्पष्ट कहती हूँ कि विनय के साथ अपने विवाह को मैं तनिक भी असम्भव अथवा अन्याय नहीं मानती।'

वरदासुन्दरी अभी तक चुप थीं। वे चाहती थीं कि हारान बाबू के सम्मुख अपना अपराध स्वीकार करके परेश बाबू पश्चात्ताप प्रकट करें परन्तु अब वे अधिक मौन न रह सकीं। बोलीं—'ललिता, तू क्या कह रही है, पागल हो गई है क्या ?'

ललिता बोली—'यह पागलपन की बात नहीं है। मैं खूब सोच-समझकर ही कह रही हूँ। इस प्रकार मुझे लोग चारों ओर से बाँधना चाहेंगे तो मैं बँध न सकूँगी। हारान बाबू जैसे के समाज के सम्बन्ध से मैं अपने आप को मुक्त कर डालूँगी।'

हारान बाबू बोले—'तुम उच्छृंखलता को मुक्ति कह रही हो ?'

ललिता—'न, नीचता के आक्रमण तथा असत्य की दासता से छुटकारा पाने को ही मैं मुक्ति कहती हूँ। मैं जहाँ कोई अन्याय, कोई अधर्म नहीं देखती, वहाँ ब्राह्म-समाज मेरे लिए विघ्न स्वरूप कैसे बन सकेगा ?'

हारान बाबू बोले—'देख लीजिए परेश बाबू, मैं जानता था कि अन्त में ऐसी ही घटना घटेगी, मैंने यथा-सम्भव आप लोगों को सावधान करने का प्रयत्न किया, परन्तु कोई लाभ न हुआ।'

ललिता बोली—'देखिये, मैं आपको भी सावधान किये देती हूँ, कि

जो व्यक्ति आपकी अपेक्षा सब बातों में बड़े हैं, उन्हें सावधान करने का अहंकार आप अपने मन में मत रखियेगा।'

ललिता इतना कहकर चली गई।

वरदासुन्दरी बोलीं—'यह सब क्या हो रहा है? अब क्या होना चाहिये उसका विचार करो।'

परेश बाबू ने कहा—'कर्तव्य का ही पालन किया जाएगा। इस प्रकार उपद्रव से कर्तव्य निश्चित न होगा। मुझे क्षमा करो, इस विषय में मुझसे कुछ न बोलो। मैं कुछ देर एकान्त में बैठना चाहता हूँ।'

४७

सुचरिता सोच रही थी—'ललिता ने यह क्या किया?' कुछ देर मौन रहने के उपरान्त उसने ललिता की गर्दन में हाथ डालते हुए कहा—'बहिन, मुझे तो डर लग रहा है।'

'काहे का?' ललिता ने पूछा।

'यही कि इधर ब्राह्म-समाज में तो चारों ओर हलचल मची हुई है, उधर विनय बाबू तैयार न हुए तो?'

'वे अवश्य तैयार होंगे!' ललिता ने सिर झुकाते हुए दृढ़ स्वर में कहा।

'तू जानती ही है, बहिन, हारान बाबू माँ से स्पष्ट कह गए हैं कि विनय बाबू इस विवाह के लिए अपना समाज छोड़ने को कभी तैयार न होंगे। तुमने सब पहलुओं पर विचार किये बिना, हारान बाबू के सामने यह बात क्यों कह डाली?'

'कह डालने के लिए मुझे कोई पछतावा नहीं है, दीदी'—ललिता बोली—'हारान बाबू ने सोचा होगा कि वे तथा उनका समाज, शिकार के जानवर की भाँति पीछा करते हुए मुझे समुद्र तट तक ले आये हैं, अतः अब मुझे आत्मसमर्पण करने के लिए विवश होना ही पड़ेगा। परन्तु वे यह नहीं समझते कि मैं इस समुद्र में कूद पड़ने से भी डरने वाली नहीं हूँ। मैं तो उन शिकारी कुत्तों के पीछा करने से ही भय खाती हूँ।'

'अच्छा, एक बार बाबूजी से भी सलाह कर देखूं?'

'बाबूजी कभी भी शिकारियों के दल में सम्मिलित न होंगे। यह मैं दृढ़तापूर्वक कह रही हूँ'—ललिता बोली—'उन्होंने हमें कभी बन्धन में नहीं

बाँधना चाहा। किसी समय उनके मत से जब हमारी राय नहीं मिलती, तो क्या वे इसके लिए नाराज होते हैं? ब्राह्म-समाज की दुहाई देकर, उन्होंने कभी हमारा मुँह बन्द नहीं किया। माँ कितनी ही बार नाराज हुईं। परन्तु केवल यही भय रहा कि कहीं हम अपने सोचने-विचारने का साहस न खो बैठें। इस प्रकार जब उन्होंने हमें मनुष्य बनाया है तो क्या वे हारान बाबू जैसे समाज के जेल-दरोगा के हाथों में हमें यों ही सौंप देंगे?'

'माना कि बाबूजी ने कोई बाधा न डाली तो फिर उसके बाद क्या किया जायेगा?'

'यदि तुम लोग कुछ न करोगे, तो अन्त में मैं स्वयं ही···।'

सुचरिता ने व्यग्र होकर कहा—'न, न! तुझे कुछ नहीं करना होगा, बहिन! मैं ही इसका कुछ उपाय करूँगी।'

शाम को सुचरिता परेश बाबू के पास जाने को उद्यत हो ही रही थी तभी वे उसके पास आ उपस्थित हुए।

परेश बाबू ने बड़े कोमल स्वर में कहा—'राधे, सब सुन तो लिया ही होगा?'

'हाँ, बाबूजी!' सुचरिता बोली—'सब कुछ सुन लिया है, परन्तु आप इतने चिन्तित क्यों हैं?'

'मैं कुछ और नहीं सोचता। ललिता ने तो तूफान खड़ा कर दिया है, उन सब आघातों को वह सह भी सकेगी या नहीं—यही चिन्ता है।'

'समाज की कोई उत्पीड़न ललिता को परास्त नहीं कर सकती, बाबूजी! यह मैं दृढ़तापूर्वक कहती हूँ।'

'मैं इस बात को भली-भाँति जानना चाहता हूँ कि ललिता किसी क्रोध के आवेश में तो वह उद्धत-विद्रोह प्रकट नहीं कर रही है?'

'नहीं बाबूजी!'—सुचरिता ने सिर झुकाकर कहा—'यदि यह बात होती तो मैं उसकी कोई बात नहीं सुनती। उसके हृदय में जो बात जमी हुई थी, वही आघात पाकर एक साथ बाहर निकल पड़ी है। ललिता जैसी लड़की के प्रति उस बात को किसी प्रकार दबा देना अब उचित न होगा। बाबूजी, विनय बाबू बड़े अच्छे व्यक्ति हैं।'

'तो क्या विनय ब्राह्म-समाज में आने को तैयार हो जाएगा?'

'यह तो मैं ठीक-ठीक नहीं कह सकती। कहें तो मैं एक बार गोरा की माँ के पास हो आऊँ?'

'मैं भी यही सोच रहा था कि उनके पास हो आना ठीक ही रहेगा'—परेश वाबू बोले।

४८

विनय आनन्दमयी के घर से प्रतिदिन सुबह के समय एक बार अपने घर जाता था। आज घर पहुँचने पर उसे एक पत्र मिला। पत्र में किसी का नाम नहीं था। उसमें केवल यही लम्बा-चौड़ा उपदेश लिखा था कि विनय का ललिता के साथ विवाह करना किसी प्रकार सुखदायी न होगा तथा वह ललिता के लिए भी अमंगल का कारण बन जाएगा। अन्त में यह लिखा था कि इतने पर भी यदि विनय ललिता से विवाह करने का विचार न बदले, तो पहले यह सोचकर भी देख ले कि ललिता का फेफड़ा कमजोर है और डॉक्टर लोग उसे क्षय रोग होने की आशंका करते हैं।

इस गुमनाम पत्र को पाकर वह हतबुद्धि-सा रह गया। उसने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि कोई इस प्रकार की झूठी बात भी उड़ाई जा सकती है। सामाजिक वाधाओं के कारण विनय का विवाह ललिता के साथ किसी भी प्रकार नहीं हो सकता था, फिर भी जब उसे ऐसी चिट्ठी मिली, तो उसे अनुभव हुआ कि निस्सन्देह इस धारणा को लेकर समाज में वहुत कुछ चर्चायें चल रही होंगी। समाज के सम्मुख ललिता को इस प्रकार अपमानित होते हुए जानकर विनय का मन क्षोभ से भर गया।

जिस समय विनय चंचल होकर बरामदे में टहल रहा था, उसी समय उसने देखा कि हारान वाबू उसी के पास चले आ रहे हैं। उसने यह भी जान लिया कि उस गुप्त पत्र के पीछे कोई बहुत बड़ी हलचल अवश्य उपस्थित है।

अन्य दिनों की भाँति विनय ने आज अपनी स्वाभाविक प्रगल्भता प्रकट की। हारान बाबू को एक कुर्सी पर बिठाकर उनके कुछ कहने की प्रतीक्षा करने लगा।

तभी हारान बाबू ने कहना आरम्भ किया—'विनय बाबू, आप हिन्दू हैं न?'

'हिन्दू तो हूँ ही!'—विनय बोला।

'तो आप मेरे प्रश्न से नाराज न होइयेगा। कोई-कोई समय ऐसे भी

आते हैं, जब हम अपने चारों ओर की अवस्था पर विचार किए बिना ही अन्धे होकर चलने लगते हैं—इससे संसार में दुःख का जन्म होता है। यदि एक ही स्थान पर कोई ऐसे प्रश्न करे कि, 'हम क्या हैं, हमारी सीमा कहाँ है, हमारे आचरण का फल कहाँ तक पहुँचेगा, तो आप उस अप्रिय सत्य कहने वाले प्रश्नकर्त्ता को अपना मित्र ही मानियेगा'—हारान बाबू एक ही स्वर में कह गये।

विनय ने हँसने की चेष्टा करते हुए कहा—'इतनी भूमिका न बाँधकर आपको मुझसे जो पूछना हो, वह अपने को पूर्णतः निरापद जानकर पूछ सकते हैं।'

'मैं आपके ऊपर किसी अपराध का दोषारोपण करना नहीं चाहता'—हारान बाबू बोले—'परन्तु विवेचना की त्रुटि का फल विषैला भी हो सकता है। यह बात यदि आप से न भी कही जाये तो भी आप समझ जायेंगे।'

'जिसे कहने की आवश्यकता न हो, उसे न कहें, परन्तु जो वास्तविकता हो, उसे तो प्रकाशित कीजिये ही।' विनय ने कहा।

'आप हिन्दू हैं, अपने समाज को छोड़ना भी आपके लिए असम्भव है, —हारान बाबू बोले—'तब परेश बाबू के परिवार में आपका जाना किस प्रकार उचित हो सकता है? इससे उनकी लड़कियों के विषय में समाज में अप्रिय बातें जोर पकड़ती हैं।'

विनय कुछ देर गम्भीर बना रहा। फिर बोला—'हारान बाबू के समाज के व्यक्ति किस घटना का क्या अर्थ निकालते हैं, यह बहुत कुछ उनके स्वभाव पर निर्भर करता है। मैं उनका उत्तरदायित्व अपने ऊपर नहीं ले सकता। परेश बाबू की लड़कियों के सम्बन्ध में भी यदि आपके समाज में कोई ऐसी बात उठना सम्भव हो, तो उसमें लज्जा का जितना विषय आप लोगों के लिए है उतना लड़कियों के लिए नहीं है।'

'यदि कोई कुमारी अपनी माँ को छोड़कर किसी बाहरी पुरुष के साथ जहाज भ्रमण के लिए अकेली चल दे तो उस सम्बन्ध में भी कुछ विचार करने का अधिकार समाज को है अथवा नहीं? आप बताइये।' हारान बाबू ने कहा।

'आप लोग भी यदि बाहरी घटना को भीतरी अपराध का स्थान दें तो फिर आपको हिन्दू समाज छोड़कर ब्राह्म-समाज में आने की क्या आवश्यकता थी? इन बातों के लिए मैं बहस करना आवश्यक नहीं

समझता। मुझे जो कहना है, उसका निश्चय मैं स्वयं करूँगा। इस सम्बन्ध में आप मेरी कोई सहायता नहीं कर सकते।'

'मैं भी आपसे अधिक कुछ नहीं कहना चाहता।' हारान बाबू ने उत्तर दिया—'इस समय आपको परेश बाबू के परिवार से दूर ही रहना चाहिये, अन्यथा यह अन्याय होगा। आप लोगों को यह पता भी नहीं है कि परेश बाबू के हृदय में एक प्रबल अशान्ति उत्पन्न करके आप लोगों ने उनका कितना बड़ा अनिष्ट किया है।'

हारान बाबू के चले जाने पर विनय के हृदय में एक महान वेदना शूल की भाँति चुभ उठी।

४९

जिस समय हारान बाबू विनय के घर आये, ठीक उसी समय आनन्दमयी के पास जाकर अविनाश ने यह समाचार सुनाया कि ललिता के साथ विनय का विवाह पक्का हो गया है।

आनन्दमयी बोलीं—'यह बात सत्य नहीं हो सकती।'

'सत्य नहीं हो सकती ?' अविनाश ने कहा—'उसके लिए ऐसा करना क्या असम्भव है ?'

'मैं यह नहीं जानती, परन्तु इस बात को विनय मुझसे कभी नहीं छिपाता !' आनन्दमयी बोलीं।

अविनाश ने यह बार-बार कहा कि उसे यह खबर ब्राह्म-समाज के एक खास व्यक्ति से मिली है तथा पूर्ण विश्वसनीय भी है। वह इस बात को बहुत पहले से जानता था कि विनय का यही शोचनीय परिणाम होगा, यहाँ तक कि उसने इस सम्बन्ध में कई बार गोरा को भी सावधान कर दिया था। आनन्दमयी को यह समाचार सुनाने के बाद अविनाश ने महिम को भी यह खबर जा सुनाई।

आज विनय जब आया तो आनन्दमयी उसकी मुखाकृति देखकर ही समझ गईं कि उसके हृदय में कोई गहरी चोट लगी है। भोजन कराने के उपरान्त वे उसे अपने कमरे में ले पहुँचीं और कहने लगीं—'विनय, तुझे क्या हो गया है ?'

'इस चिट्ठी को पढ़कर देखो, माँ।' विनय ने कहा।

आनन्दमयी के पत्र लेने के वाद विनय फिर वोला—'हारान बाबू आज सुवह मेरे घर आये थे। वे मुझसे बहुत बातें कह गये हैं।'

'क्यों ?' आनन्दमयी ने पूछा।

'उनका कहना है कि मेरा आचरण ही परेश वावू के परिवार की निन्दा का कारण बन गया है।'

'लोग कहते हैं कि तेरा विवाह ललिता के साथ पक्का हो गया है, इस सम्बन्ध में मुझे तो कोई निन्दा की वात नहीं दीखती।'

'यदि ऐसा हो सकता तो कोई वात नहीं थी, परन्तु जहाँ ऐसा होने की कोई सम्भावना ही नहीं है, वहाँ ललिता के सम्बन्ध में ऐसी बातें उड़ाना कितनी वड़ी नीचता है, तुम्हीं सोचो।'

'परन्तु, यदि तुझमें पुरुषार्थ हो तो तू इस निन्दा एवं अपमान से ललिता की रक्षा कर सकता है।'

'सो कैसे माँ ?'

'उसके साथ विवाह करके !'

'माँ, यह तुम क्या कह रही हो ? अपने विनय को तुम क्या समझती हो, यह मैं नहीं जान सका। क्या तुम यह समझती हो कि मेरे एक वार 'हाँ' कह देने मात्र से सव बातें वन्द हो जायेंगी—क्या सब लोग केवल मेरी ही ओर दृष्टि लगाये वैठे हैं ?'

'मैं इतनी बातें सोचने की आवश्यकता नहीं देखती। तू जो कुछ कर सकता है, उसे करने से अपना कर्तव्य पूरा कर देगा। तू कह सकता है कि मैं ललिता के साथ विवाह करने को प्रस्तुत हूँ।'

'मैं ऐसी अमंगल बात कहूँगा तो क्या वह ललिता के लिए अपमान-जनक न होगी ?'

'तू असंगत क्यों कहेगा ? जब तुम दोनों के विवाह की अफ़वाह उड़ ही चुकी है, तब यह निश्चय समझ लो कि यह संगत समझकर ही उड़ाई गई है। मैं कहती हूँ, तुझे इसमें कोई संकोच नहीं करना चाहिये।'

'परन्तु गोरा का भी तो ख्याल करना पड़ेगा !'

'इस सम्बन्ध में उसका ख्याल करने की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं जानती हूँ कि वह नाराज होगा और यह भी नहीं चाहती कि वह तुम पर नाराज हो, परन्तु फिर भी तू क्या करेगा ? यदि तेरी ललिता के ऊपर श्रद्धा है तो तू उसे समाज में अपमानित होने देना कभी पसन्द नहीं करेगा।'

'माँ ! मैं तुम्हें जितना देखता हूँ, उतना ही आश्चर्यचकित हो जाता हूँ। तुम्हारा हृदय इतना निर्मल क्यों है ? तुम्हें पैरों से नहीं चलना पड़ता ? ईश्वर ने तुम्हें आँख दे रखी हैं, तुम संसार-रूपी मार्ग पर चलने में कहीं भी तो नहीं अटकतीं !'

आनन्दमयी हँसकर बोलीं—'मुझे अटकाने के लिए ईश्वर ने कोई सामग्री ही नहीं छोड़ी। मेरा मार्ग तो उसने एकदम साफ कर रखा है।'

'परन्तु माँ !' विनय ने कहा—'मैं मुँह से चाहे जो कुछ कह लूँ परन्तु मेरा मन अवश्य अटक जाता है। मैं इतना पढ़ता-लिखता, बहस करता तथा समझता-बूझता हूँ, परन्तु मुझे अचानक दिखाई देता है कि फिर भी मेरा मन निरा मूर्ख ही बना हुआ है।'

इसी समय वहाँ महिम ने आकर ललिता के सम्बन्ध में ऐसे उजड्डपन की बातें बकनी आरम्भ कर दीं, जिन्हें सुनकर विनय का हृदय संकोच से पीड़ित हो उठा। वह चुपचाप बैठा रहा। महिम उन दोनों के प्रति अत्यन्त अपमानजनक बातें बकने के उपरान्त, कुछ देर बाद वापिस लौट गया।

इस प्रकार चारों ओर से विनय को लाँछित होते देखकर आनन्दमयी ने कहा—'विनय ! जानता है, अब तुझे क्या करना चाहिये ?'

विनय ने मस्तक उठाकर उनके मुँह की ओर देखा। वे बोलीं—'तुझे एक बार परेश बाबू के पास जाना चाहिये। उनसे बातचीत करने पर सब मामला स्पष्ट हो जायेगा।'

५०

आनन्दमयी को अचानक आया हुआ देखकर सुचरिता ने चकित होकर कहा—'मैं आपके ही पास जाने की तैयारी कर रही थी।'

आनन्दमयी हँसकर बोलीं—'तुम मेरे पास आने की तैयारी कर रही थीं या नहीं, यह मैं नहीं जानती, परन्तु जिस बात के लिए तुम चाहती थीं, उसका समाचार पाकर मुझसे नहीं रहा गया, इसीलिए यहाँ चली आई।'

आनन्दमयी को समाचार मिलने की बात सुनकर, सुचरिता को वास्तव में आश्चर्य हुआ। आनन्दमयी बोलीं—'बेटी, विनय को मैं अपने लड़के की तरह ही मानती हूँ। पहले उसी विनय के द्वारा तुम लोगों की प्रशंसा सुनकर, मैंने तुम्हें बिना देखे हुए भी मन-ही-मन कितने ही आशीर्वाद दिये थे। अब

उस विनय द्वारा तुम्हारे प्रति कोई अन्याय होने की बात सुनकर मैं भला कैसे स्थिर रहती ? मेरे द्वारा तुम्हारा कोई उपकार हो सकेगा, इसे तो मैं नहीं जानती, परन्तु मन कुछ अजीव-सा हो उठा था, इसीलिएँ यहाँ चली आई हूँ। सच कहना वेटी, क्या विनय की ओर से कोई अन्याय हुआ है ?'

'कुछ भी तो नहीं'—सुचरिता ने कहा—'जिस बात को लेकर हलचल मच रही है, उसकी जिम्मेदार तो ललिता ही है। विनय बाबू ने कभी यह कल्पना भी नहीं की थी कि ललिता बिना किसी से कुछ कहे-सुने अचानक ही स्टीमर पर चली जायेगी। परन्तु लोग इस बात को इस प्रकार उड़ा रहे हैं, जैसे इस सम्बन्ध में दोनों ने पहले कोई गुप्त सलाह कर रखी थी। इधर ललिता ऐसी तेजस्विनी लड़की है कि वह इस सम्बन्ध में किसी प्रकार का प्रतिवाद करके, किसी से कुछ कहना ही नहीं चाहती कि वास्तविकता आखिर थी क्या ?'

'इसके लिए तो कोई उपाय करना ही होगा'—आनन्दमयी ने कहा—'इन बातों को सुनकर विनय के हृदय में तो जरा भी शान्ति नहीं रही। इस सम्बन्ध में वह स्वयं को ही अपराधी समझे बैठा है।'

सुचरिता ने अपना मुख नीचे झुकाकर कहा—'क्या आप समझती हैं कि विनय बाबू···?'

आनन्दमयी उसके संकोच को देखकर बीच में ही बोल उठीं—'बेटी, ललिता विनय से जो करने को कहेगी, उसे वह निस्सन्देह स्वीकार करेगा। मैं उसे बचपन से देखती आई हूँ। वह जिसका हो जाता है, उसे अपना सर्वस्व समर्पित कर देता है। इसीलिए मुझे भय रहता है कि उसका मन किसी ऐसे स्थान पर न चला जाये, जहाँ से उसे फिर कुछ भी मिलने की आशा न की जा सके।'

सुचरिता के हृदय से जैसे एक बोझ हट गया। बोली—'ललिता की स्वीकृति के लिए आपको कोई चिन्ता न करनी पड़ेगी। परन्तु, क्या विनय बाबू अपना समाज छोड़ने को प्रस्तुत हो सकेंगे ?'

'समाज चाहे उसका त्याग कर दे, परन्तु वह समाज का त्याग क्यों करने लगा ? इसकी आवश्यकता भी क्या है बेटी ?' आनन्दमयी ने पूछा।

'यह आप क्या कह रही हैं ? विनय बाबू हिन्दू रहते हुए भी क्या ब्राह्म-समाज की लड़की से विवाह कर लेंगे ?'

'यदि वह ऐसा करने को तैयार हो तो उसमें तुम लोगों को क्या

आपत्ति होगी ?'

सुचरिता इस झमेले को न समझ सकी। बोली—'मैं नहीं समझती कि यह किस प्रकार सम्भव हो सकेगा ?'

आनन्दमयी—'पर बेटी, मैं खूब समझती हूँ। देखो, मैं अपने घर के नियम को नहीं मानती, इसीलिए लोग मुझे क्रिस्तानी कहते हैं। अपनी इच्छा से ही मैं प्रत्येक काम-काज के समय अलग रहती हूँ। तुम आश्चर्य करोगी कि गोरा मेरे कमरे में पानी तक नहीं पीता, परन्तु क्या इसीलिए मैं यह कह दूँ कि यह मेरा घर और समाज नहीं है ? सब निन्दा और अपमान को सहकर भी मैं अपने ही उसी समाज में बनी हुई हूँ। इससे मेरा कोई काम नहीं अटकता। जो मेरा है उसे अन्त तक अपना ही कहूँगी, चाहे वह स्वयं मुझे स्वीकार न करे।'

सुचरिता अब भी ठीक से नहीं समझ सकी। बोली—'परन्तु, ब्राह्म-समाज चाहता है कि विनय बाबू···।'

'उसका मत भी तो उसी प्रकार है'—आनन्दमयी ने कहा—'ब्राह्म-समाज का मत कोई संसार से निराला मत नहीं है। तुम्हारे पत्रों में जो उपदेश प्रकाशित होते रहते हैं, विनय उन्हें पढ़कर मुझे सुनाया करता है। मुझे तो उनमें कहीं कोई अन्तर नहीं जान पड़ता।'

इसी समय 'दीदी' कहकर कमरे में प्रवेश करती हुई ललिता आनन्दमयी को बैठी देख लज्जा से लाल हो उठी। सुचरिता का मुँह देखते ही उसने समझ लिया कि उसी के विषय में कोई चर्चा चल रही थी, परन्तु उस समय वहाँ से निकल भागने का भी तो कोई चारा न था।

तभी आनन्दमयी बोल उठीं—'आओ बेटी ललिता, आओ।'

इतना कह, उन्होंने ललिता को हाथ पकड़कर अपने पास बैठाया जैसे अब वह किसी विशेष प्रकार से उनकी अपनी हो चुकी हो।

तत्पश्चात् पहली ही बातचीत का सिलसिला आरम्भ करते हुए आनन्दमयी ने सुचरिता से कहा—'देखो बेटी, भले के साथ बुरे का मिलना ही कठिन है, परन्तु तो भी संसार में उनका मिलन देखा जाता है। यही नहीं सुख-दुःख में भी वे साथ ही रहते हैं। जब यह सम्भव है, तब जहाँ केवल मत का थोड़ा-सा अन्तर हो, वहाँ उस थोड़े-से अन्तर के कारण वे दो व्यक्ति जिनके हृदय परस्पर मिल चुके हों, क्यों नहीं मिल सकते ? मनुष्य का वास्तविक मेल क्या मत पर ही आधारित है ?'

सुचरिता मस्तक झुकाये बैठी रही।

आनन्दमयी ने फिर कहा—'क्या तुम्हारा ब्राह्म-समाज भी एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य से नहीं मिलने देगा? जिन्हें ईश्वर ने भीतर से एक कर दिया, क्या उन्हें तुम्हारा समाज बाहर से अलग रख सकेगा?'

इस विषय को लेकर आनन्दमयी जिस उत्साह के साथ बातें कर रही थीं, वह केवल ललिता तथा विनय के बीच विवाह की बाधा दूर करने के लिए ही नहीं थीं। उनकी इच्छा थी कि सुचरिता यह भली-भाँति जान ले कि यदि वह ऐसे ही संस्कारों में फँसी रही तो किसी प्रकार काम नहीं चल सकेगा। 'विनय के ब्राह्म होने पर ही उसका विवाह ललिता के साथ हो सकता है।'—यदि इस सिद्धान्त को बल मिला तो आनन्दमयी ने पिछले कुछ दिनों से जो आशा बाँध रखी थी, वह तो मिट्टी में ही मिल जायेगी।

आज विनय ने जब आनन्दमयी से यह प्रश्न किया था, 'माँ! क्या मुझे ब्राह्म-समाज में नाम लिखाना ही होगा और क्या मुझे वह स्वीकार करना ही पड़ेगा?' तो उस समय आनन्दमयी ने उसे उत्तर देते हुए कहा था—'नहीं तो, इसकी तो मैं कोई आवश्यकता नहीं समझती।'

फिर जब विनय ने पूछा—'यदि वे लोग हठ करें, दबाव डालें, तब?'

आनन्दमयी ने कुछ देर चुप रहकर कहा था—'यह दबाव नहीं डाला जा सकता। दबाव चलेगा भी नहीं।'

आनन्दमयी की इस आलोचना में सुचरिता सम्मिलित नहीं हुई। वह चुपचाप बैठी रही। तब आनन्दमयी ने अनुभव किया, जैसे सुचरिता का मन अभी भी उसकी बात को स्वीकार नहीं करता।

वे सोचने लगीं—'इस गोरा के स्नेह के कारण ही तो मेरा मन समाज के सब संस्कार को त्याग सका है तो क्या सुचरिता गोरा को नहीं चाहती? यदि चाहती होती तो यह छोटी-सी बात उसके लिए इतनी बड़ी न हो उठती।'

आनन्दमयी का हृदय कुछ उदास हो गया। गोरा के जेल से छूटने में अब दो ही दिन शेष थे। वे अपने मन में सोच रही थीं, जैसे अब सुख का एक क्षेत्र प्रस्तुत हो रहा है। अब की बार तो गोरा को बन्धन में बाँधना ही पड़ेगा, परन्तु उसे बाँधना कोई सरल कार्य नहीं है। हिन्दू समाज की किसी लड़की के साथ गोरा का विवाह करना अन्याय ही होगा। इसीलिए उन्होंने अनेक कन्याओं के पिताओं से गोरा के विवाह के लिए इन्कार कर

दिया था। गोरा कहता था, 'मैं विवाह न करूंगा।' आनन्दमयी तब भी उसका कोई प्रतिवाद नहीं करती थीं। परन्तु उन दिनों गोरा के लक्षण देखकर उन्हें मन में कुछ सन्तोष हो उठा था। इसीलिए सुचरिता के मौन-विरोध से उनके हृदय को बड़ी ठेस लगी। परन्तु वे सहज ही में हारने वाली स्त्री नहीं थीं। उन्होंने मन में कहा—'सब देखा जायगा।'

५१

परेश बाबू बोले—'विनय, मैं नहीं चाहता कि तुम एक संकट से ललिता का उद्धार करने के लिए कोई दुस्साहसिक कार्य कर बैठो। आज जो भाँति-भाँति की अफवाहें फैल रही हैं, दो दिन बाद किसी को उनकी याद भी नहीं रहेगी।'

ललिता के प्रति अपना कर्तव्य पालन करने के निमित्त आज विनय कटिबद्ध होकर आया था। वह जानता था कि इस समाज में इस विवाह से विरोध उत्पन्न होगा। इससे भी बढ़कर उसे गोरा के क्रोध करने का भय था, फिर भी कर्तव्य की दुहाई देकर उसने इन सब अप्रिय कल्पनाओं को अपने हृदय से निकाल फेंका था। ऐसी अवस्था में जब परेश बाबू ने उसकी कर्तव्य-बुद्धि पर अपनी सम्मति प्रकट की, तब विनय ने उसे किसी प्रकार काटना न चाहा।

वह बोला—'मैं आपके स्नेह-ऋण को कभी नहीं चुका सकूंगा। परन्तु मेरे कारण आपको तनिक भी अशान्ति हो, इसे मैं तनिक भी नहीं सह सकता।'

'तुम मेरे कहने का आशय ठीक-ठीक नहीं समझे, विनय?'—परेश बाबू ने कहा—'मेरे ऊपर तुम्हारी जो श्रद्धा है, उससे मैं अत्यन्त प्रसन्न हूं। परन्तु उस श्रद्धा को शिरोधार्य करके, जो तुम अपना कर्तव्य पालन करने के निमित्त मेरी कन्या से विवाह करना चाहते हो, यह मेरी कन्या के लिए गौरव की बात नहीं है। इसलिए मैं कहता हूं कि यह ऐसा कोई भारी संकट नहीं है, जिसके कारण तुम्हें कोई त्याग करने की आवश्यकता पड़े।'

जो भी हो, कर्तव्य के हाथ से विनय को छुटकारा मिल गया, परन्तु उसका मन बार-बार कह रहा था कि तुम लौटना चाहो तो भले ही लौट जाओ, परन्तु मैं यहीं रहना चाहता हूं।

परेश बाबू ने जब कोई भाव छिपा रखने का अवसर न दिया, तो विनय बोला—'मैं किसी कर्तव्य के अनुरोध से इस कष्ट को स्वीकार कर रहा हूँ, ऐसा आप न समझें। यदि आपकी सम्मति ही हो तो मेरे लिए इससे अधिक सौभाग्य और क्या होगा ? मुझे यदि भय है तो केवल यही कि पीछे···।'

यह सुनकर सत्यप्रिय परेश बाबू भी संकोच-रहित होकर कहने लगे—'तुम्हें जिस बात का भय है, उसका कोई आधार नहीं है। मैंने सुचरिता से सुना है कि ललिता का हृदय भी तुमसे विमुख नहीं है।'

विनय के हृदय में आनन्द की बिजली चमक उठी ! ललिता के मन की गूढ़ बात जो सुचरिता के मुख से प्रकट हुई थी, वह कब हुई, कैसे हुई ? इसमें उसका मन रम गया।

वह बोला—'आप मुझे इस योग्य समझते हैं तो मेरे लिए इससे बढ़कर आनन्द की बात और क्या हो सकती है ?'

परेश बाबू ने कहा—'तुम यहीं ठहरो, मैं जरा ऊपर हो आऊँ।'

वे वरदासुन्दरी से सलाह लेने जा पहुँचे। वरदासुन्दरी ने कहा—'विनय को ब्राह्म-धर्म की दीक्षा लेनी पड़ेगी।'

'सो तो लेनी ही पड़ेगी।' परेश बाबू ने कहा।

'तो यह पहले ही निश्चय हो जाना चाहिए।—वरदासुन्दरी बोलीं—'विनय को यहाँ ही बुला लो न !'

विनय के ऊपर आ जाने पर वरदासुन्दरी ने कहा—'दीक्षा की तिथि भी निश्चित हो जानी चाहिए।'

विनय ने पूछा—'दीक्षा की क्या आवश्यकता है ?'

'यह तुम क्या कह रहे हो ?' वरदासुन्दरी बोलीं—'दीक्षा लिये बिना तुम्हारा विवाह ब्राह्म-समाज में कैसे हो सकेगा ?'

विनय कुछ उत्तर न देकर, सिर नीचा किए बैठा रहा। परेश बाबू ने अब तक यही समझ रखा था कि जब विनय हमारे घर में विवाह करने को तैयार हुआ है तो वह ब्राह्म-समाज की दीक्षा भी अवश्य ले लेगा।

कुछ देर मौन रहकर विनय बोला—'ब्राह्म-समाज के सिद्धान्तों पर मेरी पूर्ण श्रद्धा है और मेरा व्यवहार भी कभी उसके विरुद्ध नहीं रहा है, फिर भी विशेषभाव से दीक्षा लेने की क्या आवश्यकता है ?'

वरदासुन्दरी बोलीं—'जब मत मिलता है तो दीक्षा ले लेने में हानि

भी क्या है ?'

'मैं हिन्दू समाज को एक साथ छोड़ दूं, यह मुझसे न हो सकेगा !'

'तब तो ऐसी बातें कहना भी अनुचित ही है। क्या तुम हम लोगों का उपकार करने के लिए हमारी कन्या से विवाह करने को प्रस्तुत हुए हो ?'

विनय को यह बात बुरी लगी। उसने देखा कि—वास्तव में इन लोगों के लिए उसका प्रस्ताव अपमानजनक हो उठा है।

सिविल मैरिज का कानून पास हुए लगभग एक वर्ष हो चुका था। उस समय गोरा तथा विनय ने इस कानून के विरोध में समाचार-पत्रों में तीव्र आलोचना की थी। आज उसी सिविल मैरिज को स्वीकार करके विनय स्वयं को हिन्दू न माने, यह बड़ी कठिन बात थी।

उधर परेश बाबू की आत्मा ने यह बात स्वीकार नहीं की कि विनय हिन्दू समाज में रहते हुए ललिता से विवाह करे। कुछ देर बाद विनय एक लम्बी साँस लेकर उठ खड़ा हुआ। उसने वरदासुन्दरी तथा परेश बाबू को प्रणाम करते हुए कहा, 'आप मुझे क्षमा कर दें। इस बात को और आगे बढ़ाकर मैं अपराधी नहीं बनना चाहता।' इतना कहकर वह घर से निकल पड़ा।

सीढ़ी के पास आकर उसने देखा, बरामदे के कोने में एक छोटा-सा डेस्क रखे हुए, ललिता अकेली बैठी हुई पत्र लिख रही थी। विनय के पैरों की आहट सुनकर उसने आँख उठाकर उसके मुँह की ओर देखा। उस दृष्टि ने हृदय को चंचल कर दिया। ललिता का मुख उसने पहले भी कई बार देखा था परन्तु आज उस दृष्टि में कुछ और ही रहस्य भरा था। ललिता के मन की बात सुचरिता जान गई है, यह आज विनय को ललिता के करुणापूर्ण नेत्रों में घिरे हुए मेघ की भाँति दिखाई दी। उसकी टकटकी बँध गई। फिर वह बिना कोई बात किए अपने मन की गति जैसे-तैसे रोककर, सीढ़ी से नीचे उतरता हुआ चला गया।

५२

जेल से छूटने पर गोरा ने देखा—परेश बाबू तथा विनय फाटक के बाहर खड़े उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

परेश बाबू के शान्ति एवं स्नेहपूर्ण मुखमण्डल को देखकर उसने आज

जिस प्रसन्नता एवं भक्तिपूर्वक उनके चरणों की धूलि अपने मस्तक पर लगाई, वैसी भक्ति उसने पहले कभी नहीं दिखाई थी। परेश बाबू ने स्नेहाद्र हो उसे अपने कण्ठ से लगा लिया।

फिर गोरा ने हँसते हुए विनय का हाथ पकड़कर कहा—'विनय, स्कूल से कॉलिज तक हम दोनों ने एक साथ रहकर ही शिक्षा प्राप्त की थी, परन्तु मैं इस विद्यालय में तुम्हें छोड़कर अकेला ही चला आया।'

विनय यह सुनकर न तो हँसा और न कुछ बोला ही।

तब गोरा ने फिर पूछा—'माँ कैसी हैं ?'

'अच्छी तरह हैं।' विनय ने उत्तर दिया।

परेश बाबू बोले—'आओ, बहुत देर से तुम्हारे लिए गाड़ी खड़ी हुई है।'

गाड़ी में सवार होकर तथा फिर स्टीमर में बैठकर, तीनों व्यक्ति दूसरे दिन सुबह कलकत्ते पहुँचे। गोरा के आने की बात सुनकर सैकड़ों लोग उसके दर्शन करने के लिए फाटक पर आए थे। गोरा उनसे किसी प्रकार छुटकारा पाकर भीतर घर में आनन्दमयी के पास जा पहुँचा। आनन्दमयी आज प्रातःकाल ही स्नानादि से निवृत्त हो उससे मिलने के लिए उत्सुक बैठी थीं। गोरा ने जब उनके पैरों पर गिरकर प्रणाम किया, उस समय उनके नेत्रों से आँसू बह निकले।

गंगा-स्नान करके कृष्णदयाल बाबू जैसे ही घर आए, वैसे ही गोरा उनसे मिलने जा पहुँचा। उसने उन्हें दूर ही से प्रणाम किया। कृष्णदयाल कुछ लज्जित-से होकर उससे कुछ दूरी पर एक दूसरे आसन पर बैठ गए।

गोरा बोला—'पिताजी, मैं प्रायश्चित करना चाहता हूँ।'

'इसकी तो कोई आवश्यकता नहीं दीखती।' कृष्णदयाल बाबू ने कहा—'तुम यह सब मत करो, मैं इसके लिए स्वीकृति न दूंगा।'

आनन्दमयी ने गोरा तथा विनय के लिए चौके में आसन विछवा दिया। भोजन करने के बाद जब दोनों मित्र छत के ऊपर वाली निर्जन कोठरी में जाकर बैठे तो कुछ देर तक खामोशी का वातावरण छाया रहा। विनय की समझ में नहीं आया कि इस एक महीने के भीतर उसके सम्बन्ध में जो कोई बात उठ खड़ी हुई है, उसे वह गोरा से किस प्रकार कहे ? गोरा परेश बाबू के घर वालों की कुशलता पूछना चाहता, परन्तु वह भी न पूछ सका। वह इस प्रतीक्षा में बैठा था कि विनय स्वयं उनकी चर्चा करेगा।

यद्यपि उसने परेश बाबू से उनकी पुत्रियों का कुशल-समाचार पूछा था, परन्तु उसके उत्तर में 'वे सब ठीक हैं', सुनकर ही उसे पूर्ण सन्तोष नहीं हुआ था। वह उनके विषय में ब्यौरेवार सब समाचार जानना चाहता था।

सहसा विनय सावधान होकर बैठ गया। बोला—'पिछले दिनों एक अनिवार्य घटना के कारण ललिता के साथ मेरा सम्बन्ध उलझ गया है, यदि मैं उसके साथ विवाह न करूँ, तो उसे समाज में बहुत दिनों तक अन्यायपूर्ण अपमान सहना पड़ेगा।'

'कैसी घटना है, जरा सुनूँ भी तो सही।' गोरा ने कहा।

विनय—'बहुत-सी बातें हैं, उन्हें क्रमशः बताऊँगा, परन्तु अभी इसी बात को मान लो।'

'अच्छा, मान लेता हूँ'—गोरा ने कहा—'परन्तु मेरा इस सम्बन्ध में यही कहना है कि यदि घटना अनिवार्य है तो उसका दुःख भी अनिवार्य होगा। यदि ललिता के भाग्य में, समाज द्वारा अपमान सहना लिखा है तो उसे भोगना ही पड़ेगा, उसके लिए कोई उपाय नहीं है।'

'परन्तु उस दुःख का निवारण करना तो मेरे हाथ में है।'

'है तो ठीक है। परन्तु हठ करने से यह न हो सकेगा। कोई अन्य उपाय न रहने पर चोरी करना अथवा हत्या करना भी तो पुरुष के ही हाथ में है, परन्तु क्या ऐसा करना चाहिये ? ललिता के साथ विवाह करके तुम अपना कर्तव्य पूरा करना चाहते हो तो क्या तुम्हारे कर्तव्य की इतिश्री यहीं हो जाएगी ? अपने समाज के प्रति तुम्हारा कोई कर्तव्य नहीं है क्या ?'

'मालूम होता है, अब मेरा मत तुमसे न मिलेगा। मैं किसी व्यक्ति की ओर आकृष्ट होकर समाज का विरोध नहीं करता। मैं कहता हूँ कि व्यक्ति तथा समाज, दोनों के ऊपर एक धर्म है। उसी पर दृष्टि रखकर चलना चाहिये। जिस प्रकार व्यक्ति को बचाना मेरा कर्तव्य नहीं, उसी तरह समाज का मन रखना भी मेरा कर्तव्य नहीं है। मुझे तो केवल धर्म की रक्षा करनी चाहिए।'

'परन्तु जो धर्म व्यक्तिगत अथवा समाजगत न हो, मैं उसे धर्म मानने के लिए ही तैयार नहीं हूँ।'

विनय को क्रोध हो आया। बोला—'मैं मानता हूँ कि धर्म व्यक्ति और समाज की भित्ति पर आधारित नहीं है, बल्कि व्यक्ति और समाज ही धर्म की भित्ति पर आधारित हैं। समाज जिसे चाहे, उसी को धर्म मान लिया जाए तो यह एक प्रकार से समाज का सर्वनाश करना हुआ। यदि समाज मेरी किसी धर्मगत स्वाधीनता में बाधा डाले तो उस अनुचित बाधा को मानकर चलना ही समाज के प्रति कर्तव्य-पालन करना माना जाएगा। ललिता के साथ मेरा विवाह अनुचित नहीं है, उस अवस्था में समाज से प्रतिकूल होने का कारण ललिता से विमुख हो जाना ही मेरे लिए अधर्म है।'

'न्याय-अन्याय केवल तुम्हारे ऊपर ही निर्भर नहीं हैं'—गोरा बोला —'इस विवाह के पश्चात् तुम अपनी सन्तानों को कहाँ ले जाओगे, क्या इस पर भी तुमने कभी विचार किया है?'

'इस प्रकार सोचते रहने से ही मनुष्य सामाजिक अन्याय को चिर-स्थायी बना बैठता है। जो किसी साहब की लात खाकर कई दिनों तक अपमान सहता है, तुम उसे दोष क्यों देते हो? वह भी तो अपनी भावी सन्तान की बात सोचकर ही वैसा करता है।'

'मैं तुम्हारे साथ विवाद न करूँगा। तुम्हारे तर्क में कोई बल नहीं है। इससे हृदय को भले ही समझा लो। ब्राह्म-कुमारी के साथ विवाह करके तुम देश के आम लोगों से अलग होना चाहते हो, यह बड़े खेद की बात है। तुम ऐसा काम कर सकते हो, परन्तु मुझसे यह कभी नहीं हो सकता। यहीं आकर मुझमें-तुममें भेद हो जाता है। जहाँ मेरा प्रेम है, वहाँ तुम्हारा नहीं है। तुम जिस जगह छुरी चलाकर अपने को मुक्त करना चाहते हो, वहाँ तुम्हारा कोई मोह नहीं है, परन्तु उस जगह मेरे प्राण कण्ठ होंठों पर आ जाते हैं। मैं तो अपने भारतवर्ष को चाहता हूँ। तुम चाहे दोष दो अथवा गालियाँ, मैं उससे बढ़कर और किसी को नहीं चाहता। मैं ऐसा कोई काम नहीं कर सकता, जिससे मेरा भारतवर्ष के साथ रत्तीभर भी सम्बन्ध न हो सके।'

विनय कुछ कहने ही वाला था कि गोरा फिर बोला—'तुम मेरे साथ विवाद करते हो? यह संसार जिस भारतवर्ष को त्याग रहा है, अपमान कर रहा है, मैं उसी के साथ अपमान के आसन पर बैठना चाहता हूँ। यह

जाति-भेद का पक्षपाती, कुसंस्कारों से ग्रसित तथा मूर्तिपूजक भारतवर्ष ही मेरा है और मैं इसका हूँ। यदि तुम इससे अलग होना चाहते हो तो फिर मुझसे भी अलग होना पड़ेगा।'

इतना कहकर गोरा कमरे से निकलकर बाहर घूमने लगा। उसी समय नौकर ने आकर सूचना दी—'आपको माँ बुला रही हैं।'

आनन्दमयी के पास गोरा जब पहुँचा, उस समय उनके मुख पर प्रसन्नता झलक रही थी। गोरा का चित्त पहले से उद्भ्रान्त था। अतः वह यह न पहचान सका कि माँ के पास और कौन बैठा है।

सुचरिता ने खड़े होकर गोरा का अभिवादन किया। गोरा बोला—'अरे आप आई हैं! आइए बैठिए।'

'आप आई हैं!' यह बात गोरा ने इस प्रकार कही जैसे सुचरिता का आगमन असाधारण हो।

एक दिन इसी सुचरिता को देखकर तथा उससे वार्त्तालाप करके गोरा घर छोड़कर भाग गया था। जितने दिन वह देश के काम से घूमता रहा, उसने सुचरिता को अपने मन से बहुत कुछ अलग रखने का प्रयत्न किया। परन्तु उसकी स्मृति को वह किसी प्रकार हटा नहीं सका। एक वह दिन था, जब गोरा को यह ध्यान भी नहीं आता था कि भारतवर्ष में स्त्रियाँ भी रहती हैं। इतने दिन बाद सुचरिता को देखकर, उसके हृदय में स्त्रियों का अस्तित्व प्रतिष्ठित हो गया। जिस विषय का उसे ज्ञान भी न था, उसे हृदय में एकाएक इस प्रकार प्रतिष्ठित होते देखकर वह एक बारगी जैसे काँप उठा।

जेल से बाहर आने पर परेश बाबू को देखकर गोरा का हृदय आनन्द से भर गया था। वह आनन्द केवल परेश बाबू से भेंट होने के कारण ही न था, अपितु उस आनन्द के साथ गोरा की कई दिनों की संगिनी कल्पना ने भी अपनी कुछ माया मिला दी थी। स्टीमर से उतरकर घर आ जाने पर उसने यह भली-भाँति अनुभव कर लिया था कि परेश बाबू उसे केवल गुणों के कारण ही अपनी ओर आकर्षित नहीं कर रहे हैं।

५३

उस समय भावावेश में गोरा सुचरिता को एक व्यक्ति-विशेष के रूप में न देखकर किसी भाव-विशेष के रूप में देख रहा था। सुचरिता के रूप में सम्पूर्ण भारत की नारी जाति उसके सम्मुख जैसे मूर्तिरूप में प्रकट हुई थी। गोरा को जान पड़ा, जैसे भारतवर्ष के घरों को—पुण्य, सौन्दर्य एवं प्रेम को—मधुर तथा पवित्र बनाने के लिए ही उसका आविर्भाव हुआ है। जो लक्ष्मी-रूपी नारी भारत के शिशु को पालकर बड़ा करती है, रोगी की सेवा करती है, तुच्छ को अपने प्रेम के गौरव के द्वारा प्रतिष्ठा देती है तथा जो दुःख तथा दुर्गति में भी दीनतर पुरुष का कभी त्याग नहीं करती, अवज्ञा नहीं करती है, जो पूजा-योग्य होकर भी अयोग्य पुरुष की अनन्य भाव से पूजा करती चली आ रही है, जिसके दोनों निपुण हाथ पुरुष-जाति के कार्यों में उत्सर्ग हो चुके हैं, जिसका स्थायी, सहनशील एवं क्षमापूर्ण प्रेम, ईश्वर ने अक्षय-दान के रूप में पुरुष को प्रदान किया है, उसी लक्ष्मी के एक प्रकाश को अपनी माता के समीप प्रत्यक्ष बैठे देखकर गोरा का हृदय गम्भीर आनन्द की अनुभूति से परिपूर्ण हो उठा।

इसलिए जब गोरा ने सुचरिता से कहा—'आप आई हैं!' उस समय यह शब्द उसके मुख से केवल प्रचलित शिष्टाचार के रूप में नहीं निकले थे—इस अभिवादन के भीतर उसके जीवन का एक नवीन आनन्द तथा विस्मय भरा हुआ था।

गोरा के शरीर पर कारावास के चिह्न स्पष्ट थे। पहले की अपेक्षा अब वह रोगी की भाँति दुर्बल हो गया था। जेल के भोजन से अश्रद्धा एवं अरुचि होने के कारण उसने महीने-भर तक एक प्रकार से उपवास-सा ही किया था। उसका शुभ्र उज्ज्वल वर्ण भी पहले की अपेक्षा कुछ मलिन हो गया था। केश कटकर बहुत छोटे रह जाने के कारण उसका मुख वास्तविकता से अधिक दुर्बल दिखाई पड़ता था।

गोरा के शरीर की इस दुर्बलता ने सुचरिता के हृदय में एक विशेष वेदनापूर्ण सम्मान का भाव जाग्रत कर दिया। उसकी इच्छा हुई कि वह गोरा को प्रणाम करके, उसकी चरण-रज को अपने मस्तक पर लगाये। जिस प्रज्वलित अग्नि शिखा का धुआँ तथा काष्ठ दिखाई नहीं पड़ता, उसी

की भाँति उसे गोरा दिखाई पड़ा। किसी करुणा मिश्रित भक्ति के आवेग से उसका हृदय काँपने लगा। तब उसके मुँह से बात नहीं निकल सकी।

आनन्दमयी बोलीं—'गोरा, यदि मेरे कोई लड़की होती, तो उसका सुख कैसा होता, यह बात मुझे अब जान पड़ी है। जितने दिन तू यहाँ नहीं रहा, उतने दिन सुचरिता ने मुझे जो सान्त्वना दी, उसे मैं किस प्रकार कहूँ ?' फिर सुचरिता की ओर लक्ष्य कर कहने लगीं—'बेटी, तुम शरमा रही हो ! परन्तु तुम्हीं ने मुझे दुःख के दिनों में सुख पहुँचाया है, इसीलिए मैं यह बात तुम्हारे सामने कहे बिना किसी प्रकार नहीं रह सकती।' यह सुनकर गोरा ने गहरी कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से सुचरिता के लज्जित मुख की ओर देखा। फिर आनन्दमयी से बोला—'माँ, तुम्हारे दुःख के समय, जो तुम्हारे दुःख का भाग लेने आई थीं वही अब तुम्हारे सुख के समय में भी तुम्हारा सुख बढ़ाने आई हैं। जिनका हृदय महान् तथा उदार होता है, उनकी मैत्री इसी प्रकार अकारण ही होती है।'

सुचरिता का संकोच देखकर विनय बोला, 'दीदी, चोर के पकड़े जाने पर वह सब ओर से दण्ड पाता है। आज तुम जो इन सबके निकट पकड़ी गई हो, उसी का तुम्हें यह दण्ड मिल रहा है। अब भागकर कहाँ जाओगी ? मैं तुम्हें बहुत दिनों से पहिचानता हूँ, परन्तु किसी के आगे कुछ प्रकट नहीं करता। मन में सबकुछ जानते हुए भी चुप्पी मारे बैठा रहा हूँ, परन्तु अधिक समय तक कोई बात छिपी नहीं रहती है।'

आनन्दमयी हँसकर बोलीं—'तुम चुप क्यों न रहोगे ? क्यों चुपचाप रहने वाले लड़के तुम्हीं तो हो न ?' फिर सुचरिता से कहा—'बेटी, जिस दिन से इसने तुम लोगों से मेरी जान-पहचान कराई है, उस दिन से निरन्तर तुम्हारे गुण गाते रहने पर भी इसका जी कभी नहीं भरता।'

विनय बोला—'दीदी, सुन लो, मैं गुणग्राही हूँ, अकृतज्ञ नहीं हूँ, इसकी साक्षी और प्रमाण तुम्हारे सामने उपस्थित है।'

'उससे तो वे केवल अपने गुण का ही परिचय दे रहे हैं।' सुचरिता ने कहा।

'परन्तु आप मेरे निकट, मेरे गुण का कुछ परिचय नहीं पायेंगी'—विनय कह रहा था—'यदि आप मेरे गुण का परिचय चाहें, तो मेरी माँ के पास आइए। आप आश्चर्यचकित रह जायेंगे। मैं जब उनके मुँह से अपने गुण

सुनता हूँ तो स्वयं ही आश्चर्यचकित-सा रह जाता हूँ। हाँ, यदि माँ मेरा जीवन-चरित्र लिखें, तो मैं अभी-अभी मरने के लिए तैयार बैठा हूँ।'

आनन्दमयी बोलीं—'सुन रही हो न इस लड़के की बातें ?'

'विनय !'—गोरा ने कहा—'तुम्हारे माता-मिता ने तुम्हारा नाम सार्थक ही रखा था।'

'जान पड़ता है, उन्होंने मुझसे किसी अन्य गुण की आशा नहीं की थी, इसीलिए वे मेरे विनय गुण की दुहाई दे गये हैं। अन्यथा उन्हें अवश्य हास्यस्पद होना पड़ता।'—विनय इतना कहकर मुस्करा दिया।

प्रथम वार्तालाप का संकोच इस प्रकार दूर हो गया।

चलते समय सुचरिता विनय से बोली—'क्या आप एक बार हमारे घर नहीं आयेंगे ?'

५४

विनय समझ गया था कि ललिता के साथ उसके विवाह-प्रसंग पर वार्त्तालाप करने के लिए ही सुचरिता उसे बुला गई है। इस प्रस्ताव के तय कर देने से ही मामला समाप्त नहीं हो पाया था। जब तक उसे चलना है, तब तक उससे छुटकारा मिल भी कैसे सकता था ?

जिस समय विनय सुचरिता के घर पहुँचा, उस समय हरिमोहिनी रसोई बना रही थीं। विनय रसोई के द्वार पर यह दावा स्वीकार करा कर कि वह ब्राह्मण की सन्तान है, इसलिए आज मध्याह्न को वहीं भोजन करेगा, ऊपर चला गया।

सुचरिता उस समय सिलाई का कुछ काम कर रही थी। वह उसी प्रकार उँगलियाँ चलाते हुए, अपने काम पर दृष्टि रखती हुई बोली—'देखिये, विनय बाबू ! जहाँ आन्तरिक बाधा नहीं है, वहाँ बाह्य प्रति-कूलताओं को ध्यान में रखकर चलने से काम चल सकेगा क्या ?'

जिस समय गोरा के साथ बहस हुई थी, उस समय विनय ने उसके विरोध में युक्तियाँ पेश की थीं, परन्तु अब जब उसी विषय पर सुचरिता के साथ उसकी वार्ता प्रारम्भ हुई, तो उसने विपरीत पक्ष की युक्तियों का आश्रय लिया। उस स्थिति में कौन यह कह सकता था कि गोरा तथा विनय में भी कुछ मतभेद है।

वह बोला, 'दीदी, तुम लोग वाह्य प्रतिकूलताओं को तुच्छ नहीं मानते हो।'

'उसका कारण है विनय बाबू!'—सुचरिता ने कहा—'हमारी बाधा ठीक बाहरी बाधा नहीं है। हमारा समाज तथा धर्म विश्व के ऊपर प्रतिष्ठत है, परन्तु जिस समाज में आप रहते हैं, उसमें केवल सामाजिक बन्धन ही हैं। अतः ललिता को ब्राह्म-समाज छोड़ने से जो हानि होगी, उतनी हानि आपको नहीं होगी।'

यह सुनकर विनय इस बात को लेकर विवाद करने लगा कि धर्म व्यक्तिगत साधना की वस्तु है, उसे किसी समाज के साथ बाँधना उचित नहीं है।

इसी समय एक चिट्ठी तथा अंग्रेजी का अखबार लिए हुए सतीश ने प्रवेश किया। विनय को देखते ही वह प्रफुल्लित हो उठा। उसका मन किसी प्रकार से शुक्रवार को रविवार बना देने के लिए अधीर हो उठा। देखते-देखते विनय और सतीश की वार्तालाप-गोष्ठी जम गई। सुचरिता ललिता की चिट्ठी तथा साथ में भेजे गये अखबार को पढ़ने लगी।

उस ब्राह्म-समाजी अखबार में एक समाचार यह छपा था कि किसी ब्राह्म परिवार की कुमारी के साथ किसी हिन्दू युवक का विवाह होने की जो आशंका उत्पन्न हुई थी, वह उस हिन्दू युवक की असम्मति के कारण दूर हो गई है। इस बात को लेकर, समाचार में उस हिन्दू युवक की धर्मनिष्ठा की तुलना करते हुए, उस ब्राह्म-परिवार की शोचनीय दुर्बलता के सम्बन्ध में खेद प्रकट किया गया था।

सुचरिता ने मन-ही-मन कहा, 'कुछ भी क्यों न हो, ललिता का विवाह विनय के साथ करना ही पड़ेगा।' परन्तु ऐसा होना बहस के द्वारा सम्भव न था। तभी सुचरिता ने एक चिट्ठी अपने घर आने के लिए ललिता को लिख दी। पत्र में उसने यह नहीं लिखा कि इस समय विनय यहाँ उपस्थित है।

कमरे में प्रवेश करते हुए हरिमोहिनी ने विनय से कुछ जलपान करने के सम्बन्ध में पूछताछ की। विनय के मना कर देने पर वे कमरे के भीतर आ बैठीं।

जितने दिनों तक हरिमोहिनी परेश बाबू के घर रहीं, तब तक विनय

के ऊपर उनका विशेष स्नेह बना रहा, परन्तु जब से वे सुचरिता को लेकर इस अलग मकान में गृहस्थी बाँधे बैठी हैं, तब से उन्हें विनय आदि का आना-जाना अरुचिकर हो उठा है। सुचरिता आजकल उनके कहे अनुसार आचार-विचार मानकर नहीं चलती थी, इसका दोष वे इन्हीं लोगों पर डालती थीं। यद्यपि उन्हें यह मालूम था कि विनय ब्राह्म-समाजी नहीं है, फिर भी उन्हें इसका अनुभव होता था कि उसके हृदय में हिन्दू-संस्कार के लिए भी कोई दृढ़ता नहीं है। यही कारण था कि अब वे पहले की भाँति इस ब्राह्मण-बालक को बुलाकर अपने ठाकुरजी के प्रसाद का अपव्यय नहीं करती थीं।

आज वार्तालाप के सिलसिले में हरिमोहिनी ने विनय से पूछा, 'भैया, तुम तो ब्राह्मण के लड़के हो फिर सन्ध्या-पूजा आदि कुछ क्यों नहीं करते हो?'

विनय ने उत्तर दिया—'मौसी, मैं दिन-रात पाठ याद करने के फेर में पड़कर सन्ध्या-गायत्री आदि सब भूल गया हूँ।'

'पढ़े-लिखे तो परेश बाबू भी हैं न?' हरिमोहिनी ने कहा—'परन्तु वे तो अपने धर्म को मानकर, उनके अनुसार प्रातः-सन्ध्या पूजा-उपासना अवश्य करते हैं।'

'वे जो करते हैं, उसे केवल मन्त्र रटकर नहीं किया जा सकता। मैं यदि कभी उनके समान हो सका तो उन्हीं की राह पर चलने लगूँगा।' विनय ने गम्भीर होते हुए उत्तर दिया।

यह सुनकर हरिमोहिनी कुछ तीव्र स्वर में बोली—'तब तक बाप-दादे की भाँति उन्हीं के मार्ग पर क्यों न चलो? न इधर, न उधर यह कोई अच्छी बात है क्या? आदमी का कोई तो धार्मिक परिचय होता है? न राम, न गंगा—अरे भाई, यह कैसा ढंग है?'

इसी समय ललिता ने कमरे में प्रवेश किया। वहाँ विनय को देखते ही वह चौंक पड़ी। उसने हरिमोहिनी से पूछा—'दीदी कहाँ हैं?'

'राधारानी नहाने गई हैं।' हरिमोहिनी ने उत्तर दिया।

ललिता ने आवश्यक कैफियत देने की भाँति कहा—'उन्होंने मुझे बुलाया था?'

'तो बैठ जाओ न।'—हरिमोहिनी बोली—'अभी आती ही होंगी।'

हरिमोहिनी का मन ललिता के लिए और भी अधिक अनुकूल न था। दरअसल में वे सुचरिता को सब ओर से हटाकर सम्पूर्ण रूप से अपनी मुट्ठी में कर लेना चाहती थीं। परेश बाबू की अन्य लड़कियाँ बार-बार नहीं आती थीं। केवल ललिता ही ऐसी थी, जो बार-बार आकर सुचरिता से बातचीत किया करती थी। हरिमोहिनी को यह अच्छा नहीं लगता था। वे उनके वार्तालाप में विघ्न डालकर किसी-न-किसी काम के बहाने सुचरिता को उसके पास से उठा ले जाने की चेष्टा किया करती थीं। कभी-कभी यह कहकर भी खेद प्रकट करने लगती थीं कि पहले की भाँति अब सुचरिता का मन पढ़ने-लिखने में नहीं लग पाता है। परन्तु दूसरी ओर जब कभी सुचरिता पढ़ने-लिखने बैठती, उस समय वे यह कहने से भी नहीं चूकतीं कि स्त्रियों के लिए अधिक लिखने-पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। बात यह थी कि वे जिस प्रकार सुचरिता को अपनी मुट्ठी में रखना चाहती थीं, उसमें उन्हें सफलता नहीं मिलती थी। इसलिए वे उसके साथियों पर दोषारोपण किया करती थीं।

ललिता और विनय के पास बैठे रहना हरिमोहिनी को सुखकर नहीं था तो भी उन दोनों से चिढ़ होने के कारण वे उस समय उनके पास ही बैठी रहीं। उन्होंने समझ लिया था कि विनय तथा ललिता के मध्य कोई रहस्यपूर्ण सम्बन्ध है। इसीलिए उन्होंने मन-ही-मन यह निश्चय कर लिया था कि, 'तुम्हारे समाज में चाहे कैसी भी रीति क्यों न हो, मैं इस घर में निर्लज्जता के साथ मिलने-जुलने आदि की ईसाइयों की लीला को कभी नहीं चलने दूंगी।'

उधर ललिता के हृदय में एक दूसरा ही विरोध का भाव उठ रहा था। कल उसने सुचरिता के साथ आनन्दमयी के घर जाने का विचार किया था, परन्तु ऐन वक्त पर वह किसी कारणवश नहीं जा सकी। गोरा के ऊपर उसको भारी श्रद्धा थी, परन्तु विरोध का भाव भी कुछ कम नहीं था। वह अपने इस विचार को किसी भी प्रकार नष्ट नहीं कर पाती थी कि गोरा हर प्रकार से उसके प्रतिकूल है। जिस दिन गोरा कारागार से छूटा है, उस दिन से विनय के प्रति भी उसके हृदय के भावों में परिवर्तन आ गया था। कुछ दिन पहले वह इस बात को अपने मन में दृढ़ किए हुए थी कि विनय के ऊपर उसका जोर तथा प्रभाव है। परन्तु अब इस कल्पना के

आते ही विनय अपने ऊपर से गोरा का प्रभाव किसी भी प्रकार नहीं हटा सकेगा, वह उसके विरुद्ध कमर कसकर खड़ी हो गई थी।

ललिता के कमरे में आते ही विनय के हृदय में एक हलचल मच गई। वह उसके सम्बन्ध में अपने हार्दिक भावों को दबा नहीं सका। जब से उन दोनों के विवाह की चर्चा समाज में फैली है, तब से उसका हृदय ललिता को देखते ही बिजली की चुम्बकशलाका की भाँति रह-रहकर स्पन्दित होता रहता है।

विनय को कमरे में बैठा हुआ देखकर ललिता ने अपने मन में यह समझा कि सुचरिता उस अनिच्छुक विनय के मन को उसके अनुकूल करने के लिए ही उसे यहाँ बुलाकर स्वयं चली गई है। उसके पीछे पड़कर इस टेढ़े व्यक्ति को सीधा करना चाहती है।

तब वह मौसी की ओर देखती हुई बोली—'दीदी से कह देना कि फिर किसी समय आऊँगी, अब में अधिक देर नहीं ठहर सकूँगी।'

इतना कह, विनय की ओर देखे विना ही, ललिता शीघ्रतापूर्वक चली गई। उस समय हरिमोहिनी भी विनय के पास बैठे रहना अनावश्यक जानकर घर के काम-धन्धे के बहाने वहाँ से उठ गईं।

नहा-धोकर, सतीश को खिलाने-पिलाने तथा स्कूल भेजने के बाद सुचरिता जब विनय के पास लौटी, उस समय यह चुपचाप बैठा हुआ था। सुचरिता ने पहले वाला प्रसंग नहीं छोड़ा। जब विनय भोजन करने बैठा तो उसने कुल्ला नहीं किया। यह देखकर हरिमोहिनी बोलीं—'भैया, हिन्दू आचार-विचार की कोई बात तो तुम मानते ही नहीं, फिर तुम्हारे ब्राह्म हो जाने में ही क्या विघ्न है?'

विनय मन-ही-मन चोट खाकर बोला—'मैं जिस दिन हिन्दू धर्म को छुआ-छात तथा खान-पान वाला एक निरर्थक धर्म जानूँगा, उस दिन ब्राह्म, ईसाई, मुसलमान में से कुछ भी हो जाऊँगा परन्तु हिन्दू धर्म के ऊपर अभी तक मुझे उतनी अश्रद्धा नहीं हुई है।'

सुचरिता के घर से निकलते समय विनय का चित्त व्याकुल हो रहा था, जैसे वह चारों ओर से धक्के खाकर किसी आश्रय-हीन शून्य में आ पड़ा हो।

'मैं ऐसे स्वाभाविक स्थान पर क्यों आ पहुँचा' यह सोचता हुआ वह नीचा सिर किये सड़क पर धीरे-धीरे चलने लगा। हेदुआ तालाब के समीप

एक पेड़ देखकर वह उसके नीचे बैठ गया। अब तक उसके जीवन में जब भी समस्यायें आकर उपस्थित हुई थीं, उन पर उसने अपने मित्र गोरा के साथ बहस करके अथवा आलोचना करके, उनका समाधान कर लिया था। परन्तु आज वह मार्ग भी बन्द है। उसे अब अकेले ही सोचना होगा।

सूर्य ढलने पर छाया के स्थान पर धूप आ गई। तब विनय फिर उठ-कर सड़क पर चलने लगा। कुछ दूर जाने पर उसे सुनाई पड़ा—'विनय बाबू! ओ, विनय बाबू!' और तभी सतीश ने आकर उसका हाथ पकड़ लिया। उस दिन शुक्रवार था। सतीश अपनी पढ़ाई खत्म करके स्कूल से घर लौट रहा था।

सतीश बोला—'विनय बाबू, आप मेरे साथ घर चलिये।'

'यह कैसे हो सकता है, सतीश बाबू?' विनय ने कहा।

'क्यों, हो क्यों नहीं सकता?'

'इतनी जल्दी-जल्दी तुम्हारे घर जाने से लोग मुझे कैसे सह सकेंगे?'

सतीश इस युक्ति का कोई उत्तर देने के अयोग्य समझता हुआ बोला—'नहीं, चलिए न!'

सुचरिता के घर के लिए परेश बाबू के घर के सामने ही होकर जाना पड़ता था। परेश बाबू की नीचे की बैठक राह से ही दिखाई पड़ती थी। उस बैठक के सामने पहुँचते ही विनय से एक बार उसकी ओर देखे बिना न रहा गया। उसने देखा, मेज के सामने परेश बाबू बैठे थे। वे कुछ बातें कर रहे थे अथवा नहीं, यह नहीं ज्ञात हुआ। परेश बाबू की कुर्सी के पास ही बेंत के एक छोटे से मूढ़े पर ललिता सड़क की ओर पीठ किये एक छात्रा की भाँति चुपचाप बैठी हुई थी।

सुचरिता के घर से लौट आने के पश्चात् जो आन्तरिक क्षोभ ललिता के हृदय को अशान्त बनाये हुए था, सम्भवतः उसी को दूर करने के लिहाज से वह इस समय परेश बाबू के पास आकर बैठ गई थी। परेश बाबू के भीतर शान्ति का एक ऐसा आदर्श था कि कभी-कभी चंचल ललिता अपनी किसी असहिष्णुता को दबाने के लिए चुपचाप उनके कमरे में आ बैठती थी। ऐसी स्थिति में यदि किसी समय परेश बाबू पूछ बैठते—'क्या है बेटी!' तो वह एक ही उत्तर देती—'बाबूजी, आपके कमरे में ठण्डक बहुत है।'

परेश बाबू यह स्पष्ट समझ रहे थे कि आज ललिता अपने चोट खाये हुए हृदय को लेकर उनके पास आ बैठी है। उनके हृदय में भी एक दुःख छिपा हुआ था। इसलिए उन्होंने एक ऐसी चर्चा छेड़ दी थी जो व्यक्तिगत जीवन के दुःख-सुख को एकदम हल्का कर देने वाली थी।

पिता-पुत्री के इस एकान्त-आलोचना दृश्य को देखकर विनय के पाँव क्षण-भर के लिए रुक गये। उस समय सतीश क्या कह रहा था, यह उसने सुना ही नहीं। सतीश ने उस समय उससे युद्ध-सम्बन्धी एक जटिल प्रश्न पूछा था। 'यदि बाघों के एक झुण्ड को पकड़ लिया जाय, तत्पश्चात् बहुत दिनों तक सिखाकर, अपनी सेना के अगले भाग में खड़ा करके युद्ध किया जाय तो कैसा रहेगा'—यही उसका प्रश्न था। अब तक दोनों मित्रों में वार्तालाप होता चला आ रहा था, इस समय अचानक ही विक्षेप आ जाने से आगे चल रहे सतीश ने मुड़कर विनय के मुँह की ओर देखा, फिर विनय की दृष्टि को देखे बिना ही, वह परेश बाबू की बैठक की ओर नजर डालकर ऊँचे स्वर से चिल्ला उठा—'दीदी, ओ दीदी! देखो, मैं विनय बाबू को रास्ते से पकड़कर लाया हूँ।'

सतीश के इस शौर्य-प्रदर्शन के कारण विनय को लज्जा के मारे पसीना आ गया। उधर क्षणभर में ही ललिता कुर्सी छोड़कर उठ खड़ी हुई। परेश बाबू ने गली की ओर मुँह घुमाकर देखा—सब मिलाकर एक अजीब काण्ड हो गया।

तब विनय लाचार हो सतीश को विदा करके परेश बाबू के घर में घुसा। बैठक में पहुँचकर उसने देखा—ललिता चली गई है तथा अन्य लोग उसे शान्ति भंग करने वाले चोर की भाँति देख रहे हैं। विनय यह अनुमान करते ही संकुचित होकर एक कुर्सी पर बैठ गया।

शारीरिक स्वास्थ्य आदि के सम्बन्ध में साधारण शिष्टाचार के पश्चात् विनय ने एक साथ बोलना आरम्भ कर दिया। उसने कहा—'जब मैं हिन्दू समाज के आचार-विचार को न मानकर, नित्य ही उसका उल्लंघन करता हूँ तो फिर उस स्थिति में ब्राह्म-समाज का आश्रय ग्रहण कर लेना ही मैंने अपना कर्तव्य समझ लिया है। मेरी इच्छा है कि मैं आपके ही समीप दीक्षा ग्रहण करूँ।'

पन्द्रह मिनट पूर्व तक विनय के मन में यह इच्छा और विचार न था।

परेश बाबू क्षण-भर चुप रहने के बाद बोले—'सब बातों पर भली-भाँति विचार करके देख लिया न ?'

'इसमें अधिक सोचने की कोई बात नहीं है'—विनय ने कहा—'केवल यही देखने की बात है कि मेरा यह कार्य उचित है अथवा अनुचित, सो वह सीधी-सादी है। मैंने जो शिक्षा पाई है, उसके कारण केवल आचार-विचार के उल्लंघन से नष्ट हो जाने वाले धर्म को मैं स्वीकार नहीं कर सकता। यही कारण है जो मेरे व्यवहार में पग-पग पर असंगति दीख पड़ती है। जो लोग हिन्दू धर्म को श्रद्धापूर्वक धारण किये हुए हैं, उन्हें मेरा व्यवहार आघात ही पहुँचाया करता है। मैं उनके साथ अन्याय कर रहा हूँ, यह मुझे भली-भाँति विदित है। अतः उस अन्याय को मुझे दूर कर ही देना चाहिए। अन्यथा मैं अपनी स्वयं की दृष्टि में भी सम्मान न पा सकूँगा।'

परेश बाबू को समझाने के लिए इतनी बातें कहने की आवश्यकता न थी। विनय ने यह बातें अपने मन को दृढ़ बनाने के लिए ही कहीं। 'वह अन्याय एवं न्याय के युद्ध में पड़कर न्याय का ही अनुसरण करेगा'—यह कहकर जैसे उसकी छाती फूल उठी। मानवता की मर्यादा तो रखनी ही है।

परेश बाबू ने पूछा—'धर्म-विश्वास के सम्बन्ध में तुम्हारा मत ब्राह्म-समाज से तो मिलता है न ?'

विनय कुछ देर मौन रहकर बोला—'आप से सत्य कहूँ ? पहले मैं सोचता था कि मेरे अन्दर कोई धर्म-विश्वास है—उसी के लिए मैं लोगों से प्रायः वाद-विवाद भी किया करता था, परन्तु आज मैंने वास्तव में यह जाना है कि धर्म-विश्वास मेरे जीवन में कभी परिमित नहीं हो सका। इतना सब भी मैं आपको देखकर समझ सका हूँ। मेरे जीवन में धर्म का कोई सत्य प्रयोजन नहीं पड़ा और न उसके प्रति मेरा कोई सत्य-विश्वास ही हो सका। इसीलिए अब मुझे 'कौन-सा धर्म सत्य है ?' यह सोचने की आवश्यवता नहीं पड़ती है।'

परेश बाबू के साथ वार्तालाप करते हुए विनय अपनी उस समय की अवस्था के अनुरूप युक्तियों को उपस्थित करने लगा। वह इस प्रकार उत्साह से बोल रहा था, जैसे बड़े समय के तर्क-वितर्क के पश्चात्, वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा हो।

तो भी परेश बाबू ने उसे इस विषय पर कुछ दिनों तक और विचार

करने के लिए विशेष जोर दिया, परन्तु अब वह अपने निश्चय से डिगना नहीं चाहता है—यह बात उसने परेश बाबू से बार-बार दुहराकर कही। ललिता के विवाह के सम्बन्ध में किसी ओर से कोई बात नहीं हुई।

इसी समय वरदासुन्दरी किसी काम से उस कमरे में आईं। उन्होंने अपना भाव ऐसा बना रखा था, जैसे उन्हें विनय के वहाँ उपस्थित रहने की कोई कल्पना भी नहीं है। अपना काम समाप्त करके वे जाने को उद्यत हो उठीं।

विनय ने सोचा था—परेश बाबू वरदासुन्दरी से उसके मत-परिवर्तन की बात कहेंगे, परन्तु वे कुछ भी नहीं बोले। उनकी धारणा थी कि अभी यह समाचार किसी को सुनाने का समय नहीं आया है। वे बात को अभी छिपाये ही रखना चाहते थे, परन्तु जिस समय वरदासुन्दरी विनय के प्रति अवज्ञा प्रकट करती हुई, जाने को उद्यत हुईं, तब विनय से चुप न रहा गया। उसने वरदासुन्दरी के पैरों पर मस्तक रखकर प्रणाम करते कहा—'आज मैं आपके पास ब्राह्म-समाज की दीक्षा लेने का प्रस्ताव लेकर आया हूँ, परन्तु मुझे विश्वास है कि आप लोग मुझे योग्य बना लेंगे।'

वरदासुन्दरी घूमकर खड़ी हो गईं, फिर चुपचाप उसके पास आ बैठीं तथा परेश बाबू की ओर जिज्ञासा-भरी दृष्टि से देखने लगीं।

परेश बाबू बोले—'विनय बाबू दीक्षा लेने का आग्रह कर रहे हैं।'

यह सुनते ही वरदासुन्दरी को जैसे अपनी विजय के लोभ का गर्व हुआ, परन्तु उन्हें पूर्ण आनन्द नहीं मिला। शायद इसीलिए कि वे अब की बार परेश बाबू को यह भली-भाँति समझा देना चाहती थीं कि उनकी लापरवाही के कारण ही यह सब घटना घटी, अतः अब उन्हें भविष्य के लिए सचेत हो जाना चाहिये। उन्होंने अपने मुख का भाव गम्भीर बनाते हुए कहा—'यदि यह प्रस्ताव कुछ दिन और पहले आ जाता तो हम लोगों को इतना दुःख तथा अपमान नहीं सहना पड़ता।'

परेश बाबू बोले—'इस समय हम लोगों के दुःखों अथवा अपमान की बात नहीं हो रही है। विनय बाबू दीक्षा लेना चाहते हैं।'

वरदासुन्दरी ने पूछा—'केवल दीक्षा?'

विनय बोला—'ईश्वर ही जानते हैं कि आप लोगों का सारा दुःख तथा अपमान मेरा ही है।'

'देखो विनय !' परेश बाबू ने कहा—'तुम धर्म की दीक्षा लेना चाहते हो, इस विषय को अवान्तर न करो। हम लोगों के किसी सामाजिक संकट में पड़ने की कल्पना करके, तुम इस गुरुतर कार्य में प्रवृत्त न होना।'

वरदासुन्दरी बोल उठीं—'यह तो ठीक है, परन्तु हम लोगों को जाल में डालने के बाद, इनका चुप बैठे रहना भी तो उचित नहीं है।'

'चुप बैठे न रहकर, चंचल हो जाने से जाल में उलझकर और भी अधिक मजबूत गाँठ पड़ जाती है। कुछ-न-कुछ कर बैठने को ही कर्तव्य नहीं कहा जा सकता। कोई समय ऐसा भी होता है, जब कुछ न करना ही सबसे बड़ा कर्तव्य माना जाता है।' परेश बाबू ने गम्भीर होकर कहा।

'यही सही?' वरदासुन्दरी बोलीं—'मैं ठहरी मूर्ख स्त्री, सब बातें अच्छी तरह नहीं समझ सकती। अब क्या निश्चय हुआ, यह जानकर मैं जाना चाहती हूँ। मुझे बहुत से काम करने हैं।'

विनय बोला—'मैं परसों, रविवार को ही दीक्षा ले लूंगा। चाहता हूँ कि परेश बाबू...।'

परेश बाबू ने बीच में टोका, 'मेरा परिवार जिस दीक्षा से किसी फल की आशा करे, वह मैं नहीं दे सकूंगा, इसके लिए तुम्हें ब्राह्म-समाज में प्रार्थना-पत्र देना होगा।'

विनय का मन खिन्न हो उठा। ब्राह्म-समाज में नियमानुसार दीक्षा के लिए प्रार्थना-पत्र देना विनय के वश की बात नहीं थी। ललिता तथा उसके सम्बन्ध में ब्राह्म-समाज में इतनी चर्चायें चल चुकी थीं कि अब किस मुँह से वह प्रार्थना-पत्र लिखता। जब वह पत्र ब्राह्म-पत्रिका में प्रकाशित होगा तथा गोरा, आनन्दमयी पढ़ेंगे, तब वह चार आदमियों के सामने मुँह उठाकर किस प्रकार चल सकेगा? यद्यपि उस पत्र में केवल इतनी ही बात होगी कि उसका मन एकाएक दीक्षा लेने को तैयार हो गया है, परन्तु बात केवल इतनी ही तो नहीं थी। विनय को चुप्पी साधे देखकर वरदासुन्दरी को भय हुआ। वे बोलीं—'यह तो ब्राह्म-समाज के किसी कार्यकर्ता को जानते नहीं, मैं ही तुम्हारा सब प्रबन्ध कर दूंगी। मैं अभी हारान बाबू को बुलाये लेती हूँ। अब समय भी तो अधिक नहीं रहा—रविवार परसों ही तो है।'

उसी समय सुधीर ऊपर जाता हुआ दिखाई दिया। वरदासुन्दरी उसे

पास बुलाकर बोलीं—'परसों विनय बाबू हमारे समाज में दीक्षा लेंगे।'

सुधीर अत्यन्त प्रसन्न हो उठा। वह मन-ही-मन विनय के प्रति श्रद्धा रखता था। विनय जितनी बढ़िया अंग्रेजी लिख सकता था, जितना विद्वान् तथा बुद्धिमान था उसे देखते हुए सुधीर को उसका ब्राह्म-समाजी न होना असंगत लगता था। विनय जैसे व्यक्ति ब्राह्म-समाज से बाहर नहीं रह सकते, इसका प्रमाण पाकर उसकी छाती गर्व से फूल उठी। बोला—'क्या परसों तक इसकी तैयारी हो सकेगी? बहुतों के पास तो समाचार भी नहीं पहुंच सकेगा।'

सुधीर चाहता था कि विनय की दीक्षा को एक आदर्श की भाँति सर्वसाधारण के सम्मुख खूब धूम-धाम से उपस्थित किया जाना चाहिये।

वरदासुन्दरी बोलीं—'हाँ, इसी रविवार को ही हो। तुम दौड़कर हारान बाबू को बुला लाओ।'

सुधीर जिस विनय के दृष्टान्त द्वारा ब्राह्म-समाज की अजेय शक्ति के प्रदर्शन करने की सोच रहा था, उसी का चित्त उस समय अत्यन्त संकुचित हो उठा था।

हारान बाबू का नाम सुनते ही विनय उठ खड़ा हुआ। वरदासुन्दरी बोलीं—'थोड़ी देर और बैठ जाओ। हारान बाबू अभी आये जाते हैं—विलम्ब न लगेगा।'

'नहीं, मुझे क्षमा करें!' विनय बोला। इस समय वह उस घेरे से दूर निकलकर सब बातों पर भली-भाँति विचार करने का अवसर पाना चाहता था।

विनय के उठते ही परेश बाबू ने उसके कन्धे पर अपना दाहिना हाथ रखते हुए कहा—'विनय, शीघ्रता मत करो। शान्त एवं स्थिरचित्त होकर, एक बार सब बातों पर सोच-विचार कर लो। मन को भली-भाँति समझे बिना, जीवन के इतने बड़े कार्य में एक साथ प्रवृत्त हो जाना उचित नहीं है। ऐसा कभी मत करना।'

मन-ही-मन अपने पति पर अत्यन्त असन्तुष्ट होकर वरदासुन्दरी ने कहा—'आरम्भ में जब कोई सोच-विचार कर काम नहीं करता, अनर्थ कर बैठता है, उसके पश्चात् जब एकदम साँस रुकने लगती है, तब वह कहता है, बैठकर सोचो। तुम लोग स्थिर होकर सोच सकते हो, लेकिन हम लोगों

के प्राण निकल रहे हैं।'

सुधीर भी विनय के साथ ही चल पड़ा। सुधीर का मन चंचल हो उठा। उसकी यह इच्छा हुई कि विनय को इसी समय मित्र-मण्डली में ले जाकर उनके साथ आनन्दोत्सव मनाये। सुधीर ने विनय से प्रस्ताव किया —'विनय बाबू आइये न, हम दोनों ही पानू बाबू के पास चलें।' तब विनय सुधीर की बात पर ध्यान न देकर अपना हाथ छुड़ाकर चला गया।

विनय ने कुछ दूर जाते ही देखा कि अविनाश दो-एक आदमियों के साथ तेजी से कहीं जा रहा है। अविनाश ने विनय को देखते ही रुककर कहा—'यही तो विनय बाबू हैं, चलिए बिनय बाबू, हम लोगों के साथ !'

विनय ने पूछा—'कहाँ जा रहे हो ?'

अविनाश ने कहा—'काशीपुर का बगीचा ठीक करने जा रहा हूँ। आज वहीं गौर मोहन बाबू के प्रायश्चित की सभा होगी।'

विनय—'परन्तु इस समय मुझे जाने का अवकाश नहीं है।'

अविनाश ने कहा—'यह आप क्या कह रहे हैं ? क्या आप यह नहीं समझते कि यह कितना बड़ा काम हो रहा है ? आजकल के समय में हिन्दू समाज को अपनी शक्ति प्रकट करनी पड़ेगी। गौर मोहन बाबू के इस प्रायश्चित से लोगों के हृदय में क्या कम आन्दोलन होगा ? हम लोग देश-विदेश से ब्राह्मण-पण्डितों को निमन्त्रण देकर बुलायेंगे। तब लोग समझ सकेंगे कि हिन्दू समाज मर नहीं सकता, हम लोग अब भी जीवित हैं।'

विनय अविनाश से बचकर चला गया।

५५

हारान बाबू ने वरदासुन्दरी से जब सभी बातें सुनीं, तब वह थोड़ी देर तक गम्भीर भाव से बैठे रहे। फिर बोले—'इस विषय में ललिता के साथ आलोचना करके विचार करना उचित है।'

ललिता के आने पर हारान बाबू ने और भी अधिक गम्भीर होकर कहा—'ललिता ! तुम्हारे जीवन में यह एक अत्यन्त दायित्व का समय आ गया है। एक ओर तुम्हारा धर्म है और दूसरी ओर तुम्हारी प्रवृत्ति। इन

दोनों में से तुम्हें अपना मार्ग चुनना पड़ेगा।'

हारान बाबू यह कहकर चुप हो गये और ललिता के मुँह की ओर टकटकी बाँधकर देखने लगे।

ललिता भी हारान वाबू की बात का उत्तर न देकर, चुपचाप बैठी रह गयी।

हारान बाबू ने कहा—'तुमने शायद सुना है, तुम्हारी अवस्था देखकर अथवा अन्य कारण से, विनय वाबू अन्त में हमारे समाज में दीक्षा लेने को तैयार हो गये हैं।'

ललिता ने यह समाचार पहले नहीं सुना था। यह सुनकर उसके मन में जो भाव उत्पन्न हुए, उन्हें भी उसने प्रकट नहीं किया। वह पत्थर की मूर्ति की भाँति स्थिर बैठी रही है।

हारान वाबू ने कहा—'परेश बाबू विनय की इस वाध्यता से बहुत खुश हुए हैं। परन्तु वास्तव में इसमें प्रसन्नता की कोई बात है या नहीं, यह तुम्हें ही निश्चय करना पड़ेगा। इसलिए आज मैं तुमसे ब्राह्म-समाज के नाम पर अनुरोध कर रहा हूँ कि तुम अपनी प्रवृत्ति को दूर रखकर केवल धर्म की ओर दृष्टि रखकर अपने हृदय से पूछो कि इसमें प्रसन्न होने का वास्तविक कारण क्या है?'

ललिता को अब भी चुप देखकर हारान बाबू समझे कि उनकी बातों का उस पर खूब असर पड़ रहा है। वे फिर दूने उत्साह से बोले, 'दीक्षा! दीक्षा जीवन की कितनी पवित्र वस्तु है, क्या यह बात आज मुझे बतानी पड़ेगी? उसी दीक्षा को कलुषित करना होगा? आसक्ति-सुख और सुविधा के आकर्षण से हम असत्य को ब्राह्म-समाज में प्रवेश करने देंगे? कपट का आदर करके उसे आह्वान करेंगे? ललिता! बताओ, तुम्हारे जीवन के साथ ब्राह्म-समाज की दुर्गति का इतिहास क्या हमेशा के लिए जकड़ा रह जाएगा?'

ललिता अब भी चुप रही। वह कुर्सी की बाँहों पर अपने हाथ रखे हुए, शान्त ही वैठी रही। हारान बाबू ने कहा—'मनुष्य की दुर्बलता, आसक्ति के छिद्र द्वारा उस पर किस प्रचण्ड वेग से आक्रमण करती है, यह मैं कई वार देख चुका हूँ और मैं यह जानता हूँ कि मनुष्य की दुर्बलता को किस प्रकार क्षमा किया जाता है। किन्तु जो दुर्बलता अपने ही नहीं, सैकड़ों-हजारों मनुष्यों के जीवन-आधार पर आक्रमण करती है, ललिता! तुम्हीं

बताओ, क्या उसको एक क्षण के लिए भी सहन किया जा सकता है ? क्या ईश्वर ने उसको क्षमा करने का अधिकार हम लोगों को दिया है ?'

ललिता कुर्सी से उठती हुई बोली—'नहीं-नहीं पानू बाबू। आप क्षमा मत कीजियेगा। आपकी क्षमा शायद सबके लिए बिल्कुल ही असह्य होगी, क्योंकि आपका आक्रमण ही संसार-भर के लोगों का अभ्यास हो गया है।'

यह कहकर ललिता वहाँ से चली गयी।

हारान बाबू की बात से वरदासुन्दरी उद्विग्न हो उठीं। वे अब विनय को किसी तरह भी छोड़ना नहीं चाहती थीं। उन्होंने बेकार में ही हारान बाबू से अनुनय-विनय करके, अन्त में क्रुद्ध होकर उनको विदा कर दिया। उनको कठिनाई यह पड़ी कि वे परेश बाबू को भी अपने पक्ष में न पा सकीं और न हारान बाबू को ही।

विनय जब तक दीक्षा ग्रहण करने के व्यापार को हल्के तौर से देखता रहा तब तक वह बड़ी दृढ़ता के साथ अपना संकल्प प्रकट करता रहा। किन्तु यह देखकर कि इसके लिए ब्राह्म-समाज में आवेदन-पत्र भेजना होगा और हारान बाबू के साथ इसके लिए परामर्श करना पड़ेगा, तो इस खुली प्रकटता की विभीषिका ने उसको एकदम कुण्ठित कर दिया। वह कुछ भी न समझ सका कि किसके साथ वह परामर्श करे ? घूमने-फिरने की शक्ति भी उसमें न रही। यहाँ तक कि आनन्दमयी के मकान तक जाना भी उसके लिए भार हो गया। इसलिए वह अपने निजी मकान में जाकर ऊपर वाले कमरे में लेट गया।

शाम को अँधेरे कमरे में नौकर को बत्ती लेकर आते देख वह उसे मना करने का विचार कर ही रहा था कि उसी समय नीचे से आवाज सुनी—'विनय बाबू ! विनय बाबू !'

यह आवाज सुनकर विनय की निर्जीवता दूर हो गई। 'क्या है, भाई सतीश ?' कहकर वह बिछौने से उछल पड़ा, फिर नंगे पैर तेजी के साथ सीढ़ियों से नीचे उतर गया।

नीचे पहुँचकर उसने देखा, वरदासुन्दरी सामने ही सतीश को साथ लिए खड़ी हैं। फिर वही समस्या और फिर वही लड़ाई। यह सोचकर विनय सतीश और वरदासुन्दरी को ऊपर के कमरे में ले गया। वरदासुन्दरी ने सतीश से कहा—'सतीश ? तुम बरामदे में थोड़ी देर तक बैठो।'

विनय ने सतीश को समय काटने के लिए कुछ चित्रों की पुस्तकें देकर पास वाले कमरे में बत्ती जलाकर बैठा दिया।

वरदासुन्दरी ने कहा, 'विनय ! तुम तो ब्राह्म-समाज के किसी व्यक्ति को नहीं जानते, मुझे एक पत्र लिखकर दे दो, मैं कल सवेरे स्वयं ही सम्पादकजी को देकर सब प्रबन्ध कर दूँगी, जिससे रविवार को तुम्हारी दीक्षा हो जाये।' यह सुनकर विनय कुछ न कह सका। उसने एक पत्र खिलकर वरदासुन्दरी के हाथ में दे दिया।

तब ललिता के साथ विवाह होने की कुछ चर्चा भी वरदासुन्दरी ने छेड़ दी।

वरदासुन्दरी के चले जाने पर विनय के हृदय में घृणा का भाव उत्पन्न होने लगा। यहाँ तक कि ललिता की स्मृति भी उसके मन में कुछ खटकने लगी। वह सोचने लगा कि वरदासुन्दरी की इस घबराहट के साथ कहीं ललिता का भी हाथ तो नहीं है। उसके मन में सबके प्रति श्रद्धा कम होने लगी।

घर लौटकर वरदासुन्दरी ने सोचा कि आज मैं ललिता को प्रसन्न कर दूँगी। उसे निश्चय हो गया था कि ललिता विनय को प्यार करती है; इसलिए जब उन दोनों के विवाह के बारे में समाज में गड़बड़ी मची हुई थी, तब उन दोनों ने अपने सिवाय और सभी को अपराधी मान लिया था। इधर कुछ दिनों से ललिता के साथ उनकी बातचीत बन्द थी। इसीलिए आज जब इसका निपटारा हो गया और यह काम भी उनके द्वारा ही हुआ, इस गौरव को ललिता के सम्मुख प्रकट करके उसके साथ बातचीत करने के लिए वे व्याकुल हो उठीं। ललिता के पिता सब काम बिगाड़ ही चुके थे। स्वयं ललिता भी सफलता प्राप्त न कर सकी। पानू बाबू किसी तरह की सहायता न कर सके। अकेली वरदासुन्दरी ने सब काम ठीक कर लिया है। हाँ-हाँ ! पाँच पुरुष जिस काम को नहीं कर सके, एक स्त्री उसमें सफलता प्राप्त कर सकी है।

घर आकर वरदासुन्दरी ने सुना, ललिता आज सवेरे-सवेरे ही सोने चली गई है, उसकी तबियत ठीक नहीं है। उन्होंने मन-ही-मन प्रसन्न होते हुए कहा—'आज मैं उसकी तबियत ठीक किए देती हूँ।'

जब वे बत्ती लेकर उसकी अँधेरी कोठरी में पहुँचीं तो देखा कि

ललिता अभी आराम कुर्सी पर ही पड़ी हुई है। बिछौने पर सोई नहीं है।

ललिता उन्हें देखकर उसी क्षण उठकर बैठ गई, उसने पूछा—'माँ ! तुम कहाँ गई थीं ?'

ललिता को खबर मिल चुकी थी, वे सतीश को लेकर विनय के घर गयी थीं।

वरदासुन्दरी ने कहा—'मैं विनय के यहाँ गई थी।'

'क्यों ?'

'क्यों ?' वरदासुन्दरी ने मन-ही-मन क्रोध किया। उन्होंने सोचा—'ललिता समझती है कि मैं केवल शत्रु ही हूँ। अकृतज्ञ !'

वरदासुन्दरी ने कहा—'यह देखो, क्यों ?' यह कहकर उन्होंने विनय के लिखे हुए पत्र को ललिता की आँखों के सम्मुख खोलकर रख दिया, उस पत्र को पढ़कर ललिता का मुँह लाल हो गया। वरदासुन्दरी ने अपनी सफलता की प्रशंसा करते हुए कहा—'इस पत्र को विनय के हाथ से लाना कोई आसान काम न था। मैं विश्वास के साथ कह सकती हूँ कि इतने काम का साहस और किसी में नहीं था।'

ललिता अपने दोनों हाथों से मुँह ढँककर आराम-कुर्सी पर लेट गई। वरदासुन्दरी यह सोचकर कि ललिता उनके सामने लज्जा अनुभव कर रही है कमरे से बाहर चली गयीं।

दूसरे दिन प्रातःकाल जब वे उस पत्र को लेकर ब्राह्म-समाज में जाने का विचार करने लगीं, तब उन्होंने देखा कि किसी ने उस पत्र को फाड़ कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया है।

५६

तीसरे पहर सुचरिता जब परेश बाबू के पास जाने को तैयार थी, उसी समय नौकर ने आकर समाचार दिया—'एक बाबू आये हैं ?'

सुचरिता ने पूछा—'कौन ? विनय बाबू हैं ?'

'नहीं, खूब गोरे और लम्बे कद वाले हैं।'

सुचरिता यह सुनते ही चौंक पड़ी। बोली—'उन्हें ऊपर कमरे में ले जाकर बैठाओ !'

आज सुचरिता क्या कपड़ा पहिने थी, यह उसे जैसे ध्यान ही नहीं था। दर्पण के सामने खड़ी होकर, जब उसने अपने पहनावे को देखा तो वह उसे किसी भी तरह पसन्द नहीं आया। परन्तु अब इतना समय नहीं था जो कपड़े बदले जा सकें। उसने काँपते हुए हाथों से अपने बालों को सँवारा, तत्पश्चात् वस्त्रों को ठीक करते हुए वह कमरे में घुसी। उसकी मेज पर गोरा की लिखी पुस्तकें पड़ी थीं और गोरा ठीक उसी मेज के पास वाली कुर्सी पर बैठा हुआ था। अब उन पुस्तकों को हटाने या ढँक देने का अवसर भी नहीं था।

'मौसी बहुत दिनों से आपसे भेंट करने को व्याकुल हैं, मैं उन्हें अभी खबर दे आती हूँ!—यह कहकर वह शीघ्र ही कमरे से बाहर निकल गई। एकान्त में गोरा के साथ बातचीत करने का साहस सुचरिता में न था।

कुछ देर बाद हरिमोहिनी को साथ लेकर सुचरिता लौट आई। पिछले दिनों से सुचरिता के मुख से गोरा की मत-निष्ठा एवं विश्वास को सुनकर उन्हें उसके प्रति सहानुभूति हो चली थी। पहले वे विनय की ओर आकर्षित हुई थीं, परन्तु उसके आचार-विचार की न्यूनता उन्हें सहन न हुई। इधर गोरा की अपने मत में दृढ़ता सुन-सुनाकर वे उसे देखने को उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगी थीं।

गोरा को देखते ही हरिमोहिनी आश्चर्य में पड़ गईं। उसका गोरा शरीर मानो हवन की अग्नि अथवा महादेव के समान दैदीप्यमान था। वे गोरा को प्रणाम करती हुई बोलीं—'बेटा! तुम्हारे विषय में मैंने बहुत-कुछ सुना। तुम वास्तव में गौर मोहन हो! तुम्हें किस दुष्ट ने कारावास की सजा दी, मैं यही विचार कर रही हूँ।'

गोरा हँसता हुआ बोला—'यदि आप मजिस्ट्रेट होतीं तो कारागार चूहे और चिमगादड़ों का घर बना रहता।'

हरिमोहिनी ने कहा—'नहीं बेटा! संसार में चोर, बदमाशों का अभाव नहीं। परन्तु मजिस्ट्रेट शायद अन्धा था जो तुम्हें देखकर भी नहीं पहिचान सका।'

'मनुष्य का मुँह देखने से भगवान का स्वरूप दिखाई देता है'—गोरा ने उत्तर दिया—'इसलिए मजिस्ट्रेट लोग किताबों पर ही अपनी दृष्टि रखते हैं।'

हरिमोहिनी आश्वस्त होकर बोलीं—'राधारानी के मुँह से तुम्हारी पुस्तकें पढ़वा कर सुनती हूँ। कभी तुम्हारे मुख से भी कुछ अच्छी बातें सुन सकूँगी, इसी आशा में अब तक बैठी थी। मुझे पक्का विश्वास है कि तुमसे मुझे कुछ ज्ञान-शिक्षा प्राप्त हो सकेगी।'

गोरा चुपचाप सिर झुकाए बैठा रहा।

हरिमोहिनी फिर बोलीं—'बेटा! तुम्हारे जैसे तेजस्वी ब्राह्मण-पुत्र को मैंने कभी कुछ खिलाया-पिलाया नहीं है, पर आज मुँह मीठा किये बिना तुम्हें न जाने दूंगी। फिर किसी दिन भोजन करने का निमन्त्रण भी आज ही दिये दे रही हूँ।'

इतना कह हरिमोहिनी कुछ खाने की व्यवस्था करने चली गईं। सुचरिता का हृदय तब धड़क रहा था।

तभी गोरा एकाएक बोल उठा—'आपके यहाँ आज विनय आया था?'

'हाँ!' सुचरिता ने उत्तर दिया।

'यद्यपि उसके बाद विनय से मेरी भेंट नहीं हुई, परन्तु मैं जानता हूँ कि वह यहाँ किसलिए आया था?'

सुचरिता चुप रही।

वह बोला—'आप लोग ब्राह्म-मत के अनुसार विनय के विवाह की चेष्टा कर रही हैं, क्या यह अच्छी बात है?'

इस व्यंग्य से सुचरिता के हृदय का संकोच दूर हो गया। वह गोरा की ओर आँखें उठाकर बोली—'क्या आप मुझसे यह आशा करते हैं कि मैं ब्राह्म-मत के अनुसार विवाह होने को अच्छा न समझूंगी।'

गोरा ने कहा—'मैं आप से किसी छोटे काम की आशा नहीं करता। मैं जानता हूँ और आप भी अपने मन में यह भली-भाँति अनुभव करती होंगी कि आप किसी संकुचित दल विशेष की नहीं हैं।'

सुचरिता अपनी सारी शक्ति को जाग्रत कर, तर्क के भाव से बोली—'क्या आप भी ऐसे ही हैं?'

गोरा ने कहा—'मैं हिन्दू हूँ! हिन्दू कोई दल नहीं, यह तो एक जाति है। उसे किसी संज्ञा द्वारा सीमित नहीं किया जा सकता। उसका विस्तार समुद्र की भाँति व्यापक है।'

'हिन्दू कोई दल नहीं है तो वह दलबन्दी क्यों करता है?' सुचरिता ने

पूछा।

'मनुष्य को जब कोई आघात पहुँचता है तो वह स्वयं को बचाने की चेष्टा करता है। केवल पत्थर ही आघातों को सहता हुआ चुपचाप पड़ा रहता है।'

'मैं जिसे धर्म समझती हूँ, उसे हिन्दू अपने ऊपर आघात समझें तो उस स्थिति में आप मुझे क्या करने को कहेंगे?'

'मैं यही कहूँगा कि आप जिसे धर्म समझ रही हैं वह हिन्दू जाति की विराट सत्ता पर एक करारा आघात है। उस समय आपको स्वयं यह देखना होगा कि आप केवल अभ्यास के कारण ही तो ऐसा नहीं कर रही हैं। क्या आप अपने दल का शासन ही सबके ऊपर लादना चाहती हैं? क्या आप यह समझती हैं कि केवल ब्राह्म-समाज के खाते में अपना नाम दर्ज कराने के लिए ही सब लोगों ने संसार में जन्म लिया है। यदि ऐसी ही बात है तो उन जातियों में जो संसार में केवल दासता ही फैलाना चाहती हैं तथा आप में, फिर अन्तर ही क्या रहा?'

क्षण-भर के लिए सुचरिता अपने तर्क को भूल गई। गोरा का गम्भीर कण्ठ-स्वर सुनकर उसे केवल यही भासित होने लगा जैसे वह सब-कुछ सत्य ही कह रहा है।

गोरा फिर बोला—'भारत के चालीस करोड़ लोगों को केवल आपके समाज ने ही पैदा नहीं किया है। आप बलपूर्वक सबके ऊपर अपने विचार लादकर, जो सम्पूर्ण भारत को एक-सा समतल कर देना चाहती हैं, यह कैसे चल सकता है? अपनी बुद्धि एवं अपने दल के अहंकार के कारण आप वास्तविकता को समझने की चेष्टा क्यों नहीं करतीं?'

सुचरिता को फिर मौन देखकर गोरा के हृदय में उसके प्रति करुणा का संचार हो आया। कुछ रुककर वह फिर बोला—'सम्भवत: आपको मेरी बातें बुरी लगी हों। परन्तु सच मानिये, यदि मैं आपको किसी एक पक्ष का समझता तो ऐसी कोई बात कभी नहीं कहता। आपके हृदय की उदार शक्ति एक दल विशेष के कारण संकुचित होती जा रही है, मुझे तो यही देखकर कष्ट होता है।'

सुचरिता का मुँह लज्जा से लाल हो गया। बोली—'नहीं, आप मेरे सम्बन्ध में चिन्ता न कीजिये। आप अपनी बात कहिये, मैं उसे समझने का

प्रयत्न कर रही हूँ।'

गोरा ने कहा—'मुझे और अधिक नहीं कहना है। आप भारतवर्ष को अपने हृदय से देखें तथा प्यार करें, मैं यही चाहता हूँ। यदि आप ब्राह्म-अब्राह्म की दृष्टि से सबको देखेंगी तो आप उसे गलत समझती रहेंगी। ईश्वर ने सब लोगों को अलग-अलग बनाया है। वे अलग-अलग सोचते और विचार करते हैं। अतः उनकी कल्पना को झूंठ बताकर उन पर अश्रद्धा करना, नास्तिकता से अलग और कुछ नहीं है।'

सुचरिता गर्दन झुकाये सब बातों को सुन रही थी। बोली—'और मुझे क्या करने को कह रहे हैं?'

गोरा बोला—'हिन्दू धर्म माता के समान सभी मतों को अपनी गोद में शरण देने का प्रयत्न करता है। यह मनुष्य को मनुष्य स्वीकार करता है। ज्ञान किसी एक मूर्ति विशेष को नहीं मानता। वह ज्ञान के अनेक प्रकार के विश्वासों का प्रतिपादन करता है। परन्तु क्रिस्तान धर्म इस विचित्रता को स्वीकार नहीं करता। जो लोग क्रिस्तान धर्म का अन्धानुकरण करते हैं, वे ही हिन्दू धर्म की विशेषता से लज्जित होते दीख पड़ते हैं। अतः जब तक हम अपने मन को खोजकर विदेशी धर्म की दासता से छुटकारा नहीं पायेंगे, तब तक हिन्दू धर्म के सत्य का परिचय भी प्राप्त न कर सकेंगे।'

सुचरिता केवल गोरा की बातों को सुन ही नहीं रही थी। ऐसा लगता था, मानो वह सुदूर भविष्य को अपनी दोनों आंखों से टकटकी लगाये ध्यानपूवक देख रही हो। अब तक उसने समाज के विद्वानों के मुख से आलोचनायें ही सुनी थीं, परन्तु गोरा का कथन आलोचना न होकर मानो एक सृष्टि था—ऐसा प्रत्यक्ष व्यवहार, जो सम्पूर्ण शरीर एवं मन पर एक साथ ही अपना अधिकार कर लेता है।

इसी समय सतीश ने कमरे में प्रवेश किया। सतीश गोरा से डरता था, अतः वह अपनी बहिन के पास चुपचाप आ खड़ा हुआ। इसके बाद धीमे स्वर में बोला—'पानू बाबू आये हैं।'

सुचरिता यह सुनकर चौंक पड़ी, मानो किसी बिच्छू ने डंक मार दिया हो। वह सावधानी से उठी तथा सीढ़ियों से उतरकर नीचे चली गई। हारान बाबू के पास पहुंच कर उसने कहा—'मुझे क्षमा करें। आज मैं आप

से बात न कर सकूँगी।'

'क्यों ?' हारान बाबू ने पूछा।

सुचरिता इस प्रश्न का कोई उत्तर न देते हुए बोली—'आप कल सवेरे बाबूजी के पास आयें तो वहीं मुझसे भेंट हो सकेगी।'

हारान बाबू ने कहा—'तुम्हारे कमरे में शायद कोई आदमी है ?'

सुचरिता इसे भी टालती हुई बोली—'आज मुझे समय नहीं है। कृपया क्षमा करें।'

परन्तु हारान बाबू फिर बोले—'मैंने सड़क से गौर मोहन बाबू का कण्ठ सुना है। वे बैठे हुए हैं क्या ?'

सुचरिता अब और न टाल सकी। वह लाल मुँह करके बोली—'हाँ बैठे हुए हैं।'

'तब ठीक है'—हारान बाबू बोले—'मुझे उनसे कुछ बातें भी करनी हैं। तुम जब तक अपना काम करोगी, तब तक मैं उनके साथ वार्तालाप कर लूंगा।'

इतना कह, सुचरिता की सम्मति की प्रतीक्षा किए विना ही वे सीढ़ियों से ऊपर चढ़ने लगे। सुचरिता उनकी ओर दृष्टिपात किये बिना गोरा के पास आकर बोली—'मौसी आपके लिए नास्ता तैयार कर रही हैं। मैं उन्हें देखकर अभी आती हूँ।'

इतना कहकर वह कमरे से बाहर चली गई। इधर हारान बाबू गम्भीर से होकर कुर्सी पर बैठ गए। तत्पश्चात् गोरा से बोले—'आप कुछ दुर्बल से दिखाई दे रहे हैं।'

'जी हाँ!'—गोरा ने उत्तर दिया—'दुर्बल होने की चिकित्सा ही चल रही थी।'

हारान बाबू किंचित नम्र स्वर में बोले—'आपको बहुत कष्ट उठाना पड़ा।'

'जो आशा की जाती थी, उससे अधिक कष्ट नहीं हुआ।' गोरा ने फिर उत्तर दिया।

हारान बाबू बोले—'मुझे आपसे विनय बाबू के सम्बन्ध में कुछ बातें करनी हैं। यह तो आप सुन ही चुके होंगे कि अगले रविवार को वे ब्राह्म-समाज में दीक्षा ले रहे हैं ?'

'नहीं, मैंने तो नहीं सुना।'

'परन्तु क्या इस कार्य में आपकी सम्मति है?'

'विनय मुझसे कभी सम्मति नहीं लेता।'

'क्या आप समझते हैं कि विनय बाबू हृदय से यह दीक्षा लेने को तैयार हुए हैं?'

'जब वे दीक्षा लेने को तैयार ही हो गए हैं तो आपका यह प्रश्न निरर्थक है।'

'यद्यपि आपके साथ मेरे मत एवं समाज का कोई साम्य नहीं है, फिर भी आप पर श्रद्धा रखता हूँ। मैं समझता हूँ कि आपका जो विश्वास है, वह सत्य या मिथ्या कैसा भी क्यों न हो, उसे कोई डिगा नहीं सकता। परन्तु···।'

गोरा बीच में ही टोकता हुआ बोला—'आप जो मेरे प्रति थोड़ी-सी श्रद्धा बचा सके हैं, उससे वंचित होने पर विनय को क्या नुकसान उठाना पड़ेगा? मैं चाहता हूँ कि आप अपनी श्रद्धा को संसार के सब लोगों तक फैलाने का प्रयत्न करें।'

हारान बाबू बोले—'इस विषय को छोड़िए। परन्तु मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि विनय बाबू जो परेश बाबू के घर में विवाह कर रहे हैं, क्या आप उसमें कोई बाधा न डालना चाहेंगे?'

गोरा क्रुद्ध हो उठा। बोला—'हारान बाबू! विनय की आलोचना करते समय आपको यह भली-भाँति ध्यान रखना चाहिये कि वह मेरा मित्र है, आपका नहीं।'

हारान—'इस कार्य का ब्राह्म-समाज के साथ सम्बन्ध है, इसीलिए मैंने यह प्रसंग उठाया है, अन्यथा···।'

'मगर मैं ब्राह्म-समाज का कोई नहीं हूँ।' गोरा बोला—'मेरे सामने आपकी यह दुश्चिन्ता क्या मूल्य रखती है?'

इसी समय सुचरिता ने कमरे में प्रवेश किया। हारान बाबू उससे बोले—'सुचरिता! मुझे तुमसे एक विशेष बात कहनी है।'

सुचरिता ने कोई उत्तर नहीं दिया। वास्तव में सुचरिता से अपनी घनिष्टता दिखाने के लिए हारान बाबू ने गोरा के सामने उसे ऐसी बात कही थी। परन्तु कोई उत्तर न पाने पर, वे फिर बोले—'सुचरिता! तुम

उस कमरे में तो चलो, मैं एक बात कहना चाहता हूँ।'

सुचरिता ने फिर भी बात अनसुनी कर दी। वह गोरा की ओर देखती हुई बोली—'आपकी माँ तो अच्छी तरह हैं?'

'मैंने तो उन्हें कभी ऐसा देखा ही नहीं, जब वे अच्छी तरह न हों।' गोरा ने उत्तर दिया।

'यह तो मैं भी देख चुकी हूँ।'—सुचरिता बोली—'उनकी सहन-शक्ति का परिचय मुझे भी कुछ मिला है।'

इसी समय हारान बाबू ने मेज पर रखी हुई गोरा की लिखी एक पुस्तक उठा ली। उसे पलटते हुए बोले—'गौर बाबू! यह पुस्तक आपने शायद बचपन में लिखी थी?'

'वह बचपन तो अभी भी चल रहा है।'—गोरा ने हँसते हुए उत्तर दिया—'कुछ लोगों का बचपन शीघ्र समाप्त हो जाता है और कुछ बहुत अधिक समय तक बच्चे बने रहते हैं।'

तभी सुचरिता ने कुर्सी से उठते हुए कहा—'गौर बाबू! आपके लिए खाना तैयार हो गया है। मौसी पानू बाबू के सामने नहीं निकलतीं, अतः वहीं आपकी प्रतीक्षा कर रहीं हैं। आप उस कमरे में चले चलिए।'

यह बात सुचरिता ने हारान बाबू को चोट पहुँचाने के लिए ही कही थी, परन्तु हारान बाबू ने फिर भी अपराजित-से होकर कहा—'तो मैं तुम्हारी यहीं प्रतीक्षा कर रहा हूँ।'

सुचरिता ने उत्तर दिया—'आप क्यों प्रतीक्षा करते हैं? मुझे आज समय नहीं है।'

परन्तु हारान बाबू फिर भी न उठे। सुचरिता गोरा को साथ लेकर कमरे से बाहर चली गई। इधर हारान बाबू एक कागज लेकर सुचरिता को पत्र लिखने लगे। उनका विश्वास था कि सत्य की दुहाई देने पर उनका तेजस्वी वाक्य निष्फल न जा सकेगा।

कुछ खा-पीकर जब गोरा अपनी छड़ी लेने के लिए सुचरिता के कमरे में आया, उस समय सन्ध्याकाल निकट आ चुका था। हारान बाबू ने सुचरिता के नाम पत्र लिखकर मेज पर इस प्रकार रख दिया था कि कमरे में प्रवेश करते ही गोरा की दृष्टि उस पर जा पड़े। ऐसा ही हुआ भी। गोरा ने जब उस पत्र को देखा, तो वह मन-ही-मन अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा।

उसने न जाने क्या-क्या सोचते हुए, सुचरिता से कहा—'मैं कल आऊँगा।'

'अच्छा' कहकर सुचरिता सिर झुकाए खड़ी रही।

तभी गोरा जाते-जाते ठिठक कर खड़ा हो गया और बोला—'तुम भारतवर्ष के सौरमण्डल की ही एक नक्षत्र हो। कभी कोई धूमकेतु तुम्हें अपनी पूँछ में लपेटकर शून्य में नहीं ले जा सकता। मैं तुम्हें तुम्हारे उचित स्थान पर प्रतिष्ठित करके ही छोड़ूँगा। मैं तुम्हें स्पष्ट रूप से यह ज्ञान करा दूँगा कि जिन लोगों ने तुम्हारे धर्म तथा सत्य को बाँध रखा है, वे मिथ्यावादी हैं। जिस समाज में तुम्हारा स्थान है, तुम्हें उसी का आश्रय लेना पड़ेगा। यदि तुम उसे स्वीकार न करोगी, तो तुम्हारा धर्म, तुम्हारी शक्ति—सब-कुछ छाया की भाँति मलिन हो जायेंगे। यही सब समझाने के लिए मैं कल फिर आऊँगा।'

इतना कहकर गोरा चला गया। उस कमरे की हवा मानो बहुत देर तक उसके इन्हीं शब्दों को प्रतिध्वनित कर काँपती रही। सुचरिता उस समय मूर्ति के समान निस्तब्ध बैठी हुई थी।

५७

विनय ने आनन्दमयी से कहा—'माँ, जब-जब ठाकुरजी को प्रणाम किया, तब-तब मुझे अपने मन में एक प्रकार की लज्जा का-सा अनुभव हुआ है। या समझो कि मेरे मन ने इस कार्य में कभी साथ नहीं दिया।'

आनन्दमयी बोलीं—'तेरा मन क्या सहज है? तू सभी बातों में मन को ढूँढ़ता है, इसीलिए तेरे मन का सन्देह दूर नहीं होता।'

विनय बोला—'इसीलिए तो मैं पूछता हूँ कि जिस पर मैं विश्वास नहीं करता, उस पर विश्वास करने का ढोंग क्या अच्छी बात है?'

आनन्दमयी कुछ समझ न सकीं। बोलीं—'ऐसी बात भी क्या कभी पूछी जाती है?'

विनय—'माँ! मैं परसों ब्राह्म-समाज में दीक्षा लूँगा।'

आनन्दमयी यह सुनकर आश्चर्य में पड़ गईं। बोलीं—'यह आज तू कैसी बात कर रहा है? दीक्षा लेने की क्या आवश्यकता आ पड़ी है, भला?'

'माँ ! यही बात तो मैं इतनी देर से कहना चाहता था।' विनय ने उत्तर दिया।

'क्या तू अपने विश्वास को लेकर हमारे समाज़ में नहीं रह सकता ?'

'पर माँ ! यदि समाज मुझे स्वीकार न करे तो क्या मैं बलपूर्वक हिन्दू रह सकता हूँ ?'

'यह तर्क करने का विषय नहीं है। ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय में निरर्थक तर्क नहीं करना चाहिए।'

'पर माँ ! मैं चिट्ठी लिखकर वचन दे चुका हूँ कि मैं कल दीक्षा लूँगा।'

'परन्तु यदि तू परेश बाबू को समझा दे तो वे कभी दीक्षा लेने के लिए हठ नहीं करेंगे।'

'लेकिन माँ, अब बात पक्की हो चुकी है। उसे बदला नहीं जा सकता।'

'इस बारे में तूने गोरा से भी कहा है ?'

'उससे तो मेरी मुलाकात भी नहीं हुई।'

'वह इस समय घर में है ?'

'नहीं, मुझे पता चला है कि वह आज सुचरिता के घर गया हुआ है।'

'सुचरिता के घर !'—आनन्दमयी आश्चर्य में पड़कर बोलीं—'वहाँ तो वह कल गया था ?'

'आज भी गया है।'—विनय बोला।

इसी समय आँगन में कहारों के आने की आवाज सुनाई दी। आनन्दमयी के कुटुम्ब की कोई स्त्री आई है, यह विचारकर विनय बाहर चला गया।

तभी ललिता ने आकर आनन्दमयी को प्रणाम किया। आनन्दमयी को उसके आने की कुछ भी आशा नहीं थी। परन्तु फिर उसे सत्कारपूर्वक बैठाकर बातचीत को आरम्भ करती हुई बोलीं—'बेटी ! तुम्हारे आने से मैं बहुत प्रसन्न हुई हूँ। अभी विनय भी यहीं था। वह तुम्हारे समाज में दीक्षा लेगा, इसी विषय पर बातचीत चल रही थी।'

ललिता बोली—'परन्तु उनके दीक्षा लेने की क्या आवश्यकता है ?'

आनन्दमयी आश्चर्य में पड़कर बोलीं—'क्या आवश्यकता नहीं है ?'

'मैं तो नहीं समझती।' ललिता ने उत्तर दिया।

'परन्तु वह तो दीक्षा लेने का पक्का वचन दे चुका है !'

'ऐसे विषयों में यदि आवश्यकता पड़े तो अपने वचन को वदल देना चाहिए, माँ !'

आनन्दमयी बोलीं—'वेटी ! तुम मुझसे लज्जा न करो। विनय समझता है कि दीक्षा न लेने पर उसका तुमसे मिलन न हो सकेगा, इसीलिए वह ऐसा निश्चय कर बैठा है। पर, क्या वह सचमुच आवश्यक नहीं है ?'

ललिता ने आनन्दमयी की ओर अपना मुँह उठाकर कहा—'माँ ! मैं तुमसे कुछ भी लज्जा नहीं करूँगी। मैंने भली-भाँति विचार करके यह देख लिया है कि धर्म-विश्वास एवं समाज का लोप कर देने के बाद ही किसी मनुष्य का परस्पर मिलन-संयोग नहीं हो सकता। ऐसा हो, तब तो किसी हिन्दू की मैत्री किसी क्रिस्तान से भी न हो सकेगी।'

आनन्दमयी प्रसन्न होकर बोलीं—'तेरी बात सुनकर मुझे वड़ी प्रसन्नता हुई है। मैं जानती हूँ कि वह अपना मन और सब-कुछ तुझे दे चुका है। यह मत-परिवर्तन की जो एक दीवार रुकावट बनकर खड़ी हुई थी, उसे भी तूने कैसी सरलता से काट दिया। यह उसका सौभाग्य नहीं तो और क्या है ? परन्तु, मैं यह पूछना चाहती हूँ कि क्या परेश बाबू से भी इस सम्बन्ध में कोई बात हुई है ?'

ललिता लज्जा को दबाती हुई बोली—'बात तो नहीं हुई, परन्तु वे सब-कुछ समझ जायेंगे।'

आनन्दमयी ने पुलकित होकर ललिता की ठोड़ी चूम ली। तत्पश्चात् वे आनन्द-विभोर हो, विनय को बुला लाईं। फिर चतुरता से लछमियाँ को कमरे में बैठाकर, ललिता को कुछ खिलाने के बहाने दूसरी ओर चली गईं।

अब ललिता और विनय को संकोच की आवश्यकता नहीं थी। ललिता ने स्वयं ही अपने मुख को प्रदीप्त करते हुए विनय से कहा—'आप स्वयं को छोटा बनाकर मुझे ग्रहण करना चाहेंगे तो मैं इस अप्रतिष्ठा को सहन न कर सकूँगी। आप जहाँ हैं, वहीं बने रहें, मैं यही चाहती हूँ।'

तदनन्तर ललिता और विनय में बीस मिनट तक अनेक बातें होती रहीं, जिनका सारांश यह कि वे दोनों ही इस बात को भूल गए कि वे ब्राह्म हैं अथवा हिन्दू। वे दोनों केवल मानव हैं, यही बात उनके हृदय में दीप-शिखा की भाँति अबाध गति से जलने लगी।

५८

उपासना के बाद परेश बाबू अपने कमरे के सामने बरामदे में चुपचाप बैठे हुए थे। सूर्य अस्त हो चुका था। इसी समय ललिता को साथ लिये हुए विनय ने वहाँ प्रवेश किया तथा पृथ्वी पर मस्तक रखकर, उसने परेश बाबू को प्रणाम कर, चरण-धूलि ली।

परेश बाबू उन दोनों को देख कुछ आश्चर्य में पड़ गए, तदुपरान्त पास में बैठने को अन्य कुर्सियाँ न देखकर बोल उठे—'चलो, कमरे में चलें।'

परन्तु विनय वहीं नीचे पृथ्वी पर बैठता हुआ बोला—'आप यहाँ से उठें नहीं। आज हम दोनों संयुक्त रूप से आपका आशीर्वाद लेने के लिए आए हैं। यही हमारे जीवन की सच्ची दीक्षा है।'

'परेश बाबू ने आश्चर्य से उन दोनों के मुँह की ओर देखा।'

विनय बोला—'मैं बँधे हुए नियमों द्वारा निर्मित वाक्यों से समाज में दीक्षा ग्रहण न करूँगा। आपका आशीर्वाद ही हमारी दीक्षा है।'

परेश बाबू कुछ देर मौन रहे। फिर बोले—'तो तुम ब्राह्म न बनोगे?'

'नहीं!' विनय ने उत्तर दिया।

'तो तुम हिन्दू समाज में ही रहना चाहते हो?'

'जी।'

परेश बाबू ने तभी ललिता के मुँह की ओर देखा। वह उनका आशय समझकर बोली—'बाबूजी! मेरा धर्म साथ है, परन्तु जिस धर्म के साथ मेरे आचरण की भिन्नता है, उसे मैं किसी भी प्रकार सहन न कर सकूँगी।'

परेश बाबू कुछ मलिन-भाव से मुस्करा उठे। फिर बोले—'बेटी! तुम्हारे भावी वंश के भीतर जो दूरव्यापी भविष्य छिपा है, उसके बारे में तुम क्या सोचती हो?'

'उसके लिए हिन्दू समाज तो है?' विनय ने उत्तर दिया।

'परन्तु यदि हिन्दू समाज तुम्हारा भार न ले तो?'

विनय ने आनन्दमयी की बात का स्मरण करते हुए कहा—'उसे स्वीकार कराने का हमें प्रयत्न करना पड़ेगा। हिन्दू समाज तो सदैव से नये-नये सम्प्रदायों को आश्रय देता आया है। अतः वह सभी सम्प्रदायों का एक मिला-जुला समाज है।'

'मुख के तर्क द्वारा एक वस्तु को जिस प्रकार दिखाया जा सकता है, कार्य में वह उसी प्रकार की नहीं पाई जाती, क्या इसका भी तुमने कभी विचार किया है ?' परेश बाबू ने शान्त भाव से कहा।

ललिता बोली—'बाबूजी ! मैं इन बातों को नहीं समझती, परन्तु किसी अन्याय का भार सहन करना मेरे वश की बात नहीं है।'

परेश बाबू स्नेहार्द्र स्वर में बोले—'अभी तुम्हारा मन चंचल है, इसके लिए विचार करने को कुछ और समय लेना क्या अच्छा न रहेगा ?'

ललिता ने कहा—'मुझे समय लेने में कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु मुझे भय है कि इन अनाचारों के प्रतिरोध में मैं कोई ऐसा काम न कर बैठूँ, जिससे आप सभी को कष्ट हो।'

परेश बाबू कुछ देर तक स्तब्ध रहने के उपरान्त बोले—'विनय ! तुम्हारे यहाँ 'सालिगराम' की शिला रखकर विवाह होता है। क्या ललिता उसे स्वीकार कर सकेगी ?'

विनय ने देखा—इस बात को सुनकर ललिता का मन अत्यन्त संकुचित हो उठा। ललिता भी सिर झुकाए बैठी थी। एकाएक उसने विनय की ओर मुँह उठाकर कहा—'क्या आप 'सालिगराम' की शिला को सचमुच देवता करके मानते हैं ?'

'मैं उसे केवल एक सामाजिक चिह्न मानता हूँ।'—विनय ने उत्तर दिया—'इससे अधिक और कुछ नहीं।'

'तो क्या आप उसे बाहर से देवता न मानेंगे ?'

'मैं सालिगराम' को रखूँगा ही नहीं।' विनय का स्पष्ट उत्तर था।

परेश बाबू कुर्सी से उठ खड़े हुए। बोले—'अभी तुम्हारा मन स्थिर नहीं है। तुम इस पर भली-भाँति विचार कर निश्चय करलो कि विवाह एक सामाजिक कार्य है। केवल व्यक्तिगत ही हो, ऐसी बात नहीं है।'

इतना कह परेश बाबू बगीचे में जाकर टहलने लगे।

ललिता ने भी उठते हुए, विनय की ओर पीठ करके कहा—'मैं इस बात को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हूँ कि जिस कार्य में हमारी इच्छा नहीं है, उसे भी समाज के भय से करना ही पड़ेगा।'

तभी विनय ने उत्तर दिया—'मैं भी किसी समाज से नहीं डरता।

यदि हम सत्य का आश्रय लें तो समाज हमसे बड़ा सिद्ध न हो सकेगा।'

इसी समय वरदासुन्दरी ने आँधी के समान दोनों के सामने आकर कहा—'विनय ! मैंने सुना है कि तुम दीक्षा नहीं लोगे ?'

विनय बोला—'ठीक ही सुना है। मैं योग्य गुरु से दीक्षा लूंगा, किसी समाज से नहीं।'

वरदासुन्दरी इस उत्तर से अत्यन्त क्रुद्ध हो उठीं। बोलीं—'इस षड्यंत्र का क्या अर्थ है ? क्या अब तक दीक्षा लेने का ढोंग रचकर सब लोगों को भुलावे में ही डाल रहे थे ? इससे ललिता का कितना सर्वनाश होगा, क्या यह भी तुमने कभी सोचा है ?'

तभी ललिता बीच में बोल पड़ी—'माँ ! तुमने अखबार में देखा ही होगा कि विनय बाबू के दीक्षा लेने में तुम्हारे ब्राह्म-समाज के सब लोगों की सम्मति नहीं है। तब ऐसी दीक्षा लेने की आवश्यकता ही क्या है ?'

वरदासुन्दरी बोलीं—'परन्तु दीक्षा लिये बिना विवाह कैसे होगा ?"

'होगा क्यों नहीं ?' ललिता ने कहा।

'क्या हिन्दू धर्म के मत से ?'

'हाँ'—विनय ने बीच में उत्तर दिया—'उसमें जो बाधा पड़ेगी, मैं उसे दूर कर दूंगा।'

वरदासुन्दरी के मुँह से बहुत देर तक कोई बात नहीं निकली, तत्पश्चात् उन्होंने रुद्ध कण्ठ से कहा—'विनय ! तुम यहाँ से चले जाओ। अब फिर कभी इस मकान में मत आना।'

५६

सुचरिता यह भली-भाँति जानती थी कि आज गोरा आयेगा। प्रातः-काल से ही उसकी छाती में धड़कन हो रही थी। कल जब गोरा ने मौसी के कमरे में जाकर ठाकुरजी को प्रणाम किया था, उस समय उसके हृदय पर मानो छुरी चल गई थी। प्रणाम करने में कोई हर्ज नहीं था, परन्तु उसका अपना विश्वास ऐसा ही था।

हरिमोहिनी आज भी गोरा को ठाकुरजी वाली अपनी कोठरी में ले गईं और आज भी गोरा ने उन्हें प्रणाम किया। तत्पश्चात् जब गोरा ने सुचरिता

की बैठक में प्रवेश किया, तो सुचरिता ने सबसे पहला प्रश्न यह किया— 'क्या आप भी ठाकुरजी की भक्ति करते हैं।'

'क्यों नहीं ?' गोरा ने उत्तर दिया—'भक्ति तो अवश्य करता हूँ।'

सुचरिता ने यह सुनकर चुपचाप मस्तक झुका लिया। उसकी नम्र वेदना का गोरा के हृदय पर बड़ा आघात हुआ। वह बोला—'देखो, मैं सच बात कहता हूँ, ठाकुरजी की भक्ति मुझसे होती है या नहीं, यह तो मैं ठीक से नहीं बता सकता, परन्तु मैं अपने देश की भक्ति अवश्य करता हूँ। समस्त देश की पूजा जहाँ इतने दिनों से पहुँच रही है, उसे मैं भी अपना पूजनीय मानता हूँ। हाँ, क्रिस्तान पादरियों की भाँति उस स्थान पर अपनी विषय-पूर्ण दृष्टि कभी नहीं डालता।'

सुचरिता बोली—'क्या भक्ति करने से ही सब काम बन जाते हैं ? किसकी भक्ति की जा रही है—यह भी तो सोचना ही होगा।'

गोरा मन-ही-मन कुछ उत्तेजित होकर बोला—'तुम समझती हो कि किसी सीमाबद्ध पदार्थ को ईश्वर मानकर उसकी पूजा करना भ्रम है, परन्तु क्या उस सीमा का निर्णय केवल देश-काल की ओर से ही हो सकता है ? आपकी असीमता विस्तार की असीमता से बड़ी वस्तु है। तुम्हारी मौसी के लिए ये छोटे-से ठाकुरजी सूर्य, चन्द्रमा तथा तारागणों से भरे विशाल आकाश की अपेक्षा कहीं अधिक असीम हैं। तुम जो परिमाणगत असीम को असीम कहती हो, मैं नहीं समझता कि इससे तुम्हें कोई फल मिलता है या नहीं, परन्तु यह सत्य है कि हृदय के भावों द्वारा असीम को आँखें खोलकर देखने से, उसे छोटे-से पदार्थ में भी पाया जा सकता है। भाव की असीमता के बिना मनुष्य के खाली हृदय का स्थान कभी नहीं भरता।'

सुचरिता फिर भी मौन रही। तब गोरा का हृदय एक प्रकार से व्यथित हो उठा। वह अपने कण्ठ-स्वर को कोमल बनाकर बोला—'मैं तुम्हारे मत की निन्दा नहीं कर रहा हूँ। मेरा कहने का तत्पर्य केवल यही है कि तुम जिस ठाकुरजी की निन्दा करती हो, वह क्या है, इसे केवल आँखों से देखकर ही नहीं जाना जा सकता। जिसका मन उनमें स्थिर होकर तृप्त हो गया है, वही यह भली-भाँति अनुभव कर सकता है कि ठाकुरजी भी मृत्तिकामय, पाषाणमय, ससीम अथवा असीम हैं। मैं यह दावे के साथ कहता हूँ कि हमारे देश का कोई भी भक्त असीम की पूजा नहीं करता है। सभी

उस ससीम की तलाश में रहते हैं। सीमा के भीतर सीमा को खो देने में ही भक्ति का सच्चा आनन्द है।'

सुचरिता बोली—'परन्तु सभी लोग तो ऐसे भक्त नहीं हैं ?'

गोरा—'जो भक्त नहीं है, वह किसकी पूजा करता है, यह जानने न जानने से लाभ-हानि भी क्या है ?'

सुचरिता ने इसका कोई उत्तर न देते हुए कहा— 'आप धर्म के सम्बन्ध में ये बातें क्या भली-भाँति जानकार होने के नाते कर रहे हैं ?'

गोरा ने मुस्कराकर कहा—'तुम यह जानना चाहती हो कि मैंने कभी ईश्वर से स्नेह किया है या नहीं ? परन्तु मेरा मन तो कभी उस ओर गया ही नहीं।'

सुचरिता को इस बात से कोई प्रसन्नता नहीं हुई, फिर भी जैसे वह एक संकट से छूट गई। तभी गोरा फिर कह उठा—'मैं किसी को धर्म की शिक्षा देने की योग्यता का दावा नहीं करता। परन्तु अपने देश के लोगों की भक्ति का तुम लोग उपहास करो, यह भी कभी सहन नहीं कर सकता हूँ। तुम देश के लोगों को मूर्तिपूजक और मूर्ख कह सकती हो, परन्तु मैं उन्हें ज्ञानी और भक्त कहना चाहता हूँ। हम लोगों में जो धर्म-तत्त्व में भक्ति-तत्त्व की प्रधानता है, मैं उसके प्रति श्रद्धा प्रकट करके अपने देश को जाग्रत करना चाहता हूँ। किसी के हृदय में स्वयं के प्रति धिक्कार पैदा हो तथा सत्य के प्रति अन्धविश्वास उत्पन्न हो जाये, यह मैं कभी सहन न करूँगा। मैं जो आज तुम्हारे पास आया हूँ, उसका भी एक ही कारण है। मैंने ध्यान देकर देखा है कि केवल पुरुष की दृष्टि से ही भारतवर्ष पूर्ण न होगा। जिस दिन हमारे देश की महिलाओं के सामने भी वह दिन आविर्भूत होगा, तभी हम पूर्णता को प्राप्त कर सकेंगे। मैं तुम्हें साथ लेकर एक दृष्टि से अपने समस्त देश को देखूं, यही आकांक्षा मेरे हृदय को उत्तेजित कर रही है। मैं अपने भारतवर्ष पर मर मिटने को तैयार हूं, परन्तु तुम्हारे बिना उस प्रदीप को जलाकर अपनायेगा कौन ? यदि तुम दूर रहोगी तो भारतवर्ष की भलीभाँति सेवा न हो सकेगी। मैं तुम्हें लेने के लिए आया हूं। तुम्हारे अलग रहने से वह यज्ञ पूरा न होगा।'

सुचरिता की दोनों आँखों से आँसू बह निकले। क्यों ? इसे वह स्वयं भी न जान सकी।

जिस प्रकार भूकम्प आने पर पत्थर का बना हुआ राजमहल भी डगमगाने लगता है, उसी प्रकार सुचरिता की आँसुओं से भीगी आँखें देखकर गोरा का हृदय भी डगमगाने लगा। वह अपनी पूरी शक्ति से अपने को सँभालता हुआ, मुँह फेरकर खिड़की के बाहर देखने लगा। उसे मालूम हुआ, जैसे आकाश निस्तब्ध और अन्धकारमय है। केवल आँसू से भरे दो करुण नेत्र निर्निमेष दृष्टि से अनादिकाल की ओर देख रहे हैं।

तभी हरिमोहिनी की आवाज सुनकर उसका ध्यान भंग हुआ। उसने मुड़कर देखा। हरिमोहिनी कह रही थीं—'बेटा, कुछ जलपान करके जाना।'

'नहीं माँ!'—गोरा ने शीघ्रतापूर्वक उत्तर दिया—'आज नहीं, मैं अब जा रहा हूँ।'

इतना कह, वह बिना किसी उत्तर की प्रतीक्षा किए, तेजी से बाहर निकल गया। हरिमोहिनी आश्चर्यचकित-सी हो, सुचरिता के मुँह की ओर देखने लगीं। तभी सुचरिता भी कमरे से बाहर निकल गई।

इसके थोड़ी देर बाद ही परेश बाबू वहाँ आ गये। उन्होंने हरिमोहिनी से पूछा—'राधारानी कहाँ है?'

हरिमोहिनी ने झुँझलाते हुए उत्तर दिया—'पता नहीं। अब तक गोरा से बातें कर रही थी। अब शायद छत पर अकेली टहल रही होगी।'

परेश बाबू चकित होकर बोले—'इतनी रात गए ठण्ड में छत पर है?'

हरिमोहिनी ने कहा—'कुछ ठण्ड लग जाना ही ठीक है। आजकल की लड़कियों को ठण्ड लगने से कुछ बिगाड़ नहीं होता है।'

हरिमोहिनी का मन खराब हो गया था, इसलिए आज उसने सुचरिता को खाने के लिए भी नहीं बुलाया। तभी हठात् परेश बाबू को ऊपर छत पर आते देख, वह लज्जित-सी हो उठी। उसने परेश बाबू से कहा—'बाबूजी! नीचे चलिये, आपको ठण्ड लग जायगी।'

कमरे में आकर सुचरिता ने दीपक के उजाले में परेश बाबू का उदास मुख देखा तो उसके हृदय को बड़ी ठेस लगी। जब परेश बाबू व्यथित होकर कुर्सी पर बैठ गए तो वह उनकी कुर्सी के पीछे खड़ी हो, उनके बालों में उँगलियाँ फिराने लगी।

परेश बाबू ने भारी गले से कहा—'विनय ने दीक्षा लेने से इन्कार कर

दिया है।'

सुचरिता मौन रही।

परेश बाबू फिर बोले—'विनय के दीक्षा लेने के प्रस्ताव पर ही मुझे सन्देह था, अतः अब उसे अस्वीकृत कर देने पर उतना दुःख नहीं है। परन्तु ललिता दीक्षा लिये बिना भी उसके साथ विवाह करने में बाधा नहीं समझ रही है।'

सुचरिता यह सुनकर जोर से चिल्ला पड़ी—'नहीं बाबूजी! यह तो किसी तरह नहीं हो सकता।'

परेश बाबू उसके आकस्मिक आवेग को देखकर कुछ आश्चर्य में पड़ गये। बोले—'क्यों, हो क्यों नहीं सकता?'

सुचरिता—'विनय के ब्राह्म न होने पर विवाह किस रीति से होगा?'

'हिन्दू रीति से।' परेश बाबू ने उत्तर दिया।

सुचरिता—'यह कैसी बातें आजकल हो रही हैं? ठाकुरजी की पूजा के साथ ललिता का विवाह हो, यह मैं किसी भी तरह न होने दूँगी।'

परेश बाबू—'परन्तु विनय 'सालिगराम' की शिला को बीच में रखे बिना विवाह को तैयार हो गया है।'

सुचरिता चुप रही। वह परेश बाबू के सामने वाली कुर्सी पर आ बैठी। परेश बाबू ने फिर कहा—'इसमें तुम्हारी क्या सम्मति है?'

सुचरिता—'ऐसी स्थिति में ललिता को हमारे समाज से अलग हो जाना पड़ेगा।'

परेश—'परन्तु ललिता कहती है कि इस दुःख में भी उसे आनन्द ही प्राप्त होगा। यदि यह बात सत्य है, तो फिर मैं बिना किसी अन्याय के किस प्रकार उसे रोक सकूँगा?'

सुचरिता—'तो क्या आपने सम्मति दे दी है?'

परेश—'अभी तो नहीं दी है, परन्तु अब देनी ही पड़ेगी। ललिता जिस रास्ते पर जा रही है, उसमें मेरे अतिरिक्त और कौन उसे आशीर्वाद दे सकेगा? ईश्वर के अतिरिक्त उसकी सहायता करने वाला है भी कौन?'

परेश बाबू इतना कहकर चले गए। सुचरिता स्तम्भित-सी चुपचाप बैठी रही। वह सोच रही थी—'परेश बाबू भी कैसे व्यक्ति हैं, जो ऐसे विप्लव में भी ललिता की केवल इसलिए सहायता करने जा रहे हैं, कि

ललिता को हृदय से प्यार करते हैं और उधर गोरा ? उसकी इच्छा-शक्ति भी कैसी प्रबल है कि वह अपने प्रभाव से दूसरों को अभिभूत कर देता है। परेश बाबू और गोरा दोनों की तुलना कर सुचरिता अत्यन्त आनन्द-विभोर हो उठी। उसने दोनों को ही अपनी भक्ति पुष्पांजलि समर्पित की। तत्पश्चात् वह अपनी दोनों हथेलियों को जोड़कर बड़ी देर तक, चित्रलिखी-सी शान्त एवं निस्तब्ध जहाँ की तहाँ स्थिर बैठी रही।

६०

आज प्रातःकाल से ही गोरा के कमरे में आन्दोलन उठ रहा था। महिम ने हुक्के का दम खींचते हुए गोरा के पास आकर पूछा—'आखिर इतने दिनों बाद विनय ने जंजीर तोड़ डाली न।'

गोरा महिम की बात का तात्पर्य नहीं समझ सका। वह चुप बैठा रहा। महिम ने कहा—'अब छिपाने की क्या आवश्यकता है ? तुम्हारे मित्र का ढोल बज चुका है। लो इसे भी देख लो न !'

इतना कहकर महिम ने बंगला का एक अखबार गोरा के हाथ में दे दिया। उसमें आज रविवार के दिन विनय द्वारा ब्राह्म-समाज में दीक्षा लेने के प्रस्ताव पर एक तीखा व्यंग्य प्रकाशित हुआ था। उसमें लिखा था—'जिस समय गोरा जेल में था, उन दिनों कन्याओं के भार से बोझिल किसी ब्राह्म-समाजी ने इस दुर्बल-चित्त युवक विनय को गुप्त रूप से प्रलोभन में डालकर, उसे हिन्दू समाज से पृथक् कर दिया।' ऐसी ही अनेक कटु बातें उस लेख में लिखी गई थीं।

गोरा ने जब यह कहा कि मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी पता नहीं है, तब महिम ने पहले तो अविश्वास प्रकट किया, परन्तु बाद में उन्हें विनय के इस व्यवहार पर आश्चर्य होने लगा। वे बोले—'जिस समय विनय ने शशिमुखी से विवाह करने के सम्बन्ध में इधर-उधर की बातें करनी आरम्भ की थीं, उसी समय हमें यह समझ लेना चाहिये था कि उसके सर्वनाश का सूत्रपात आरम्भ हो गया है।'

उसी समय अविनाश ने वहाँ हाँफते हुए आकर कहा—'गौर मोहन बाबू ! यह कैसी बात है ! हम तो इसका स्वप्न में भी अनुमान नहीं कर

सकते थे। विनय बाबू क्या अन्त में···?'

अविनाश अपनी बात पूरी न कर पाया। तब तक गोरा के दल के अन्य सभी प्रधान व्यक्ति वहाँ इकट्ठे हुए। वे सभी विनय के बारे में उत्तेजनापूर्ण आलोचनायें करने लगे। जिसके जो मन में आता, वही कह रहा था।

गोरा ने उनकी बातों में कोई योग नहीं दिया। वह शान्त बैठा देखता रहा कि विनय उसके कमरे में न आकर समीप वाली सीढ़ी से ऊपर की ओर चला जा रहा है। गोरा यह देखते ही अपने कमरे से बाहर आया और विनय को पुकारते हुए बोला—'विनय!'

विनय ने सीढ़ी से नीचे उतरकर जब गोरा के कमरे में प्रवेश किया तो गोरा ने उससे कहा—'विनय! मैंने अनजाने में तुम्हारे साथ ऐसा क्या अन्याय किया है, जो तुम मुझे इस प्रकार त्यागे दे रहे हो?'

विनय आज गोरा से झगड़ा होने की बात सोचकर आया था, परन्तु जब उसने गोरा के स्वर में स्नेहभरी वेदना का अनुभव किया तो वह विह्वल होकर बोल उठा—'मुझे गलत न समझो। जीवन में अनेक परिवर्तन होते हैं, उनमें बहुत-सी वस्तुओं को छोड़ देना पड़ता है, इस कारण तुम्हारी मित्रता मैं क्यों त्याग दूंगा?'

गोरा कुछ देर चुप रहकर बोला—'तुमने ब्राह्म-समाज में दीक्षा ले ली है क्या?'

विनय—'नहीं, न तो मैंने दीक्षा ली है और न लूंगा ही, परन्तु मैं इस बात पर कोई जोर नहीं देना चाहता।'

'इसका तात्पर्य?' गोरा ने पूछा।

'यही कि इस सम्बन्ध में कुछ विस्तारपूर्वक कहने के लिए अभी मेरा मन तैयार नहीं है।'

'मैं तुमसे पूछता हूँ कि मन का भाव पहले कैसा था और अब कैसा हो गया है?'

गोरा की बात सुनकर विनय के मन में एक बार वाक्‌युद्ध की इच्छा जाग उठी। बोला—'पहले जब मैं यह सुनता था कि कोई हिन्दू ब्राह्म बनने जा रहा है तो मेरा हृदय क्रोध से जल उठता था, परन्तु अब मुझे वैसा अनुभव नहीं होता। मैं सोचता हूँ कि मत को मत तथा युक्ति को युक्ति

द्वारा ही परास्त करना चाहिये, परन्तु इस सम्बन्ध में क्रोध करना उचित नहीं है।'

गोरा ने कहा—'हिन्दू ब्राह्म बन जायें, इसमें तुम्हें क्रोध नहीं होगा, परन्तु कोई ब्राह्म प्रायश्चित करके फिर हिन्दू बनना चाहे तो तुम्हें भारी क्रोध हो जाएगा। शायद अब तुममें पहले की अपेक्षा यही अन्तर आ गया है ?'

विनय बोला—'ऐसा तुम मुझ पर क्रोध करके कह रहे हो। तुम इस सम्बन्ध में कुछ विचार करने को तैयार नहीं हो।'

गोरा—'मैं तो तुम्हारे ऊपर श्रद्धा रखकर कहता हूँ कि ऐसा ही होना चाहिये, तुम्हारी जैसी स्थिति होने पर मैं यही मानता। बहुरूपिया जिस प्रकार भेष बदल लेता है, वह कला मुझे नहीं आती है। मैं सत्य को सत्य और यथार्थ मानकर ही ग्रहण करता हूँ। सत्य कोई ऐसी सुलभ वस्तु नहीं है, जिसे मूल्य चुकाये बिना आसानी से हर व्यक्ति प्राप्त कर सके।'

तर्क-युद्ध आरम्भ हो चुका था। देखते-ही-देखते प्रहार पर प्रहार हो उठे।

बहुत देर तक वाद-विवाद होने के उपरान्त विनय उठकर खड़ा हो गया। फिर बोला—'मेरी और तुम्हारी प्रकृति में एक मौलिक मतभेद है। तुम सन्धि करना नहीं जानते, यह मानकर ही मैं अब तक अपनी प्रकृति को दबाता चला आ रहा था। ऐसा मैंने मित्रता की रक्षा करने के लिए ही किया। परन्तु अब मुझे अनुभव होता है कि उससे न तो कल्याण हुआ और न कभी हो ही सकता है।'

'मैं तुम्हारा तात्पर्य नहीं समझ सका'—गोरा बोला—'तुम जो कुछ कहना चाहते हो, उसे स्पष्ट कहो।'

विनय—'मैं मनुष्य की बलि चढ़ाकर समाज रूपी राक्षस को शान्त करने और उसके शासन में रहकर अपने गले में जंजीर बाँधकर प्राणों को संकट में डालने का पक्षपाती नहीं हूँ।'

गोरा—'तुम्हारी इन रूपक-युक्त बातों को समझना भी अब कठिन हो गया है।'

विनय बोला—'तुम्हारे लिए समझना नहीं, बल्कि मान लेना ही कठिन है। जहाँ मनुष्य स्वभावतः स्वतन्त्र है, वहाँ वह धर्म के विषय में भी

स्वतन्त्र है। समाज ने उसे निरर्थक नियमों में व्यर्थ ही बाँध रखा है। तुम भी इन बातों को भली-भाँति जानते हो। परन्तु मैं आज यह बात कहता हूँ कि समाज के नियमों को तब तक मानूंगा, जब तक कि समाज भी मेरी उचित माँगों की रक्षा करेगा। यदि वह मुझे मनुष्य की श्रेणी में नहीं गिनेगा, तो मैं चन्दन और फूल से उसकी पूजा नहीं करूंगा।'

गोरा—'इसका अर्थ है कि तुम ब्राह्म बनोगे ?'

'नहीं !'

'ललिता से विवाह तो करोगे ?'

'हाँ !'

'हिन्दू रीति से विवाह ?'

'हाँ !'

'परेश बाबू इसमें सम्मति देंगे ?'

'यह उनकी चिट्ठी पढ़ लो।'

गोरा ने परेश बाबू की चिट्ठी को दो बार पढ़ा। उसके अन्त में लिखा था—'मैं तुमसे अच्छे-बुरे या सुविधा-असुविधा की कोई बात नहीं करूँगा। मेरा मत और विश्वास की बाबत तुम जानते ही हो कि ललिता जिन संस्कारों में पली है, वह भी तुम्हें विदित हैं। इतने पर भी तुम लोगों ने जो रास्ता चुना है, उस सम्बन्ध में अब मुझे और कुछ नहीं कहना है। मैंने भली-भाँति विचार करके यह देख लिया है कि तुम दोनों के मिलन में कोई बाधा नहीं डाल सकता। मेरे हृदय में तुम्हारे प्रति पूर्ण श्रद्धा है। ऐसी स्थिति में यदि कोई सामाजिक बाधा पड़ेगी, तो तुम उसे स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं हो। मेरा कहना केवल इतना ही है कि जिस समाज को तुम लाँघ जाना चाहते हो, तुम्हें उससे भी बड़ा बनने का प्रयत्न करना होगा। मैं यही चाहता हूँ कि तुम्हारा मिलन केवल प्रलय का ही सूचक न बने, उसमें सृष्टि एवं स्थिति का पूर्ण समावेश होना चाहिये। समाज तुम्हें अपने बराबरी के अधिकार से वंचित कर देगा, परन्तु तुम्हें साधारण श्रेणी से बहुत ऊँचा उठ जाना चाहिये, अन्यथा तुम बहुत निम्न कोटि पर जा पहुँचोगे। मुझे तुम्हारे भविष्य के विषय में बहुत-सी आशंकायें हैं, परन्तु केवल उन आशंकाओं के कारण ही तुम लोगों के मिलने में बाधा डालने का कोई कारण मुझे नहीं मिला है। जो शक्ति तुम्हें सामाजिक नियमों से

परे स्वच्छन्दता के पथ पर आगे बढ़ाये ले जा रही है, उसी शक्ति को भक्ति-पूर्वक प्रणाम करके मैं तुम दोनों को उसी के हाथों सौंप रहा हूँ। वह तुम्हारे दुर्गम पथ को सुगम बनाने तथा लक्ष्य को प्राप्त कराने में सहायक हो, यही मेरी मंगल कामना है।'

पत्र पढ़कर गोरा कुछ देर चुप बना रहा। तब विनय ने ही उस मौन को भंग करते हुए फिर कहा—'गोरा! परेश बाबू ने जैसी सम्मति दी है, वैसी ही सम्मति तुम्हें भी देनी पड़ेगी।'

गोरा बोला—'परेश बाबू सम्मति दे सकते हैं, क्योंकि उन लोगों की धारा तट की भूमि को तोड़ने वाली है, इसके विपरीत हमारी धारा तट-भूमि की रक्षा करने वाली है, इसीलिए मैं अपनी सम्मति नहीं दे सकता। हम अपनी तट-भूमि को चट्टानों से सुरक्षित रखना चाहते हैं, इसके लिए लोग चाहे हमारी निन्दा ही क्यों न करें।'

विनय—'इसका अर्थ यह है कि तुम्हें हमारा यह विवाह स्वीकार नहीं है ?'

'नहीं!'

'और···?'

'और तुम्हें त्याग भी देना पड़ेगा।'

'यदि मैं मुसलमान मित्र होता, तब ?'

'तब दूसरी बात होती। यदि वृक्ष की डाली टूटकर अलग हो जाती है, तो वृक्ष उस डाली को फिर नहीं अपना सकता। इसके विपरीत यदि कोई बाहरी लता बढ़ती चली आती है, तो वह उसे अवश्य आश्रय देता है, इतना ही नहीं, आँधी में टूट जाने पर उसे फिर से उठा लेने में भी कोई बाधा नहीं होती। अपना जब पराया हो जाय, तब उसे पूरा त्याग देने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं।'

विनय—'इसीलिए त्याग का कारण इतना हल्का है। परन्तु ऐसा विधान उचित तो नहीं कहा जा सकता। जिस समाज में पुरुष को स्वच्छन्दता से चलने-फिरने तथा काम-काज करने में भी विघ्न है, क्या उसकी बुराइयों पर भी तुमने कभी विचार किया है ?'

गोरा—'इन बातों के सम्बन्ध में मुझे सोचने की आवश्यकता नहीं है। इन बातों पर समाज सहस्त्रों वर्षों से विचार करता चला आ रहा है। जिस

प्रकार पृथ्वी और सूर्य की गति, आकृति आदि के सम्बन्ध में न सोचने पर मुझे कोई बाधा नहीं पड़ी, उसी प्रकार समाज के सम्बन्ध में भी मेरा मत जान लेना चाहिए।'

विनय हँसकर बोला—'गोरा! तुम्हारा कहना ठीक है। किसी दिन मैं भी ऐसी बातें किया करता था। उस समय कौन जानता था कि कभी मुझे भी ऐसी बातें सुननी पड़ेंगी? खैर, इस तर्क से कोई लाभ नहीं है। आज एक बात अवश्य स्पष्ट हो गई, कि पुरुष का जीवन एक महानदी की भाँति है, जो अपने बहाव द्वारा नवीन दिशाओं में अपना मार्ग बना लेती है। जब यह बात प्रत्यक्ष हो गई, तब तुम्हारी सुन्दर-सुन्दर बातें सुनकर मेरा किसी भुलावे में पड़ना भी सर्वथा असम्भव हो गया है।'

गोरा ने कहा—'जब पतंगा लौ में कूदने को होता है, तब वह भी तुम्हारी ही भाँति तर्क करता है, अतः अब मैं तुम्हें समझाने की कोई चेष्टा नहीं करूँगा।'

विनय यह सुनकर कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। फिर बोला—'अच्छा यही सही। मैं अब जा रहा हूँ। परन्तु माँ से एक बार और मिल आऊँ।'

विनय के चले जाने पर महिम ने गोरा के कमरे में प्रवेश किया। वे आते ही बोले—'तभी शशिमुखी के साथ यदि विवाह कर दिया होता, तो यह दिन देखने को न मिलता। विनय जैसा लड़का भी अब तुम्हारा दल छोड़ गया, इससे अधिक अफसोस की बात और क्या हो सकती है?'

गोरा चुप रहा। महिम ने फिर कहा—'विनय गया, तो जाने दो। परन्तु शशि का विवाह करने में देर नहीं करनी चाहिये। उसके विवाह की चर्चा से जो गड़बड़ी फैल गई है, उसे रोकने के लिए शीघ्र-से-शीघ्र उसे पराये घर भेज देना ही उचित है। अब तुम्हें डरने की कोई बात भी नहीं है। तुम्हें तकलीफ न उठानी पड़ेगी। दूसरा लड़का मैंने खुद ही ढूँढ़ लिया है।'

'वह कौन है?' गोरा ने पूछा।

'तुम्हारा ही अविनाश!'

'राजी हो गया है वह?'

'राजी क्यों न होगा?'—महिम ने उत्तर दिया—'वह तुम्हारे विनय की भाँति थोड़े ही है। मैंने यह देखा कि तुम्हारे दल में एक वही लड़का

तुम्हारा सच्चा भक्त है। जब उसे यह पता लगा कि तुम्हारे परिवार में उसका सम्बन्ध होगा, तो वह खुशी से नाचने लगा। बोला—'मेरा अहो-भाग्य जो यह सम्बन्ध हो रहा है।' दहेज की बात पर उसने कान पकड़कर कहा—'ऐसी बातें आप बिल्कुल मत कहिये।' मैं उसके पिता के पास भी गया। इतने सज्जन हैं वे कि क्या कहा जाए! बस, अब कम्पनी के कागज तुड़वा डालो। तुम भी दो-चार बात अपने मुँह से उसे कह देना।'

गोरा—'सब बातें पक्की हो चुकी हैं?'

महिम—'हाँ।'

गोरा—'दिन-घड़ी?'

महिम—'माघ की पूर्णिमा को अब अधिक दिन नहीं हैं। लड़के के पिता ने कहा है कि गहने खूब भारी बनने चाहिये। इस सम्बन्ध में सुनार से भी बातचीत करनी होगी।'

गोरा—'परन्तु इतनी शीघ्रता की क्या आवश्यकता है?'

महिम—'बाबूजी की तबियत आजकल खराब रहती है। तुम तो उधर ध्यान भी नहीं देते। डाक्टर लोग जितना मना करते हैं, वे उतने ही कड़े नियम अपनाते चले जा रहे हैं। उनके साथ जो साधु बाबा रहता है, वह उन्हें दिन में तीन बार स्नान कराता है तथा हठयोग की क्रियायें अलग साधन कराता है। उनके जीवित रहते हुए ही शशि की शादी हो जाए, यही अच्छा है। पेंशन का रुपया जो उन्होंने जमा कर रखा है, वह स्वामी ओंकारनन्द के हाथ में पड़ने से पहले ही यह काम हो जाना चाहिये। बाबूजी से भी मैंने कह दिया है। मेरा विचार है कि एक दिन उस साधु को खूब गाँजा पिलाकर अपने वश में कर लूँगा, तब काम बन सकेगा। मुझे यही चिन्ता है कि बाबूजी दूसरों से तो रुपये कड़ाई से माँगते हैं, परन्तु स्वयं रुपया देते समय प्राणायाम करने लगते हैं। अब मैं उस ग्यारह वर्ष की लड़की को गले बाँधकर आखिर कहाँ पानी में डूब मरूँ?'

६१

हरिमोहिनी ने पूछा—'राधारानी, कल रात को तुमने कुछ खाया क्यों नहीं?'

सुचरिता ने चकित होकर कहा—'खाया तो था !'

हरिमोहिनी ने उसका ढका हुआ भोजन दिखाकर कहा—'कहाँ खाया है ? सब तो यह पड़ा हुआ है ।'

तब सुचरिता को स्मरण हो आया कि कल खाने की बात उसे याद ही नहीं रही थी ।

हरिमोहिनी ने रूखे स्वर में कहा—'ये बातें ठीक नहीं हैं । मैं तुम्हारे परेश बाबू को अच्छी तरह जानती हूँ, वे कभी भी तुम्हारी इन बातों को पसन्द नहीं करेंगे । यदि वे तुम्हारी आजकल की चाल-ढाल जान जायेंगे तो क्या कहेंगे ?'

हरिमोहिनी के कथन का उद्देश्य सुचरिता समझ गई । पहले तो उसके मन में कुछ संकोच हो आया । गोरा के साथ मेरे व्यावहारिक सम्बन्ध की नितान्त साधारण स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध के साथ तुलना करके एक ऐसे अप-वाद का कटाक्ष मेरे ऊपर हो सकता है, इस बात को तो उसने कभी सोचा ही न था, इसीलिए हरिमोहिनी की वक्रोक्ति से वह क्षुब्ध हो गई । किन्तु वह तुरन्त ही सँभलकर बैठ गई और हरिमोहिनी के मुँह की ओर देखने लगी ।

सुचरिता ने उसी समय निश्चय कर लिया कि गोरा के सम्बन्ध की बातों में किसी के सामने संकोच न करूंगी । वह बोली—'मौसी, तुम तो जानती ही हो कि कल गोरा बाबू यहाँ आये थे । उनके मुख से निकले हुए गम्भीर विषय ने मेरे मन को मुग्ध कर दिया । इसीलिए मैं खाने की बात भूल गई थी ।'

हरिमोहिनी जैसी बातें सुनना पसन्द करती हैं, गोरा की बातें वैसी नहीं हैं । वह भक्ति की बातें सुनना चाहती हैं । किन्तु गोरा के मुख से भक्ति की बातें वैसी सरल और रोचक नहीं सुनाई पड़तीं । जिस बात को लेकर गोरा को उत्तेजना रहती है उसके प्रति हरिमोहिनी बिलकुल उदासीन रहती है । इसीलिए गोरा के साथ बातचीत करके उनके हृदय को जरा भी रस नहीं मिला । इसके बाद हरिमोहिनी ने ज्योंही अनुभव किया कि गोरा ने ही सुचरिता के मन पर अधिकार कर लिया है, त्योंही गोरा की बातें उनको और भी अरुचिकर लगीं । उनके मन में केवल यही विचार उठने लगा कि गोरा का आदि से लेकर अन्त तक सब-कुछ बनावटी है ।

उसके मन का लक्ष्य है, किसी प्रकार सुचरिता के चित्त को आकर्षित करना। वे यहाँ तक भी कल्पना करने लगीं कि गोरा की लोलुप दृष्टि उनकी अपनी धन-दौलत पर भी है। हरिमोहिनी गोरा को अपना शत्रु समझकर, उसको बाधा देने के लिए मन-ही-मन कमर कसकर तैयार हो गयीं।

आज सवेरे गोरा जब सुचरिता के घर पहुंचा, तो हरिमोहिनी ठाकुर-जी की पूजा कर रही थीं। सुचरिता अपने कमरे में मेज पर रखी हुई वस्तुओं को सँवारने में लगी थी। ठीक इसी समय सतीश ने आकर खबर दी कि गौर बाबू आये हैं। सुचरिता ने विशेष आश्चर्य प्रकट नहीं किया। मानो वह गौर बाबू के आगमन की बात पहले से ही जानती थी।

गोरा कुर्सी पर बैठते हुए बोला—'विनय ने आखिर हम लोगों को छोड़ ही दिया।'

सुचरिता ने कहा—'छोड़ेंगे कैसे? वे तो अभी ब्राह्म-समाज में सम्मिलित नहीं हुए।'

गोरा ने कहा—'ब्राह्म-समाज में सम्मिलित हो जाता, तब तो कोई बात ही नहीं थी। तब वह किसी प्रकार हमारे पास ही रहता। वह हिन्दू समाज का गला खूब कसकर पकड़े हुए है। यही बात आखिर कष्टप्रद है। इससे तो वह हमारे समाज को छोड़कर बड़ा उपकार करता।'

सुचरिता ने मन में एक वेदना का अनुभव करते हुए कहा—'आप समाज को इस प्रकार अलग क्यों देखते हैं? समाज पर आपका जो इतना विश्वास है, वह क्या आपका स्वाभाविक विश्वास है? या आप अपने ऊपर बल प्रयोग करते हैं?'

गोरा ने कहा—'ऐसी अवस्था में यह बल-प्रयोग करना ही स्वाभाविक है। जहाँ गिरने का डर होता है वहाँ पैरों पर जोर देकर ही चलना पड़ता है। यह चारों ओर विरोध चल रहा है, इसलिए हमारी बातों और व्यव-हारों में जो कुछ बाहुल्य पाया जाता है, स्वाभाविक नहीं है।'

सुचरिता ने कहा—'आप चारों ओर जो विरोध देख रहे हैं, उसे आप अन्याय और अनावश्यक क्यों समझ रहे हैं? यदि समय की गति में समाज बाधा दे, तो समाज को आघात सहना ही पड़ेगा।'

गोरा ने कहा—'समय की गति जल की लहरों के समान होती है।

वह आस-पास की भूमि को काटकर गिरा देती है, इससे मैं यह नहीं मान सकता कि भूमि काटकर गिराना ही उसका धर्म है। तुम यह मत समझो कि हम समाज की भली-बुरी बातों पर कुछ विचार नहीं करते। यह विचार करना इतना सहज है कि आजकल के बालक भी विचारक हो उठे हैं।'

सुचरिता ने कहा—'श्रद्धा से क्या हम लोग केवल सत्य को ही पाते हैं? मैं आपसे एक बात पूछती हूँ—हम लोग क्या मूर्ति-पूजा की श्रद्धा कर सकते हैं? क्या आप इन सबको सत्य कहकर ही विश्वास करते हैं?'

गोरा ने कुछ देर चुप रहकर कहा—'मैं तुम्हें सच्ची बात बताने की चेष्टा करूँगा। मैंने आरम्भ से ही इन सबको सत्य कहकर मान लिया है। धर्म के सम्बन्ध में मेरी अपनी कोई विशेष साधना नहीं है, किन्तु मूर्ति-पूजा और साकार-पूजा एक ही चीज है, यह बात मैं अत्यन्त अभ्यस्त वचन की तरह आँखें बन्द करके सुना न सकूँगा। हमारे देश की मूर्ति-पूजा में ज्ञान और भक्ति के साथ कल्पना का सम्मिलन करने की जो चेष्टा की गई है उसी के द्वारा क्या हमारे देश का धर्म पुरुषों की दृष्टि में दूसरे देशों की अपेक्षा सम्पूर्णता में श्रेष्ठ नहीं हुआ है?'

सुचरिता ने कहा—'रोम और ग्रीस में भी तो मूर्ति-पूजा थी?'

गोरा ने कहा—'उन देशों की मूर्तियों में मनुष्य की कल्पना ने सौन्दर्य बोध का जितना सहारा लिया था, उतना ज्ञान-भक्ति का नहीं लिया था। हमारे देश में कल्पना ज्ञान और भक्ति के साथ गम्भीर रूप से गूँथी हुई है। भक्ति का ऐसा अत्यधिक प्रकाश ग्रीस और रोम के इतिहास में कब दिखाई पड़ा है?'

सुचरिता ने कहा—'काल परिवर्तन के साथ-साथ क्या आप धर्म और समाज के परिवर्तन को स्वीकार नहीं करना चाहते?'

गोरा ने कहा—'क्यों नहीं चाहता? किन्तु परिवर्तन के पागलपन होने से काम न चलेगा। पुरुष का परिवर्तन पुरुष में ही होता है। भारतवर्ष का परिवर्तन भारतवर्ष में ही होना चाहिये। अचानक अंग्रेजी इतिहास का रास्ता पकड़ने से शुरू से अन्त तक सब ही चौपट हो जायेगा। देश की शक्ति, देश का ऐश्वर्य देश में ही संचित है, उसी बात की जानकारी तुम लोगों को कराने के लिए मैंने जीवन उत्सर्ग कर दिया है। मेरी बात तुम समझ रही हो?'

सुचरिता बोली—'हाँ, मैं समझ रही हूँ। परन्तु पहले कभी इन सब बातों को नहीं सुना और सोचा भी नहीं।'

गोरा बोल उठा—'कभी नहीं ? मैं अनेक पुरुषों को जानता हूँ—वे एकदम निश्चिन्त भाव से यह समझकर बैठे हुए हैं कि वे लोग खूब समझ गये हैं। किन्तु मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, अपने मन के सामने आज तुम जिनको देख रही हो, उनमें से किसी एक ने भी उसको नहीं देखा है। मैंने तुम्हें देखते ही अनुभव कर लिया था कि तुममें वह गम्भीर दृष्टि है। इसी-लिए मैं तुम्हारे पास आया हूँ। अपने जीवन को मैंने तुम्हारे सामने खोल दिया है, जरा भी संकोच नहीं किया।'

सुचरिता ने कहा—'आप जब ऐसी बातें करते हैं, मेरा मन बहुत व्याकुल हो जाता है। आप मुझसे क्या चाहते हैं कहिये ? मैं किस योग्य हूँ, मुझे क्या करना होगा ? मैं आपकी आशा को कहाँ तक पूरी कर सकूँगी, यह मैं नहीं जानती। मेरे हृदय में एक भाव का आवेग आ रहा है। वह क्या है, मैं कुछ नहीं समझती ! सच पूछिये तो मुझे भय केवल इतना ही है कि मेरे ऊपर आपका जो विश्वास है, उसे किसी दिन अपनी भूल समझ-कर कहीं आपको पछताना न पड़े।'

गोरा ने गम्भीर स्वर में कहा—'वहाँ कहीं भी भूल नहीं है। तुममें कितनी बड़ी शक्ति है, यह मैं तुम्हें दिखा दूँगा। तुम मन में किसी बात का सोच मत करो। तुम मेरे ऊपर निर्भर रहो। तुम्हारी योग्यता प्रकट करने का भार मेरे ऊपर है।'

सुचरिता चुप रही। गोरा ने भी फिर कुछ नहीं पूछा और चुप ही रहा। कमरे में बड़ी देर तक सन्नाटा छाया रहा।

हरिमोहिनी पूजा समाप्त करके रसोईघर में जा रही थीं। सुचरिता के कमरे में भीतर दृष्टि डालकर हरिमोहिनी ने देखा, सुचरिता और गोरा चुपचाप बैठे हुए सोच रहे हैं, दोनों में किसी प्रकार की बातचीत नहीं हो रही है। तब उसका क्रोध अपनी सीमा तक पहुँच गया। किसी प्रकार अपने को संभाल, द्वार पर खड़ी होकर उन्होंने पुकारा—'राधारानी !'

सुचरिता उनके पास गई। हरिमोहिनी ने मीठे स्वर में कहा—'बेटी; आज एकादशी है, मेरा जी ठीक नहीं है। तुम रसोई घर में जाकर चूल्हा

जलाओ—मैं तब तक गौर बाबू के पास बैठती हूँ।'

सुचरिता मौसी का भाव देख, उठकर रसोईघर में चली गई। गोरा ने हरिमोहिनी के कमरे में आते ही प्रणाम किया। कोई भी उत्तर न देकर वे एक कुर्सी पर बैठ गईं, कुछ देर तक वे चुपचाप बैठी रहीं, फिर गोरा की ओर देखकर बोलीं—'तुम तो ब्राह्म नहीं हो ?'

गोरा ने कहा—'नहीं।'

हरिमोहिनी ने कहा—'तुम हमारे हिन्दू समाज को मानते हो ?'

गोरा ने कहा—'जी हाँ, मानता हूँ।'

हरिमोहिनी ने कहा—'तो तुम्हारा यह व्यवहार कैसा है ?'

हरिमोहिनी को इन प्रतिकूल बातों का कुछ अर्थ न समझ, गोरा चुप-चाप उनके मुँह की ओर देखने लगा।

हरिमोहिनी बोलीं—'राधारानी अब सयानी हो गई है। तुमसे उसका कोई नाता भी नहीं। उसके साथ तुमको इतनी बात करने की आवश्यकता ही क्या है ? तुम तो समझदार आदमी हो, देश के सभी लोग तुम्हारी प्रशंसा करते हैं। किन्तु ऐसी बातें हमारे देश में कब थीं और किस शास्त्र में लिखी हैं ?'

यह सुनकर गोरा को धक्का लगा, सुचरिता के सम्बन्ध में ऐसी बात मैं किसी के मुँह से सुन सकता हूँ, इसका स्वप्न में भी उसने विचार नहीं किया था। वह कुछ देर चुप रहकर बोला—'ये ब्राह्म-समाज में हैं। इनको बराबर इसी प्रकार सबके साथ देखता हूँ, उसी से मैंने इस बात पर कभी ध्यान नहीं दिया।'

हरिमोहिनी ने कहा—'यह बात मैं मानती हूँ कि वह ब्राह्म-समाज में है, किन्तु तुम तो इन बातों को कभी पसन्द नहीं करते। तुम्हारा ऐसा व्यवहार होने से लोग तुम्हारी बात कैसे मानेंगे ? कल रात इतनी देर तक बातें करने पर भी आप अपनी बातें समाप्त न कर सके, आज सवेरे से न वह रसोईघर में ही गई और न भण्डार-घर में ही। आज एकादशी को वह मेरी कुछ सहायता करती, यह भी उससे न हुआ। क्या उसको यही शिक्षा दी जा रही है ? तुम्हारे घर में भी तो लड़कियाँ हैं ? क्या उन्हें भी ऐसी ही शिक्षा देते हो ? अथवा कोई और ही उन्हें ऐसी शिक्षा दे तो तुम पसन्द करोगे ?'

गोरा के पास इन बातों का कोई उत्तर नहीं था। उसने इतना ही कहा—'ये ऐसी ही शिक्षा पाकर इतनी बड़ी हुई हैं, इसलिए इनके सम्बन्ध में कुछ विचार नहीं किया है।'

हरिमोहिनी ने कहा—'इसे जो भी शिक्षा क्यों न मिली हो, जब तक यह मेरे पास है और जब तक मैं जीवित हूँ यह बात न चलेगी। मैं उसको बहुत कुछ उस रास्ते से लौटा लाई हूँ। जब यह परेश बाबू के घर में थी तभी चारों ओर यह अफवाह फैल गई थी कि मेरे साथ मिलकर वह हिन्दू हो गई है। उसके पश्चात् इस घर में आने पर न मालूम तुम्हारे विनय के साथ और क्या बातें होने लगीं, फिर सब-कुछ बदल गया। वे तो आज ब्राह्म के घर में ब्याह करने जा रहे हैं। जायें! बड़े कष्ट से मैंने विनय को विदा किया है। उसके बाद हारान नाम का एक आदमी आता था। उसे देखते ही मैं सुचरिता को लेकर ऊपर के कमरे में जा बैठती थी। वह फिर सफल न हो सका। इसी प्रकार मैं इसे बहुत-कुछ सुधार सकी हूँ। इस मकान में आने पर इसने फिर सबका छूआ खाना शुरू कर दिया। कल से ऐसा करना छोड़ दिया है। अब मैं तुमसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करती हूँ कि तुम लोग इसे अब मिट्टी में मत मिलाओ। संसार में अब केवल यही मेरी बची हुई है। इसका भी मेरे सिवाय कोई स्वजन नहीं है। इसे तुम लोग छोड़ दो, उनके घर में तो और भी बड़ी-बड़ी लड़कियाँ हैं—लावण्य है, लीला है, वे भी तो पढ़ी-लिखी बुद्धिमती हैं, उनसे बातचीत करने से तुम्हें कोई रोकेगा।'

गोरा चुपचाप ज्यों-का-त्यों बैठा रहा। हरिमोहिनी ने कुछ देर बाद फिर कहा—'सोच-विचारकर देखो, अब कहीं इसका ब्याह करना ही होगा। तुम्हारा क्या यही विचार है कि वह सदा इसी तरह अविवाहिता रहेगी? गृहस्थ-धर्म में प्रवेश करना तो स्त्रियों के लिए आवश्यक है। अब तो वह सयानी भी हो गई है।'

साधारण भाव से गोरा के मन में इस विषय में कोई विचार न था। उसका भी यही मत है। परन्तु उसने सुचरिता के विषय में आज तक कभी अपने मत का प्रयोग करके नहीं देखा। उसके मन में कभी कल्पना नहीं उठी कि सुचरिता गृहिणी बनकर किसी गृहस्थ के घर में गृहस्थी में लगी हुई है। वह सोचता था, सुचरिता सदा ऐसी रहेगी, जैसी आज है।

गोरा ने पूछा—'आपने अपनी बहिन की लड़की के ब्याह के बारे में क्या सोचा ?'

हरिमोहिनी ने कहा—'उसके विषय में मेरे सिवाय और कौन सोचेगा ?'

गोरा ने कहा—'क्या हिन्दू समाज में उसका ब्याह हो सकेगा ?'

हरिमोहिनी ने कहा—'चेष्टा करके देखूंगी। यदि वह ठीक प्रकार से रही तो मैं उसको खूब अच्छी तरह चला सकूंगी। मैंने अपने मन में निश्चय कर लिया है। अब तक उसके रंग-ढंग को देखकर, मैं कुछ भी न कर सकी थी। अब दो दिन से फिर उसका बदला हुआ स्वभाव देखकर भरोसा हो रहा है।'

गोरा इस सम्बन्ध में और कुछ न पूछना चाहकर भी चुप न रह सका। उसने पूछा—'क्या कोई उपयुक्त वर कहीं ढूंढ़ा है ?'

हरिमोहिनी ने कहा—'हाँ, ढूंढ़ तो रखा है। बहुत अच्छा है। वह है मेरा छोटा देवर कैलाश। कुछ दिन पूर्व उसकी स्त्री का स्वर्गवास हो गया है। मन-पसन्द सयानी लड़की न मिलने के कारण अब तक बैठा हुआ है, नहीं तो ऐसा योग्य लड़का क्या बच सकता है ? राधारानी के साथ उसकी ठीक जोड़ी मिलेगी।'

गोरा के हृदय में जितने ही काँटे चुभने लगे वह उतने ही प्रश्न कैलाश के बारे में करने लगा।

हरिमोहिनी के देवरों में कैलाश ही अपने विशेष प्रयत्नों से थोड़ा-बहुत लिख-पढ़ सका था। कहाँ तक पढ़ा था, यह हरिमोहिनी न बतला सकी। परिवार में वही विद्वान् कहा जाता है। गाँव के पोस्ट मास्टर के विरुद्ध सदर डाकघर दरख्वास्त भेजते समय कैलाश ने अंग्रेजी में ऐसी बातें लिखी थीं कि डाकघर के बड़े बाबू स्वयं आकर जाँच कर गये थे। इससे कैलाश की योग्यता देखकर गाँव के सभी लोग आश्चर्य में पड़ गये थे। इतना शिक्षित होने पर भी कैलाश की आचार और धर्म में निष्ठा कम नहीं हुई थी।

गोरा कैलाश का सारा इतिहास सुन लेने पर, उठ खड़ा हुआ। वह हरिमोहिनी को प्रणाम करके, चुपचाप कमरे से बाहर हो गया।

गोरा जिस समय सीढ़ियों से उतर रहा था, उस समय सुचरिता रसोई-घर में काम-काज में व्यस्त थी। वह गोरा की पदचाप सुनकर द्वार के पास

आ खड़ी हुई। गोरा किसी ओर बिना देखे हुए बाहर चला गया। सुचरिता एक लम्बी साँस खींचकर पुनः रसोई के काम में लग गई।

गली के मोड़ पर ही गोरा की हारान बाबू से भेंट हो गई। हारान बाबू ने मुस्कराते हुए कहा—'आज इतने सवेरे आ गये!'

गोरा ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। हारान बाबू ने पुनः जरा हँसकर पूछा—'आप वहाँ गये थे! क्या सुचरिता घर में है?'

गोरा ने कहा—'जी हाँ!' यह कहकर वह तेजी-से आगे बढ़ गया।

हारान बाबू ने सुचरिता के मकान में घुसकर, रसोईघर के खुले द्वार की ओर झाँककर देखा। सुचरिता के भागने को रास्ता बन्द हो गया। मौसी भी पास नहीं थीं।

सुचरिता कोई जवाब न देकर, रसोई के बर्तन लेकर काम में व्यस्त हो गई। किन्तु हारान बाबू इससे रुके नहीं। वे कमरे के बाहर आँगन में खड़े होकर बातचीत करने लगे। हरिमोहिनी ने सीढ़ी के पास आकर तीन बार खाँसा, इससे भी कुछ फल नहीं निकला। हरिमोहिनी हारान बाबू के सामने ही चली आतीं, परन्तु वे जानती थीं कि एक बार यदि मैं इसके सामने आ जाऊँगी, तो इस घर में इस उद्यमशील युवक के उत्साह से मैं और सुचरिता दोनों कहीं आत्म-रक्षा न कर सकेंगे। इसीलिए वे हारान बाबू की परछाईं देखते ही इतना लम्बा घूँघट खींच लेती हैं कि उनके दुलहिन की अवस्था में रहने पर भी, यह अन्यथा ही माना जाता।

हारान बाबू ने कहा—'सुचरिता, शायद तुमने सुना ही होगा कि विनय बाबू के साथ ललिता का हिन्दू मत से विवाह होगा।'

सुचरिता से कोई उत्तर न पाकर हारान बाबू ने नम्र और गम्भीर स्वर से कहा—'इसकी उत्तरदायी तुम्हीं समझी जाओगी।'

सुचरिता पर इसका कोई प्रभाव न देखकर, हारान बाबू ने अपना स्वर गम्भीर बनाकर पुनः उससे कहा—'सुचरिता, मैं फिर कहता हूँ, तुम्हीं इसके लिए उत्तरदायी हो, तुम अपने हृदय पर हाथ रखकर, क्या कह सकती हो कि तुमको इसके लिए ब्राह्म-समाज के सामने अपराधी न होना पड़ेगा?'

सुचरिता ने चूल्हे पर तेल की कढ़ाई चढ़ा दी, तेल चड़-चड़ करने लगा।

हारान बाबू कहने लगे—'तुम्हीं ने विनय और गौर बाबू को घर में

बुला-वुलाकर उन्हें इतना महत्त्व दिया है कि आज तुम्हारे ब्राह्म-समाज के सभी माननीय मित्रों की अपेक्षा, ये दोनों तुम लोगों के लिए बड़े हो उठे हैं। इसका फल क्या हुआ है, देख रही होगी। क्या मैंने तुम्हें शुरू से ही सावधान नहीं किया था? आज ललिता को कौन रोकेगा? तुम सोचती हो कि ललिता के ऊपर से ही विपत्ति का तूफान चला जायेगा! लेकिन ऐसा नहीं है। आज मैं तुम्हें सावधान करने आया हूँ। अब तुम्हारी बारी है। आज ललिता की दुर्घटना से तुम मन-ही-मन अवश्य पछता रही हो। किन्तु वह दिन अब दूर नहीं, जब तुम अपने अधःपतन पर जरा भी नहीं पछताओगी। किन्तु, सुचरिता अब भी सँभलने का समय है। एक बार सोचकर देखो, एक दिन कितनी बड़ी आशा में हम दोनों मिले थे। हमारे कितने ही शुभ संकल्प थे, हमने कितनी ही काम की बातें सोच रखी थीं। क्या वे सब नष्ट हो गईं? कभी नहीं, यह सब तुम्हारा विचार है। हमारी आशाओं के क्षेत्र अब भी उसी तरह तैयार पड़े हुए हैं। एक बार मुँह उठाकर देखो। एक बार लौट आओ।'

सुचरिता उस समय तेल में तरकारी भून रही थी। उसने चूल्हे पर से कढ़ाही को नीचे उतारकर अपना मुँह फेर लिया और दृढ़ स्वर से कहा—'मैं हिन्दू हूँ।'

हारान बाबू ने एकदम हतबुद्धि होकर कहा—'तुम हिन्दू हो?'

सुचरिता ने कहा—'जी हाँ, मैं हिन्दू हूँ!'

यह कहकर कढ़ाही को फिर चूल्हे पर चढ़ाकर बार-बार तरकारी को उलटने-पलटने लगी।

हारान बाबू ने इस धक्के से सँभलकर तीखे स्वर में कहा—'शायद इसीलिए गोर मोहन बाबू सुबह-शाम आकर तुमको दीक्षा देते हैं?'

सुचरिता ने बिना मुँह घुमाये ही कहा—'हाँ, मैंने उनसे ही दीक्षा ली है, वे मेरे गुरु हैं।'

हारान बाबू अब तक अपने को सुचरिता का गुरु समझते थे। किन्तु आज उनका अधिकार गोरा ने छीन लिया है, सुचरिता के मुँह की यह बात उनको बरछी की तरह छिदने लगी।

उन्होंने कहा—'तुम्हारे गुरु चाहे जितने बड़े आदमी हों, क्या तुम समझती हो कि हिन्दू समाज तुमको ग्रहण करेगा?'

सुचरिता ने कहा—'यह मैं नहीं जानती हूँ, मैं सिर्फ यह जानती हूँ कि मैं हिन्दू हूँ।'

हारान बाबू ने कहा—'तुम जानती हो, अभी तक तुम अविवाहित हो, केवल इसी बात से हिन्दू समाज से तुम्हारी जाति जा चुकी है।'

सुचरिता ने कहा—'आप इसके लिए व्यर्थ में कोई चिन्ता न करें। मैं आपसे कह चुकी हूँ, मैं हिन्दू हूँ।'

हारान बाबू ने कहा—'जो शिक्षा तुमने परेश बाबू से पाई थी, वह भी तुमने अपने नये गुरु के पैरों-तले विसर्जन कर दी?'

सुचरिता ने कहा—'मैं किसी के साथ इस बात की आलोचना करना नहीं चाहती। मेरे धर्म को मेरे अन्तर्यामी जानते हैं। आप जान लीजिए, मैं हिन्दू हूँ।'

हारान बाबू आपे से बाहर होकर बोल उठे—'मैं तुमसे कहे देता हूँ। तुम चाहे जितनी बड़ी हिन्दू क्यों न बनो, उससे तुम्हें कोई लाभ न होगा। गोरा को तुम विनय न समझना। तुम अपने को हिन्दू-हिन्दू कहकर गला फाड़कर मर क्यों न जाओ, तो भी तुम्हें गोरा बाबू ग्रहण न करेंगे। ऐसी आशा तुम स्वप्न में भी मत करना। शिष्य को लेकर गुरुपन दिखाना सहज है, परन्तु इसीलिए वे तुम्हें गृहिणी बनावें, इस बात की कभी कल्पना भी न करना।'

सुचरिता खाना पकाना भूलकर, विद्युत् गति से खड़ी होकर बोली—'आप यह सब क्या कह रहे हैं?'

हारान बाबू ने कहा—'यही कह रहा हूँ कि गौर मोहन बाबू तुमसे कभी विवाह न करेंगे।'

सुचरिता की आँखें लाल हो गईं। वह बोली—'विवाह! मैंने आपको बताया नहीं कि वे मेरे गुरु हैं।'

हारान बाबू ने कहा—'सो तो तुम बता चुकी हो, किन्तु जो नहीं कहा है, वह तो हम अपने बुद्धि-बल से जान सकते हैं।'

सुचरिता ने कहा—'आप यहाँ से चले जाइये। मेरा अपमान मत कीजिए। मैं आज आपसे कहे देती हूँ, आज से मैं आपके सामने बाहर नहीं निकलूंगी।'

हारान बाबू ने कहा—'अब तुम बाहर किस तरह निकलोगी? अब

तुम हिन्दू स्त्री हो ! परेश बाबू के पाप का घड़ा अब भर गया। इस वृद्धा-वस्था में वे अपने कर्मों का फल भोगें। मैं जाता हूँ।'

हारान बाबू यह कहकर चले गये। सुचरिता जोर से रसोई का दरवाजा बन्द करके बैठ गई और मुँह में आँचल का कपड़ा ठूँसकर अपनी रुलाई को रोकने का प्रयत्न करने लगी।

हरिमोहिनी ने दोनों की बातें सुन ली थीं। आज उन्होंने सुचरिता के मुँह से जो बातें सुनीं, वे आशा के विपरीत थीं। उनका हृदय हर्ष से फूल उठा। उन्होंने कहा—'नहीं होगा। मेरी गोपीवल्लभ की पूजा क्या निरर्थक हो जायेगी ?'

हरिमोहिनी ने उसी समय पूजा की कोठरी में जाकर ठाकुरजी को साष्टांग प्रणाम किया। आज से उनका भोग और बढ़ाने की प्रतिज्ञा की। अब तक उसकी पूजा शोक की सान्त्वना के रूप में थी, आज वह स्वार्थ का साधन-रूप धारण कर उग्र, उत्तम और क्षुधातुर हो गई।

६२

गोरा ने सुचरिता के सम्मुख जिस प्रकार खुलकर बातचीत की थी, वैसे और किसी से नहीं की थी। इतने दिनों तक वह अपने श्रोताओं के सामने केवल मत को, उपदेशों को, वाक्यों को ही प्रकट करता आया है, आज उसने सुचरिता के सामने अपने बीच से अपने ही को निकालकर बाहर किया। इस आनन्द से केवल शक्ति से ही नहीं, एक रस से उसका समस्त मत और संकल्प परिपूर्ण हो उठा। उसकी तपस्या पर मानो देवताओं ने अमृत-वर्षा कर दी।

इसी आनन्द में गोरा लगातार बिना कुछ सोचे हुए, दिन-प्रतिदिन ही सुचरिता के पास आया करता था, किन्तु हरिमोहिनी की बात सुनकर आज एकाएक उसे ख्याल आया कि ऐसी मुग्धता देखकर ही उसने एक दिन विनय का तिरस्कार किया था। आज वह अज्ञात भाव से अपने को उसी अवस्था के बीच खड़े देखकर चौंक उठा। गोरा बराबर ही कहता आया है कि दुनिया की अनेक जातियाँ बिल्कुल ही ध्वस्त हो चुकी हैं। केवल भारत ही संयम के द्वारा दृढ़ता से नियमों का पालन करके प्रतिकूल संघातों में भी

अपने को बचाता आया है। उन्हीं नियमों में गोरा जरा भी शिथिलता स्वीकार करना नहीं चाहता। गोरा कहता है, जब तक हम लोग पर-जाति के अधीन हैं, तब तक अपने नियमों को दृढ़ता के साथ मानना पड़ेगा। अब भले-बुरे का विचार करने का समय नहीं है। गोरा बराबर कहता आया है और आज भी वह यही कहता है। उसी गोरा के आचरण की निन्दा जब हरिमोहिनी ने की, तब उसे लगा जैसे किसी ने अंकुश बेध दिया हो।

गोरा जब घर पहुँचा तो दरवाजे के सामने महिम बेंच पर बैठे नंगे शरीर से तम्बाकू पी रहे थे। आज उनके आफिस की छुट्टी है। गोरा को अन्दर जाते देखकर वे भी उसके पीछे गये और उसे बुलाकर बोले—'गोरा, एक बात सुनो।'

महिम गोरा को अपने कमरे में ले जाकर बोले—'तुम्हें क्रोध नहीं करना चाहिये। क्या तुम्हें भी विनय की छूत लग गई?'

गोरा ने कहा—'डरने की कोई बात नहीं है।'

महिम ने कहा—'इस रंग-ढंग को देखकर तो कुछ भी नहीं कहा जा सकता। तुम उसे एक खाने की चीज समझते हो, जो मजे में निगल जाओगे। किन्तु बन्शी मौजूद है। तुम अपने मित्र की दशा से सब समझ जाओगे। अरे! जाते कहाँ हो? मुख्य बात तो अभी तक हुई ही नहीं। उधर विनय का विवाह ब्राह्म लड़की के साथ एकदम पक्का हो गया है, यह समाचार सुना है। मैं तुमको पहले से ही बता देता हूँ कि अब उसके साथ हम लोगों का कोई व्यवहार न चलेगा।'

गोरा ने कहा—'वह तो नहीं चलेगा।'

महिम ने कहा—'यदि माँ गड़बड़ी करेंगी तो सुविधा न होगी। हम लोग गृहस्थ हैं, यदि घर में ब्राह्म-समाज की बैठक करने लगोगे तो उस दशा में मुझे यहाँ से अपना डेरा उठाना पड़ेगा।'

गोरा ने कहा—'नहीं, यह कभी नहीं होगा।'

महिम ने कहा—'शशि के विवाह का प्रस्ताव जोर पकड़ता जा रहा है। हमारे समधी लड़की को अपने घर जिस परिणाम में ले जायेंगे, उससे कम सोना लिये बिना वे न छोड़ेंगे। इस विवाह में कुछ खर्च तो होगा जरूर, परन्तु उससे मुझे बड़ी शिक्षा मिलेगी। यह लड़के के विवाह के समय काम में आयेगी। इस लोभ के कारण मेरा भी जी चाहता है कि एक बार फिर

इस युग में जन्म लेकर, बाबूजी को बीच में बिठाकर विधिपूर्वक अपना विवाह ठीक कर लूं। मेरे लड़के की अवस्था अभी चौदह महीने की है। पहले कन्या पैदा करके मेरी पत्नी ने अपनी भूल सुधारकरने में बहुत समय लगाया है। जो हो, उसके विवाह तक तुम हिन्दू लोग मिलकर हिन्दू समाज को ताजा रखो। उसके बाद भले ही देश के लोग हिन्दू हो जायें या मुसलमान, मैं कुछ भी न कहूँगा!'

गोरा उठ खड़ा हुआ, तभी महिम ने कहा—'इसीलिए मैं कह रहा था कि शशि के विवाह के समय विनय को निमन्त्रित नहीं किया जा सकता। यह नहीं हो सकता कि इस बात को लेकर बखेड़ा खड़ा कर दो। माँ को तुम अभी से समझा देना।'

गोरा ने माँ के कमरे में पहुँचकर देखा—आनन्दमयी फर्श पर बैठी आँखों पर चश्मा चढ़ाये, एक कापी लिये कुछ लिख रही हैं। गोरा को देखकर उन्होंने लिखना बन्द कर दिया और चश्मा उतारकर बोलीं—'बैठो।'

गोरा के बैठ जाने पर आनन्दमयी ने कहा—'विनय के ब्याह की खबर तो तुम सुन चुके हो। मुझे तुम्हारे साथ एक सलाह करनी है।'

गोरा चुप रहा। आनन्दमयी ने कहा—'विनय के चाचा नाराज हो गए हैं, वे लोग कोई न आयेंगे। इधर परेश बाबू के घर में भी इस विवाह में सन्देह है। विनय को ही दोनों ओर का सारा प्रबन्ध करना होगा। इसीलिए मैं कह रही थी कि हमारे उत्तरीखण्ड के घर में ऊपर के भाग का किराये-दार चला गया है। उसी भाग में विनय के विवाह का प्रबन्ध किया जाए तो बड़ी सुविधा रहेगी।'

गोरा ने कहा—'क्या सुविधा होगी?'

आनन्दमयी ने कहा—'मेरे बिना उसके विवाह में कौन देखभाल करेगा? उस घर में अगर विवाह ठीक हो जाए, तो मैं यहीं से सब प्रबन्ध कर सकती हूँ।'

गोरा ने कहा—'माँ, यह नहीं होगा।'

आनन्दमयी ने कहा—'क्यों नहीं होगा? मैंने उनको (पति को) राजी कर लिया है।'

गोरा ने कहा—'नहीं माँ, यह विवाह यहाँ नहीं हो सकेगा—मैं कहता

हूँ, मेरी बात सुनो।'

आनन्दमयी ने कहा—'क्यों ? विनय उन लोगों के मत से विवाह नहीं कर रहा है।'

गोरा ने कहा—'ये सब तर्क की बातें हैं। समाज के साथ वकालत नहीं चलेगी। विनय की जो खुशी हो, सो करे, हम इस विवाह को नहीं मान सकते। इतने बड़े कलकत्ता शहर में घरों की तो कोई कमी नहीं है। उसका अपना डेरा ही खाली है।'

आनन्दमयी जानती थीं कि घर बहुत से मिल सकते हैं। किन्तु विनय आत्मीय बन्धुओं से परित्यक्त होकर, अकेला किस तरह अपने डेरे में विवाह की रस्म पूरी कर लेगा ? इसी कारण उन्होंने अपने घर के इस भाग में विनय का विवाह करने का निश्चय किया था। इस प्रकार समाज के साथ किसी प्रकार का विरोध खड़ा न करके, वे अपने ही मकान में यह शुभ कार्य सम्पन्न कराकर सन्तुष्ट हो सकती थीं।

गोरा का दृढ़ निश्चय देखकर, उन्होंने लम्बी साँस खींचकर कहा—'यदि तुम लोगों को इसमें आपत्ति है, तो कोई दूसरा मकान किराये पर लेना पड़ेगा। परन्तु इससे मेरे ऊपर भार आ पड़ेगा। खैर, जो भी हो, जब यह हो ही नहीं सकता तो इसके लिए क्या सोच करना ?'

गोरा ने कहा—'माँ, इस विवाह में तुम्हारा शामिल होना उचित न होगा।'

आनन्दमयी ने कहा—'मैं न रहूँगी तो विनय के विवाह में देखभाल कौन करेगा ?'

गोरा ने कहा—माँ, यह किसी तरह न हो सकेगा।'

आनन्दमयी ने कहा—'गोरा, विनय के साथ तुम्हारा भले ही मतभेद हो, किन्तु क्या इसी के लिए उसके साथ शत्रुता की जाएगी ?'

गोरा कुछ उत्तेजित होकर उठ पड़ा और बोला—'माँ ! क्या बात कह रही हो ? यह मुझे स्वयं अच्छा नहीं लग रहा है कि मैं आज विनय के विवाह में सम्मिलित नहीं हो सकता हूँ। मेरे इस कृत्य में न तो शत्रुता है और न मित्रता का ही समावेश है। यह जानते हुए भी, यह सब कर रहा हूँ। अतः मेरे इस कृत्य से उसे तनिक भी आघात न पहुँचेगा।'

माँ ने उत्तर दिया—'यह तो ठीक है गोरा, विनय यह जानता है कि

विवाह के साथ उसका तुम्हारा सम्पर्क समाप्त हो रहा है, पर मेरी दशा तुमसे भिन्न है। मैं उसके विवाह-अवसर पर उपस्थित होकर; उसकी वहू को आशीर्वाद दूंगी। यदि मैं न गई, तो उसे बहुत दुःख होगा।'

आन्तरिक पीड़ा के कारण आनन्दमयी के नेत्रों में जो आँसू छलक आये थे, वे उन्होंने बड़ी सावधानी से पोंछ डाले। गोरा के हृदय में टीस उठी, किन्तु फिर भी उसने कहा—'समाज की तुम सदस्या हो, माँ! अतः तुम्हें समाज का भी तो हित सोचना है।'

आवेश में माँ ने कहा—'गोरा, कितनी ही बार मैं तुम्हें बता चुकी हूँ कि समाज से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। जब समाज मुझसे घृणा करता है तो मैं उसकी मर्यादा क्यों मानूं?'

गोरा दुःखी हो गया। बोला—'माँ! तुम्हारी यह बात मुझे पीड़ा पहुँचाती है।'

आनन्दमयी भी दुःखी हो गईं। आँखों में आंसू भरकर, उन्होंने ममतामयी निगाह से गोरा को देखकर कहा—'भगवान साक्षी है, बेटा! मैं तुझे पीड़ा पहुँचाना नहीं चाहती किन्तु, सत्य तो कहना ही पड़ता है।'

आवेश में भरकर गोरा खड़ा हो गया। उसने कहा—'ठीक है, इस परिस्थिति को रोकने के लिए मैं विनय के पास जा रहा हूँ और उससे अनुरोध करूंगा कि वह तुम्हें अपने विवाह से दूर ही रखे, ताकि तुम्हारे और समाज के बीच खाई अधिक गहरी न हो।'

आनन्दमयी हँस पड़ीं और बोलीं—'तू भी अपने मन की निकाल ले। देखती हूँ, तेरा कहना कितना सार्थक होता है।'

गोरा चला गया। फिर काफी देर तक आनन्दमयी सोचती रहीं और फिर उठकर अपने पति के कमरे में चली गईं।

एकादशी होने के कारण कृष्णदयाल ने रसोई की व्यवस्था नहीं की थी। वे घेरण्ड संहिता के नये बंगला अनुवाद की एक प्रति हाथ में लिये मृग-चर्म पर बैठे पढ़ रहे थे।

आनन्दमयी के पहुँचते ही वे घबरा गए किन्तु आनन्दमयी उनके पास नहीं गईं। दूर कमरे की चौखट पर बैठ गईं और बोलीं—'तुमने सुना, बहुत अन्याय हो रहा है?'

कृष्णदयाल को सांसारिक बातों से कोई मोह नहीं था। उन्होंने

गम्भीर स्वर में पूछा—'अन्याय, कैसा ?'

व्यग्र होकर आनन्दमयी ने कहा—'मैं नहीं चाहती कि अब अधिक दिनों तक गोरा को धोखे में रखा जाए। बात बढ़ रही है।' अपनी धर्म-चर्चाओं और यौगिक-क्रियाओं में पड़कर कृष्णदयाल यह भूल चुके थे कि गोरा ने प्रायश्चित करने का इरादा किया है। वह शान्त ही रहे।

आनन्दमयी ने पुनः कहना आरम्भ किया—'अब तक तो जितने भी सामाजिक कार्य किए, उनसे दूर रहने के लिए मैं गोरा को लेकर चली जाती थी। आशा है इसी फागुन में शशिमुखी का विवाह हो जाएगा। ऐसी दशा में तुम्हीं बताओ मैं क्या करूँ ? मैंने तो यही सोचा है कि मैं गोरा को वस्तु-स्थिति से अवगत करा दूँ।'

कठोर तपस्या के कारण कृष्णदयाल काफी दुर्बल हो गए हैं। भोजन की मात्रा कम हो गई है, और पेट पीठ से लगने लगा है। ऐसे समय इस विघ्न को देख, उन्हें दुःख हुआ और इसे दैवी प्रकोप समझने लगे।

संयत होकर उन्होंने कहा—'तुम्हारे ऐसा करने से मैं परेशानी में पड़ जाऊँगा। पेंशन तो बन्द हो ही जाएगी, साथ ही पुलिस भी मुझे कम परेशान नहीं करेगी। जो होना था, सो हो चुका। अब यह सब करने में कोई सार नहीं।'

उनका सोचना यथार्थ ही था। वह जीते-जी अपनी स्वतन्त्रता खोना नहीं चाहते थे। मरने के बाद क्या होगा, यह उन्हें सोचना नहीं था। आनन्दमयी कुछ भी निश्चय न कर सकीं। बोझिल हृदय लेकर, वे चलते हुए बोलीं—'अपने शरीर तक का ध्यान नहीं रखते ?'

'शरीर !' कहकर कृष्णदयाल मुस्करा उठे।

आनन्दमयी के चले जाने के बाद उन्होंने पुनः पुस्तक का पाठ करना आरम्भ किया। बाहर के कमरे में उनके गुरु महाराज तथा महिम इस प्रश्न पर उलझे हुए थे कि गृहस्थों की मुक्ति का क्या उपाय है ? साधु महाराज का कहना था कि गृहस्थों को स्वर्ग मिल सकता है, मोक्ष नहीं। महिम का कहना था कि कन्या का विवाह करके, वे गृहस्थ-धर्म का परित्याग कर, मोक्ष की अवश्य साधना करेंगे। आवेश में महिम को शायद यह याद नहीं रहा कि कन्या का विवाह भी कर देना सहज काम नहीं।

६३

गोरा ने सोचा कि नियम-पालन में शिथिलता आ जाने के कारण ही उनकी दशा विगड़ गई है। प्रातःकाल जब वह पूजा-पाठ से निवृत्त होकर कमरे में गया तो उसने परेश बाबू को प्रतीक्षा में बैठा पाया। उसकी नस-नस में विजली दौड़ गई। वह उन्हें प्रणाम करके बैठ गया।

परेश बाबू ने उससे पूछा—'विनय के विवाह का समाचार जानते हो ?'

'हाँ !' गोरा ने उत्तर दिया।

परेश—'ब्राह्म-मतानुसार तो विनय विवाह करने को तैयार नहीं।'

गोरा ने कहा—'ऐसी दशा में विवाह करना ठीक है !'

परेश बाबू ने कहकहा लगाया। गोरा की बात पर बिना ध्यान दिए उन्होंने कहा—'सुना है, समाज इस विवाह से रुष्ट है। विनय के बन्धु-बान्धव भी सम्मिलित नहीं हो रहे हैं। अपनी पुत्री की तरफ से मैं हूँ और विनय की ओर से सिवाय तुम्हारे कोई नहीं है। यही सोचकर मैं तुमसे सलाह करने आया हूँ।'

गोरा ने अस्वीकृति सूचक सिर हिलाकर कहा—'मेरे साथ इस विषय पर चर्चा करना बेकार है। मैं इस विवाह से सहमत नहीं हूँ।'

आश्चर्यचकित होकर परेश बाबू ने गोरा की ओर देखते हुए पूछा—'क्या तुम सम्मिलित नहीं हो रहे हो ?'

परेश बाबू की मुद्रा को देखकर गोरा को संकोच हुआ, किन्तु उसने दृढ़ होकर, दुगने उत्साह से कहा—'मैं कैसे सम्मिलित हो सकता हूँ ?'

'मैं इतना अवश्य जानता हूँ कि तुम उसके मित्र हो। क्या मित्र की आवश्यकता इस समय सबसे अधिक नहीं ?' परेश बाबू ने पूछा।

'ठीक है, मैं उसका मित्र हूँ। किन्तु, ऐसा तो मैंने कभी नहीं कहा कि वही मेरा एकमात्र सांसारिक बन्धन है।'

'गोरा ! क्या तुम्हारे दृष्टिकोण से विनय उचित नहीं कर रहा है ?'

'धर्म के दृष्टिकोणों का विचार करते हुए मैं तो यही सोचता हूँ कि जहाँ सामाजिक नियमों में धार्मिक पुट मिलता हो, वहाँ उनकी उपेक्षा करना उचित नहीं।'

'जितने भी नियम हैं उन सब में धर्म का कुछ-न-कुछ पुट है, क्या तुम इस बात से सहमत नहीं हो ?'

परेश बाबू ने वह तीखा वार किया, जो गोरा के मर्मस्थल पर लगा। उसके हृदय में पहले ही से उस बात को लेकर द्वन्द्व चल रहा था। वह इतना सोचता था कि यदि प्राणी सामाजिक नियमों का उल्लंघन करता है, तो वह समाज को ऐसी क्षति पहुँचाता है, जिसका उसको आभास तक नहीं होता।

दत्तचित्त होकर परेश बाबू गोरा की मीमांसा सुनते रहे। जब गोरा लजाकर शान्त हो गया, तो उन्होंने कहा—'तुम्हारी बातें किसी सीमा तक ठीक हैं। प्रत्येक समाज में कोई-न-कोई विशेष अभिप्राय होता है किन्तु वह सहज ही समझा नहीं जा सकता। मनुष्य को उचित है कि वह जड़वत् होकर उनका अनुसरण न करके, उन्हें जानने की चेष्टा अवश्य करे।'

गोरा ने स्पष्ट कहा—'मेरा अपना विचार है कि समाज की रूपरेखा को पूर्ण मानकर यदि नहीं चला जाता, तो हमें सामाजिक जीवन में विवाद स्थल के साथ ही उसे समझने में भी कठिनाई होती है।'

परेश बाबू बोले—'जहाँ तक सत्य का प्रश्न है, उसके विषय में मुझे यही कहना है कि तर्क-वितर्कों द्वारा सत्य की मीमांसा होती रही है। सनातन से ऋषि-मुनि अपने ही ढंगों से उसकी खोज में लगे रहे हैं। क्या यह सच नहीं कि हमारे पूर्वजों ने अनेक वार सत्य को खोज निकाला था, किन्तु आगे की पीढ़ी सन्तुष्ट न हुई।'

इतना कहकर परेश बाबू उठकर खड़े हो गए और उनके साथ ही गोरा भी कुर्सी से उठ बैठा। उठते-उठते परेश बाबू ने कहा—'मेरा विचार था कि इस विवाह के अवसर पर सगे-सम्बन्धियों का सहयोग मिलने की आशा नहीं है। तुम मित्रता के नाते अवश्य मेरा हाथ बटाते, किन्तु अब तुमसे भी सहायता की आशा नहीं रही।'

गोरा यह नहीं जानता था कि परेश बाबू पूर्णतया एकाकी हैं। यद्यपि वरदासुन्दरी ने उनका विरोध किया, अन्य लड़कियाँ भी उनके इस विचार से सहमत नहीं थीं। हरिमोहिनी को यह विवाह मान्य न देखकर उन्होंने सुचरिता को बुलाया तक नहीं। ब्राह्म-समाज के सत्ताधारियों ने उनका विरोध खुलेआम प्रारम्भ कर दिया था और विनय के चाचा ने तो खुले-

आम विवाह के जाल में फँसाने वाला षड्यन्त्रकारी सम्बोधन करके, उन्हें दो पत्र भी लिखे थे।

ज्यों ही परेश बाबू गोरा के कमरे से बाहर गए, दो-तीन आदमी जो गोरा और अविनाश के विचारों के समर्थक थे, उस कमरे में आ पहुँचे और परेश बाबू पर व्यंग्य करने को तत्पर हुए। गोरा ने उन्हें रोकते हुए कहा—'मैं नहीं चाहता कि जिनका हमने सदैव आदर किया है, आज उनका उपहास किया जाए।'

प्रायश्चित के समारोह की तैयारियों में गोरा ने बड़ी दिलचस्पी दिखाई। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि इस प्रायश्चित द्वारा न केवल जेलखाने की अपवित्रता को ही दूर किया जाएगा, अपितु वह पूर्णतया अपने को शुद्ध करके निर्मल मन, वचन और कर्म से नवीन उत्साह के साथ पुनः नये रूप में कर्मक्षेत्र में प्रवेश कर सकेगा। प्रायश्चित का दिन और तिथि नियत हो गई, उसका विधान भी तैयार हो गया। बंगाल के सुविख्यात पण्डितों को निमन्त्रण भेजने की तैयारी हो गई। धनवान सदस्यों ने दिल खोलकर धन भी दिया। तमाम सदस्यों का विचार था कि यह समारोह देश के लिए अवश्य हितकारी होगा। अविनाश ने अपने दल के लोगों से यह तय कर लिया था कि समारोह में एकत्र हुए पण्डितों द्वारा गोरा को सम्मानित करा कर उसे 'हिन्दू धर्म-प्रदीप' की उपाधि द्वारा विभूषित किया जाएगा। उसकी प्रशंसा में कुछ संस्कृत श्लोक उद्धृत करके तथा उसके नीचे पण्डितों के हस्ताक्षर कराए जायें और उसे चन्दन के बक्स में बन्द करके तथा मैक्समूलर द्वारा प्रकाशित ऋग्वेद की एक बहुमूल्य प्रति किसी सुविख्यात पण्डित द्वारा भेंट कराई जाए। इससे स्पष्ट हो जाएगा कि आधुनिक धर्म-भ्रष्टता के समय गोरा ने सनातन धर्म की यथार्थ रक्षा की है।

सब मन्त्रणायें गोरा से छिपाकर ही की गईं। प्रतिदिन होने वाली इन मन्त्रणाओं का उसे आभास तक नहीं हुआ।

६४

हरिमोहिनी के देवर का पत्र आया। उसने अपनी भाभी को लिखा कि वहाँ सब लोग सकुशल हैं और उसकी कुशलता जानने को व्यग्र हैं। यह

ठीक है कि हरिमोहिनी के चले जाने के बाद से, उसके घर वाले उसकी ओर से चिन्तित होते रहे, किन्तु उन्होंने समाचार जानने की चेष्टा नहीं की। घर वालों के समाचार लिखकर कैलाश ने अन्त में लिखा—'आपने जिस १२-१३ साल की लड़की के बारे में लिखा था, उसका विवरण जानने को व्यग्र हूँ। उसकी सम्पत्ति के विषय में पता लगाकर लिखें, उस पर उसका कितना अधिकार रहेगा ? यह सब-कुछ समाचार प्राप्त हो जाने के बाद ही मैं बड़े भाइयों के सम्मुख यह प्रस्ताव रखूँगा। उनका इसमें विरोध होगा। यद्यपि यह ठीक है कि उस लड़की की निष्ठा हिन्दू धर्म में है, किन्तु पालन-पोषण ब्राह्म-परिवार में हुआ है, यह बात गुप्त रखनी ही पड़ेगी। जिसका जिक्र करने की कोई आवश्यकता नहीं। अगली पूर्णिमा पर चन्द्र-ग्रहण के अवसर पर गंगा-स्नान के लिए आते समय यदि हो सका तो कन्या को भी देख लूंगा।'

जब से हरिमोहिनी ससुराल से निर्वासित होकर आई थीं, कलकत्ते में कठिनाई से दिन काट रही थीं, किन्तु आज देवर का पत्र पाकर वे लौट जाने के लिए अधीर हो गईं। कई बार उनके मन में आया कि वह सुचरिता से कहकर दिन और तिथि ठीक करा लें, किन्तु उनका साहस ही नहीं हुआ।

वे सतर्कता से सुचरिता को समझाने की चेष्टा करने लगीं। पहले वह जितना समय सन्ध्या-पूजा में लगाती थीं, अब वह धीरे-धीरे कम होने लगा। अब उनका ध्यान सुचरिता पर केन्द्रित हो गया।

गोरा का आना-जाना एकदम बन्द होते देखकर सुचरिता ने समझा कि इसका कारण हरिमोहिनी है। अतः उसने कहा, 'चाहे वह आते-जाते नहीं, किन्तु मेरे गुरु हैं।'

सुचरिता को आभास हुआ कि गोरा की उपस्थिति में वह उसकी विचारधाराओं पर तर्क करती थी, किन्तु अनुपस्थिति में उसकी रचनाओं को पढ़कर बिना प्रतिवाद किये ग्रहण करने लगी है। उसकी रह-रहकर यह इच्छा होती कि वह गोरा का तेजस्वी मुख देखती रहे और उसके गम्भीर वचनों को सुनती रहे। कभी-कभी वह सोचती कि जिन लोगों के बीच गोरा सदैव रहता है, वह उसके महत्त्व को नहीं जानते हैं।

एक दिन तीसरे पहर ललिता आई और उसके गले लग गई।

'क्या हुआ ललिता बहिन ?' सुचरिता ने पूछा।

'सूची बहिन, सब तय हो गया।' उसने उत्तर दिया।

'कौन-सा दिन तय हुआ ?'

'सोमवार।'

'कहाँ ?'

ललिता ने लजाकर कहा—'यह सब तो बाबूजी ही जानते हैं।'

सुचरिता ने प्रसन्न होकर ललिता को गोद में भरकर पूछा—'अब तो प्रसन्न है ?'

'अप्रसन्नता का तो कोई कारण नहीं'—ललिता बोली।

'जो कुछ तुमने कामनायें की थीं, वे सब पूर्ण हो चुकी हैं। ऐसी कोई तो शेष नहीं रही, जिसके लिए तुम्हें कोई दुःख हो। मेरा विचार है कि इससे तुम्हारा उत्साह कम न होगा।' सुचरिता ने कहा।

'ऐसा तो मैं नहीं सोचती। घर में झगड़कर उत्साह बनाये रखा जा सकता है।' मुस्कराकर ललिता ने कहा।

सुचरिता ने उसके कपोल पर उँगली गढ़ाकर कहा—'अभी से ही पति से झगड़ने की सोच रखी है क्या ? तब तो मैं विनय को अभी सावधान कर दूँगी।'

'सावधान होने का समय तो जाता रहा। जो होना था सो हो चुका, अब तो माथा पटक-पटककर रोना ही शेष है।' ललिता बोली।

एकाएक सुचरिता गम्भीर हो गई और बोली—'ललिते ! मैं तुम्हारे विवाह-सम्बन्ध से बहुत प्रसन्न हूँ। मेरी तो यही कामना है कि तुम विनय के लिए योग्य-संगिनी बन सको।'

उसी भाव में ललिता ने कहा—'ओह ! अब समझी, किन्तु मेरे लिए योग्य उन्हें न बनना पड़ेगा। सच कहती हूँ कि अगर एक बार तुम इस विषय पर उनके विचार सुनो तो सोचने लगोगी कि इतने दिनों तक हम उन्हें समझ ही न सकी थीं।'

'ठीक ही कहती हो, ललिता ! उन जैसों को पाकर तुम्हें हम जैसों की अब आवश्यकता ही क्या है ?'

आवेश में ललिता ने जोर से सुचरिता के कपोल पर चिकोटी काटी,

जिसके कारण वह 'उई' कह गई। ललिता को परेशान करते हुए सुचरिता ने कहा—'अब तो तुम्हारे आदर की आवश्यकता पहले से भी अधिक पड़ेगी।'

ललिता ने कहा—'सूची बहिन, जब तुम किसी और को आदर देने लगी थीं, तो मुझे बड़ी वेदना होती थी। मैं आज स्पष्ट कहूँगी कि जब गौर मोहन बाबू का हमारे घर आना-जाना था, तब से मैं समझती हूँ कि तुम मुझसे अधिक उन्हें प्यार करती हो। यह सब-कुछ बिना बताये मैं तुमसे विदा न हो सकूँगी, इसी कारण कहे दे रही हूँ। यद्यपि तुमने मुझ पर अपने मनोभाव जाहिर नहीं होने दिए किन्तु मैं इतना अवश्य जानती हूँ कि तुम उन्हें सर्वाधिक प्यार करती हो। यदि तुम्हारा···।'

इससे पहले कि ललिता अपना वाक्य पूरा कर सके, सुचरिता ने आगे बढ़कर उसका मुँह हाथ से बन्द कर दिया, बोली—'आगे कुछ मत कहो ललिता! मैं तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ। यह सब-कुछ सुनकर मैं शर्म से गड़ जाती हूँ।'

ललिता ने पूछा—'क्यों वे···।'

अधीर होकर सुचरिता ने कहा—'नहीं, पागल मत बनो। न तो यह बात सोची ही जा सकती है और न कभी कही जा सकती है।'

यह ललिता को अच्छा न लगा। उसने विरक्त भाव से कहा—'ऐसा सोचना तुम्हारी ज्यादती है। मैं तो निश्चित रूप से कह सकती हूँ···।'

दुःखी होकर सुचरिता कमरे में चली गई। दौड़कर ललिता ने उसे रोका और कहा—'अच्छा, अब मैं और कुछ न कहूँगी।'

सुचरिता बोली—'भविष्य में कभी नहीं ?'

ललिता ने उत्तर दिया—'जब मेरा यह कहने का यथार्थ दिन होगा, तब तो अवश्य कहूँगी वरना कभी नहीं कहूँगी। यह वचन देती हूँ।'

पिछले कई दिनों से सुचरिता ने यह अनुभव किया था कि हरिमोहिनी उस पर कड़ी नजर रख रही है। इस कारण सुचरिता को मानसिक क्लेश था। वह छटपटाकर रह जाती थी, किन्तु कह कुछ न पाती थी। ललिता के चले जाने के पश्चात् अपने बोझिल हृदय को हलका करने के लिए वह मेज पर रखे हाथों के बीच अपना सिर छिपाये आँसू बहाने लगी। सन्ध्या-बाती के समय जब नौकर ने लैम्प जलाना चाहा तो उसने रोक दिया।

सन्ध्योपासना के ऊपर के कमरे से हरिमोहिनी ने ललिता को लौटते देख लिया था, अतः वे नीचे आईं और सुचरिता के कमरे में जाकर उसे पुकारा।

सुचरिता ने छिपाकर अपने बहते हुए आंसू पोंछ लिये और खड़ी हो गयी। हरिमोहिनी ने पूछा—'क्या कर रही थी ?'

वह मौन रही। कठोर स्वर में हरिमोहिनी ने पुनः कहा—'मैं नहीं समझ सकती कि आजकल तुमको क्या हो गया है ?'

सुचरिता ने उत्तर दिया—'मौसी, मैं नहीं समझ सकती कि तुम इस तरह चौवीसों घण्टे मुझपर क्यों नजर रखती हो ?'

'तुम मेरा अभिप्राय जानती हो, ऐसा मेरा विचार है। तुमने भोजन त्याग-सा दिया है, रोती रहती हो, यह सब लक्षण अच्छे नहीं। मैं कोई बालक तो हूं नहीं, जो इतना भी नहीं समझ सकती।'

'यही तो मुझे दुःख है कि जो-कुछ तुमने समझा है वह गलत है।'

'ठीक है, यदि मैंने गलत समझा है तो तुम उसको सुधार दो।'

निस्संकोच भाव से सुचरिता ने कहा—'असल बात यह है कि जो मुझे अपने गुरु से प्राप्त हुई है, वह मेरे लिए बिलकुल नई है और उसपर सही तौर से अमल करने के लिए अत्यधिक शक्ति की आवश्यकता है, जिसका मुझमें अभाव है। उनको तुमने अपमानित करके निकाला है। जो कुछ तुमने उन पर आरोप लगाये हैं वे मिथ्या हैं और जो कुछ मेरे बारे में धारणायें बना ली हैं वे भी ठीक नहीं हैं। तुमने हम दोनों के साथ अन्याय किया है। आखिर यह सब क्यों ?'

सुचरिता का कण्ठ भर आया। वह आगे न बोल सकी। वह मनोभाव दबाने के लिए दूसरे कमरे में चली गई। हरिमोहिनी को मानो काठ मार गया। वह मन-ही-मन सोचने लगी कि ऐसी बातें उन्होंने कभी नहीं सुनीं।

थोड़ी देर में जब सुचरिता शान्त हो गई तो वह मौसी के साथ खाना खाने चली गई। खाना खाते समय मौसी ने कहा—'राधारानी ! मैं तुमसे अधिक उम्र की हूं। मैंने बचपन से लेकर आज तक हिन्दू धर्म का पालन किया है। मैं तुमको यह बताना चाहती हूं कि गौर मोहन, जिसे तुम अपना गुरु मानती हो, उसकी बातों में केवल भुलावा है। मैं उसकी बातों और बनाए हुए शास्त्र की बातों से सहमत नहीं हूं। अगर मौका आया तो मैं

उन्हें अपने गुरुजी से ही मन्त्र दिलाऊँगी। यह माना कि तुम्हारा लालन-पालन ब्राह्म-परिवार में हुआ है, किन्तु इससे क्या ? यह बात तो कोई जान भी नहीं पायेगा। यह ठीक है कि तुम्हारी आयु कुछ अधिक अवश्य हो गई है, परन्तु तुम जैसी गठन की लड़कियाँ आसानी से प्राप्त नहीं होतीं। धन मनुष्य की समस्त कठिनाइयों को दूर कर देता है। मैं तुम्हें हिन्दू समाज के एक ऐसे ब्राह्मण परिवार में स्थान दिलाऊँगी जहाँ पहुँच कर कोई तुम पर उँगली उठाने का साहस ही न कर सकेगा। समाज के भाग्य-विधाताओं की शरण में जाकर तुम निश्चिन्त रह सकोगी। अतः जब मैं इतना सब-कुछ करने को तैयार हूँ, तो तुम व्यर्थ ही क्लेश पा रही हो।'

हरिमोहिनी की इस लम्बी-चौड़ी भूमिका को सुनकर सुचरिता को भोजन से भी अरुचि हो गई। जैसे-तैसे जो कुछ बन पड़ा, वह खाती रही।

सुचरिता को अपनी बातों में कोई दिलचस्पी लेते न देख हरिमोहिनी ने मन-ही-मन यह सोच लिया कि न जाने वह अपने को कैसे हिन्दू कहती है। सुअवसर पाकर भी वह उसका लाभ उठाने की इच्छा नहीं करती, किन्तु 'हिन्दू' नाम की दुहाई देकर प्रायश्चित करने को तत्पर है। यह पहेली उनकी समझ में न आ सकी। तब हरिमोहिनी ने दूसरी युक्ति से काम लेना चाहा। उन्होंने अपनी ससुराल वालों के ऐश्वर्य का वर्णन करना आरम्भ किया। उनकी सामाजिक शक्तियों की मीमांसा कर और अनेक उदाहरण देकर सिद्ध करना चाहा कि उन लोगों ने जिसको चाहा, समाज में प्रविष्ट करा दिया, चाहे वह कितना ही पतित क्यों न हो।

इसका भी विशेष लाभ नहीं हुआ।

परेश बाबू के घर जाने में सुचरिता को एक रुकावट थी, वह थी वरदासुन्दरी। उसने स्वयं यह सुना था कि वरदासुन्दरी यह नहीं चाहतीं कि सुचरिता उनके घर आये। वरदासुन्दरी का कठोर बर्ताव तथा परेश बाबू के पारिवारिक जीवन की अशान्ति के विचार से ही सुचरिता ने उनके घर आना-जाना बन्द कर दिया था, किन्तु परेश बाबू स्वयं प्रतिदिन सुचरिता से आकर मिल जाते थे।

कई दिनों से अपने कार्यों में व्यस्त रहने के कारण परेश बाबू सुचरिता से भेंट करने न आ सके थे। वह नित्य उनके आने की प्रतीक्षा करती और अन्त में निराश हो जाती। आज हरिमोहिनी के बर्ताव से ऊबकर और अपनी

तमाम समस्याओं की बिना चिन्ता किये वह परेश बाबू के घर चली गई। अभी सन्ध्या नहीं हुई थी। जब वह परेश बाबू के घर पहुँची, उस समय वे अपने बगीचे में चहलकदमी कर रहे थे।

सुचरिता उनके पास जाकर शान्त खड़ी हो गई और बोली—'बाबूजी ! आप कुशल से तो हैं ?'

परेश बाबू चौंककर खड़े हो गए और बोले—'मैं ठीक हूँ, राधे !'

सुचरिता भी उनके साथ टहलने लगी। चलते-चलते परेश बाबू ने बताया—'सोमवार को ललिता का विवाह है।'

पहले तो उसके मन में आया कि वह उनसे पूछे कि विवाह के परामर्श आदि में उन्होंने उसकी उपेक्षा क्यों कर दी, किन्तु स्वयं ही सोचने लगी कि यह प्रश्न अटपटा ही रहेगा, क्योंकि इसके पहले तो मैंने कभी ऐसे अवसरों पर यह नहीं सोचा कि जब मुझे बुलाया जाये तब ही जाऊँ। अभी यह विचार उसके मस्तिष्क में चक्कर काट ही रहे थे कि परेश बाबू ने स्वयं ही कहा—'राधे, इस बार मैं तुम्हें बुला नहीं सका।'

'क्यों, क्या बात थी बाबूजी ?'

परेश ने सुचरिता के इस उत्तर से चौंककर, उसके चेहरे को गौर से देखा और कहा, 'आपने शायद सोचा कि मेरा हृदय कुछ परिवर्तित हो गया है।'

'मैंने तो यही समझा था और इसी कारण कोई अनुरोध करके तुम्हें किसी तरह के संकोच में डालना उचित नहीं समझा।'

'मैं भी यही चाहती थी कि मैं अपने विचार आपके सम्मुख स्पष्ट कर दूं। किन्तु इन दिनों भेंट ही न हो सकी। इसीलिए आज स्वयं चली आई हूं। मुझे भय है कि मैं अपने मनोभाव यथार्थ रूप में समझा भी सकूंगी अथवा नहीं।'

'इसका मुझे अनुमान है कि ये सब मनोभाव तुम सहज ही बता न सकोगी। जिस विचार को तुम हृदय में अनुभव करती हो, उसे कहने की क्षमता तुम्हारे पास नहीं है।'

उनकी इस बात से सुचरिता के हृदय का भार हल्का हो गया। बोली—'हां, सत्य तो यही है। आपसे क्या कहूं कि मुझमें एक नवीन चेतना जागृत हो गई है। अब तक मैंने देश के भूत और भविष्य को कभी नहीं

सोचा था। लेकिन आज समझ रही हूँ कि यह महान सम्बन्ध है, पहले कभी मेरे मुँह से यह निकल ही न पाता था कि मैं हिन्दू हूँ, किन्तु आज यह कहते हुए मुझे बहुत आनन्द हो रहा है।'

परेश बाबू ने कहा—'क्या, तुमने इस बात के अंग-प्रत्यंग पर पूर्णतः विचार कर लिया है ?'

सुचरिता ने उत्तर दिया—'यह सब सोचने-विचारने की क्षमता मुझमें नहीं है। मैंने इस विषय में बहुत-कुछ पढ़ा है और तर्क-वितर्क भी किए हैं। पहले मुझे जब तक यह सब जानने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था, तब तक मुझे हिन्दू कहलाने में घृणा होती थी और हिन्दू धर्म की अनेक गलतियाँ बड़े आकार में प्रतीत होती थीं। इसका ही यह परिणाम था कि मैं हिन्दू-मात्र से घृणा करती रही।'

उसकी बातों को सुनकर परेश बाबू को आश्चर्य हुआ। इतना उन्हें स्पष्ट हो गया कि सुचरिता के हृदय में ज्ञान का संचार हुआ है। सत्य प्राप्त हो जाने से उसकी सारी आशंकायें दूर हो गई हैं। अच्छी तरह समझ-बूझ-कर ही वह यह सब-कुछ कह रही है।

सुचरिता ने फिर कहा—'बाबूजी, मैं अपनी जाति और देश द्वारा ठुकराई हुई एक साधारण स्त्री हूँ, ऐसा मैं नहीं कहती। मैं यह अवश्य कह सकती हूँ कि मैं हिन्दू हूँ।'

परेश मुस्करा उठे। उन्होंने कहा—'अच्छा तो बेटी ! तुम मुझसे ही यह पूछ रही हो कि मैं अपने को हिन्दू क्यों नहीं कहता ? इसका कोई विशेष कारण तो प्रतीत नहीं होता ? केवल इतना कह सकता हूं, हिन्दू मुझे स्वीकार नहीं करते और फिर जिन लोगों के साथ मेरा धर्म बन्धन है, वे लोग भी हिन्दू कहकर अपना परिचय देना नहीं चाहते।'

सुचरिता सोच में पड़ गई। परेश ने पुनः कहना आरम्भ किया, 'यह तो पहले ही मैंने तुम्हें बता दिया था कि यह कारण विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं है। यह रखते हुए भी काम चल सकता है। असल बात तो यह है कि हिन्दू समाज में प्रवेश पाने के लिए कोई प्रमुख मार्ग भी तो नहीं है। अन्य चोर दरवाजों से मैं प्रवेश करना नहीं चाहता। मेरे विचार से तो यह समाज समस्त मनुष्य जाति के लिए नहीं है—इसमें वे लोग ही रह सकते हैं, जो भगवान की कृपा से हिन्दू घरों में ही जन्म लेंगे।'

सुचरिता बोली—'सभी समाजों की यही दशा है ?'

परेश बाबू ने कहा—'नहीं, अन्य किसी बड़े समाज की यह दशा नहीं। मुसलमान और ईसाई समाज के सिंहद्वार प्रत्येक प्राणी के लिए खुले हैं। जो भी उस समाज में प्रविष्ट होना चाहे, प्रवेश कर सकता है। हिन्दू धर्म की व्यूह रचना, चक्रव्यूह की रचना से बिलकुल विपरीत है। चक्रव्यूह में तो प्रवेश करने के लिए हजारों मार्ग थे, किन्तु यहाँ बाहर निकलने के हजारों मार्ग हैं, किन्तु प्रवेश का मार्ग बिलकुल बन्द है।'

सुचरिता ने उत्तर दिया—'इतना होने पर भी हिन्दू जाति अभी तक नष्ट होने से बची हुई है।'

परेश बाबू बोले—'समाज का नाश हो रहा है। धीरे-धीरे जाति अवनति-पथ पर जा रही है। मुसलमानों के शासनकाल तक हिन्दू राजाओं और जमींदारों का प्रभाव था, अतः सहज ही धर्म नहीं छोड़ा जा सकता था; किन्तु जब से अंग्रेजों का शासन आया है, उनका कानून सबकी रक्षा करता है। बनावटी उपायों से अब सामाजिक क्षय को नहीं रोका जा सकता। भारत में हिन्दुओं की संख्या दिनों-दिन कम हो रही है और यवनों की संख्या बढ़ रही है। यही दशा रही तो शीघ्र ही यह देश यवन हो जायेगा और ऐसी दशा में इसे हिन्दुस्तान कहना अन्याय होगा।'

इस बात से सुचरिता व्यथित हो गई। वह बोली—'ऐसे कठिन समय में क्या हम लोगों को यह उचित नहीं कि हम इस क्षय को रोकें ? यही तो उचित समय है, जब इसे जी-जान से पकड़े रहना चाहिये।'

स्नेहसिक्त शब्दों में परेश बाबू ने सुचरिता की पीठ सहलाते हुए कहा —'हम लोग यह जानते हैं कि सांसारिक रक्षा का एक नियम है और जो उस नियम को त्याग देता है, उसको सभी छोड़ बैठते हैं। केवल हिन्दू धर्म को पकड़े बैठे रहने से हम उसको बचा नहीं सकेंगे। हिन्दू धर्म अपमान करने लगा है, वह बहिष्कार करने लगा है और इसी कारणवश अपनी रक्षा करने में असमर्थ हो गया है। उसके अनेक प्रतिद्वन्द्वी उत्पन्न हो गए हैं और वह उसके द्वारा बहिष्कृत और अपमानित लोगों को यथेष्ट स्थान दे रहे हैं। जब तक हिन्दू समाज अपनी इस अपमान और बहिष्कार की नीति को त्याग कर संग्रह की नीति को नहीं अपनायेगा, तब तक उसका विस्तार नहीं होगा।'

सुचरिता को यह सुनकर ठेस पहुँची। व्यथित होकर बोली—'मैं यह सब-कुछ नहीं जानती। केवल इतना मानती हूँ कि यदि सब आज इसको छोड़ देने को तत्पर हैं, तो ऐसे संकटकाल में मैं तो इसका त्याग करने में असमर्थ हूँ।'

परेश बाबू बोले—'बेटी! मैं तुम्हारी भावनाओं के विरुद्ध कुछ भी कहना नहीं चाहता। तुम एकाग्रचित्त होकर अपनी उपासना, सत्य, आदर्श आदि के प्रकाश में अपने विचारों पर पुनः विचार करके देखो। मुझे आशा है, यह बातें धीरे-धीरे तुम समझ सकोगी। जो मेरी दृष्टि में सबसे बड़े हैं और जिनकी शरण में मैंने अपने को अर्पण करने का विचार किया है, उनको तुम देश के अथवा किसी प्राणी के समक्ष तुच्छ मत बताओ। ऐसा करने से तुम्हारा और देश का कोई लाभ न होगा।'

इसी बीच एक आदमी ने पत्र लाकर परेश बाबू को दिया। पत्र सुचरिता को देकर उन्होंने कहा—'चश्मा भी नहीं है और इस प्रकाश में पढ़ना भी मुश्किल है। जरा तुम पढ़कर सुनाओ।'

सुचरिता ने पत्र सुनाया। उसमें लिखा था कि, ब्राह्म-समाज समिति नहीं चाहती कि परेश बाबू अपनी कन्या का विवाह एक अब्राह्म मत के युवक से करें। यदि इस सम्बन्ध में उन्हें कुछ कहना है तो आगामी रविवार के पहले ही पत्र द्वारा उन्हें सूचित कर दें। अन्यथा समिति उन्हें अपनी सदस्यता से मुक्त कर देगी। पत्र के नीचे अनेक ब्राह्म-समाजियों के हस्ताक्षर थे।

पत्र सुनकर परेश बाबू ने जेब में रख लिया। सुचरिता के साथ वह बगिया में टहलते रहे। धीरे-धीरे उपासना का समय हो आया। तब सुचरिता ने कहा—'बाबूजी! आपकी उपासना का समय हो गया है, मैं भी आज आपके साथ ही उपासना करूँगी।'

परेश बाबू को सुचरिता उपासना के कमरे में ले गई। वहाँ आसन बिछा था और मोमबत्ती जल रही थी। परेश बाबू ने देर तक उपासना की, अन्त में छोटी-सी प्रार्थना करके वह बाहर आये। बाहर उन्होंने देखा कि दरवाजे के पास ही ललिता विनय के पास बैठी है। उनको देखते ही दोनों ने उनकी चरण-रज मस्तक से लगाई। उन्हें आशीर्वाद देकर सुचरिता से कहा—'बेटी! आज मैं तुम्हारे घर आऊँगा।'

सुचरिता के नेत्रों से जलधार बह चली थी। वह शान्त होकर बरामदे के अन्धकार में खड़ी रही। काफी देर तक ललिता और विनय ने उससे कुछ नहीं कहा।

सुचरिता जब घर लौटने को उद्यत हुई तो विनय ने उसके पास आकर कहा—'बहिन, तुम्हारा आशीर्वाद क्या हम लोगों को नहीं मिलेगा?' यह कहकर उसने ललिता के साथ उसके चरण स्पर्श किये।

सुचरिता ने अश्रुपूर्ण नेत्रों और रुँधे हुए कण्ठ से अस्पष्ट-सा आशीर्वाद दिया।

परेश बाबू अपने कमरे में लौट आये। उन्होंने ब्राह्म-समाज समिति को उत्तर में लिखा—'मुझे ही ललिता का विवाह करना है। इस दिशा में यदि आप मुझे त्याग रहे हैं तो इसे मैं अन्याय नहीं कहता। मेरी तो परमपिता परमेश्वर से एक ही प्रार्थना है कि मैं सभी समाजों द्वारा बहिष्कृत होकर उन्हीं के चरणों में आश्रय ग्रहण कर सकूँ।'

६५

कई दिनों तक अनेक प्रकार की पीड़ा भोगने के पश्चात् इन दिनों आनन्दमयी के पास रहकर सुचरिता ने जो सुख-चैन पाया, वैसा कभी नहीं पाया था, एक दिन वह सोते में 'माँ! माँ!!' कहकर पुकारने लगी, तो आनन्दमयी ने उसके पलँग के पास जा, उसके शरीर पर हाथ फेरते हुए पूछा—'क्या तू मुझे पुकार रही थी?'

सुचरिता को जब चेत हुआ, तब वह आनन्दमयी के आँचल में मुँह छिपाकर रो उठी। उस रात आनन्दमयी उसके पास सो गईं।

विनय का विवाह हो जाने पर भी आनन्दमयी शीघ्र विदा न हो सकीं। उन्होंने कहा—'अभी ये दोनों तो गृह-कार्य से अनभिज्ञ हैं, इनके घर का पूर्ण प्रबन्ध किए बिना मेरा जाना कैसे हो सकेगा?'

सुचरिता बोली—'माँ! तब तक मैं भी तुम्हारे साथ ही रहूँगी।'

ललिता उत्साहपूर्वक बोली—'हाँ, माँ! सुचरिता बहिन को कुछ दिन हमारे साथ रहना चाहिये।'

इसी समय सतीश दौड़ता चला आया। वह सुचरिता के गले से लिपट

कर बोला—'बहिन, मैं भी तुम्हारे साथ ही रहूँगा।'

सुचरिता ने कहा—'पर तुझे पढ़ना जो है।'

'विनय बाबू मुझे पढ़ा देंगे।' सतीश ने उत्तर दिया।

सुचरिता—'पर वे तुम्हारी मास्टरी स्वीकार न करेंगे।'

तभी पास के कमरे से विनय बोल उठा—'करूंगा क्यों नहीं ? एक ही दिन में कोई ऐसा असमर्थ तो नहीं हो गया हूँ।'

तब आनन्दमयी सुचरिता से बोलीं—'तुम्हारा यहाँ रहना क्या तुम्हारी मौसी को अच्छा लगेगा ?'

सुचरिता ने उत्तर दिया—'मैं उन्हें भी पत्र लिखे देती हूँ।'

आनन्दमयी बोलीं—'नहीं, तुम मत लिखो। मैं ही लिख दूंगी।'

आनन्दमयी ने हरिमोहिनी को इस आशय का एक पत्र लिख दिया कि ललिता के नये घर का प्रबन्ध करने के लिए मुझे तथा सुचरिता को कुछ दिनों विनय के घर ही रहना पड़ेगा, अतः आप इसे स्वीकार कर लें।

आनन्दमयी का पत्र पाकर हरिमोहिनी न केवल नाराज ही हुईं, अपितु वह सशंकित भी हो उठीं। उन्होंने सोचा, अब सुचरिता को फाँसने का जाल बिछाया जा रहा है।

हरिमोहिनी दूसरे दिन शीघ्रतापूर्वक पालकी लेकर, स्वयं विनय के घर जा पहुँचीं। आनन्दमयी ने बड़े आदर से उन्हें पालकी से उतारा। परन्तु वह उस स्वागत-सत्कार पर कोई ध्यान न देती हुई बोलीं—'मैं राधारानी को लेने आई हूँ।'

आनन्दमयी ने उसे बैठने के लिए कहा, परन्तु ऐसा करना उन्होंने शीघ्र लौटने की बात कहकर स्वीकार नहीं किया। सुचरिता उसी समय ऊपर के कमरे में बैठी हुई आलू छील रही थी। हरिमोहिनी सीधी उसी के पास जा पहुँचीं।

सुचरिता उसे देखकर उठ खड़ी हुई, फिर उसे हाथ पकड़कर एक-दूसरे कमरे में ले जाकर बोली—'मौसी, तुम आई हो तो तुम्हारे साथ चलूंगी अवश्य, परन्तु आज दोपहर को ही मैं फिर यहाँ लौट आऊंगी।'

हरिमोहिनी ने कहा—'यह क्यों नहीं कहती कि यहीं रहना चाहती हो ?'

सुचरिता ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया—'यहाँ हमेशा तो नहीं रहना है,

परन्तु माँ जब तक रहेंगी मैं उन्हें छोड़कर न जाऊँगी।'

यह उत्तर सुनकर हरिमोहिनी का सर्वांग जल उठा, परन्तु वह मौन रही। अन्त में आनन्दमयी से विदा लेकर, सुचरिता हरिमोहिनी के साथ घर लौट आई।

घर पहुँचकर हरिमोहिनी ने देवर के आने का संवाद सुचरिता को कह सुनाया तथा वड़े नाटकीय ढंग से भूमिका बाँधते हुए यह भी जता दिया कि उन्हें सुचरिता के विवाह की बड़ी चिन्ता है और वे एक अत्यन्त प्रतिष्ठित घराने में उसका विवाह कर देना चाहती हैं।

सुचरिता को जब यह मालूम हुआ कि कैलाश ही उसे देखने आया है तो वह क्रोध के मारे जल उठी। उसने हरिमोहिनी से स्पष्ट शब्दों में इन्कार करते हुए कहा—'न तो वह उस पुरुष के सामने जाएगी और न विवाह सम्बन्धी कोई बात ही करेगी।'

हरिमोहिनी ने उसका उत्तर सुनकर अपनी कोपाग्नि का लक्ष्य गोरा को बना लिया। वह बोली—'तुम नहीं जानती हो कि गोरा चाहे जितना कट्टर हिन्दू बने, परन्तु समाज में उसे कोई नहीं पूछता है।'

सुचरिता ने उत्तर दिया—'मौसी! तुम बिना सिर-पैर की बातें मत करो। मुझे विवाह नहीं करना है।'

हरिमोहिनी इस उत्तर को सुनकर आखें फाड़े रह गईं।

६६

गोरा के मन का भाव बदलता जा रहा था। सुचरिता के द्वारा जो उसके मन को ठेस लगी थी, उसका कारण देखने पर उसने सोचा कि वह कब और कैसे उन लोगों के साथ इतना हिल-मिल गया है? परन्तु उसे कोई ठोस बात दिखाई न दी। हृदय का आकर्षण जिधर चाहे खिंच जाए, उधर को ही बढ़ता चला जाता है।

केवल ब्राह्म-घराने की लड़कियों से मिलने-जुलने से ही गोरा अपने को भूल गया हो, ऐसी बात नहीं थी। वह जो आस-पास के गाँव के लोगों से मिलने-जुलने जाता, वहाँ भी मानो वह एक भ्रमजाल में पड़कर अपने को भूल गया था।

उसने सोचा—'मैं भारतवर्ष का ब्राह्मण हूँ।' परन्तु जो ब्राह्मण धन के लोभ में पड़कर शूद्रत्व की रस्सी को अपने गले में बाँधकर मरने के लिए तैयार दिखाई दिए, उनकी गणना उसने स्वदेश के जीवित पदार्थों में नहीं की। वह विचार करने लगा कि अपने वास्तविक कर्म से पतित हो जाने के कारण ही उसका देश आज ऐसी शोचनीय परिस्थिति में पड़ा हुआ है।

गोरा का मन पहले कभी देव-पूजा में नहीं लगता था। परन्तु अब वह देवमूर्ति के सामने बैठकर स्वयं को उसी में आत्मसात् कर देना चाहता है। फिर भी कल्पित मूर्ति के समक्ष उसकी भक्ति स्थिर नहीं होती थी। मनोभावों की प्रबलता को रोकने के लिए वह विभिन्न नियमों का पालन करने लगा।

वह गाँव के देवालयों में आकर विचार करता—यही मेरे साधना का विशिष्ट स्थान है और इसी भक्ति-साधना रूपी-सम्पत्ति द्वारा मनुष्य का कल्याण हो सकता है। परन्तु कभी-कभी उसके मन में ऐसे विचार भी उठने लगते थे कि केवल भक्ति में तन्मय होकर रह जाना ब्राह्मण के सुख की सामग्री नहीं है।

६७

गंगा-तट पर एक बाग में प्रायश्चित की सभी तैयारियाँ होने लगीं।

अविनाश इस कमी को विशेष रूप से अनुभव करता था कि कलकत्ते से बाहर जो यह प्रायश्चित का अनुष्ठान हो रहा है, वहाँ जनसाधारण की दृष्टि विशेष आकर्षित न होगी। वह समझता था कि गोरा को अपने लिए प्रायश्चित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। उसका यह प्रायश्चित तो देश के लोगों के लिए है, अतः इसे भारी भीड़भाड़ के बीच किया जाना चाहिये।

परन्तु गोरा इस बात से सहमत नहीं था। वह वेद-मन्त्रों द्वारा जिस प्रकार का बड़ा यज्ञ करना चाहता था, वैसा कलकत्ता शहर के बीच होना सम्भव नहीं था। उसके लिए तो यह शान्त तपोवन ही उपयुक्त था।

गोरा का हठ देखकर, अविनाश ने उससे छिपकर समाचार-पत्रों का सहारा लिया तथा उस प्रायश्चित के सम्बन्ध में बड़े-बड़े लेख लिखकर भेज

दिए।

गोरा उन लेखों को पढ़कर नाराज हो उठा, परन्तु अविनाश भी दबने वाला न था। गोरा के गाली देने पर भी वह प्रसन्न होता था। परिणाम यह हुआ कि गोरा के प्रायश्चित की चारों ओर धूम मच गई। चारों ओर से प्रतिदिन इतने पत्र आने लगे कि अन्त में उनका पढ़ना बन्द कर देना पड़ा।

कृष्णदयाल बाबू समाचार-पत्रों को छूते तक न थे। परन्तु लोगों के मुंह द्वारा यह समाचार उनके कानों में भी जा पड़ा। वे बहुत दिनों से गोरा के कमरे में नहीं गए थे, परन्तु आज वहाँ जाना आवश्यक हो उठा।

नौकर से पूछने पर, जब उन्हें मालूम हुआ कि गोरा ठाकुरजी के कमरे में बैठकर पूजन कर रहा है, तो उन्हें और भी अधिक आश्चर्य हुआ। वे सीधे उसी कमरे में जा पहुँचे।

गोरा ने अपने पिता को आते देखा, तो वह भी आश्चर्य में भरकर उठ खड़ा हुआ। तभी कृष्णदयाल बाबू ने कहा—'गोरा, मैंने सुना है, तुम सब पण्डितों को बुलाकर प्रायश्चित करने जा रहे हो।'

'हाँ।' गोरा ने उत्तर दिया।

'परन्तु मैं कभी ऐसा न होने दूंगा।'

'क्यों?'

'यह फिर कभी बताऊँगा। इस समय इतना ही समझ लो कि ऐसा करने में बड़ी हानि है।'

गोरा ने सिर झुकाकर कहा—'परन्तु यदि मैं प्रायश्चित न करूँगा तो शशिमुखी के विवाह में सबके साथ बैठकर भोजन भी तो नहीं कर सकूँगा?'

'उसमें क्या हानि है?' कृष्णदयाल बाबू बोले—'तुम्हारे लिए अलग आसन रख दिया जावेगा, उसी पर बैठकर खा लेना।'

'तो मुझे समाज से अलग होकर रहना पड़ेगा?'

'अच्छा यही रहेगा। देखते नहीं, मैं स्वयं भी किसी के साथ भोजन नहीं करता, किसी का छुआ भी नहीं खाता! इसी प्रकार सात्विक जीवन बिताना तुम्हारे लिए भी श्रेष्ठ है। इसी में तुम्हारा कल्याण है।'

इतना कहकर कृष्णदयाल बाबू चले गये। दोपहर को उन्होंने अविनाश को बुलाकर कहा—'मैं चाहता हूँ कि तुम लोग गोरा के प्रायश्चित के

चक्कर में मत पड़ो। मेरी इसमें सम्मति नहीं है।'

अविनाश चतुर आदमी था। उसने सोचा—'यह बूढ़ा भी कैसा जिद्दी है जो अपने पुत्र के महत्त्व को नहीं समझता।' परन्तु वाद-विवाद को समाप्त करने के उद्देश्य से उसने कहा—'यदि आपकी सम्मति नहीं है, तो गोरा प्रायश्चित न करेगा। परन्तु चूँकि सब आयोजन हो चुका है, इसीलिए उसके बदले हमीं लोग प्रायश्चित कर लेंगे।'

इस उत्तर से कृष्णदयाल बाबू आश्वस्त हो गये।

गोरा देश के प्रश्न पर, अपने माता-पिता की सम्मति की भी कभी परवाह नहीं करता था। परन्तु आज कृष्णदयाल बाबू की बातों में उसे किसी छिपे हुए सत्य की धुँधली छाया प्रतीत होने लगी। वह जितना ही इस विषय पर अधिक सोचता था, उतना ही उसका सन्देह दृढ़ होता जा रहा था। उसे लगा, मानो, चारों ओर से कोई उसे बाहर फेंक देने की चेष्टा कर रहा है। आज उसे अपना एकाकीपन विराट् स्वरूप धारण किये हुए दिखाई देने लगा। जैसे उसका कर्मक्षेत्र बहुत लम्बा-चौड़ा है, परन्तु उसके पास कोई नहीं है, वह नितान्त अकेला है।

६८

प्रातःकाल प्रायश्चित की सभा होगी और आज रात ही से गोरा बाग में जाकर रहेगा, यह निश्चित हुआ था। जिस समय गोरा बाग में जाने को तैयार हुआ, उसी समय हरिमोहिनी उसके सामने आ उपस्थित हुईं। उनके आने से गोरा को कोई प्रसन्नता नहीं हुई। वह शीघ्रता में बोला—'मुझे जाना है, माँ भी घर पर नहीं हैं। यदि उनसे कोई काम हो तो....।'

हरिमोहिनी बोलीं—'मैं तुम्हारा अधिक समय नहीं लूँगी। कुछ देर के लिए ही बैठ जाओ।'

गोरा के बैठ जाने पर हरमोहिनी ने जो कहा, उसका तात्पर्य यह था कि सुचरिता के ऊपर गोरा के उपदेशों का बहुत प्रभाव पड़ा है। अब वह विवाह योग्य हो चुकी है। उसने बहुत अनुनय-विनय के पश्चात् अपने देवर कैलाश को उससे विवाह करने के लिए तैयार किया, परन्तु वह विवाह के एकदम विरुद्ध हो पड़ी है, अतः अब उसे सुचरिता को सीधी राह पर

लाने का उपाय करना चाहिये। हरिमोहिनी ने गोरा को यह भी बताया कि यदि तुम उससे विवाह करोगे तो शहर के लोग तुम्हारे विरोधी हो जायेंगे, अतः किसी देहात में ही उसका विवाह कर देना ठीक है, क्योंकि वहाँ के लोग उसके पूर्व-इतिहास को न जान सकेंगे।

हरिमोहिनी की बात सुनकर गोरा क्रोध में भर गया। बोला—'आप यह सब क्या कह रही हैं, आपने किससे सुना कि मैं उससे विवाह करना चाहता हूँ।'

हरिमोहिनी उसी प्रकार बोलीं—'मुझे क्या पता भैया ? यह बात तो अखबार में छप गई, उसी लज्जा से मरी जा रही हूँ।'

गोरा समझ गया कि हारान बाबू अथवा उनके दल के किसी आदमी की ही यह करतूत होगी ! वह क्रोध से मुट्ठी बाँधते हुए बोला—'यह सब झूठ है।'

'तो तुम्हीं एक बार चलकर उसे समझा दो।' हरिमोहिनी फिर उसी स्वर में बोलीं।

गोरा कुछ देर चुप रहा। फिर सोचकर बोला—'उसे क्या समझाना होगा ?'

'और कुछ नहीं'—हरिमोहिनी बोलीं—'केवल यही कि हिन्दू आदर्श के अनुसार सुचरिता जैसी सयानी लड़की को शीघ्र विवाह कर लेना चाहिये और हिन्दू समाज में कैलाश जैसा सत्पात्र मिलना सुचरिता के लिए बड़े सौभाग्य की बात है।'

गोरा के हृदय में जैसे किसी ने बर्छियाँ चुभा दीं। जिस आदमी को उसने सुचरिता के घर देखा था, उसका स्मरण करके गोरा को सहस्रों बिच्छू डंक मारने लगे। वह कुछ देर चुप बना रहा।

तभी हरिमोहिनी बोलीं—'क्या राधारानी इसी प्रकार सदैव कुँआरी ही बनी रहेगी ? क्या कभी ऐसा हो सकता है ?'

हरिमोहिनी न जाने क्या-क्या बकती चली जा रही थीं। उनका एक शब्द भी गोरा के कान में नहीं पड़ रहा था। वह निरन्तर सोचता चला जा रहा था—'पिताजी जोर देकर मुझे प्रायश्चित करने से रोक रहे हैं, क्या उनकी असहमति का कोई मूल्य नहीं ?' उसने निश्चय किया कि मुझे पिताजी के पास अभी जाकर जोर देकर सब बातें पूछ लेनी चाहिये।

आखिर उन्होंने ऐसी बात कही क्यों ? मेरे लिए प्रायश्चित की राह भी क्यों बन्द है ? यदि वे मुझे यह बात भली-भाँति समझा देंगे तो मैं उधर से छुट्टी तो भी पा जाऊँगा ।

इन्हीं विचारों में पड़े हुए गोरा ने हरिमोहिनी से कहा—'आप यहाँ ठहरिये, मैं अभी आता हूँ ।'

गोरा शीघ्रतापूर्वक अपने पिता के पास चल दिया । उसे लगा जैसे अब वे ही उसे छुटकारा दे सकते हैं ।

साधना-आश्रम का द्वार बन्द था । भीतर से धूप के धुएँ की खुशबू आ रही थी । गोरा ने दो-एक बार धक्का दिया, परन्तु द्वार नहीं खुला । आज कृष्णदयाल बाबू दरवाजा बन्द करके संन्यासी के साथ किसी दुरूह योग-प्रणाली का अभ्यास कर रहे थे ।

६८

गोरा जब लौट आया, हरिमोहिनी शीघ्रतापूर्वक कह उठीं—'भैया ! तुम मेरे साथ चलो । वह तुम्हें देवता के समान मानती है । तुम एक बार अपने मुख से कह दोगे तो सब काम बन जायेगा ।'

परन्तु गोरा ने सुचरिता के पास जाना स्वीकार नहीं किया । हरिमोहिनी ने जब यह देखा कि गोरा को अपने निश्चय से डिगाना असम्भव है, तो वह इस प्रकार कहने लगीं—'यदि तुम चल नहीं सकते हो, तो उसके नाम एक चिट्ठी लिख दो ।'

गोरा ने कहा—'यह भी नहीं हो सकता । मैं किसी को कोई पत्र नहीं लिखूँगा ।'

अब की बार हरिमोहिनी कुछ तीव्र होकर बोलीं—'तो अपने मन की बात खोलकर क्यों नहीं कह देते ? यह गुत्थी तुम्हारी ही डाली हुई है । अब जब खोलने का समय आया है, तो तुम इससे बचकर निकलना चाहते हो । इससे वास्तविकता यही प्रतीत होती है कि तुम स्वयं ही इस मामले को सुलझाना नहीं चाहते ।'

और कोई समय होता तो गोरा यह सुनकर आग-बबूला हो उठता,

परन्तु आज उसका प्रायश्चित शुरू हो गया है, इसीलिए उसने अपने मन को टटोलकर देखा तो ऐसा प्रतीत हुआ कि हरिमोहिनी सत्य ही कह रही है। सुचरिता के साथ अपने सम्बन्ध को वह अभी तक पूर्णरूप से नहीं त्याग सका है।

परन्तु यह कृपणता तो दूर करनी ही है। एक हाथ से दान देकर, दूसरे हाथ से उसे पकड़े रहने से तो काम नहीं चल सकता।

गोरा ने कागज उठाकर उस पर बड़े-बड़े अक्षरों में यह लिखा 'नारी-जीवन का साधना-मार्ग विवाह ही है। वह चाहे सुखमय हो अथवा दुखमय, उसे एकाग्रचित्त से ग्रहण करना चाहिये। गृहस्थाश्रम का व्रत ही स्त्रियों के लिए सर्वश्रेष्ठ व्रत है।'

हरिमोहिनी ने उसे देखकर कहा—'इसमें कैलाश के बारे में तुमने कुछ लिखा नहीं, उसके विषय में लिख देते तो अच्छा रहता।'

गोरा बोला—'मैं उन्हें नहीं जानता, अतः उनकी सिफारिश नहीं करूँगा।'

हरिमोहिनी ने कुछ नहीं कहा। वह इस कागज को बड़े यत्नपूर्वक अपने आँचल में बाँधकर घर लौट आईं।

घर आने पर उसने सुचरिता को यह सन्देश देकर बुला भेजा कि वह एक आवश्यक कार्य के लिए दूसरे पहर घर को आ जाये, तीसरे पहर फिर लौटकर चली जा सकती है।

दूसरे दिन सुचरिता उस सन्देश को प्राप्त कर घर चली आई। हरि-मोहिनी ने भोजन आदि समाप्त करने के उपरान्त उससे कहा—'कल सन्ध्या को मैं तुम्हारे गुरु के पास गई थी।'

सुचरिता चुप रही। सोचने लगी—'मौसी न जाने क्या-क्या कहकर गोरा का अपमान कर आई होंगी।'

तभी हरिमोहिनी ने फिर कहा—"मैंने देखा, वे वास्तव में बड़े ज्ञानी हैं। उन्हें स्त्री-जाति का बहुत दिनों तक अविवाहित रहना अच्छा नहीं लगता। उनका कहना है, हिन्दू-स्त्री का शास्त्र के मतानुसार शीघ्र विवाह कर लेना ही धर्म है। मैंने उनसे कैलाश के सम्बन्ध की बात भी खोलकर कही थी। अब तुम उन्हें अपना गुरु मानती हो तो उनकी आज्ञा का पालन भी अवश्य ही करना चाहिये।'

सुचरिता फिर भी चुप रही। हरिमोहिनी ने पुनः कहा—'गौर मोहन बाबू ने अपने हाथ से यह पत्र लिख दिया है। इसे देख लो।'

हरमोहिनी ने गोरा का पत्र अपने आँचल से खोलकर सुचरिता के सामने रख दिया। सुचरिता ने उसे पढ़ा, तो जैसे गोरा के उस पत्र में कोई ऐसी बात नहीं थी, जो नई या अनुचित हो। सुचरिता के मत के साथ इन बातों का अनैक्य भी नहीं था। किन्तु हरिमोहिनी के द्वारा विशेष रूप से यह बात लिखकर भेजने का जो मतलब है, वही सुचरिता को कष्टदायक हुआ।

आज गोरा से यह आदेश क्यों मिला? अवश्य ही सुचरिता का समय भी आयेगा, तुमको भी एक-न-एक दिन वैवाहिक बन्धनों में बँधना पड़ेगा—गोरा को इसके लिए इतनी शीघ्रता करने की क्या आवश्यकता है? इस शीघ्रता का क्या कारण है? इसके विषय में गोरा के सभी काम एकदम समाप्त हो गए। उसने गोरा के कामों में क्या कोई हानि पहुँचाई है? उसके जीवन-मार्ग में क्या कोई बाधा उपस्थित की है? क्या गोरा के पास उसको देने या उससे पाने की आशा करने की कोई भी बात नहीं है? किन्तु उसने इस प्रकार सोचा ही नहीं था। वह अभी तक प्रतीक्षा कर रही थी। अपने अन्तर के असह्य कष्ट के विरुद्ध लडाई करने के लिए वह जी-जान से प्रयत्न करने लगी, किन्तु अपने मन में उसे तनिक भी सांत्वना नहीं मिली।

हरिमोहिनी ने सुचरिता को विचार करने के लिए बहुत देर तक समय दिया। वे नित्य के नियमानुसार सोती रहीं। नींद खुलने पर उन्होंने सुचरिता के कमरे में आकर देखा, सुचरिता अब भी उसी प्रकार चुपचाप बैठी हुई है, जिस प्रकार पहले बैठी हुई थी।

उन्होंने कहा—'बेटी! इतना सोच क्यों करती हो? इसमें सोचने की क्या बात है? क्या गौर मोहन बाबू ने पत्र में कोई अनुचित बात लिखी है?'

सुचरिता ने शान्त स्वर से कहा—'नहीं-नहीं, ऐसी कोई बात नहीं। उन्होंने ठीक ही लिखा है!'

हरिमोहिनी आशाजनक स्वर में बोलीं—'तो अब देर करने से क्या लाभ होगा, बेटी?'

सुचरिता ने कहा—'नहीं, मैं बिल्कुल भी देर करना नहीं चाहती। मैं एक बार बाबूजी के पास जाऊँगी।'

हरिमोहिनी ने कहा, 'राधा देखो तुम्हारा विवाह हिन्दू समाज में ही होगा, तुम्हारे गुरुजी हैं वे……।'

सुचरिता असहिष्णु होकर बोल उठी—'मौसी, बार-बार तुम क्यों उसी बात को दुहरा रही हो ? मैं बाबूजी से विवाह के विषय में कोई बात कहने नहीं जा रही हूँ। मैं तो यों ही एक बार उनके पास जाऊँगी।'

सुचरिता के लिए परेश बाबू का साथ ही सान्त्वना का स्थान था। सुचरिता ने उनके पास जाकर देखा कि वे एक काठ के सन्दूक में कपड़े-लत्ते रखने में व्यस्त हैं।

सुचरिता ने पूछा—'बाबूजी, यह क्या हो रहा है ?'

परेश बाबू ने जरा हँसकर कहा—'बेटी, मैं कल प्रातःकाल की गाड़ी से शिमला पहाड़ पर घूमने जा रहा हूँ।'

परेश बाबू की हँसी में एक जबरदस्त विप्लव का इतिहास छिपा था, जो सुचरिता से छिपा न रह सका। घर में उनकी स्त्री, कन्यायें और बाहर उनके इष्ट-मित्र उनको जरा भी शान्ति का अवसर नहीं दे रहे थे। वे कुछ दिनों के लिए यदि किसी स्थान में न घूम आयें तो घर में ही उनको केन्द्र बनाकर बराबर ही एक चक्र घूमता रहेगा। उन्होंने पहाड़ पर जाने का निश्चय किया है, किन्तु आज उनका कोई भी आदमी उनका सामान-कपड़े आदि सँभालने नहीं आया। यह देखकर कि वे स्वयं ही सब कर रहे हैं, सुचरिता के मन को बहुत आघात पहुँचा। उसने परेश बाबू को रोक कर, पहले सन्दूक बिल्कुल खाली कर दिया। इसके पश्चात् कपड़ों को ठीक प्रकार से तह लगाकर, अपने हाथों से सन्दूक में सजाकर रखने लगी और उनकी पढ़ने की पुस्तकों को इस प्रकार सँभाल कर रख दिया कि हिलाने-डुलाने पर भी उन पर किसी प्रकार का आघात न लग सके। इस प्रकार सुचरिता ने सब सामान ठीक करते-करते धीरे से पूछा—'बाबूजी, तुम अकेले ही जाओगे क्या ?'

परेश बाबू ने सुचरिता के इस प्रश्न में वेदना का आभास पाकर कहा, 'राधे, मुझे इसमें कोई कष्ट नहीं है।'

सुचरिता ने कहा—'नहीं बाबूजी, मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी।'

परेश ने सुचरिता के मुँह की ओर देखा। सुचरिता ने कहा—'बाबूजी, आप किसी बात की चिन्ता न करें, मैं आपको जरा भी परेशान नहीं

करूँगी।'

परेश बाबू ने कहा—'राधे, तुम यह बात क्यों कहती हो? तुमने मुझे परेशान किया है?'

सुचरिता ने कहा—'बाबूजी, अलग रहना मेरे लिए अच्छा न होगा। मैं बहुत-सी बातें समझ ही नहीं सकती। यदि तुम मुझे समझाकर न बताओगे, तो मैं किनारा न पाऊँगी। बाबूजी, तुम मुझे अपनी जिस बुद्धि पर निर्भर रहने को कहते हो, वह बुद्धि मुझमें नहीं है। मुझे अपने मन में वह नहीं मिलता। तुम मुझे अपने साथ ले चलो, बाबूजी!'

यह कहकर वह परेश की ओर पीठ करके सिर झुकाये सन्दूक के कपड़े ठीक करने लगी। उसकी आँखों से टप-टप आँसू झरने लगे।

हरिमोहिनी के हाथ में जब गोरा ने चिट्ठी लिखकर दे दी, तब उसको ऐसा लगा, मानो उसने सुचरिता के सम्बन्ध में त्याग-पत्र ही लिख दिया हो। परन्तु केवल दस्तावेज लिख देने से तो काम उसी क्षण समाप्त नहीं हो जाता। उसके हृदय ने तो दस्तावेज को ठुकरा दिया। उस दस्तावेज में तो गोरा की इच्छाशक्ति जबर्दस्ती नाम को साक्षर करा दिया था, किन्तु उसके हृदय का साक्षर तो उसमें नहीं था। इसलिए हृदय तो अबाध्य ही बना रहा। वह अबाध्यता कैसी प्रचण्ड थी कि उसी रात को गोरा को सुचरिता के घर की ओर दौड़ जाना पड़ा। किन्तु ठीक उसी समय गिरजाघर की घड़ी में दस बजने की आवाज सुनाई पड़ी और गोरा को ज्ञान हुआ कि इतनी रात में किसी के घर जाकर भेंट करना ठीक नहीं है। उसके बाद वह घड़ी की आवाज सुनता ही रहा। क्योंकि उस रात को बगीचे में ही न जा सका। दूसरे दिन प्रातःकाल यहाँ आने का समाचार वहाँ भेज दिया।

प्रातः ही वह बगीचे में गया, किन्तु जैसा स्वच्छ और बलिष्ठ हृदय लेकर उसने प्रायश्चित करने का निश्चय किया था, मन की वैसी अवस्था उसकी कहाँ है?

अध्यापक, पण्डितों में से बहुत-से वहाँ आ गये थे। और भी अनेक लोग वहाँ आने वाले थे। गोरा ने सबसे कुशल-समाचार पूछा, सबसे शिष्टता-पूर्वक बातें कीं। उन सभी लोगों ने सनातन धर्म के प्रति गोरा के अटल निश्चय का उल्लेख करके, भूरि-भूरि प्रशंसा की।

बगीचा धीरे-धीरे कोलाहलपूर्ण हो गया। गोरा चारों ओर देखभाल

करता हुआ घूमने लगा। किन्तु इन सभी के बीच गोरा के कान में केवल एक बात गूँज रही थी, मानो कोई कह रहा था—'तुमने अन्याय किया है।' वह अन्याय क्या है ? उसको स्पष्ट रूप से सोचने-विचारने का तब समय नहीं था। किन्तु किसी प्रकार भी वह अपने गम्भीर हृदय का मुख बन्द न कर सका। प्रायश्चित के अनुष्ठान के विपुल आयोजन के बीच उसके हृदय में रहने वाला कोई गृह-शत्रु आज उसके विरुद्ध गवाही दे रहा या, कह रहा था—'अन्याय हो गया। यह अन्याय नियमों की त्रुटियों से कम नहीं है; यह मन्त्रों की भूल से नहीं है, यह शास्त्र की विरुद्धता से नहीं है—यह अन्याय प्रकृति के अन्दर हुआ है।' इसलिए गोरा के समस्त अन्तःकरण ने इस अनुष्ठान के उद्योग से अपना मुँह फेर लिया।

समय निकट आ गया। बाहर सभा का स्थान बाँसों का घेरा डालकर, पाल टाँगकर तैयार किया गया था। गोरा गंगा-स्नान से निवृत होकर कपड़े बदल रहा था, उसी समय जनता के बीच उसे एक चंचलता ज्ञात हुई। मानो एक तरह की घबराहट चारों ओर फैल रही थी। अन्त में अविनाश ने मुख उदास करके कहा—'आपके घर से खबर आई है, कृष्ण दयाल के मुख से खून निकल रहा है। आपको शीघ्र ले आने के लिए उन्होंने गाड़ी पर आदमी भेजा है।'

गोरा उसी समय चला गया। अविनाश भी उसके साथ जाने को तैयार हुआ। परन्तु गोरा ने उसे रोकते हुए कहा—'नहीं, तुम सब लोगों की देखभाल में रहो, तुम्हारे जाने से काम नहीं चलेगा।'

गोरा ने कृष्णदयाल के कमरे में प्रवेश करके देखा कि वे बिछौने पर लेटे हुए हैं और आनन्दमयी उनके पैरों के पास बैठी हुई धीरे-धीरे उनके पैरों पर हाथ सहला रही हैं। गोरा ने घबराकर दोनों के मुँह की ओर देखा। कृष्णदयाल ने इशारे से पास की कुर्सी पर बैठने को कहा। गोरा बैठ गया।

गोरा ने माँ से पूछा—'अब कैसी तबियत है ?'

आनन्दमयी ने कहा—'पहले से अब कुछ अच्छे हैं। अंग्रेज डॉक्टर को बुलाया है।'

उस कमरे में शशिमुखी और एक नौकर था। कृष्णदयाल ने हाथ के संकेत से उन दोनों को वहाँ से हटा दिया।

जब उन्होंने देखा कि सब लोग हट गये, तब वे चुपचाप आनन्दमयी के मुँह की ओर देखने लगे। फिर उन्होंने धीमे स्वर में गोरा से कहा—'मेरा समय अब पूरा हो गया है। इतने दिनों तक जो बात तुमसे छिपी थी, आज उसे तुमको न बताने से मेरी मुक्ति न होगी।'

गोरा का चेहरा कुछ उतर-सा गया। वह स्थिर-भाव से बैठा रहा। बड़ी देर तक किसी ने कुछ नहीं कहा, कमरे में शान्ति छाई रही।

कृष्णदयाल ने कहा—'गोरा, मैं उन दिनों यह सब नहीं मानता था, इसलिए मैंने इतनी बड़ी भूल की है। इसके पश्चात् भूल-सुधार करने का कोई रास्ता नहीं था।'

यह कहकर वे फिर चुप हो गये। गोरा भी उसी भाँति शान्त बैठा रहा।

कृष्णदयाल ने कहा—'मैंने सोचा था, जैसे चल रहा है, वैसे ही चलता जाएगा। किसी दिन भी तुमको बताने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। किन्तु अब देख रहा हूँ कि ऐसा होने का उपाय नहीं है। मेरी मृत्यु के पश्चात् तुम मेरा श्राद्ध किस प्रकार करोगे?'

ऐसी सम्भावना मात्र से कृष्णदयाल मानो सिहर उठे। गोरा भी यह जानने के लिए कि असल बात क्या है, अधीर हो उठा। उसने आनन्दमयी की ओर देखकर कहा—'माँ, तुम बताओ क्या बात है? श्राद्ध करने का अधिकार मुझे नहीं है?'

आनन्दमयी अभी तक शान्त भाव से सिर झुकाये बैठी हुई थीं। गोरा का प्रश्न सुनकर उन्होंने अपना सिर ऊपर उठाया और गोरा के मुँह पर दृष्टि स्थिर रखकर कहा—'नहीं बेटा, नहीं है।'

गोरा यह सुनकर चौंक उठा और बोला—'मैं इनका पुत्र नहीं हूँ?'

आनन्दमयी ने कहा—'नहीं।'

अग्निउच्छ्वास की तरह गोरा के मुँह से निकल पड़ा—'माँ, तुम मेरी माँ नहीं हो!'

आनन्दमयी की छाती फट गई। उन्होंने अश्रुहीन रुलाई के स्वर में कहा—'बेटा गोरा, तू इस पुत्रहीना का ही पुत्र है, तू तो गर्भ से उत्पन्न लड़के से भी बहुत अधिक है, बेटा।'

गोरा ने तब कृष्णदयाल के मुँह की तरफ देखकर कहा—'तुमने मुझे कहाँ पाया?'

कृष्णदयाल ने कहा—'वह गदर अर्थात् सिपाई-विद्रोह का समय था। हम उन दिनों इटावे में थे। तुम्हारी माँ ने सिपाहियों के डर से भागकर हमारे घर में रात को आश्रय लिया। तुम्हारे पिता एक दिन पहले ही लड़ाई में मारे जा चुके थे। उनका नाम था......।'

गोरा गरजकर बोल उठा—'मैं उनका नाम नहीं जानना चाहता। कोई जरूरत नहीं है उनके नाम की।'

गोरा की उत्तेजना को देखकर कृष्णदयाल आश्चर्य में पड़कर रुक गये। उसके बाद वे बोले—'वे आयरिशमैन थे। उसी रात को तुम्हारी माँ तुमको जन्म देकर मर गई। उसके बाद से ही तुम्हारा हमारे घर में पालन-पोषण हुआ।'

एक ही क्षण में गोरा को अपना समस्त जीवन एक अत्यन्त अद्भुत स्वप्न की भाँति दिखाई देने लगा। बचपन से लेकर इतने वर्षों तक उसके जीवन की जो दीवार तैयार हुई थी, वह एकदम लुप्त हो गई। वह कौन है, वह कहाँ है, यह मानो समझ ही न सका। उसके पीछे अतीत काल नामक पदार्थ ही नहीं रहा और उसके सामने उसके इतने दिनों का एकाग्र लक्ष्य वाला सुनिश्चत भविष्य मानो बिल्कुल ही लुप्त हो गया। वह मानो क्षणमात्र में कमल के पत्ते पर पड़े हुए शिशिर-बिन्दु की तरह बहने लगा। उसकी माँ नहीं है, उसका पिता नहीं है, उसका गोत्र नहीं है, उसके देवता नहीं हैं, उसका नाम नहीं है। उसका सब-कुछ केवल 'नहीं' है। वह किस चीज का सहारा पकड़ेगा, क्या करेगा, फिर कहाँ से आरम्भ करेगा, फिर किस तरह लक्ष्य स्थिर करेगा, फिर दिन-दिन धीरे-धीरे कर्मों के उपकरणों को कहाँ से किस तरह संग्रह करेगा? इस दिन चिह्नहीन अद्भुत प्रश्न के बीच गोरा निर्वाक् होकर बैठा रहा। उसका मुख देखकर फिर किसी को दूसरी बात कहने का साहस नहीं हुआ।

उसी समय परिवार के बंगाली चिकित्सक अंग्रेज डॉक्टर को साथ लेकर आ गये। डॉक्टर ने कमरे में आकर जैसे ही रोगी की तरफ देखा, वैसे ही गोरा की तरफ नजर उठाए बिना न रह सका। उसने सोचा—'यह मनुष्य कौन है?' उस समय तक भी गोरा के मस्तक पर गंगा की मिट्टी का तिलक लगा हुआ था और स्नान के बाद जो रेशमी धोती उसने पहनी थी, इस समय भी उसे ही पहनकर वह चला आया था। शरीर पर कुर्ता नहीं

था। चादर के भीतर से उसका विशाल शरीर दिखाई पड़ रहा था।

यदि पहले की अवस्था रहती तो गोरा के मन में अंग्रेज डाक्टर को देखते ही आप-ही-आप विद्वेष उत्पन्न हो जाता। आज जब डॉक्टर रोगी की परीक्षा कर रहा था, तब गोरा ने उसके प्रति एक विशेष उत्सुकता के साथ दृष्टिपात किया। वह अपने मन से बार-बार प्रश्न करने लगा, 'क्या यही मनुष्य यहाँ मेरा सबसे अधिक निकट का आत्मीय है।'

अंग्रेज डाक्टर ने परीक्षा करके कहा—'मैं तो कोई विशेष खराब लक्षण नहीं देखता। नाड़ी भी शंकाजनक नहीं है और शरीरयन्त्र में भी कोई विकृति नहीं हुई है। चिन्ता की कोई बात नहीं, सतर्क रहने की आवश्यकता है।'

डॉक्टर आश्वासन देकर चला गया। गोरा कुछ भी न बोलकर कुर्सी से उठने को तैयार हो गया।

आनन्दमयी डॉक्टर के आने पर वहाँ से उठकर, पास वाले कमरे में चली गई थीं। डॉक्टर के चले जाने पर, वे तुरन्त कमरे में फिर चली आईं और गोरा का हाथ पकड़कर बोलीं—'गोरा बेटा, तू मेरे ऊपर क्रोध मत करना, यदि क्रोध करोगे तो मैं अब बचूंगी नहीं।'

गोरा ने कहा—'तुमने अब तक मुझे नहीं बताया। अब तक तुम मुझसे बातें छिपाती रहीं, बताने से तुम्हारी कोई हानि नहीं होती।'

आनन्दमयी ने अपने सिर पर सारा दोष लिया और कहा—'बेटा, तुझे पाकर फिर खो देने के भय से ही मुझे यह पाप करना ही पड़ा। अन्त में यदि वही बात हो जायेगी, तू यदि मुझे छोड़कर चला जायेगा तो मैं किसी पर दोष न मढ़ सकूँगी। किन्तु गोरा, मेरे लिए तो वह मृत्यु-दण्ड होगा, बेटा।'

गोरा ने कहा—'माँ!'

गोरा के मुँह से 'माँ' सम्बोधन सुनकर इतनी देर के बाद आनन्दमयी के रुके हुए अश्रु उमड़ पड़े।

गोरा ने कहा—'माँ, अब मैं एक बार परेश बाबू के घर जाऊँगा।'

आनन्दमयी की छाती का बोझ हल्का हो गया। उन्होंने कहा—'जाओ बेटा।'

शीघ्र मरने की आशा नहीं है, किन्तु गोरा को छिपी बात मालूम हो

गई, इससे कृष्णदयाल अत्यन्त ही भयभीत हो गये। बोले—'गोरा देखो, यह वात किसी और को बताने की आवश्यकता मैं तो नहीं समझता। केवल कुछ समझ-बूझकर तुम काम करते रहोगे तो जैसे काम चलता रहा है वैसे ही चलता रहेगा। किसी को पता ही न चलेगा।'

गोरा इसका कोई उत्तर न देकर इस प्रकार बाहर चला गया जैसे कृष्णदयाल के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं है, यह स्मरण करके उसे आराम मिला।

महिम की छुट्टी नहीं थी, आफिस से गैर-हाजिर रहने का कोई उपाय नहीं था। वह डॉक्टर और दवा आदि का प्रबन्ध करके केवल साहब से छुट्टी माँगने गये। गोरा ज्योंही घर से बाहर निकला, त्योंही महिम आ गये, बोले—'गोरा, कहाँ जा रहे हो?'

गोरा ने कहा—'डॉक्टर आया था, उसने देखकर कहा है कि सब ठीक है, चिन्ता की कोई वात नहीं है।'

महिम ने अत्यन्त ही सुख का अनुभव करते हुए कहा, 'तुमने मुझे बचा लिया। परसों शुभ दिन है, उसी दिन मैं शशिमुखी का विवाह करूँगा। गोरा, तुमको भी कुछ सहायता करनी पड़ेगी और देखो, विनय को पहले से ही सावधान कर देना। उस दिन वह न आये। अविनाश कट्टर हिन्दू है। उसने विशेष रूप से कह दिया है कि उसके विवाह में विनय की तरह के आदमी न आने पावें। तुम्हें एक बात और बताता हूँ कि उस दिन मैं ऑफिस के बड़े-बड़े लोगों को निमन्त्रण देकर बुलाऊँगा। तुम उन लोगों के साथ शुष्क व्यवहार मत करना और कुछ अधिक नहीं, सिर हिलाकर 'गुड ईवनिंग सर' कह देने से तुम्हारे हिन्दू-शास्त्र की मर्यादा न घट जायेगी। बल्कि इस सम्बन्ध में पण्डितों से भी राय ले लेना। समझ गये भाई? वे लोग राजा की जाति के हैं, उनके सम्मुख अगर तुम अपना अहंकार कुछ कम करोगे, तो उससे तुम्हारा अपमान न होगा।'

गोरा महिम की बात का कोई उत्तर न देकर चला गया।

७०

सुचरिता जिस समय अपने आँसू छिपाने के लिए सन्दूक पर झुकी हुई कपड़े सजाने में व्यस्त थी, उसी समय उसे गौर बाबू के आने का समाचार मिला।

सुचरिता उसी समय झटपट आँखें पोंछकर, अपना काम छोड़कर उठ पड़ी और उसी क्षण गोरा ने कमरे में प्रवेश किया।

गोरा के मस्तक पर तिलक अब भी उसी प्रकार लगा हुआ था। इस सम्बन्ध में उसे ख्याल ही नहीं रहा था। शरीर पर भी पवित्र रेशमी वस्त्र था। ऐसे वस्त्रों में साधारणत: कोई भी किसी के घर भेंट करने नहीं जाता। प्रथम दिन जब गोरा की भेंट सुचरिता से हुई थी, उस दिन की बात उसे याद आ गई। सुचरिता जानती थी कि उस दिन गोरा विशेष रूप से युद्ध के वेष में आया था। आज भी क्या उसी युद्ध का पहनावा है?

गोरा ने आते ही एकदम जमीन पर माथा रखकर परेश बाबू को प्रणाम किया और उनके पैरों की धूलि मस्तक पर चढ़ा ली। परेश ने घबड़ाकर गोरा को उठा लिया और कहा—'आओ बेटा, बैठो।'

गोरा बोल उठा—'परेश बाबू, अब मैं पूर्णरूप से स्वतन्त्र हूँ, मुझे कोई बन्धन नहीं।'

परेश बाबू ने आश्चर्य में पड़कर कहा—'कैसा बन्धन?'

गोरा ने कहा—'मैं हिन्दू नहीं हूँ।'

परेश बाबू ने कहा—'हिन्दू नहीं हो?'

गोरा ने कहा—'हाँ, मैं हिन्दू नहीं हूँ। आज मुझे ज्ञात हुआ है, सिपाही विद्रोह के समय का आश्रयहीन अनाथ लड़का हूँ—मेरे पिता आयरिश थे। भारतवर्ष के उत्तर से लेकर दक्षिण तक जितने देव मन्दिर हैं, उन सभी के द्वार आज मेरे लिए बन्द हो गये। आज देश में किसी भी जगह मेरे भोजन का आसन नहीं है।'

परेश और सुचरिता गोरा के मुख से इस प्रकार की बातें सुनकर स्तम्भित होकर बैठे रहे। परेश बाबू को उससे कहने के लिए कोई बात ही नहीं मिली।

गोरा ने कहा—'परेश बाबू, आज मैं मुक्त हूँ। मुझे पतित हो जाने

का अब भय नहीं है। अब मुझे पग-पग पर जमीन की तरफ देखकर पवित्रता बचाकर चलने की जरूरत नहीं रही।'

सुचरिता गोरा के तेजस्वी चेहरे की ओर टकटकी बाँधे देखती रही।

गोरा ने कहा—'परेश बाबू, इतने दिनों से मैं भारतवर्ष को पाने के लिए पूरे प्राणपण से साधना करता रहा हूँ। किसी न किसी जगह रुकावटें पड़ती रहीं। उन बाधाओं के साथ अपनी श्रद्धा का मेल करने के लिए मैं सारे जीवन भर दिन-रात केवल चेष्टा करता रहा हूँ। इस श्रद्धा की दीवार को ही खूब सुदृढ़ बनाने की चेष्टा में रहने के कारण मैं कोई दूसरा काम भी नहीं कर सका। वही मेरी एकमात्र साधना थी। इसी कारण यथार्थ भारतवर्ष के प्रति सत्य दृष्टि रखकर, उसी की सेवा करने को तत्पर होकर, मैं बार-बार भय के कारण लौट आया हूँ। मैं एक निष्कण्टक निर्विकार भाव का भारतवर्ष तैयार करके उस अभेद्य दुर्ग में अपनी भक्ति को पूरे निरापद रूप से सुरक्षित करने के लिए अब तक चारों ओर कितनी ही लड़ाइयाँ लड़ता रहा हूँ। आज एक ही क्षण में उस भाव का मेरा दुर्ग स्वप्नों की भाँति उड़ गया। मैं बिल्कुल ही मुक्ति पाकर एक बृहत् सत्य में आ गया हूँ। समस्त भारतवर्ष की भलाई-बुराई, सुख-दुःख, ज्ञान-अज्ञान बिलकुल ही मेरे वक्ष के पास आ गए हैं। आज मैं सच्ची सेवा का अधिकारी बन गया हूँ। सच्चा कार्य-क्षेत्र मेरे सम्मुख आ गया है। वह क्षेत्र मेरे मन के अन्दर का नहीं है। वह बाहर के इन पच्चीस करोड़ नर-नारियों के यथार्थ कल्याण का क्षेत्र है।'

गोरा के इस नये अनुभव के प्रबल उत्साह का वेग परेश बाबू को भी मानो झकझोरने लगा, वे फिर बैठ न सके, कुर्सी छोड़कर उठ खड़े हुए।

गोरा ने कहा—'क्या आप मेरी बात समझ सके हैं? मैं दिन-रात जैसा बन जाना चाहता था, किन्तु सफलता न प्राप्त कर सका। परन्तु आज मैं वही बन गया हूँ। आज मैं भारतीय हूँ! मुझमें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई किसी समाज का कोई विरोध नहीं है। आज इस भारतवर्ष की तमाम जातियाँ ही मेरी जाति, सभी का अन्त ही मेरा अन्त है। देखिए, मैंने बंगाल के अनेक जिलों में भ्रमण किया है, खूब नीचे के गाँवों में भी आश्रय लिया है। मैंने केवल शहरों की सभाओं में ही भाषण किए हैं, ऐसा मत सोचिएगा। किन्तु किसी प्रकार भी सभी लोगों के पास जाकर मैं न बैठ

सका। इतने दिनों तक मैं अपने साथ एक अदृश्य व्यवधान लेकर घूमता रहा। किसी तरह भी मैं अपने को सफल न बना सका। इस कारण मेरे मन में एक शून्यता मौजूद थी। इस शून्यता को भिन्न-भिन्न उपायों से अस्वीकार करने का मैंने प्रयत्न किया। इस शून्यता के ऊपर तरह-तरह की कारीगरियों के द्वारा उसको ही और भी सुन्दर बना देने की चेष्टा की है। क्योंकि भारतवर्ष को मैं अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करता हूँ, मैं उसके जिस अंश को देख पाता था, उस अंश के किसी स्थान पर जरा भी त्रुटि या शिकायत मुझसे सही न जाती थी। आज मुझे उन व्यर्थ की चेष्टाओं से छुटकारा मिल गया। मैं बच गया, परेश बाबू!'

परेश बाबू ने कहा—'सत्य को जब हम पाते हैं, तब वह अपने सभी अभावों व अपनी अपूर्णता को लेकर भी हमारी आशा को तृप्त करता है—उसको मिथ्या उपकरणों से सजा देने की इच्छा मात्र भी नहीं होती।'

गोरा ने कहा—'देखिये परेश बाबू! कल रात को मैंने भगवान से प्रार्थना की थी कि आज प्रातःकाल मुझे नव-जीवन दो। मुझे इतने दिनों तक बचपन से जो अपवित्रता, मिथ्या घेरे रही, वह आज सब एकदम नष्ट हो जाए और मुझे नया जन्म मिल जाए। मैंने ठीक जिस कल्पना की सामग्री की प्रार्थना की थी, ईश्वर ने उस प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने अपना सत्य अचानक मेरे हाथों में सौंपकर मुझे चौंका दिया। वे मेरी इस तरह अशुचिता को बिल्कुल ही जड़ से नष्ट कर देंगे, यह मैं स्वप्न में भी नहीं जानता था। आज ऐसा पवित्र हो गया हूँ कि चाण्डाल के घर में भी मुझे अपवित्रता का भय नहीं रहा। परेश बाबू, आज प्रातःकाल मैंने खुले हुए चित्त के साथ भारतवर्ष की गोद में जन्म ग्रहण किया है। इतने दिनों के पश्चात् मैं आज यह पूर्णरूप से समझ सका हूँ कि माता की गोद किसे कहते हैं।'

परेश बाबू ने कहा—'गोरा! तुमने अपनी माता की गोद में जो अधिकार प्राप्त किया, उस अधिकार में तुम मुझे भी लिवाकर ले चलो।'

गोरा ने कहा—'आप जानते हैं कि आज मुक्ति पाने के पश्चात् सर्वप्रथम आपके पास क्यों आया हूँ?'

परेश बाबू ने कहा—'क्यों?'

गोरा ने कहा—'इस मुक्ति का मन्त्र आपके ही पास है, इसी कारण

आपको आज तक किसी समाज में स्थान नहीं मिला। मुझे आप अपना शिष्य बनाइये। आप मुझे भी उसी देवता का मन्त्र दीजिए जो हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, ब्राह्म सभी के हैं, जिनके मन्दिर का द्वार किसी जाति, किसी भी व्यक्ति के लिए, किसी दिन भी बन्द नहीं रहता, जो केवल हिन्दुओं के देवता नहीं हैं, बल्कि समस्त भारतवर्ष के देवता हैं।'

परेश बाबू के चेहरे पर भक्ति की गहरी मधुरता झलक उठी। वे आँखें झुकाये चुपचाप खड़े रहे।

इतनी देर की बातचीत के बाद गोरा ने सुचरिता की ओर दृष्टि डाली। सुचरिता अपनी कुर्सी पर शान्त बैठी हुई थी।

गोरा ने हँसकर कहा—'सुचरिता, मैं अब तुम्हारा गुरु नहीं हूँ, मैं तुमसे यह प्रार्थना कर रहा हूँ कि तुम मेरा हाथ पकड़कर मुझे अपने गुरु के पास ले चलो।' यह कहकर गोरा ने अपना सीधा हाथ सुचरिता की ओर बढ़ा दिया, सुचरिता ने कुर्सी पर से उठकर अपना हाथ गोरा के हाथ पर रख दिया, तब गोरा ने सुचरिता के साथ परेश बाबू को प्रमाण किया।

परिशिष्ट

सन्ध्या के वाद जब गोरा अपने घर लौटा, तो उसने देखा आनन्दमयी अपने कमरे के सामने बरामदे में चुपचाप बैठी हुई हैं।

गोरा ने आते ही उनके दोनों पैरों पर अपना माथा रखकर प्रणाम किया। आनन्दमयी ने अपने दोनों हाथों से गोरा का मस्तक ऊपर उठाकर आशीर्वाद दिया।

गोरा ने कहा—'माँ, तुम्हीं मेरी माँ हो! जिस माँ को खोजता हुआ घूम रहा था, वे ही मेरे कमरे के आकर बैठी थीं। तुम जाति-भेद को नहीं मानतीं, तुम ऊँच-नीच का कोई विचार नहीं करतीं—तुम केवल कल्याण की मूर्ति हो! तुम्हीं मेरी भारत माता हो।

'माँ! अब तुम लछमियाँ को बुलाओ। उससे कहो, मुझे पीने के लिए जल ला दे।'

तब आनन्दमयी ने अश्रुपूर्ण व्याकुल स्वर से गोरा के कान में कहा—"गोरा, अब मैं एक बार विनय को बुला रही हूँ।'
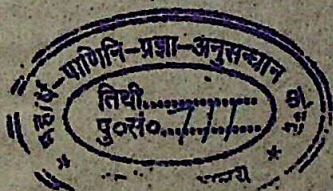
□□□

ये नहीं हैं को
वाली कोई चि
थोड़ा चंचल,
बांध नहीं पाती
वे जीती हैं अ
संजोते और र

ऐश्वर्या राय
मलाइका
सेलेब्रिटी अ
हिस्सों में अ
बल्कि

रही हूं खुद

तकदी

लाइफ आजकल
अंशु सिंह

। न ही पिंजड़े में कैद रहने
है इनका लहरों की तरह।
लेकिन जब ठान लेती हैं कुछ तो
मों और रीति-रिवाजों की कोई डोर।
र, चढ़ती हैं सफलता की सीढ़ियां, साथ में
ने घोंसले को....

रीना कपूर खान,
न जैसी कुछेक
छोड़ दें तो भारत के
लाओं को न सिर्फ

सकती। मैं पारंपरिक भारतीय परिधान
पहनती हूं, लेकिन विचारों से आधुनिक
हूं। सशक्त महिला वह होती है, जो अपने
सामाजिक, आर्थिक, कानूनी और राजनीतिक